प्रकाशक:

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय
अमरावती (वरार)



मुद्रक:—

टी. एम्. पाटील,
मॅनेजर,
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार)

THE ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALĪ

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. IV

KṢETRA-SPARŚANA-KĀLĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes, and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M. A., LL. B.,
C. P. Educational Service, King Edward College, Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Sidhānta Shastrī, Nyāyatirtha.

With the cooperation of

Pandit Devakinandana Sidhānta Shāstrī

*

Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Publish by

Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Udhāraka Fund Karyālaya.
AMRAOTI [Berar].

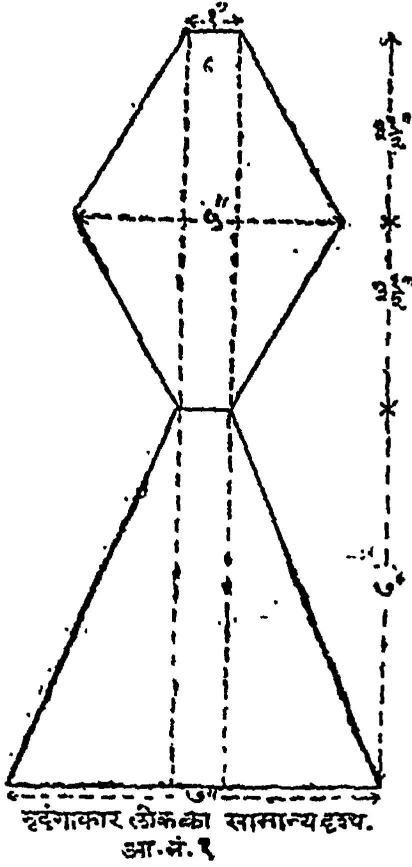
1942

Price rupees ten only.

Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Karyālaya,
AMRAOTI (Berar).

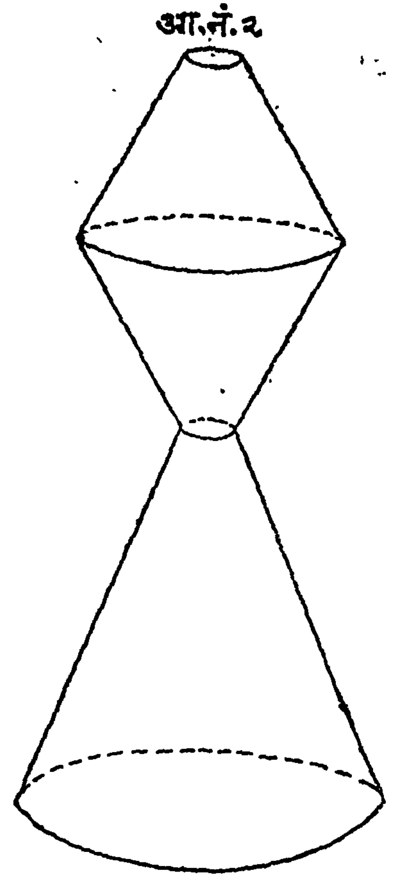


Printed by—
T. M. Patil, *Manager,*
Saraśwati Printing Press,
AMRAOTI (Berar,).



मृदंगाकार लोकका सामान्य दृश्य.
आ.नं.१

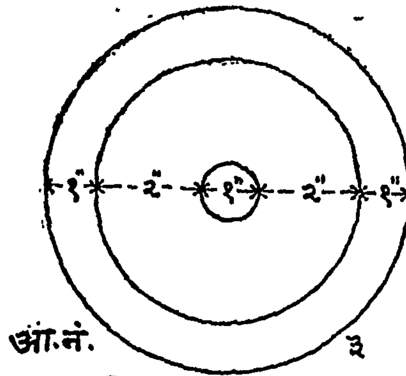
(पृ. १२)



आ.नं.२

मृदंगाकार लोक का -
- यथादर्शन चित्र.

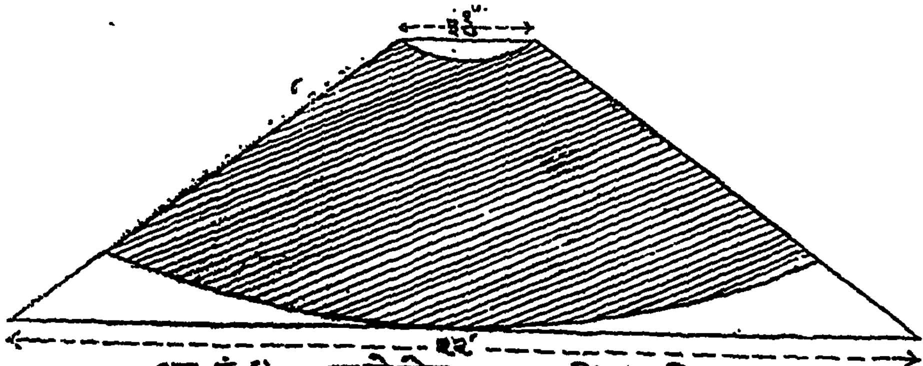
(पृ. १२)



आ.नं. ३

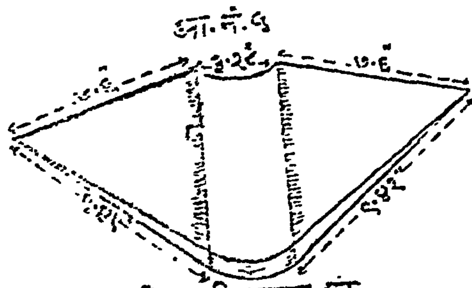
मृ.लो. का तलविन्यास.

(पृ. १२)

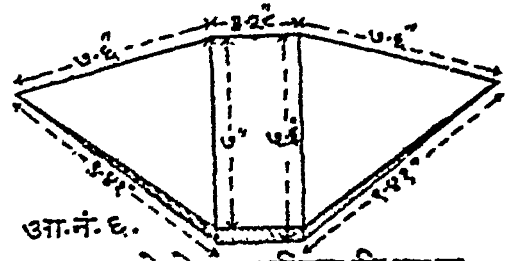


आ.नं.४ — अधोलोक का सूपाकार विन्यास.

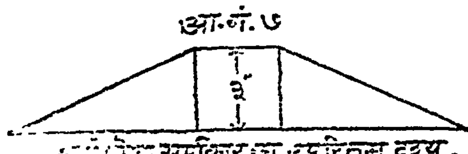
(पृ. १२)



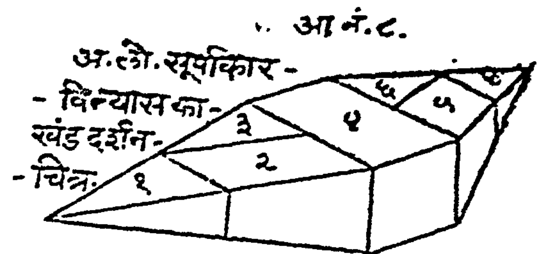
(पृ. १३)



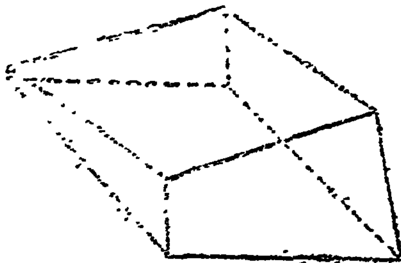
(पृ. १२)



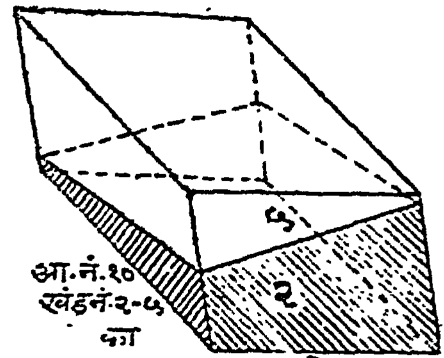
(पृ. १२)



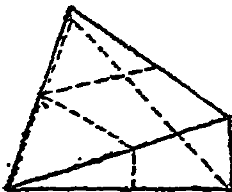
(पृ. १३-१४)



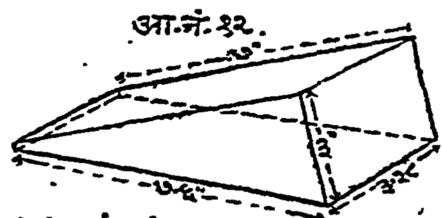
(पृ. १४)



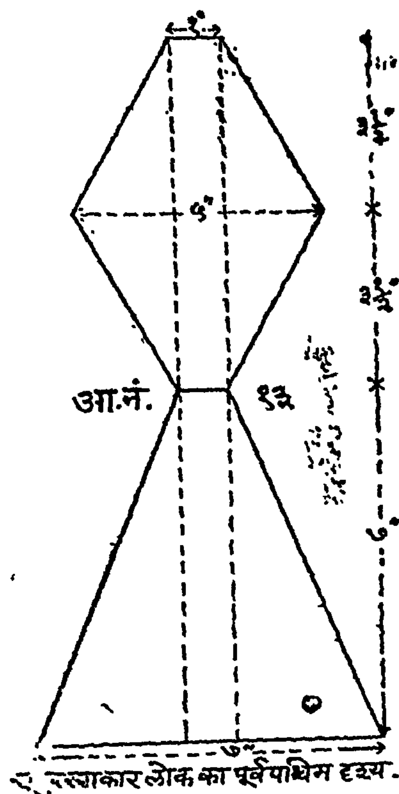
(पृ. १४)



(पृ. १४)

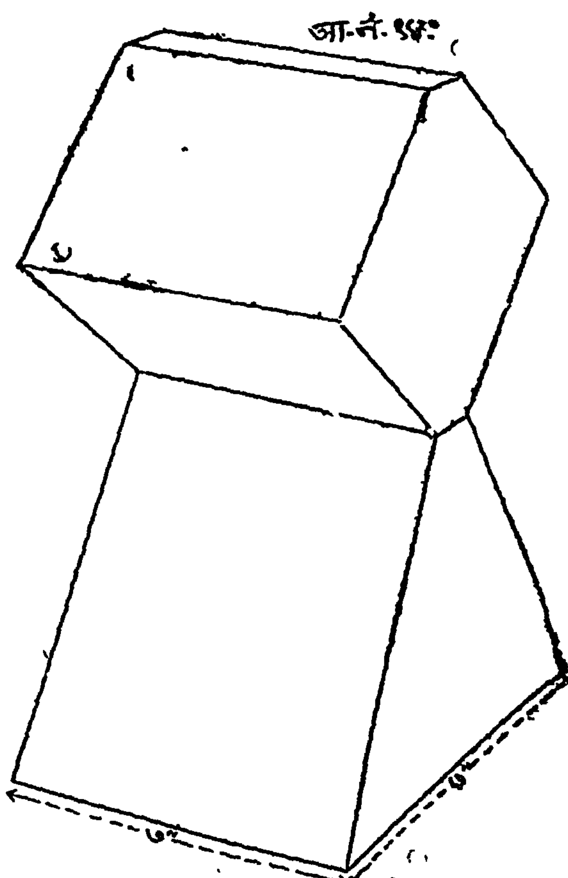


(पृ. १२)



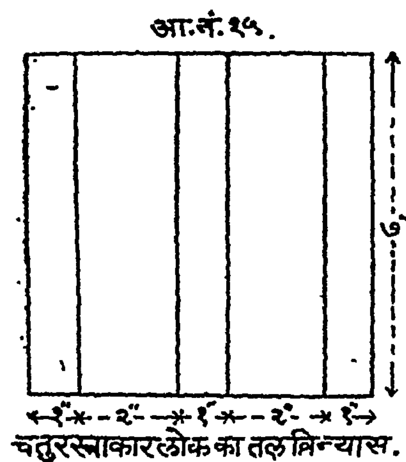
चतुरस्राकार लोक का पूर्वपश्चिम दृश्य.

(पृ. १९-२०)



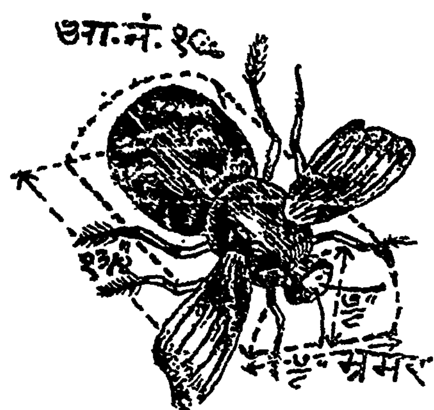
चतुरस्राकार लोक का
यथावस्थित चित्र

(पृ. १९-२०)

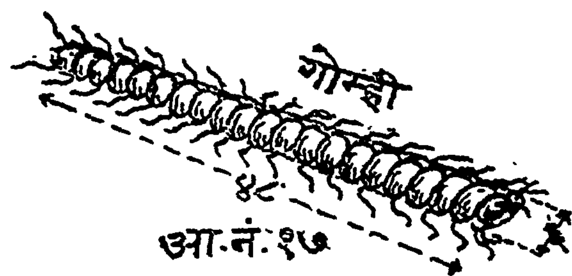


चतुरस्राकार लोक का तलविन्यास.

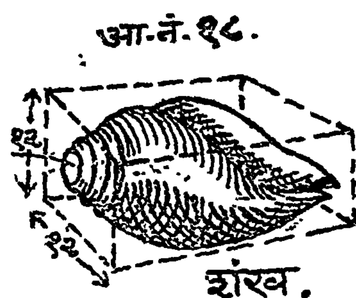
(पृ. १९-२०)



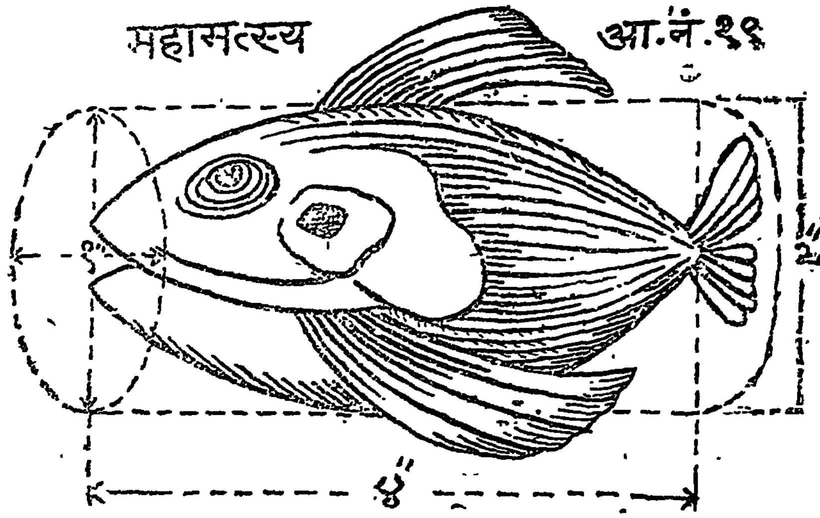
(पृ. ३४)



(पृ. ३४)



(पृ. ३५)



(पृ. ३६)

रत्नप्रभा — १८०००० योजन

शर्करा प्रभा — ३२००० योजन

वालुका प्रभा — २८००० योजन

पंकप्रभा — २४००० योजन

धूमप्रभा — २०००० योजन

तमप्रभा — १६००० योजन

महातम प्रभा — ८००० योजन

— लोकाकाशमें स्वर्ग-नरक विभाग. —
(आ.नं. २०.)

(पृ. ८८-९१)

विषय सूची

चित्र सूची

प्राक् कथन



पट्खंडागमका तीसरा भाग अप्रेल १९४१ में प्रकाशित हुआ था। वर्ष पूरा होते होते उसका चौथा भाग भी तैयार होकर पाठकोंके हाथमें पहुंच रहा है। इन सिद्धान्त ग्रन्थोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोप है। विद्वत्समाज अब इस ओर कितना उत्सुक और तत्पर हो उठा है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसी अल्प-कालमें हमें इस सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें पंडिताचार्यवर्य भट्टारक चारुकीर्तिजी स्वामी तथा पंचोंकी कृपासे मूडविद्री संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जिससे अब सिद्धान्तग्रंथका मूल पाठ वहांकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलान परसे ही निश्चित किया जाता है। इस कारण अब इतर प्रति-योंके मिलान प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी वीच द्वितीय सिद्धान्तग्रंथ कषायप्राभृत और उसकी टीका जयधवलाके प्रकाशनके लिये भी एक नहीं अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठी हैं, और जैनसंघ, मथुरा, ने उस ओर कार्य प्रारंभ भी कर दिया है। उधर शोलापुरवाले स्वर्गीय सेठ रावजी सखारामजी दोशीके संरक्षणमें जो सिद्धान्तोद्धारसंबंधी फंड था, उसकी उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी सेठ गुलाबचंद्रजीने सुव्यवस्था करके महाधवलके निमित्त एक समिति सुसंगठित कर दी है। यही नहीं, श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताड़पत्रीय प्रतियोंके अनुसार प्रकाशित करानेकी भी एक स्कीम प्रस्तुत की है। साहित्योद्धारके महत्त्व और उसकी आवश्यकताको अनुभव करके शोलापुरके अत्यन्त धर्मानुरागी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशीने गम्भीर विचार और विद्वत्परामर्शके पश्चात् 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' का आयोजन किया है, और उसके लिये अपनी ओरसे तीस हजारका दान भी दे दिया है। इस संघका ध्येय वहुत विशाल और सर्वांगव्यापी है, जिसकी पूर्ति धीरे धीरे ही हो सकती है तथा समाजके सहयोगपर अवलम्बित है। किन्तु उसके अन्तर्गत जो एक 'जीवराज जैन ग्रंथमाला' के संचालनका निश्चय किया गया था, उसका मेरे प्रियमित्र डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय और मेरे सम्पादकत्वमें कार्य प्रारंभ होगया है, और उस मालाका प्रथम पुष्प, उक्त सिद्धान्तग्रंथोंकी ही कोटिका प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) मुद्रणाधीन है। इस प्रकार यह सिद्धान्तोद्धारका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अब अनेक कंधोंद्वारा सम्हाला जा रहा है, जिससे हमें अब अपना वोझ कुछ हलका हुआ प्रतीत होने लगा है। इसकी हमें प्रसन्नता है।

किन्तु गतिके साथ गति-अवरोधोंके प्रयत्नोंका भी सर्वथा अभाव नहीं है। प्रकाशित सिद्धान्त ग्रन्थोंकी धार्मिक ज्ञानवृद्धिमें वड़ी भारी उपयोगिताका अनुभव करके वंबईकी माणिकचंद्र जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत वैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करना आवश्यक समझा। इसका अधिकांश पाठकों और विद्या-र्थियोंने वड़ा हर्ष मनाया। किन्तु, मोरेना जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान अध्यापक पं मक्खनलालजी

शास्त्रीने इसका घोर विरोध प्रारंभ कर दिया है। उन्होंने 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने यह बतलानेका प्रयत्न किया है कि गृहस्थ जैनियोंको इन सिद्धान्तग्रंथोंके पढ़नेका बिलकुल अधिकार नहीं है और इसलिये इनका पढ़ना पढ़ाना व छपाना एकदम बंद कर देना चाहिये। इस पुस्तिकाके आधारसे जैन पाठशालाओंके अध्यापकोंके ऐसे मत संग्रह करनेका भी प्रयत्न किया जा रहा है कि वे धवल, जयधवल, महाधवल, इन सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं करेंगे। अपनी अपनी समझ और विवेकके अनुसार तो प्रत्येकको अपना मत बनाने और उसका प्रचार करनेका अधिकार है, किन्तु उक्त पुस्तिकामें जो इस मतके लिये प्राचीन प्रमाण दिये गये हैं, उनसे साधारण पाठकोंको एक भ्रम पैदा हो जानेकी संभावना है। अतएव हमने यह आवश्यक समझा कि हम अपने पाठकोंके लिये उन प्राचीन प्रमाणोंकी जांच पड़ताल करके अपना निष्कर्ष उनके सन्मुख रख दें, ताकि वे उक्त मतकी सारहीनताको समझ जावें। हमारे इस विवेचनको पाठक प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनामें 'सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार' शीर्षक लेखमें देखेंगे जिससे उन्हें पता चल जायगा कि कुंदकुंद, समन्तभद्र आदि जैसे अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक आचार्योंने गृहस्थोंको सिद्धान्त शास्त्र पढ़नेका प्रतिषेध नहीं किया, किन्तु खूब उपदेश दिया है। तथा सिद्धान्त अध्ययनका प्रतिषेध करनेवाले जो ग्रंथ हैं वे बहुत पीछेके १२ हवीं शताब्दि और उसके पश्चात्के अत्यन्त साधारण लेखकों द्वारा रचे गये हैं; और उन्होंने भी यह कहीं नहीं कहा कि धवल–जयधवल ग्रंथ ही सिद्धान्त ग्रंथ हैं, व गोम्मटसारादि सिद्धान्त ग्रंथ नहीं हैं। यह सब उक्त पुस्तिकाके लेखककी ही मौलिक कल्पना है जिसका यथार्थ मर्म वे ही जानें। स्वयं धवलादि सिद्धान्त ग्रंथोंमें बार बार यह कहा गया है कि इन ग्रन्थोंकी रचना, सर्व प्राणियोंके हितके लिये, मनुष्यमात्रके उपयोगके लिये, मूर्खसे मूर्ख और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुषोंके उपकारार्थ हुई है। अतएव उनके पठन-पाठनका सभीको पूरा अधिकार है।

पूर्व-प्रकाशित द्रव्यप्रमाणानुगममें जो गणित आया है, और उसके संबंधमें हमें जो कुछ सहायता लखनऊ विश्वविद्यालयके गणिताध्यापक **डॉ० अवधेश नारायण सिंह** जीसे मिली थी उसका हम उसी भागमें उल्लेख कर आये हैं। वहां हमारे अंग्रेजी नोटमें हमने यह भी कहा था कि डॉ. साहब उस गणितका विशेष अध्ययन कर रहे हैं। हमें बड़ा हर्ष है कि डॉ. सिंहजीने अब अपने अध्ययनका फल इस भागमें पाठकोंके सन्मुख उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उस भागकी गणित पर अंग्रेजीमें एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर हमें भेजा है जो इस भागमें प्रकट हो रहा है। उससे पाठक समझ सकेंगे कि जैनियोंके द्वारा भारतीय गणितशास्त्रमें कितनी उन्नति हुई है, और धवलाके अन्तर्गत गणितशास्त्र किस कोटिका है। अगले भागमें हम इस लेखका पूरा हिन्दी अनुवाद भी अपने पाठकोंको भेट करेंगे, और उसमें प्रस्तुत भागके क्षेत्रमिति संबंधी गणित पर भी ऐसा ही विद्वत्तापूर्ण लेख सम्मिलित करेंगे। इस सहयोगके लिये हम डॉ. सिंहके बहुत ऋणी हैं।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवट्ठाणकी तीन प्ररूपणाएं आईं हैं—क्षेत्र, स्पर्शन और काल। इनमें क्रमशः ९२, १८५ और ३४२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग १०१, १२४ और ११५ शंका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करने के लिये क्रमशः ३५, १७ और ८ विशेषार्थ, तथा २७ और २५ गणितके उदाहरण जोड़े गये हैं। तुलनात्मक व पाठ-भेदसंबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः १९७, १४८ और २७६ है। इस प्रकार इस ग्रंथभागमें लगभग ३४० शंका-समाधान, ६० विशेषार्थ, ५२ गणितोदाहरण, तथा ६२१ टिप्पण पाये जावेंगे।

इनमें और विशेषतः प्रथम दो प्ररूपणओंमें द्रव्यप्रमाणप्ररूपणाके सदृश बहुतसा गणित भाग आया है। विशेषता यह है कि यहांका गणित प्रायः क्षेत्रमिति [Geometry] से संबंध रखता है, जब कि द्रव्यप्रमाणका गणित अंकगणितसंबंधी था। लोकके आकारसंबंधी मान्यताओंमें मतभेद और उनमें तथ्यातथ्य-निर्णयके लिये उनके घनप्रमाण लानेकी प्रक्रियाएं जैन करणानुयोगकी बिलकुल नई चीजें हैं। उसी प्रकार शंखक्षेत्र, गोल्हीक्षेत्र, भ्रमरक्षेत्र व मत्स्यक्षेत्रके घनफलकी प्रक्रियाएं भी ध्यान देने योग्य हैं। स्पर्शनप्ररूपणामें द्वीपसागरोंके विस्तार और तत्संबंधी चंद्रोंके प्रमाणका गणित भी बड़ा सूक्ष्म है और अनेक गणितसूत्रोंसे संबंध रखता है।

इस सब गणितको विधिवत् समझने व समझानेमें हमें पुनः हमारे कालेजके गणित अध्यापक प्रोफेसर **काशीदत्तजी पांडे** से बहुत सहायता मिली है। जैसे परिश्रमसे उन्होंने द्रव्य-प्रमाणके गणितको व्यवस्थित करा दिया था, वैसे ही उन्होंने यहां भी बड़ा योग दिया। लोकाकार संबंधी मतभेद व प्रमाणके गणितको समझनेके लिये हमें उस उस आकारके काष्ठादर्शों (wooden models) की आवश्यकता पड़ी जो हमारे प्रियमित्र, श्रद्धेय पं. सूरजभानुजी वकीलके सुपुत्र, **कुलवंतरायजी जैनी** के परिश्रमसे तैयार हो गये। उन्होंने उनके कुछ चित्रादि बनाकर भी दिये जिनसे विषयके स्पष्टीकरणमें हमें बड़ी सहायता मिली। उन्हीं काष्ठादर्शों व चित्रोंके आधारसे तथा अन्य गणित परसे हमारे नगरके 'न्यू हाइस्कूल' के ड्राइंग मास्टर श्रीयुक्त **एस. वाय. पतकी**, डी. टी. सी, ने हमें वे वीस चित्र बनाकर दिये जिनके ब्लाक इस भागमें प्रकट किये जा रहे हैं, तथा जिनकी सहायतासे तत्संबंधी गणित हमारे पाठकोंको भी सुग्राह्य हो सकेगा। इस सब सहायताके लिये हम उक्त सज्जनोंके बहुत कृतज्ञ हैं। हमारी प्रतियोंकी साधन-सामग्री पूर्ववत् कायम है जिसके लिये हम अमरावती जैन मंदिर, सिद्धान्तभवन आरा, तथा कारंजा ब्रह्मचर्याश्रमके अनुगृहीत हैं। हमारे संशोधनसहायक भी पूर्ववत् स्थिर हैं।

गत भागकी प्रस्तावनाके भीतर हमने एक शंका-समाधानका स्तम्भ भी रखा था जिसमें उस समय तक आई हुई चौवीस शंकाओंके उत्तर दिये गये थे। समालोचकोंने इस स्तम्भ पर

हर्ष प्रकट किया, और आगे भी उसे नियत रखनेकी प्रेरणा की। किन्तु इस वार हमारे पास कोई विशेष शंकाएं नहीं आईं। तब हमने इसके लिये पत्रोंमें एक सूचना निकाली, जिसके फलस्वरूप जो शंकाएं हमारे पास आईं उनका हमने पूरा उपयोग किया है, और प्रस्तुत भागकी प्रस्तावनाके अन्तर्गत शंका-समाधान, एवं शुद्धिपत्रमें पूर्वभागोंके पाठका संशोधन उसाकी सुपरिणाम है। इस ओर विशेषरूपसे रुचि दिखलानेके लिये श्रीयुक्त नानकचंदजी, खतौली, श्रीयुक्त रतनचंदजी मुख्तार, सहानपुर, और श्रीयुक्त नेमिचंदजी वकील, सहारनपुर, को हम धन्यवाद देते हैं। यदि उनकी भेजी गई कोई शंकाएं या शुद्धियां, यहां सम्मिलित नही की गई हैं तो समझना चाहिये कि उनका संकलन पूर्वभागोंमें हो चुका है जिनका पाठकोंको सदैव ध्यान रखना चाहिये। कभी कभी शंकाकार हमसे ऐसा प्रश्न भी कर वैठते हैं कि अमुक बात अमुक प्रकार से क्यों नही कही या अमुक बात क्यों नही जोड़ी गई? इसके उत्तर में हम अपने पाठकोंका ध्यान केवल हमारे इस आदर्श की ओर आकर्षित करते हैं कि—

'नामूलं लिख्यते किञ्चित्, नानपेक्षितमुच्यते'

इस महान् कार्यमें हमें अब उत्तरोत्तर कठिनाइयोंका अनुभव हो रहा है। जैसा कि हम पूर्व भागमें प्रकट कर चुके हैं, हमारे एक सहयोगी पं. फूलचंद्रजी शास्त्री उस भागके सम्पूर्ण हो सकनेके पूर्व ही आकस्मिक विपत्तिके कारण यहांसे चले गये थे। तबसे वे फिर वापिस नहीं आसके। अतएव इस भागका संपूर्ण कार्य केवल **पं. हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्रीकी** सहायतासे हुआ है। प्रूफ और प्रति मिलानमें तिलोयपण्णत्ति-विभागके कार्यकर्ता पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका साहाय्य रहा है। इधर यूरोपीय युद्धके कारण कागज आदिका भाव वेहद बढ़ता गया। यथेष्ट कागज ठीक समय पर मिलना भी अशक्य हो गया। इतने पर अमरावती नगरमें साम्प्रदायिक झगड़ेने कुछ समयके लिये ऐसा भीषणरूप धारण किया कि आफिस और प्रेसका कार्य बंद रखना पड़ा। पुस्तकोंकी बिक्री भी इतनी नहीं होरही जिससे आगेका कार्य चलता जावे। इससे हमारा फंड भी कुछ कुछ कम होता जा रहा है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंके प्रचारको रोकनेका भी जो प्रयत्न हो रहा है उसका हम ऊपर उल्लेख कर ही आये हैं। किन्तु इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी किसी अज्ञात शक्तिके प्रभावसे कार्य अग्रसर होता ही गया। हम कहां तक अपने आदर्शको स्थिर रख सके हैं, इसका निर्णय करना हमारे मर्मज्ञ पाठकोंके अधिकारमें है।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
१५-१२-४१

हीरालाल जैन



प्रस्तावना

INTRODUCTORY

The present volume contains three prarūpaṇās, namely, Kshetra, Sparśana and Kāla, out of the eight prarūpanās of Jīvaṭṭhāṇa, of which two, namely, Sat and Dravya-pramāṇa have already been published in the previous three volumes, while the last three, namely, Antara, Bhāva and Alpa-bahutva are going to be included in the next volume.

The Kshetra prarūpaṇā contains 92 Sūtras and concerns itself with the determination of the volume of space that living beings occupy under the various conditions of life and existence. The Sūtras confine themselves to the treatment of the subject under the usual fourteen spiritual stages (Guṇasthānas) and the fourteen soul-quests (Mārgaṇā-sthānas). But the commentator introduces ten other conditions of life which have to be taken into consideration. These fall under three main classes, namely, the place of habitation of the beings (Svasthāna), their expansion (Samudghāta) and their journey for rebirth (Upapāda). The first of these includes the usual place of habitation (Svasthāna-svasthāna) and places of occasional visits (Vihāravat-svasthāna). The expansion of the soul-substance beyond its usual volume (Samudghāta) may be due to pain (Vedanā), or passion (Kashāya), or for a temporary transformation of personality (Vikriyā), or for a visit to the next place of birth just before death (Māraṇāntika), or by effulgence of lustre for evil or good (Taijasa), or for reaching a learned person for the removal of a doubt in knowledge in the case of saints (Ahāraka), or for getting rid of the remnant karmic bonds in the case of an all-knowing saint (Kevali-samudghata). Thus, the commentator calculates the volume of space occupied by the living beings in these ten different conditions under the different spiritual stages and soul-quests.

The spatial units adopted for these measurements are five, namely, (1) the entire universe (Sarva-loka), (2) the lower universe (Adholoka), (3) the upper universe (Urdhva-loka), (4) the middle world (Madhyaloka), and (5) the human world (Manusa-loka). To make these standards definite and precise, the commentator divides the limitless space into two, namely, the Alokakaśa which is pure void and limitless, and the Lokākaśa which is situated in the middle of the former, where life and matter subsist and which is limited. It is this Lokakaśa which has been adopted as the largest measure in the treatment of volumes. As regards the shape and

volume of this universe, the commentator is confronted with two divergent views. According to one view it is in the form of three conical frusta with a common cricular section in the middle; while according to the other view it is in the form of three frusta of pyramids with a common rectangular base in the middle. Virasena with his philosophic insight, discriminating genius and mathematical skill ultimately rejects the former view and adopts the latter. His conclusions are that the entire universe (Lokakaśa) has a total height of 14 rajjus and is in its volume $7^3=343$ cubic rajjus, consisting of the lower universe which is 196 cubic rajjus and the upper universe which is 147 cubic rajjus. Between the lower and the upper universe is the rectangular section called the middle world which is $1\times7=7$ square rajjus, and which contains in its middle the human world which is a circular area of 45 lakhs of yojanas in diameter. The rajju is thus the standard unit of this spatial measurement and it is only determined as innumerable yojanas long, equal to the smaller side, and $\frac{1}{7}$ of the larger side of the rectangular middle world, $\frac{1}{7}$ of the height of the lower or upper world and $\frac{1}{14}$ of the total height of the entire universe. This discussion as well as similar others bring to light several geometrical problems that confronted our ancient thinkers, and their solutions throw a considerable light upon the evolution of mathematical processes and theories in this country. We have tried to illustrate some of these by twenty diagrams in addition to a large number of examples.

Under the Sparśana-prarupana wich contains 185 Sutras, we find the volumes of space similarly considered from the point of view of the past as well as the future status of those beings, in addition to the present to which Kshetra-prarupana confines itself. The question here is the volume of space which beings of different spiritual stages and soul-quests ever happen to touch under one of the ten conditions mentioned above. In this connection the determination of the number of heavenly luminaries shining above the innumerable islands and seas gives rise to a number of interesting mathematical excercises, (see pp 150-161 of the text).

In the Kala-prarupana which contains 342 Sutras, the considera-
tion is of the minimum and maximum periods of time spent by the souls,
singly or in aggregates, in the various spiritual stages and soul-quests.
The smallest period of time comprehended is an instant (Samaya) of
which innumerable are included in an avali and a breath (Prana) which
is equal to $\frac{2880}{3773}$ of a second (see Vol. III, Introduction p. 34). The series

of periods of time rises on to a Muhurta (48 Minutes), a day, a fortnight, a month, a year, a Yuga a Purvanga, a Purva, and so on to a Palyopama and a Sagaropama and ultimately to an Utsarpini and Avasarpini which constitute a Kalpa. The longest period of time conceived and denominated is a Pudgala-parivartana (for which see p. 330 text and explanatory note).

In interpreting the mathematical part of these texts I again received very valuable assistance from my colleague Mr. K. D. Panday, professor of mathematics in King Edward College, Amraoti. Without his help here, as in the previous volume, it would have been almost an impossible task for me to explain adequately the mathematical portions. As I mentioned in the previous volume, Dr. Avadhesh Narain singh, professor of Mathematics in the Lucknow University and author of the History of Hindu Mathematics, has taken a keen interest in the mathematical contents of these texts. He has now studied the mathematical portions of the III volume and has obliged me by writing out a dissertation on the mathematical contents of that volume. The same is being published here under the caption " Mathematics of Dhavala. " It is expected that he would continue his valuable study of these texts and the readers might look forward to a very interesting note on the geometrics of the present volume in the volume to be issued next.

Another topic dealt with in the Hindi Introduction of this volume is an answer to the objection raised in a certain quarter that Jaina traditions prohibit the study of these Sacred Texts by laymen, and therefore these texts should neither be published in a printed form, nor should they be taught in Jaina Pathaśalas, nor should they be allowed to be read anywhere by any body except by the Jaina ascetics. A critical examination of all the traditions bearing on this subject shows that an injunction against the study of Siddhanta by the laymen is found in a few books dealing with the duties of Jaina house-holders. But all these books are found to have been written by a few obscure and insignificant writers belonging to a period subsequent to the 12th century A. D. Again, they either do not make clear what is meant by Siddhanta, or explain it in a manner so as to make the present texts, as well as all other available books, fall outside the sphere of Siddhanta. The injunction is, moreover, in direct conflict with the statements of the most ancient and authoritative Jaina writers who have strongly recommended the study of the Jaina texts of the highest kind by all, laymen as well as ascetics. The author of the Dhavala himself lays down in clear and unmistakable terms at every step of his commentary that the Sutras as well as the commentary are so designed

as to be useful to all mankind, dull as well as intelligent. The tradition is thus found to be a very late one invented by some man of narrow outlook and small brain during the age of decadence, and it is altogether incompatible with the whole spirit and idealogy of Jainism and with the clear and definite recommendations of all other writers of far greater importance and authority.

A number of queries concerning the meaning and significance of certain statements in the previous volumes have also been answered in the Hindi Introduction.

MATHEMATICS OF DHAVALĀ

Introductory Remarks

It has been known that in India the study of **Ganita** –arithmetic, algebra. mensuration etc –was carried on at a very early date. It is also well known that the ancient Indian mathematicians made substantial and solid contributions to mathematics. In fact they were the originators of modern arithmetic and algebra. We have been accustomed to think that amongst the vast population of India only the Hindus studied mathematics and were interested in the subject, and that the other sections of the population of India, e. g. the Bhuddhists and the Jainas, did not pay much attention to it. This view has been held by scholars because mathematical works written by Buddhist or Jaina mathematicians had been unknown until quite recently. A study of the Jaina canonical works, however, reveals that mathematics was held in high esteem by the Jainas. In fact the knowledge of mathematics and astronomy was considered to be one of the principal accomplishments of the Jaina ascetics.[1]

We know now that the Jainas had a school of mathematics in South India, and at least one work–the **Ganita–sara–samgraha** by Mahāvīrācārya–of this school was in many ways superior to any other existing work of that time. Mahāvīrācārya wrote in 850 A. D. and his work although similar in general outline to the works of the Hindu mathematicians like Brahmagupta, Sridharācārya, Bhāskara and others, is entirely different in details, e. g., the problems in the **Ganita-sara-samgraha** are almost all different from those in the other works.

From the mathematical literature available at present we can say that important schools of mathematics flourished at Pataliputra (Patna), Ujjain, Mysore, Malabar, and probably also at Benares, Taxila and some other places. Until further evidence is available, it is not possible to say precisely what the relation between these schools was. At the same time we find that works coming from the different schools resemble each other in their general outline, although they differ in details. This shows that there was intercommunication between the various schools– that scholars and students travelled from one school to another, and that discoveries made at one place were soon communicated throughout the length and breadth of India.

It seems that the spread of Buddhism and Jainism gave an impetus to the study of the various sciences and arts. The religious literature of India in general and of Buddhism and Jainism in particular is full of big numbers. The use of big numbers necessitated the development of a simple symbolism for writing those numbers; and

1. Cf. Bhagavatī-sūtra with the commentary of Abhayadeva Sūri edited by Āgamodayasamiti of Mehesana, 1919, Sutra 90; English translation by Jacobi of the Uttarādhyayana-sūtra, Oxford, 1895, Ch. 7, 8, 38.

has been responsible for the invention of the decimal place value notation. It is now established beyond doubt that the place value system of notation was invented in India about the beginning of the Christian Era – the brightest period of Buddhism and Jainism. The new notation was an instrument of great power and accelerated the development of mathematics from the crude Vedic stage – as found in the **Sulba sutras** – to the finished stage of the fifth century – as found in the works of Aryabhaṭa and Varāhamihira.

One very significant fact which has escaped the notice of historians of mathematics is the following: whilst the general literature of the Hindus, the Buddhists, and the Jainas is continuous from the third or the fourth century B. C. right up to the middle ages, in the sense that works representing each century are found, there is a gap in the mathematical literature. In fact there is hardly any mathematical text earlier than the **Aryabhatiya** which was composed in 499 A. D. The only exception is a fragmentary manuscript known as the **Bakhshali manuscript,** which probably belongs to the second or the third century A. D. This manuscript, however, fails to give us any detailed information regarding the state of mathematical knowledge at the time of its composition for the reason that is not strictly speaking a Mathematical text as the treatises of Aryabhaṭa, Brahmagupta or Sridhara etc. It is of the nature of notes on some selected mathematical problems. All that we can infer from the manuscript is that the place value numerals as well as the fundamental operations of arithmetic with them were well known, and that some types of problems treated by later mathematicians were also known.

It has already been pointed out that mathematics as found in the **Aryabhatiya** is highly developed, for we find in it a treatment of the entire elementary arithmetic of today including the rules of proportion, interest, barter and exchange, and of algebra up to the solution of the simple and the quadratic equations, simple indeterminate equations etc. The question arises: Did Aryabhaṭa borrow from some foreign source or is the material contained in the Aryabhaṭīya indigenous and of Indian origin ? Aryabhaṭa writes:—

" Having paid reverence to Brahman, the Earth, the Moon, Mercury, Venus, the Sun, Mars, Jupiter, Saturn, and the asterisms, Aryabhaṭa sets forth the science which is honoured here at Kusumapura "1 This shows that he did not borrow from a foreign source. The study of the history of mathematics in other countries leads to the same conclusion, for the mathematics of the Aryabhaṭīya was far in advance of what was known at that time in any other country of the world. The possibility of borrowing from some foreign source having been ruled out, the question arises: How is it that practically no mathematical work anterior to that of Aryabhaṭa is available ? The explanation is simple enough. The place value system of notation was invented some time about the beginning of the Christian Era. It must have taken four or five hundred years to come into general use. Aryabhaṭa's work seems to be the first good text book employing the new arithmetic of the place value numerals. Works anterior

1. Aryabhatiya, ii, 1.

to Aryabhata's either used the old type of numerals or were not good enough to stand the test of time. I think that Aryabhata's great popularity as a mathematician was, in a great measure, due to his being the first to write a good text book employing the place value numerals. Aryabhata was responsible for driving out and killing all previous text books. This explains why we get a series of works from 499 A. D. onwards while no works belonging to earlier times are available.

Thus we have practically no material to trace the development and growth of mathematics in India before 500 A. D. It becomes a question of paramount importance to hunt and trace out works which may give information regarding the knowledge of mathematics in India anterior to Aryabhata. Mathematical works having been lost, we have to scan and analyse Hindu, Buddhist and Jaina literatures in general, and their religious literatures in particular, to find what material we can in order to reconstruct the history of mathematics in India before 500 A. D. In several of the **Puranas** we have portions dealing with mathematics and astronomy. Likewise in most of the Jaina canonical works there is to be found some mathematical or astronomical material. This material represents the traditional mathematics of India, and such material is generally about three to four centuries older than the age of the work in which it is contained. Thus if we examine a religious or philosophical work written in the period 400 to 800 A. D., its mathematical content will belong to O. A. D. to 400 A. D.

It is in the light of the above remarks that we regard the discovery of the **Dhavala**, a commentary on the **Satkhandagama**, written in the beginning of the ninth century as very important. Mr. H. L. Jaina has placed scholars under a permanent debt of gratitude by editing the work and getting it published.

The Jaina school of mathematics.

Since the discovery and publication of the **Ganita-sara-samgraha** by Rangacarya, in 1912, scholars[1] have suspected the existence of a school of mathematics run exclusively by Jaina scholars. A recent study of some of the Jaina canonical works has brought to light various references to Jaina mathematicians and mathematical works[2]. The religious literature of the Jainas is classified into four groups, called **anuyoga**, meaning " the exposition of the principles (of Jainism). " One of them is called **karananuyoga** or **ganitanuyoga**, i. e. the exposition of the principles dependent upon mathematics. This shows the high position accorded to mathematics in Jaina religion and philosophy.

Although the names of several Jaina mathematicians are known, their works have been lost. The earliest among them is Bhadrabāhu who died in 278 B. C. He is known to be the author of two astronomical works: (i) a commentary on the

---

1. See the Introduction by D. E. Smith to the Ganita-sara-samgraha ed. by Rangacarya Madras, 1912.
2. B. Datta: The Jaina school of Mathematics, Bulletin, Cal. Math. Soc., Vol. XXI (1929), pp. 115-145.

Suryaprajnapti and *(ii)* an original work called the **Bhadrabahavi Samhita**. He is mentioned by Malayagiri (c. 1150) in his commentary on the **Suryaprajnapti**, and has been quoted by Bhattotpala (966)[1]. Another Jaina astronomer of the name of Siddhasena has been quoted by Varāhamihira (505) and Bhattotpala. Mathematical quotations in Ardha-magadhi and Prakrit are met with in several works. The **Dhavala** contains a large number of such quotations. These quotations will be considered at their proper places, but it must be noted here that they prove beyond doubt the existence of mathematical works written by Jaina scholars which are now lost[2]. Works written by Jaina scholars under the litle of **Ksetra-samasa** and **Karana-bhavana** dealt with mathematics, but no such works are available to us now. Our knowledge of Jaina mathematics which is of an extremely fragmentary character is gleaned from a few non-mathematical works such as **Sthananga-sutra, Tattvarthadhigama-sutra-bhasya** of Umasvati, **Suryaprajnapti, Anuyogadvara-sutra, Triloka Prajnapti, Trilokasara,** etc. To these may now be added the **Dhavala.**

The importance of the Dhavala.

The **Dhavala** was written by Virasena in the beginning of the ninth century. Virasena was a philosopher and religious divine. He certainly was not a mathematician. The mathematical material contained in the **Dhavala** may therefore be attributed to previous writers, especially to the previous commentators of whom five have been mentioned by Indranandi in the Srutavatara. These commentators were Kundakunda, Shamakunda, Tumbulura, Samantabhadra and Bappadeva, of whom the first flourished about 200 A. D. and the last about 600 A. D. Most of the mathematical material in the **Dhavala** may therefore be taken to belong to the period 200 to 600 A. D. Thus the **Dhavala** *becomes a work of first rate importance to the historian of Indian mathematics, as it supplies information about the darkest period of the history of Indian Mathematics-the period preceding the fifth century A. D.* The view that the mathematical material in the **Dhavala** belongs to the period before 500 A. D. is corroborated by detailed study. For instance, many of the processes described in the **Dhavala** are not be found in any known mathematical work. Furthermore, there is a certain imperfection which, one acquainted with the later Indian mathematical works, can easily discern. The mathematics in the **Dhavala** lacks the finish and the refinement of the **Aryabhatiya** and later works.

Mathematical Content of the Dhavala

Numbers and Notation—The author of the Dhavala is fully conversant with the place value system of notation. Evidence of this is to be found everywhere. We quote some methods of expressing numbers taken from quotations given in the **Dhavala**—

---

1. Brhat Samhita, ed. by S. Dvivedi, Benares, 1895, p. 226.
2. Silanka in his commentary on the Sutrakrtanga Sutra, smayadhyayana, anuyogadvara, verse 28, quotes three rules regarding permutations and combinations. These rules are apparently taken from some Jaina mathematical work.

(i) 79999998 is expressed as a number which has 7 in the beginning, 8 at the end, and 9 repeated six times in between[1].

(ii) 46666664 is expressed as sixty-four, six hundreds, sixty-six thousands sixty-six hundred-thousands, and four koṭis[2].

(iii) 22799498 is expressed as two koṭis, twenty-seven, ninety-nine thousands four and ninety-eight[3].

The method used in (i) is found elsewhere also in Jaina literature and at some places in the **Ganita-sara-samgraha**[4]. It shows familiarity with the place value notation. In (ii) the smaller denominations are expressed first. This is not in accordance with the general practice current in Sanskrit literature. Likewise, the scale of notation is hundred and not ten as is generally found in Sanskrit literature.[5] In Pali and Prakrit, however, the scale of hundred is generally used. In (iii) the highest denomination is expressed first. Quotations (ii) and (iii) are evidently from different sources.

Big numbers—It is well known that big numbers occur frequently in Jaina literature. In the **Dhavala** also the various kinds of jiva-rāśi, dravya-pramāṇa etc. are discussed. The biggest number that is definitely stated is the number of developable human souls. In the **Dhavala**[6] it is stated to lie between the sixth-square of two and the seventh square of two; or to be more precise, between **koti-koti-koti** and **koti-koti-koti-koti**, i. e.,

$$\text{between} \quad 2^{2^{6}} \quad \text{and} \quad 2^{2^{7}}$$

and more definitely, between (1,00,00,000)^3 and (1,00,00,000)^4

The actual number of such souls known from other works[7] is 79,22,81,62,51,42,64,33,75, 93,54,39,50,336. This number occupies twety-nine notational places. It has the same, number of notational places as (1,00,00,000)^4 but is greater. This is known to the author of Dhavala who calculates the area of the world inhabited by men and shows that the larger number of men can not be contained in it, and hence that view was wrong.

The Fundamental Operations—Mention is found of all the fundamental operations- addition, subtraction, division, multiplication, the extraction of square and cube-roots, the raising of numbers to given powers, etc. These operations are mentioned

---

1. Dhavala III, p. 98, quoted verse 51. cf. Gommata-sāra, Jiva kānda, p. 633.
2. Dhavala III, p. 99, quoted verse 52.
3. Dhavala III, p. 100, quoted verse 53.
4. cf Ganita-sāra-samgraha. i, 27. See also History of Hindu Mathematics by Datta and Singh, Vol. I, Lahore, 1935, p. 16.
5. Datta and Singh, 1, c, p. 14.
6. Dhavala III, p. 253.
7. cf Gommatasara, Jivakanda S. B. J. Series, p. 104.

both with respect to integers and fractions. The theory of indices as described in the Dhavalā is somewhat different from what is found in the mathematical works. This theory is certainly primitive and is earlier than 500 A. D. The fundamental ideas seem to be those of (i) the square, (ii) the cube, (iii) the successive square, (iv) the successive cube (v) the raising of a number to its own power, (vi) the square-root (vii) the cube-root (viii) the successive square-root, (ix) the successive cube-root, etc. All other powers are expressed in terms of the above. For example, $a^{3/2}$ is expressed as the first square-root of the cube of a; a^9 is expressed as the cube of the cube of a; a^6 is expressed as the square of the cube or the cube of the square of a; etc.[1] The successive squares and square-roots are as below—

1st square of a means $(a)^2 = a^2$

2nd square of a means $(a^2)^2 = a^4 = a^{2^2}$

3rd square of a means a^{2^3}

....

nth square of a means a^{2^n}

Similarly,

1st square-root of a means $a^{1/2}$

2nd square-root of a means $a^{1/2^2}$

3rd square-root of a means $a^{1/2^3}$

....

nth square-root of a means $a^{1/2^n}$

Vargita-samvargita—The technical term vargita-samvargita has been ussd for the raising of a number to its own power. For instance, n^n is the vargita-samvargita of n. In connection with this the **Dhavala** mentions an operation called **Viralana-deya**-" spread and give ". The **Viralana** (spreading) of a number means the separating of the number into its unities, i. e , the **viralana** of n is—

1 1 1 1 1 ......n times.

Deya (giving) means the substitution of n in the place of 1 everywhere in the above. The vargita-samvargita of n is obtained by multiplying together the n's obtained by the viralana-deya. The result is the first vargita-samvargita of n, i. e ,

1st vargita-samvargita of n is. n^n.

The application of the process of **viralana-deya** once again, i. e., to n^n, gives the

2nd vargita-samvargita of n $(n^n)^{n^n}$.

A further application of the same procedure gives the—

1. Dhavala Vol. III, p. 53.

$$\left\{ \left(n^n\right)^{n^n} \right\}^{\left\{ \left(n^n\right)^{n^n} \right\}}$$

3rd vargita–samvargita of n

The Dhavalā does not contemplate the application of the above more than thrice. The third vargita-samvargita has been used very often[1] in connection with the theory of very large or infinite numbers. That the process yields very big numbers can be seen from the fact that the 3rd vargita–samvargita of 2 is 256^{256}.

The laws of indices—From the above description it is obvious that the author of the Dhavalā was fully conversant with the laws of indices, viz.,

$$\text{(i)} \quad a^m . a^n = a^{m+n}$$
$$\text{(ii)} \quad a^m / a^n = a^{m-n}$$
$$\text{(iii)} \quad (a^m)^n = a^{mn}.$$

Instances of the use of the above laws are numerous. To quote one interesting case,[2] it is stated that the 7th varga of 2 divided by the 6th varga of 2 gives the 6th varga of 2. That is—

$$2^{2^7} / 2^{2^6} = 2^{2^6}.$$

The operations of *duplation* and *mediation* were considered important when the place value numerals were unknown. There is no trace of these operations in the Indian mathematical works. But these processes were considered to be important by the Egyptians and the Greeks and were recognised as such in their works on arithmetic. The Dhavalā contains traces of these operations. The consideration of the successive squares of 2 or other numbers was certainly inspired by the operation of duplation which must have been current in India before the advent of the place value numerals. Similarly, there are traces of the method of mediation. In the Dhavalā we find generalisation of this operation into a theory of logarithms to the base 2, 3, 4, etc.

Logarithms—The following terms have been defined in the Dhavalā[3]:

(i) **Ardhaccheda** of a number is equal to the number of times that it can be halved. Thus the ardhaccheda of $2^m = m$. Denoting ardhaccheda by the abbreviation Ac, we can write in modern notation—

Ac of x (or Ac x) = log x, where the logarithm is to the base 2.

(ii) **Vargasalaka** of a number is the ardhaccheda of the ardhaccheda of that number, i. e.,

Vargaśalākā of x = Vs x = Ac Ac x = log log x, where the logarithm is to the base two.

(iii)[4] **Trkaccheda** of a number is equal to the number of times that it can be divided by 3. Thus—

1. Dhavala III, p. 20 ff. 2. ibid p. 253 ff. 3. ibid p. 21 ff. 4. ibid p. 56.

Trkaccheda of x $=$ Tc x $=$ log 3^x, where the logarithm is to the base 3.

(iv)[1] **Caturthaccheda** of a number is the number of times that it can be divided by 4. Thus—

Caturtha-ccheda of x $=$ Cc x $=$ Log 4^x, where the logarithm is to the base 4.

The following results regarding logarithms have been used in the **Dhavala**:

(1)[2] $\text{Log}(m/n) = \log m - \log n.$

(2) $\text{Log}(m.n) = \log m + \log n.$

(3)[3] $2^{\log m} = m$, where the logarithm is to the base 2.

(4)[4] $\text{Log}(x^x)^2 = 2x \log x.$

(5)[5] $\text{Log}\log(x^x)^2 = \log x + 1 + \log\log x,$

(for the left side $= \log(2x \log x)$

$= \log x + \log 2 + \log\log x$

$= \log x + 1 + \log\log x.$

as log 2 to the base 2 is 1).

(6)[6] $\text{Log}(x^x)^{x^x} = x^x \log x^x$

(7) Let a be any number, then—

1st vargita-samvargita of a $= a^a = B$ [say]

2nd vargita-samvargita of a $= B^B = y$ [say]

3rd vargita-samvargita of a $= y^y = D$ [say].

The **Dhavala** gives the following results[7]—

(i) $\text{Log } B = a \log a$

(ii) $\text{Log}\log B = \log a + \log\log a.$

(iii) $\log y = B \log B$

(iv) $\log\log y = \log B + \log\log B$

$= \log a + \log\log a + a \log a.$

(v) $\log D = y \log y$

(vi) $\log\log D = \log y + \log\log y.$

and so on.

(8)[8] $\text{Log}\log D < B^2$

This inequality gives the inequality—

$B \log B + \log B + \log\log B < B^2$

---

1. ibid p. 56. 2. ibid p. 60. 3. ibid p. 55. 4. ibid p. 21 ff. 5. 1. c.

6. 1. c. It should be mentioned here that nowhere in the text are these logarithms restricted to be integral. The number x is any number. x^x is the first vargita-samvargita rasi and $(x^x)^{x^x}$ is the second vargita-samvargita rasi.

7. Dhavalā III, p. 21-24. 8. ibid p. 24.

Fractions— Besides the fundamental arithmetical operations with fractions, knowledge of which has been assumed in the Dhavalā, we find a number of interesting formulae relating to fractions, which are not found in any known mathematical work. Amongst these may be mentioned the following:—

[1][1] $$\frac{n^2}{n \pm (n/p)} = n \mp \frac{n}{p \pm 1}$$

[2][2] Let a number m be divided by the divisors d and d′, and let q and q′ be the quotients (or the fractions). The following formula gives the result when m is divided by $d \pm d'$—

$$\frac{m}{d \pm d'} = \frac{q'}{(q'/q) \pm 1}$$

$$\text{or} \quad = \frac{q}{1 \pm (q/q')}$$

[3][3] If $\frac{m}{d} = q$ and $\frac{m'}{d} = q'$, then—

$$d\,(q - q') + m' = m.$$

[4][4] If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + \frac{b}{n}} = q - \frac{q}{n+1};$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - \frac{b}{n}} = q + \frac{q}{n-1}.$$

[5][5] If $\frac{a}{b} = q$, then—

$$\frac{a}{b + c} = q - \frac{q}{\frac{b}{c} + 1};$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - c} = q + \frac{q}{\frac{b}{c} - 1}.$$

[6][6] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'} = q + c$, then—

1. Dhavalā p. 46.
2. ibid p. 46.
3. ibid p. 47, quoted verse 27.
4. ibid p. 46, quoted verse 24.
5. ibid p. 46, quoted verse 24.
6. ibid p. 46, quoted verse 25.

$$b' = b - \frac{b}{\frac{q}{c} + 1},$$

and if $\frac{a}{b'} = q - c$, then—

$$b' = b + \frac{b}{\frac{q}{c} - 1}.$$

[7][1] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b'}$ is another fraction, then—

$$\frac{a}{b} - \frac{a}{b'} = q\left(\frac{b' - b}{b'}\right)$$

[8][2] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b + x} = q - c$, then—

$$x = \frac{bc}{q - c}$$

[9][3] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b - x} = q + c$, then—

$$x = \frac{bc}{q + c}$$

[10][4] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b + c} = q'$, then—

$$q' = q - \frac{qc}{b + c}$$

[11][5] If $\frac{a}{b} = q$, and $\frac{a}{b - c} = q'$, then—

$$q' = q + \frac{qc}{b - c}$$

The above results are all found in quotations given in the Dhavalā. They are not found in any known mathematical work. The quotations are from Ardha-Māgadhi or Prakrit works. The presumption is that they are taken from Jaina works on mathematics or from previous commentaries. They do not represent any essential arithmetical operation. They are relics of an age when division was considered a difficult and tedious operation. These rules certainly belong to an age when the place-value notation was not in common use for arithmetical operations.

The rule of three—The rule of three is mentioned and used at several

1. ibid p 46, quoted verse 28.
2. ibid p 48, quoted verse 29.
3. ibid p. 49, quoted verse 30.
4. ibid p. 49, quoted verse 31.
5. ibid p. 49, quoted verse 32.

places[1], The technical terms in connection with the process are *phala, iccha* and *pramana*, the same as found in the known mathematical works. This suggests that the rule of three was known and used in India even before the invention of the place-value notation.

The Infinite.

Use of big numbers—The word infinite used in various senses is found in the literature of all ancient peoples. A correct definition and appreciation of the idea, however, came much later. It is natural that the correct definition was evolved by people who used big numbers, or were accustomed to such numbers in their philosophy. The following will show that *in India the Jaina philosophers succeeded in classifying the various notions connected with the term infinite, and in evolving the correct definition of the numerical infinite.*

The evolution of suitable notation for expressing big numbers as well as of the idea of the infinite arise when abstract reasoning and thinking reach a certain high standard. In Europe, Archimedes tried to estimate the number of sand particles on the sea-shore and the Greek philosophers speculated about the infinite and the limit. They, however, did not possess suitable symbols for the expression of big numbers. In India, the Hindu, Jaina and Buddhist philosophers used very big numbers and evolved suitable symbolism for the purpose. In particular, the Jainas tried to form an estimate of all living beings in the Universe, of time instants, of locations [points or places] in the Universe and so on.

Three methods of expressing big numbers were employed:—

(1) The place-value notation using the scale of ten. In this connection it may be noted that number-names based on the scale of ten[2] were coined to express numbers as large as 10^{140}.

(2) The law of indices (*varga-samvarga*) was employed to give compact expressions for big numbers, e. g.—

(i) $(2^2) = 4$,

(ii) $(2^2)^{2^2} = 4^4 = 256$,

(iii) $\left\{(2^2)^{2^2}\right\}^{\left\{(2^2)^{2^2}\right\}} = 256^{256}$ is called the third *Vargita-samvargita* of 2. This number is greater than the number of protons and electrons in the Universe.

---

1. See, for example, Dhavala III, p. 69 and 100 etc.

2. For details of big numbers and numerical denominations, see Datta and Singh, History of Hindu Mathematics (Published by Motilal Banarsi Dass, Lahore) Part 1, pp. 11 f.

(3) The logarithm (*ardhaccheda*) or the logarithm of a logarithm (*ardhaccheda-salaka*) was used to reduce the consideration of big numbers to those of smaller ones, e. g.—

(i) $\text{Log}_2 2^2 = 2$

(ii) $\text{Log}_2 \log_2 4^4 = 3$,

(iii) $\text{Log}_2 \log_2 256^{256} = 11$.

It is no wonder to find that today we take recourse to one or the other of the above three methods of expressing numbers. The decimal place-value notation has become the common property of all nations. Logarithms are used whenever calculations with big numbers have to be made. Instances of the use of the law of indices to express magnitudes in modern physics is common. For instance, the number[1] of protons in the Universe has been calculated and expressed as—

$$136.2^{256}.$$

And Skewes' number which gives information regarding the distribution of primes is expressed in the form—

$$10^{10^{10^{34}}}$$

All the above methods of expressing numbers have been used in the Dhavalā. It follows that the methods were commonly known before the seventh century A. D. in India.

---

1. The number $136.\ 2^{256}$ expressed in the decimal notation is 15,747,724,136,275,002,577 605,653,961,181,555.468,044,717,914, 572,116,709,366,231,425,076,185.631,081,296. It will be observed that the third vargita-samvargita of 2, i. e., 256^{256} is greater than the number of protons in the Universe. If we imagine the entire Universe as a chess-board, and the protons in it as chessmen, and if we agree to call any interchange in the position of two protons a 'move' in this cosmic game, then the total number of possible moves would be the number—

$$10^{10^{10^{34}}}$$

This number is also connected with the theory of the distribution of primes.

Classification of the infinite. The Dhavalā gives a classification of the infinite. The term infinity has been used in literature in several senses. The Jaina classification takes into account all these. According to it there are eleven kinds of infinity as follows:—

(1) **Namananta** – Infinite in name. An aggregate of objects which may or may not really be infinite might be called as such in ordinary conversation, or by or for ignorant persons, or in literature to denote greatness. In such a context the term infinite means infinite in name only, i. e., *Nāmānanta*.

(2) **Sthapanananta**—Attributed, or associated infinity. This too is not the real infinite. The term is used in case infinity is attributed to or associated with some object.

(3) **Dravyananta**—Infinite in relation to knowledge which is not used. This term is used for persons who have knowledge of the infinite, but do not for the time being use that knowledge.

(4) **Gananananta**—The numerical infinite. This term is used for the actual infinite as used in mathematica.

(5) **Apradesikananta**—Dimensionless, i. e., infinitely small.

(6) **Ekananta**—One directional infinity. It is the infinite as observed by looking in one direction along a straight line.

(7) **Ubhayananta**—Two directional infinite. This is illustrated by a line continued to infinity in both directions.

(8) **Vistarananta**—Two dimensional or superficial infinity. This means an infinite plane area.

(9) **Sarvananta**—Spatial infinity. This signifies the three dimensional infinity, i. e. the infinite space.

(10) **Bhavananta**—Infinite in relation to knowledge which is utilised. This term is used for a person who has knowledge of the infinite, and who uses that knowledge.

(11) **Saswatananta**—Everlasting or indestructible.

The above classification is a comprehensive one, including all senses in which the term **ananta** is used in Jaina literature[1].

Ganananta (numerical infinite)

The Dhavalā clearly lays down that, in the subject-matter under discussion, by the term *ananta* (infinite) we always mean the numerical infinite,[2] and not any

1. Dhavala III, p. 11-16.
2. ibid p. 16.

of the other infinities enumerated above. For, in the other kinds of infinity "the idea of enumeration is not found "[1]. It has also been stated that the "numerical infinite is describable at great length and is simpler". This statement probably means that in Jaina literature *ananta* (infinite) was defined more thoroughly by different writers and had become commonly used and understood. The Dhavalā, however, does not contain a definition of *ananta*. On the other hand, operations on and with the *ananta* are frequently mentioned along with numbers called *samkhyata* and *asamkhyata*.

The number *samkhyata, asamkhyata* and *ananta* have been used in Jaina literature from the earliest known times, but it seems that they did not always carry the same meaning. In the earlier works *ananta* was certainly used in the sense of infinity as we define it now, but in the later works *anantananta*, takes the place of *ananta*. For example, according to the *Trilokasara*, a work written in the 10th century by Nemicandra, *Parita-ananta, Yuktananta* and even *Jaghanya-anantananta* is a very big number, but is finite. According to this work, numbers may be divided into three broad classes:—

(i) Samkhyāta, which we shall denote by– s;

(ii) Asamkhyāta, which we shall denote by– a;

(iii) Ananta, which we shall denote by– A.

The above three kinds of numbers are further sub-divided into three classes as below:—

I. Samkhyata (numerable) numbers are of three kinds:

(i) Jaghanya-samkhyāta (smallest numerable) which we shall denote by sj;

(ii) Madhyama-samkhyāta (intermediate numerables) which we shall denote by– sm;

(iii) Utkrsta-samkhyāta (the highest numerable) which we shall denote by– su.

II. Asamkhyāta (un-numerable) numbers are divided into three classes:—

(i) Parita-asamkhyāta (first order unnumerable) which we shall denote by– ap;

(ii) Yukta-asamkhyāta (medium unnumerable) which we shall denote by– ay;

(iii) Asamkhyāta-asamkhyāta (unnumerably-unnumerable) which we shall denote by– aa.

Each of the above three classes is further sub-divided into three classes, viz. Jaghanya (smallest), Madhyama (intermediate) and Utkrsta (highest). Thus we

1. ibid p. 17.

have the following numbers included under Asaṁkhyāta:—

1.	Jaghanya-parita-asamkhyata	....	apj
2.	Madhyama-parita-asamkhyata	....	apm
3.	Utkrsta-parita-asamkhyata	....	apu
1.	Jaghanya-yukta-asamkhyata	....	ayj
2.	Madhyama-yukta-asamkhyata	....	aym
3.	Utkrsta-yukta-asamkhyata	....	ayu
1.	Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata	....	aaj
2.	Madhyama-asamkhyata-asamkhyata	....	aam
3.	Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata	....	aau

III. Ananta, which we denote by A, is divided in to three classes—

(i) Parita-Ananta (first order infinite) which we shall denote by- Ap;

(ii) Yukta-Ananta (medium infinite) which we shall denote- Ay;

(iii) Ananta-Ananta (infinitely infinite) which we shall denote by- AA.

As in the case of the asamkhyāta numbers, each of these is further sub-divided into three classes- Jaghanya, Madhyama and Utkrsta- so that we have the following numbers in the Ananta class:—

1.	Jaghanya-parita-ananta	....	Apj
2.	Madhyama-parita-ananta	....	Apm
3.	Utkrsta-parita-ananta	....	Apu
1.	Jaghanya-yukta-ananta	....	Ayj
2.	Madhyama-yukta-ananta	....	Aym
3.	Utkrsta-yukta-ananta	....	Ayu
1.	Jaghanya-ananta-ananta	....	AAj
2.	Madhyama-ananta-ananta	....	AAm
3.	Utkrsta-ananta-ananta	....	AAu

Numerical value of the Samkhyata—According to all Jaina authorities, the Jaghanya-samkhyata is the number 2, being, according to them, the smallest number that represents multiplicity. Unity was not counted as a member of the aggregate of Samkhyata numbers. The Madhayama-samkhyata includes all numbers between 2 and the Utkrsta-samkhyata (the highest numerable) su, which itself is the number immediately preceding the Jaghanya-parita-asamkhyata apj, i. e.,

$$su = apj - 1.$$

And apj is defined in the Trilokasara as follows[1]:—

According to Jaina cosmology the Universe is composed of alternate rings of land and water whose boundaries are concentric circles with increasing radii.

---

1. See, Triloka-sāra, 35.

The width of any ring, whether land or water, is double that of the preceding ring. The central core (i. e., the initial circle) is of 100,000 *yojanas* in diameter and is called Jambudvipa.

Consider four cylindrical pits each of 100,000 *yojanas* in diameter and 1,000 *yojanas* deep. Call these A_1, B_1, C_1, and D_1. Imagine that A_1 is filled with rape-seeds and further rape-seeds are piled over it in the form of a conical heap, the topmost layer consisting of one seed. The total number of seeds required for the operation is—

For the cylinder: $19791209299968 . 10^{31}$

For the superincumbent cone: 1799200845451636363636363636363636363636.

The totel numbar of seeds is 1997112938451316363636363636363636363636.

We shall call the process described above by the term "overfilling" a cylinder with rape-seeds.

Now, take the seeds from the above over-filled pit and drop them, beginning from Jambudvipa, one on each concentric ring of land or water of the Universe. The number of seeds being even, the last seed would fall on a ring of water. Let one rape-seed be put in B_1 to denote the end of this operation.

Now, imagine a cylinder with the diameter of the boundary of the ring of water into which the last rape-seed was dropped in the above operation, and 1000 *yojanas* deep. Call this cylinder A_2. Imagine A_2 to be overfilled with rape-seeds. Drop the seeds, beginning after the last ring of watar attained in the previous operation, successively on the rings of land and water. This second dropping of seeds will lead to a ring of water on which the last seed is dropped.

Place one more seed in B_1 to denote the end of this operation.

Imagine now a cylinder with diameter that of the last ring of water attained above, and 1000 *yojanas* deep. Call this cylinder A_3. Let A_3 be over-filled with rape-seeds and let these seeds be dropped on the rings of land and water as before, and let at the end of the process a seed be dropped in B_1.

Imagine the above process continued tiil B_1 is overfilled. The above process leads to cylinders of increasing volumes:

A_1, A_2, ... A_r, ...

Lat A' be the last cylinder obtained when B_1 is over-full.

Now, begin with A' as the first over-full pit and continue the above process dropping one rape-seed on each ring of land and water, beginning after the water ring into which the last seed in the previous operation was dropped. Then drop one seed in C_1. Continue the process till C_1 is over-filled. Let A" be the last cylinder obtained by the above process. Then begin with with A" and proceeding as before over-fill D_1. Let A''' be the last pit obtained at the termination of this operation.

Then, the Jaghanya-parita-asamkhyata, apj, is equal to the number of rape-seeds contained in A'''. And Utkrsta-samkhyāta = su = apj − 1.

Remarks:—The central idea in dividing numbers into three classes seems to be this:–The extent to which numeration, i. e., counting, can proceed depends on the number–names available in the language or on other methods of expressing numbers. In order, therefore, to extend the bound of numbers which may be counted or expressed in speech, a long series of names of numerical denominations, based primarily on the scale of ten, was coined in India. The Hindus contented themselves with eighteen denominations by the help of which numbers up to 10^{17} could be expressed in speech. Numbers greater than 10^{17} could be expressed by repetition as we do now when we say million million, etc. But it was realised that repetition was cumbersome. The Buddhists and the Jainas who needed numbers much bigger than 10^{17} in their philosophy and cosmology coined denominational names for still greater numbers. We do not possess Jaina denominational names,[1] but the following series of denominational names which is of

---

1 The Jainas prossess in their old literature a list of names denoting long periods of time with the year as the unit. The series is as follows:—

1 Varsa (वर्ष) = 1 Year
2 Yuga (युग) = 5 Years
3 Purvānga (पूर्वांग) = 84 Lakhs of years
4 Purva (पूर्व) = 84 Lakhs of Pūrvāngas
5 Nayutānga (नयुतांग) = 84 Purvas
6 Nayuta (नयुत) = 84 Lakhs of Nayutangas
7 Kumudānga (कुमुदांग) = 84 Nayutas
8 Kumud (कुमुद) = 84 Lakhs of Kumudangas
9 Padmanga (पद्मांग) = 84 Kumudas
10 Padma (पद्म) = 84 Lakhs of Padmangas
11 Nalinanga (नलिनांग) = 84 Padmas
12 Nalina (नलिन) = 84 Lakhs of Nalinangas
13 Kamalanga (कमलांग) = 84 Nalinas
14 Kamala (कमल) = 84 Lakhs of kamalangas
15 Trutitanga (त्रुटितांग) = 84 Kamalas
16 Trutita (त्रुटित) = 84 Lakhs of Trutitangas
17 Atatanga (अटटांग) = 84 Trutitas
18 Atata (अटट) = 84 Lakhs of Atatangas
19 Amamanga (अममांग) = 84 Atatas
20 Amama (अमम) = 84 Lakhs of Amamangas
21 Hahanga (हाहांग) = 84 Amamas
22 Haha (हाहा) = 84 Lakhs of Hahangas
23 Huhanga (हूहांग) = 84 Hahas
24 Huhu (हूहू) = 84 Lakhs of Huhangas
25 Latanga (लतांग) = 84 Huhus
26 Lata (लता) = 84 Lakhs of Lalitangas
27 Mahalatanga (महालतांग) = 84 Latas
28 Mahalata (महालता) = 84 Lakhs of Mahalatangas
29 S'rikalpa (श्रीकल्प) = 84 " Mahalatas
30 Hastaprahelita (हस्तप्रहेलित) = 84 Lakhs of Srikalpa
31 Acalapra (अचलप्र) = 84 Lakhs of Hastaprahelita

This list is found in the *Triloka-prajnapti* [4th–6th cent], *Harivamsa-pūrana* (8th cent.) and *Rajavarttika* [8th cent], with a few variations in the names only. According to a statement found in *Triloka-prajnapti*, the value of *Acalapra* is obtainable by multiplying 31 times 84 i. e.—

$$\text{Acalapra} = 84^{31},$$

and that the value will lead us to 90 decimal places. According to Logarithmic tables, however, 84^{31} gives us only sixty decimal places of notation. (See Dhavala III, introduction and footnote, p. 34). —*Editor.*

Buddhist origin is interesting:—

1	Eka	=	1
2	dasa	=	10
3	sata	=	100
4	sahassa	=	1,000
5	dasa sahassa	=	10,000
6	sata sahassa	=	100,000
7	dasa-sata-sahassa	=	1,000,000
8	koti	=	10,000,000
9	pakoti	=	$(10,000,000)^2$
10	kotippakoti	=	$(10,000,000)^3$
11	nahuta	=	$(10,000,000)^4$
12	ninnahuta	=	$(10,000;000)^5$
13	akhobhini	=	$(10,000,000)^6$
14	bindu	=	$(10,000,000)^7$
15	abbuda	=	$(10,000,000)^8$
16	nirabbuda	=	$(10,000,000)^9$
17	ahaha	=	$(10,000,000,)^{10}$
18	ababa	=	$(10,000\,000)^{11}$
19	atata	=	$(10,000,000)^{12}$
20	sogandhika	=	$(10,000,000)^{13}$
21	uppala	=	$(10,000,000)^{14}$
22	kumuda	=	$(10,000,000)^{15}$
23	pundarika	=	$(10,000,000)^{16}$
24	paduma	=	$(10,000,000)^{17}$
25	kathāna	=	$(10,000,000)^{18}$
26	mahākathāna	=	$(10,000,000)^{19}$
27	asamkhyeya	=	$(10,000,000)^{20}$

It will be observed that in the above series asamkhyeya is the last denomination. This probably implies that numbers beyond the asamkhyeya are beyond numeration, i. e, unnumerable.

The value of asamkhyeya must have varied from time to time. Nemicandra's asamkhyāta is certainly different from the asamkhyeya difined above, which is 10^{140}.

Asamkhyata—As already mentioned, the asamkhyata numbers are divided into three broad classes, and each of these again into three sub-classes. Using the notation given above, we have, according to Nemicandra—

Jaghanya-parita-asamkhyata	(apj) is	$=$ su $+ 1$;
Madhyama-parita-asamkhyata	(apm)	$>$ apj, but $<$ apu;
Utkrsta-parita-asamkhyata	(apu)	$=$ ayj $- 1$;

where—

Jaghanya-yukta-asamkhyata	(ayj)	$= (apj)^{apj}$;
Madhyama-yukta-asamkhyata	(aym) is	$>$ ayj, but $<$ ayu;
Utkrsta-yukta-asamkhyata	(ayu)	$=$ aaj $- 1$;

where—

Jaghanya-asamkhyata-asamkhyata	(aaj)	$= (ayj)^2$;
Madhyama-asamkhyata-asamkhyata	(aam) is	$>$ aaj, but $<$ aau;
Utkrsta-asamkhyata-asamkhyata	(aau)	$=$ apj $- 1$;

where—

Apj stands for Jaghanya-parita-ananta.

Ananta—The numbers of the ananta class are as follows:—

Jaghanya-parita-ananta [Apj] is obtained as below:—

Let—

$$B = \left[\left\{[aaj]^{[aaj]}\right\}^{\left\{[aaj]^{[aaj]}\right\}}\right]^{\left[\left\{[aaj]^{[aaj]}\right\}^{\left\{[aaj]^{[aaj]}\right\}}\right]}$$

Let $C = B +$ six dravyas[1].

Let $D = \left\{ (C^C)^{C^C} \right\}^{\left\{ (C^C)^{C^C} \right\}} +$ four aggregates[2].

Then,

Jaghanya parita-ananta [Apj] $= \left\{ (D^D)^{D^D} \right\}^{\left\{ (D^D)^{D^D} \right\}}$

Madhyama-parita-ananta [Apm] is > Apj, but < Apu;

Utkrsta-parita-ananta [Apu] = Ayj − 1;

where—

Jaghanya-yukta-ananta [Ayj] = $(apj)^{(apj)}$

Madhyama-yukta-ananta [Aym] is > Ayj, but < Ayu;

Utkrsta-yukta-ananta [Ayu] = AAj − 1;

where—

Jaghanya-ananta-ananta [AAj] = $(Ayj)^2$

Madhyama-ananta-ananta [AAm] is > AAj, but < AAu;

where—

AAu stands for Utkrsta-ananta-ananta, which according to *Nemicandra*, is obtained as follows:—

Let—

$$x = \left[\left\{ (AAj)^{AAj} \right\}^{\left\{ (AAj)^{AAj} \right\}} \right]^{\left[\left\{ (AAj)^{AAj} \right\}^{\left\{ (AAj)^{AAj} \right\}} \right]} + \text{six rasis}^{3};$$

$$y = \left\{ (x^x)^{x^x} \right\}^{\left\{ (x^x)^{x^x} \right\}} + \text{two rasis}^{4};$$

---

1. The six dravyas are the spatial points of: (1) Dharma, (2) Adharma, (3) one Jiva (4) Lokākāsa, (5) apratisthita (vegetable souls) and (6) Pratisthita (vegetable souls).

2. The four aggregates are: (1) instants of a kalpa, (2) spatial units of the Universe, (3) anubhāgabandha-adhyavasāya-sthāna, and (4) avibhāga praticcheda of Yoga.

3. These are: (1) siddha, (2) sādhārana-vanaspati-nigoda, (3) vanaspati, (4) pudgala (5) vyavahāra kala, and (6) alokakasa.

4. These are: (1) Dharma dravya, (2) adharma dravya, (aguru-laghu-guna-avibhāga praticcheda of both.)

$$z = \left\{ (y^y)^{y^y} \right\}^{\left\{ (y^y)^{y^y} \right\}}$$

Now, the aggregate known as kevalajnana is greater than z, and—

$$\begin{aligned} AAu &= \text{Kevalajnana} - z + z \\ &= \text{Kevalajnana} \end{aligned}$$

Remarks—From the above it follows that—

[i] Jaghanya-parita-ananta [apj] is not infinite unless one or more of the six dravyas or the one of the four aggregates, which have been added to obtain it, is infinite.

[ii] Utkrsta-ananta-ananta [AAu] is equivalent to the aggregate called *Kevalajnana*. The description above seems to imply that the utkrsta-ananta-ananta can not be reached by any arithmetical operation, however far it may be carried. In fact it is greater than any number z which can be reached by arithmetical operations. It seems to me, therefore, that *Kevalajnana* is infinite, and hence that utkrsta-ananta-ananta is infinite.

Thus, the description found in the *Trilokasara* leaves us in doubt as to whether any of the three classes of parita-ananta and the three classes of yukta-ananta and the jaghanya-ananta-ananta is actually infinity or not, in as much as they are all said to be the multiples of asamkhyata and even the aggregates that have been added are also asamkhyata only. But the Ananta of the Dhavala is actual infinity, for it is clearly stated that "a number which can be exhausted by subtraction cannot be called ananta."[1] It is further stated in the Dhavala that by ananta-ananta is always meant the madhyama-ananta-ananta. So the madhyama-ananta-ananta, according to the Dhavala, is infinite.

The following method of comparing two aggregates given in the Dhavala[2] is very interesting. Place on one side the aggregate of all the past Avasarpinis and Utsarpinis (i. e, the time-instants in a kalpa, which are supposed to form a continuum and are consequently infinite) and on the other the aggregate of *Mithyadrsti* jiva-rasi. Then taking one element of the one aggregate and a corresponding element from the other, discard them both. Proceeding in this manner the first aggregate is exhausted, whilst the other is not[3] The Dhavala, therefore, concludes that the aggregate of *mithyadrsti-rasi* is greater than that of all the past time-instants.

The above is nothing but the method of one-to-one correspondence which forms the basis of the modern theory of infinite cardinals. It may be argued that the method is applicable to the comparison of finite cardinals also, and so was taken recourse to for comparing two very big finite aggregates, so big that their elements

---

1. Dhavala III, p. 25. 2. ibid p. 28. 3. Ibid p. 28.

could not be counted in terms of any known numerical denomination. This view-point is further supported by the fact that the Jaina works fix the duration of a time-instant, and so the number of time-instants in a Kalpa (*Avasarpini* and *Utsarpini*) must be finite, as the Kalpa itself is not an infinite interval of time. According to this latter view the Jaghanya-parita-ananta (which according to definition is greater than the aggregate of time instants) is finite.

As already pointed out, the method of one-to-one correspondence has proved to be the most powerful tool for the study of infinite cardinals, and the discovery and first use of the principle must be ascribed to the Jainas.

In the above classification of numbers I see a primitive attempt to evolve a theory of infinite cardinal numbers. But there are some serious defects in the theory. These defects would lead to contradictions. One of these is the assumption of the existence of the number $c - 1$, where c is infinite and a limiting number of a class. On the other hand, the Jaina conception that the vargita-samvargita of a cardinal c (i. e., c^c) would lead to a new number is justifiable. If it be true that the Utkrsta-asamkhyata of the early Jaina literature corresponds to infinity, then the creation of the numbers of the ananta class anticipated to some extent the modern theory of infinite cardinals. Any such attempt at such an early age and stage in the growth of mathematics was bound to be a failure. The wonder is that the attempt was made at all.

The existence of several kinds of infinity was first demonstrated by George Cantor about the middle of the nineteenth century. He gave a theory of transfinite numbers. Cantor's researches in the domain of infinite aggregates, have provided a sound basis for mathematics, a powerful tool for research, and a language for correctly expressing the most abstruse mathematical ideas. The theory of transfinite numbers however, is at present in an elementary stage. We do not as yet possess a calculus of these numbers, and so have not been able to bring them effectively in mathematical analysis.

A. N. Singh, D. Sc.,
Lucknow University.

INDEX

(Owing to deficiency of types, proper diacritical marks could not be used in the 'Mathematics of Dhavala'. The following index will be helpful in reading the Sanskrit and Prakrit technical terms correctly.)

सिद्धान्त और उनके अध्ययनका अधिकार

जैनधर्म ज्ञान और विवेक प्रधान है। यहां मनुष्यके प्रत्येक कार्यकी अच्छाई और बुराईका निर्णय वस्तुस्वरूपके विचार और भावोंकी शुद्धि या अशुद्धिके अनुसार किया गया है। ज्ञानका स्थान यहां बहुत ऊंचा है। मोक्षका मार्ग जो रत्नत्रयरूप कहा गया है उसमें ज्ञानका स्थान चारित्रसे पूर्व रखा है। जब कुछ ज्ञान हो जायगा तभी तो चारित्र सुधर सकेगा, और जितनी मात्रामें ज्ञान विशुद्ध होता जायगा उतनी मात्रामें ही चारित्र निर्मल होने की सम्भावना हो सकती है। इसीलिये जैनी देवके साथ ही शास्त्रकी भी पूजा करते हैं। दैनिक आवश्यक क्रियाओंमें शास्त्र-स्वाध्यायका स्थान विशेष रूपसे है[1]। चार प्रकारके दानोंमें[2] शास्त्रदानकी भी बड़ी महिमा है। जैन आचार्योंको ज्ञात था कि धर्मका प्रचार और परिपालन शास्त्रोंके आधारसे ही हो सकता है, अतः उन्होंने समय समय पर सभी स्थानों और प्रदेशोंकी भाषाओंमें ग्रंथ रचकर उनका प्रचार व पठन-पाठन बढ़ानेका प्रयत्न किया। स्वयं तीर्थंकर भगवान्‌की दिव्यवाणीकी यह एक विशेषता कही जाती है कि उसे सब प्राणी सुन और समझ सकते तथा उससे लाभ उठा सकते हैं। प्राचीन कालकी शिष्ट भाषा कहलानेवाली संस्कृत को छोड़कर जैन सिद्धान्तको प्राकृत-भाषा-निबद्ध करनेमें यह भी एक हेतु कहा जाता है कि जिससे बाल, स्त्री, मन्द, मूर्ख सभी चारित्र सुधारनेकी वांछा रखनेवाले उससे लाभ उठा सकें[3]।

किन्तु धर्मका उदात्त ध्येय और स्वरूप सदैव एकसा नियत नहीं रहने पाता। ज्यों ही उसमें गुरु कहलानेकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई, और ज्ञानकी हीनता होते हु भी वे मर्यादासे बाहरकी बातें कहने सुनने लगे, त्यों ही उसमें अनेक विवेकहीन और तर्कशून्य बातें व विश्वास भी आ घुसते हैं, जो भोली समाजमें घर करके कभी कभी बड़े अनर्थके कारण बन जाते हैं। जैनशास्त्र-स्वाध्यायके सम्बन्धमें भी ऐसी ही एक बात उत्पन्न हुई है जिसका हमें यहां विचार करना है।

षट्‌खंडागमकी इससे पूर्व तीन जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं और अब चौथी जिल्द पाठकोंके हाथमें पहुंच रही है। इन सिद्धान्त ग्रंथोंका समाजमें आदर और प्रचार देखकर हमें अपने ध्येयकी सफलताका संतोष हो रहा है। इस ओर समाजके औत्सुक्य और तत्परता का अनुमान इसीसे हो सकता है कि इतने अल्प कालमें हमें सिद्धान्तोद्धारके कार्यमें मूडबिद्री-संस्थानका पूर्ण सहयोग प्राप्त हो गया है, जयधवलके प्रकाशनके लिये भी अनेक संस्थाएं उत्सुक हो उठीं और जैन संघ,

---

१ देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने॥

२ औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान और आहारदान।

३ बालस्त्रीमंदमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्। अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः॥

मथुरा, की ओरसे उसका कार्य भी प्रारम्भ हो गया, तथा सेठ गुलाबचंदजी शोलापुरकी सद्भावनासे महाधवलके सम्बन्धमें भी एक समिति सुसंगठित हो गई है। श्रीयुक्त मंजैयाजी हेगडेने तीनों सिद्धान्तोंके मूलपाठको ताड़पत्रीय प्रतियोंके आधारसे प्रकाशित करनेकी स्कीम भी प्रस्तुत की है। प्रकाशित सिद्धान्तका स्वाध्याय भी अनेक मंदिरों और शास्त्रभंडारों व गृहोंमें हो रहा है। यही नहीं, बम्बईकी माणिकचंद जैन परीक्षालय समितिने अपनी गत बैठकमें धवलसिद्धान्तके प्रथम भाग सत्प्ररूपणाको अपनी सर्वोच्च शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें सम्मिलित कर इन सिद्धान्तोंके समयोचित पठन-पाठन का मार्ग भी खोल दिया है।

इस सब प्रगतिसे विद्वत्संसार को बड़ा हर्ष है। किन्तु एकाध विद्वान् अभी ऐसे भी हैं जिन्हें इन सिद्धान्तोंका यह उद्धार-प्रचार उचित नही जंचता*। उनके विचारसे न तो इन ग्रंथोंका मुद्रण होना चाहिये, और न इन्हें विद्यालयोंमें अध्ययन-अध्यापनका विषय बनाना चाहिये। यहां तक कि गृहस्थमात्रको इनके पढनेका निषेध कर देना चाहिये। उनका यह विवेक निम्न-लिखित आगम और युक्ति पर निर्भर है—

(१) अनेक प्राचीन ग्रंथोंमें यह उपदेश पाया जाता है कि गृहस्थोंको सिद्धान्तोंके श्रवण, पठन या अध्ययनका अधिकार नहीं है।

(२) सिद्धान्तग्रन्थ दो ही हैं जो कि धवल, जयधवल, महाधवलके रूपमें टीका द्वारा उपलब्ध हैं, बाकी सभी शास्त्र सिद्धान्तग्रंथ नहीं हैं।

प्रथम बातकी पुष्टिमें निम्न लिखित ग्रंथोंके अवतरण दिये गये हैं—

(१) वसुनन्दि श्रावकाचार, (२) श्रुतसागरकृत षट्प्राभृतटीका, (३) वामदेवकृत भावसंग्रह, (४) मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार (५) धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचार,

---

* देखो पं. मक्खनलाल शास्त्री लिखित 'सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययनका अधिकार', मोरेना, वी. सं. २४६८.

१ दिणपडिम वीरचरिया तियालजोगेसु णत्थि अहियारो। सिद्धंत-रहस्साण वि अज्झयणं देसविरदाणं ॥३१२॥
(वसुनन्दि-श्रावकाचार)

२ वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा त्रैकाल्ययोगनियमश्च। सिद्धान्तरहस्यादिष्वध्ययनं नास्ति देशविरतानाम् ॥
(श्रुतसागर-षट्प्राभृतटीका)

३ नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य प्रतिमा चार्कसम्मुखा। रहस्यग्रंथसिद्धान्तश्रवणे नाधिकारिता ॥ ५४७ ॥
(वामदेव-भावसंग्रह)

४ कल्प्यन्ते वीरचर्याहःप्रतिमातापनादयः। न श्रावकस्य सिद्धान्तरहस्याध्ययनादिकम् ॥ ७४ ॥
(मेधावी-धर्मसंग्रहश्रावकाचार)

५ त्रिकालयोगनियमो वीरचर्या च सर्वथा। सिद्धान्ताध्ययनं सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥
(धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर-श्रावकाचार)

(६) इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार और (७) आशाधरकृत सागारधर्मामृत।

इन सब ग्रंथोंमें केवल एक ही अर्थका और प्रायः उन्हीं शब्दोंमें एक ही पद्य पाया जाता है जिसमें कहा गया है कि देशविरत श्रावक या गृहस्थको वीरचर्या, सूर्यप्रतिमा, त्रिकालयोग और सिद्धान्तरहस्यके अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है।

जिन सात ग्रंथोंमेंसे गृहस्थको सिद्धान्त-अध्ययनका निषेध करनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है उनमेंसे नं. ५ और ६ को छोड़कर शेष पांच ग्रंथ इस समय हमारे सन्मुख उपस्थित हैं। वसुनन्दिकृत श्रावकाचारका समय निर्णीत नहीं है तो भी चूंकि आशाधरके ग्रंथोंमें उनके अवतरण पाये जाते हैं और उनके स्वयं ग्रंथोंमें अमितगतिके अवतरण आये हैं, अतः वे इन दोनोंके बीच अर्थात् विक्रमकी १२ हवीं १३ हवीं शब्दादिमें हुए होंगे। उनके ग्रंथकी कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है, जिससे लेखकका ठीक अभिप्राय समझमें आ सकता। उनकी गाथाकी प्रथम पंक्तिमें कहा गया है कि दिनप्रतिमा, वीरचर्या और त्रिकालयोग इनमें (देशविरतोंका) अधिकार नहीं है। दूसरी पंक्ति हैं 'सिद्धंतरहस्साण वि अज्झयणं देसविरदाणं'। यथार्थतः इस पंक्तिकी प्रथम पंक्तिके 'णत्थि अहियारो' से संगति नहीं बैठती, जब तक कि इसके पाठमें कुछ परिवर्तनादि न किया जाय। 'सिद्धंतरहस्साण' का अर्थ हिन्दी अनुवादकने 'सिद्धान्तके रहस्यका पढ़ना' ऐसा किया है, जो आशाधरजीके किये गये अर्थसे भिन्न है। ग्रंथकारका अभिप्राय समझनेके लिये जब आगे पीछेके पन्ने उलटते हैं तो सम्यक्त्वके लक्षणमें देखते हैं—

अत्तागमतच्चाणं जं सद्दहणं सुणिम्मलं होदि। संकाइदोसरहियं तं सम्मत्तं मुणेयव्वं॥ ६॥

अर्थात्, जब आप्त आगम और तत्त्वोंमें निर्मल श्रद्धा हो जाय और शंका आदिक कोई दोष नहीं रहें तब सम्यक्त्व हुआ समझना चाहिये। अब क्या सिद्धान्त ग्रंथ आगमसे बाहर हैं, जो उनका अध्ययन न किया जाय? या शंकादि सब दोषोंका परिहार होकर निर्मल श्रद्धा उन्हें विना पढ़े ही उत्पन्न हो जाना चाहिये? आगमकी पहिचानके लिये आगेकी गाथामें कहा गया है—

अत्ता दोसविमुक्को पुव्वापरदोसवज्जियं वयणं।

अर्थात्, जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है, और जिसमें पूर्वापर विरोधरूपी दोष न हो वह वचन आगम है। तब क्या आगमको बिना देखे ही उसके पूर्वापर-विरोध-राहित्यको स्वीकार कर निःशंक, निर्मल श्रद्धान कर लेनेका यहां उपदेश दिया गया है? जैसा हम देखेंगे, आगम और सिद्धान्त एक ही अर्थके द्योतक पर्यायवाची शब्द हैं। कहीं इनमें भेद नहीं किया गया। आगे देशविरतके कर्तव्योंमें कहा गया है—

---

६ आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसाम्। न वाचनीयं पुरतः सिद्धान्ताचारपुस्तकम्॥

(इन्द्रनंदि-नीतिसार)

७ श्रावको वीरचर्याहःप्रतिमातापनादिषु। स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च॥ ७, ५०॥

(आशाधर-सागारधर्मामृत)

णाणे णाणुवयरणे णाणवंतम्मि तह य भत्तीय। जं पडियरणं कीरइ णिच्चं तं णाणविणओ ॥ ३२२ ॥

अर्थात्, ज्ञान, ज्ञानके उपकरण अर्थात् शास्त्र, और ज्ञानवान्‌की नित्य भक्ति करना ही ज्ञानविनय है। और भी—

हियमियपिज्जं सुत्ताणुवचि अफरसमककसं वयणं। संजमिजणम्मि जं चाडुभासणं वाचिओ विणओ ॥ ३२७ ॥

अर्थात्, हित, मित, प्रिय और सूत्रके अनुसार वचन बोलना.... आदि वचनविनय है। इन गाथाओंमें जो ज्ञान, ज्ञानोपकरण और ज्ञानी का अलग अलग उल्लेख कर उनके विनयका उपदेश दिया गया है, तथा जो सूत्रके अनुसार वचन बोलने का आदेश है, क्या इस विनय और अनुसरणमें सिद्धान्त गर्भित नहीं है? क्या सूत्रका अर्थ सिद्धान्त वाक्य नहीं है? हम आगे चलकर देखेंगे कि सूत्रका अर्थ साक्षात् जिन भगवान् की द्वादशांग वाणी है। तब फिर द्वादशांगसे सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धान्त ग्रंथोंके पठनका गृहस्थको निषेध किस प्रकार किया जा सकता है?

अब श्रुतसागरजीकी षट्प्राभृतटीकाको लीजिये। कुंदकुंदाचार्यकृत सूत्रपाहुडकी २१ वीं गाथा है—

दुइयं च वुत्तलिंगं उक्किट्ठं अवर सावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो समिदीभासेण मोणेण ॥

इस गाथामें आचार्यने ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकके लक्षण बतलाये हैं कि वह भाषासमितिका पालन करता हुआ या मौनसहित भिक्षाके लिये भ्रमण करनेका पात्र है। इसी गाथाकी टीका समाप्त हो जानेके पश्चात् 'उक्तं च समन्तभद्रेण महाकविना' कहके चार आर्याएं उद्धृत की गई हैं, जिनमें चौथी गाथा है 'वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा–' आदि। यहां न तो इसका कोई प्रसंग है और न पाहुडगाथामें उसके लिये कोई आधार है। यह भी पता नहीं चलता कि कौनसे समन्तभद्र महाकविकी रचनामेंसे ये पद्य उद्धृत किये गये हैं। जैनसाहित्यमें जो समन्तभद्र सुप्रसिद्ध हैं उनकी उत्कृष्ट और प्रसिद्ध रचनाओंमें ये पद्य नहीं पाये जाते। प्रत्युत इसके उनके रचित श्रावकाचारमें जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, श्रावकों पर ऐसा कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया। अतएव वह अवतरण कहां तक प्रामाणिक माना जा सकता है यह शंकास्पद ही है।

स्वयं कुंदकुंदाचार्यकी इतनी विस्तृत रचनाओंमें कहीं भी इस प्रकारका कोई नियंत्रण नहीं है। इसी सूत्रपाहुडकी गाथा ५ और ७ को देखिये। वहां कहा गया है—

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ ५ ॥
सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो ॥ ७ ॥

अर्थात्, जो कोई जिनभगवान्‌के कहे हुए सूत्रोंमें स्थित जीव, अजीव आदि सम्बन्धी नाना प्रकारके अर्थको तथा हेय और अहेयको जानता है वही सम्यग्दृष्टि है। सूत्रोंके अर्थसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य मिथ्यादृष्टि है। यहां श्रुतसागरजी अपनी टीकामें कहते हैं 'सूत्रस्यार्थं जिनेन

भणितं प्रतिपादितं ... यः पुमान् जानाति वेत्ति स पुमान् स्फुटं सम्यग्दृष्टिर्भवति। ... सूत्रार्थपदविनष्टः पुमान् मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः।'

यहां श्रुतसागरजी स्वयं जिनोक्त सूत्रोंके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग मान रहे हैं, और उस ज्ञानके विना मनुष्य मिथ्यादृष्टि रहता है यह भी स्वीकार कर रहे हैं। वे 'पुमान्' शब्द के उपयोगसे यह भी स्पष्ट बतला रहे हैं कि जिनोक्त सूत्रोंका अर्थ समझना केवल मुनिराजोंके लिये ही नहीं, किन्तु मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक है। ऐसी अवस्थामें वे सिद्धान्त ग्रंथोंको जिनोक्त सूत्रोंसे वाहर समझकर श्रावकोंको उन्हें पढ़नेका निषेध करते हैं, या श्रावकोंको मिथ्यादृष्टि बनाना चाहते ह, यह उनकी स्वयं परस्पर-विरोधी बातोंसे कुछ समझमें नहीं आता। इससे स्पष्ट है कि उस निषेधवाली बातका न तो भगवान् कुंदकुंदाचार्यके वाक्योंसे सामञ्जस्य बैठता है, और न स्वयं टाकाकारके ही पूर्व कथनोंसे मेल खाता है। श्रुतसागरजीका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दि सिद्ध होता है[१]। श्रुतसागरजी कैसे लेखक थे और उनकी षट्पाहुडमें कैसी कैसी रचना है इसके विषयमें एक विद्वान् समालोचकका मत देखिये[२]।

"वे (श्रुतसागरजी) कट्टर तो थे ही, असहिष्णु भी बहुत ज्यादा थे। अन्य मतोंका खंडन और विरोध तो औरोंने भी किया है, परन्तु इन्होंने तो खण्डनके साथ बुरी तरह गालियाँ भी दी हैं। सबसे ज्यादा आक्रमण इन्होने मूर्तिपूजा न करनेवाले लोंकागच्छ (ढूंढियों) पर किया है। जरूरत गैरजरूरत जहां भी इनकी इच्छा हुई है, ये उनपर टूट पड़े हैं। इसके लिये उन्होंने प्रसंगकी भी परवा नहीं की। उदाहरणके तौरपर हम उनकी षट्पाहुडटीका को पेश कर सकते हैं। षटपाहुड भगवत्कुंदकुंदका ग्रंथ है, जो एक परमसहिष्णु, शान्तिप्रिय और आध्यात्मिक विचारक थे। उनके ग्रंथोंमें इस तरहके प्रसंग प्रायः हैं ही नहीं कि उनकी टीकामें दूसरोंपर आक्रमण किये जा सकें, परंतु जो पहलेसे ही भरा बैठा हो, वह तो कोई न कोई बहाना ढूंढ़ ही लेता है। दर्शनपाहुडकी मंगलाचरणके बादकी पहली ही गाथा है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं। तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो॥

इसका सीधा अर्थ है कि जिनदेवने शिष्योंको उपदेश दिया है कि धर्म दर्शनमूलक है, इसलिये जो सम्यग्दर्शनसे रहित है उसकी वंदना नहीं करनी चाहिये। अर्थात्, चारित्र तभी वन्दनीय है जब वह सम्यग्दर्शनसे युक्त हो।

इस सर्वथा निरुपद्रव गाथाकी टीकामें कलिकालसर्वज्ञ स्थानकवासियोंपर बुरी तरह बरस पड़ते हैं और कहते हैं—

१ षट्प्राभृतादिसंग्रह (मा. ग्रं, मा.) भूमिका पृ. ७.

२ जैनसाहित्य और इतिहास, पं. नाथूरामप्रेमी कृत पृ. ४०७-४०८.

' कोऽसौ दर्शनहीन इति चेत् तीर्थंकरपरमदेवप्रतिमां न मानयन्ति, न पुष्पादिना पूजयन्ति......यदि जिनसूत्रमुल्लंघंते तदाऽऽस्तिकैर्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः । तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थैरास्तिकैरुपानद्भिः गूथालिप्ताभिर्मुखे ताडनीयाः, तत्र पापं नास्ति' ।

अर्थात्, दर्शनहीन कौन है, जो तीर्थंकरप्रतिमा नहीं मानते, उसे पुष्पादिसे नहीं पूजते.... जब ये जिनसूत्रका उल्लंघन करें तब आस्तिकोंको चाहिए कि युक्तियुक्त वचनोंसे उनका निषेध करें, फिर भी यदि वे कदाग्रह न छोड़ें तो समर्थ आस्तिक उनके मुँहपर विष्टासे लिपटे हुए जूते मारें, इसमें जरा भी पाप नहीं ।"

यह है श्रुतसागरजीकी भाषासमिति और उनकी आप्तता । ऐसे द्वेषपूर्ण अश्लील वाक्य एक प्रामाणिक विद्वान् तो क्या साधारण शिष्ट व्यक्तिके मुखसे भी न निकल सकेंगे ।

अब वामदेवजीकेभाव संग्रहको लीजिये जिसके ५४७ वें श्लोक 'नास्ति त्रिकालयोगो' आदिमें ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी श्रावकको 'सिद्धान्त-श्रवण' के अधिकारसे वर्जित किया गया है। वामदेवजीका काल विक्रमकी १५ हवीं या १६ हवीं शताब्दि अनुमान किया गया है,[1] । उनकी ग्रंथरचना मौलिक नहीं है, किन्तु १० वीं शताब्दिके देवसेनाचार्यके प्राकृत भावसंग्रहका कुछ परिवर्धित संस्कृत रूपान्तर है । उनकी इस कृतिके विषयमें उस ग्रंथकी भूमिकामें कहा गया है—

" यह भावसंग्रह प्रायः प्राकृत भावसंग्रहका ही संस्कृत अनुवाद है, दोनों ग्रंथोंको आमने सामने रखकर पढ़नेसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है। यद्यपि पं. वामदेवजीने इसमें जगह जगह अनेक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन आदि किये हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्वतंत्र ग्रंथ है । शिष्टताकी दृष्टिसे अच्छा होता, यदि पं. वामदेवजीने अपने ग्रंथमें यह बात स्वीकार कर ली होती ।"

इस परसे जाना जा सकता है कि वामदेवजी किस दर्जेके लेखक और विद्वान् थे । एक प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचनाका उसका नाम लिये विना ही चुपचाप उसका रूपान्तर करके उन्होंने ग्रंथकार बननेका यश लूटा है । उसमें यदि उन्होंने कुछ परिवर्धन किया है तो वह उसी प्रकारका है जिसका एक उदाहरण हमारे सन्मुख है । उनसे कोई छहसौ वर्ष प्राचीन उक्त प्राकृत भावसंग्रहमें ऐसे निषेधका नाम निशान तक नहीं है । अतएव स्पष्ट है कि वामदेवजीने १६ वीं शताब्दिके लगभग कहींसे यह बात जोड़ी है ।

अब इन्द्रनन्दिजीके नीतिसारान्तर्गत उपदेशको लीजिये । इसमें उक्त निषेधने और भी बड़ा उग्ररूप धारण किया है । यहां कहा गया है कि—

आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसाम् । न वाचनीयं पुरतः सिद्धान्ताचारपुस्तकम् ॥

अर्थात्, " आर्यिकाओंके सामने, गृहस्थोंके सामने और थोड़ी बुद्धिवाले शिष्य मुनियोंके

---

1 भावसंग्रहादि (मा. दि. जै. ग्रं.) भूमिका पृ. ३

सामने भी सिद्धान्त शास्त्र नहीं पढने चाहिये।" इसके अनुसार गृहस्थ ही नहीं, किन्तु मंदबुद्धि मुनि और समस्त अर्जिकाएं भी निषेधके लपेटेमें आगये। इसका उत्तर हम स्वयं सिद्धान्त-ग्रंथकारोंके शब्दोंमें ही देना चाहते हैं।

पाठक सत्प्ररूपणाके सूत्र ५ और उसकी धवला टीकाको देखें। सूत्र है—

एदेसिं चेव चोद्दसण्हं जीवसमासाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि णायव्वाणि भवंति॥ ५॥

इसकी टीका है—

'तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि' एतदेवालं, शेषस्य नान्तरीयकत्वादिति चेन्नैष दोषः, मन्द-बुद्धिसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्।

अर्थात्, 'तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि' इतने मात्र सूत्रसे काम चल सकता था, शेष शब्दोंकी सूत्रमें आवश्यकता ही नहीं थी, उनका अर्थ वहीं गर्भित हो सकता था? इस शंकाका धवलाकार उत्तर देते हैं कि नहीं, यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, सूत्रकारका अभिप्राय मन्दबुद्धि जीवोंका उपकार करना रहा है। अर्थात्, जिस प्रकारसे मन्दबुद्धि प्राणिमात्र सूत्रका अर्थ समझ सकें उस प्रकार स्पष्टतासे सूत्र-रचना की गई है। यहां दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। धवलाकारके स्पष्ट मतानुसार एक तो सूत्रकारका अभिप्राय अपना ग्रंथ केवल मुनियोंको नहीं, किन्तु सत्त्वमात्र, पुरुष, स्त्री, मुनि, गृहस्थ आदि सभीको ग्राह्य बनानेका रहा है, और दूसरे उन्होंने केवल प्रतिभाशाली बुद्धिमानोंका ही नहीं, किन्तु मन्दबुद्धियों, अल्पमेधावियोंका भी पूरा ध्यान रखा है।

ऐसी बात आचार्यजीने केवल यहीं कह दी हो, सो बात भी नहीं है। आगेका नौवां सूत्र देखिये जो इस प्रकार है 'ओघेण अत्थि मिच्छादिट्ठी।' यहां धवलाकार पुनः कहते हैं कि—

यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् ओघाभिधानमन्तरेणापि ओघोऽवगम्यते, तस्येहपुनरुच्चारण-मनर्थकमिति न, तस्य दुर्मेधोजनानुग्रहार्थत्वात्। सर्वसत्त्वानुग्रहकारिणो हि जिनाः, नीरागत्वात्।

अर्थात्, जिस प्रकार उद्देश होता है, उसी प्रकार निर्देश किया जाता है, इस नियमके अनुसार तो 'ओघ' शब्दको सूत्रमें न रखकर भी उसका अर्थ समझा जा सकता था, फिर उसका यहां पुनरुच्चारण अनर्थक हुआ? इस शंकाका आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं, दुर्मेध, अर्थात् अत्यन्त मन्दबुद्धिवाले लोगोंके अनुग्रहके ध्यानसे उसका सूत्रमें पुनरुच्चारण कर दिया गया है। जिनेदव तो नीराग होते हैं, अर्थात् किसीसे भी रागद्वेष नहीं रखते, और इस कारण वे सभी प्राणियोंका उपकार करना चाहते हैं केवल मुनियों या बुद्धिमानोंका ही नहीं। (सत्प्र. १, पृ. १६२)

और आगे चलिये। सत्प्र. सूत्र ३० में कहा गया है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तिर्यंच मिश्र होते हैं। इस सूत्रकी टीका करते हुए आचार्य प्रश्न उठाते हैं कि 'गतिमार्गणाकी प्ररूपणा करने पर इस गतिमें इतने गुणस्थान होते हैं, और इतने नहीं' इस प्रकारके निरूपणसे ही यह जाना जाता है कि इस गतिका इस गतिके साथ गुणस्थानोंकी अपेक्षा

समानता है, इसकी इसके साथ नहीं। अतः फिरसे इसका कथन करना निष्फल है। इस प्रश्नका आचार्य समाधान करते हैं कि—

'न, तस्य दुर्मेधसामपि स्पष्टीकरणार्थत्वात्। प्रतिपाद्यस्य बुभुत्सितार्थविषयनिर्णयोत्पादनं वक्तृवचसः फलम् इति न्यायात्।

अर्थात्, पूर्वोक्त शंका ठीक नहीं, क्योंकि, दुर्मेध लोगोंको उसका भाव स्पष्ट हो जावे, यह उसका प्रयोजन है। न्याय यही कहता है कि जिज्ञासित अर्थका निर्णय करा देना ही वक्ताके वचनोंका फल है।

इसी प्रकार पृ. २७५ पर कहा है कि—

'अनवगतस्य विस्मृतस्य वा शिष्यस्य प्रश्नवशादस्य सूत्रस्यावतारात्' अर्थात् उसे जिस बातका अभी तक ज्ञान नहीं है, अथवा होकर विस्मृत हो गया है, ऐसे शिष्यके प्रश्न-वश इस सूत्रका अवतार हुआ है। पृ. ३२२ पर कहा है 'द्रव्यार्थिकनयात् सत्त्वानुग्रहार्थं तत्प्रवृत्तेः। ... बुद्धीनां वैचित्र्यात्। ... अस्यार्षस्य त्रिकालगोचरानन्तप्राण्यपेक्षया प्रवृत्तत्वात्।

अर्थात् उक्त निरूपण द्रव्यार्थिक नयानुसार समस्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिये प्रवृत्त हुआ है। भिन्न भिन्न मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी बुद्धि होती है। और इस आर्ष-ग्रंथकी प्रवृत्ति तो त्रिकालवर्ती अनन्त प्राणियोंकी अपेक्षासे ही हुई है। पृ. ३२३ पर कहा है कि 'जातारेकस्य भव्यस्यारेकानिरसनार्थमाह'

अर्थात्, अमुक बात किसी भी भव्य जीवकी शंकाके निवारणार्थ कही गई है। पृ. ३७० पर कहा है—

निशितबुद्धिजनानुग्रहार्थं द्रव्यार्थिकनयादेशना, मन्दधियामनुग्रहार्थं पर्यायार्थिकनयादेशना।

अर्थात्, तीक्ष्ण बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये द्रव्यार्थिकनयका उपदेश दिया गया है, और मन्द बुद्धिवालोंके लिये पर्यायार्थिकनयका। तृतीय भाग पृ. २७७ पर कहा है—

ण पुणरुत्तदोसो वि जिणवयणे संभवइ, मंदबुद्धिसत्ताणुग्गहट्ठदाए तस्स साफल्लादो।

अर्थात्, जिन भगवान्के वचनोंमें पुनरुक्त दोषकी संभावना भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मंदबुद्धि जीवोंका उससे उपकार होता है, यही उसका साफल्य है। पृ. ४५३ पर कहा है—

सुहुमपरूवणमेव किण्ण वुच्चदे ? ण, मेहावि-मंदाइमंदमेहाविजणाणुग्गहकारणेण तहोवएसा।

अर्थात्, अमुक बातका सूक्ष्म प्ररूपणमात्र क्यों नहीं कर दिया, विस्तार क्यों किया? इसका उत्तर है कि मेधावी, मंदबुद्धि और अत्यंत मंदबुद्धि, इन सभी-प्रकारके लोगोंका अनुग्रह करनेके लिये उस प्रकार उपदेश किया गया है।

इसी चतुर्थ भागके पृ. ९ पर कहा है—

किमट्ठमुभयथा णिद्देसो कीरदे ? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्। ण तइओ णिद्देसो अत्थि, णयद्वयसंट्ठियजीववदिरित्तसोदाराणं असंभवादो।

अर्थात्, प्रश्न होता है कि ओघ और आदेश, ऐसा दो प्रकारसे ही क्यों निर्देश किया गया है?

इसका उत्तर है कि दोनों नयोंवाले जीवोंके उपकारके लिये। तीसरे प्रकारका कोई निर्देश ही नहीं है, क्योंकि, उक्त दो नयोंमें स्थित जीवोंके अतिरिक्त तीसरे प्रकारके श्रोता होना असंभव है। पुनः पृ. ११५ पर कहा है—

एदेण दव्वपज्जवट्ठियणयपज्जायपरिणदजीवाणुग्गहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं।

अर्थात्, अमुक प्रकार कथनसे यह ज्ञात कराया गया है कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयवर्ती जीवोंका अनुग्रह करनेवाले होते हैं।

पृ. १२० पर कहा है—

'किमट्ठं एदेसु तीसु सुत्तेसु पज्जयणयदेसणा' बहूणं जीवाणमणुग्गहट्ठं। संगहरुइजीवेहिंतो बहूणं वित्थररुइजीवाणमुवलंभादो।

अर्थात्, इन तीन सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयसे क्यों उपदेश दिया गया है? इसका उत्तर है कि जिससे अधिक जीवोंका अनुग्रह हो सके। संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं। पृ. २४६ पर पाया जाता है—

उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे फलाभावा? ण, मंदबुद्धिभवियजणसंभालणदुवारेण फलोवलंभादो।

अर्थात्, एक बार कही हुई बात यहां पुनः क्यों दुहराई जा रही है, इसका तो कोई फल नहीं है? इसका उत्तर आचार्य देते हैं– नहीं, मंदबुद्धि भव्यजनोंके संभालद्वारा उसका फल पाया जाता है।

ये थोड़ेसे अवतरण धवलसिद्धान्तके प्रकाशित अंशोंमेंसे दिये गये हैं। समस्त धवल और जयधवलमेंसे दो चार नहीं, सैकड़ों अवतरण इस प्रकारके दिये जा सकते हैं जहां स्वयं धवलाके रचयिता वीरसेनस्वामीने यह स्पष्टतः विना किसी भ्रान्तिके प्रकट किया है कि यह सूत्र-रचना और उनकी टीका प्राणिमात्रके उपयोगके लिये, समस्त भव्यजनोंके हितके लिये, मन्दसे मन्द बुद्धि-वाले और महामेधावी शिष्योंके समाधानके लिये हुई है, और उनमें जो पुनरुक्ति व विस्तार पाया जाता है वह इसी उदार ध्येयकी पूर्तिके लिये है। स्वयं धवलाकारके ऐसे सुस्पष्ट आदेशके प्रकाशमें इन्द्रनन्दि आदि लेखकोंका आर्यिकाओं, गृहस्थों और अल्पमेधावी शिष्योंको सिद्धान्त-पुस्तकोंके न पढ़नेका आदेश आर्ष या आगमोक्त है, या अन्यथा, यह पाठक स्वयं विचार कर देख सकते हैं।

अब हमारे सन्मुख रह जाता है पंडितप्रवर आशाधरजीका वाक्य, जो विक्रमकी १३ हवीं शताब्दिका है। उनका वह निषेधात्मक श्लोक सागारधर्मामृतके सप्तम अध्यायका ५० वां पद्य है। इससे पूर्वके ४९ वें श्लोकमें ऐलककी स्वपाणिपात्रादि क्रियाओंका विधानात्मक उल्लेख है। तथा आगेके ५१ वे श्लोकमें श्रावकोंको दान, शील, उपवासादिका विधानात्मक उपदेश दिया गया है। इन दोनोंके बीच केवल वही एक श्लोक निषेधात्मक दिया गया है। सौभाग्यसे आशाधरजीने

अपने श्लोकोंपर स्वयं टीका भी लिख दी है जिससे उनका श्लोकगत अभिप्राय खूब सुस्पष्ट हो जाय। उन्होंने अपने—

'स्यान्नाधिकारी सिद्धान्तरहस्याध्ययनेऽपि च' का अर्थ किया है 'सिद्धान्तस्य परमागमस्य सूत्ररूपस्य रहस्यस्य च प्रायश्चित्तशास्त्रस्य अध्ययने पाठे श्रावको नाधिकारी स्यादिति संबंधः'।

अर्थात्, सूत्ररूप परमागमके अध्ययनका अधिकार श्रावकको नहीं है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सूत्ररूप परमागम किसे कहना चाहिये। क्या वीरसेन-जिनसेन रचित धवला जयधवला टीकाएं सूत्ररूप परमागम हैं, या यतिवृषभके चूर्णिसूत्र परमागम हैं, या भगवत् पुष्पदन्त और भूतबलि तथा गुणधर आचार्योंके रचे कर्मप्राभृत और कषायप्राभृतके सूत्र व सूत्र-गाथाएं सूत्ररूप परमागम हैं? या ये सभी सूत्ररूप परमागम हैं? सूत्रकी सामान्य परिभाषा तो यह है—

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्। अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

इसके अनुसार तो पाणिनिके व्याकरणसूत्र और वात्स्यायनके कामसूत्र भी सूत्र हैं, और पुष्पदन्त-भूतबलिकृत कर्मप्राभृत या षट्खंडागम और उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रंथ सभी सूत्र कहे जाते हैं। किन्तु यदि जैन आगमानुसार सूत्रका विशेष अर्थ यहां अपेक्षित है तो उसकी एक परिभाषा हमें शिवकोटि आचार्यके भगवती आराधनामें मिलती है जहां कहा गया है कि—

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च। सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च॥ ३४॥

इस गाथाकी टीका विजयोदयामें कहा है कि तीर्थंकरोंके कहे हुए अर्थको जो ग्रथित करते हैं वे गणधर हैं, जिन्हें विना परोपदेशके स्वयं ज्ञान उत्पन्न हो जाय, वे स्वयंबुद्ध हैं, समस्त श्रुतांगके धारक श्रुतकेवली हैं और जिन्होंने दशपूर्वोका अध्ययन कर लिया है और विद्याओंसे चलायमान नहीं होते, वे अभिन्नदशपूर्वी हैं। इनमेंसे किसीके द्वारा भी ग्रथित ग्रंथको सूत्र कहते हैं।

अब यदि हम इस कसोटी पर षट्खंडागम सिद्धान्तको या अन्य उपलब्ध ग्रंथोंको कसें तो ये ग्रंथ 'सूत्र' सिद्ध नहीं होते, क्योंकि, न तो इनके रचयिता तीर्थंकर हैं, न प्रत्येकबुद्ध, न श्रुतकेवली और न अभिन्नदशपूर्वी हैं। धरसेनाचार्यको तो केवल अंग-पूर्वोका एकदेश ज्ञान आचार्य-परम्परासे मिला था। वह उन्होंने ग्रंथविच्छेदके भयसे पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्योंको सिखा दिया और उसके आधार पर कुछ ग्रंथरचना पुष्पदन्तने और कुछ भूतबलिने की, जो षट्खंडागमके नामसे उपलब्ध है और जिस पर विक्रमकी नौवीं शताब्दिमें वीरसेनाचार्यने धवला टीका लिखी। इस प्रकार यदि हम आशाधरजी द्वारा उक्त सूत्रको सामान्य अर्थमें लेते हैं तो षट्खंडागम सूत्रोंके अनुसार तत्त्वार्थाधिगमसूत्र भी सूत्र है, सर्वार्थसिद्धि भी सूत्र ही ठहरता है, क्योंकि, इसमें षट्खंडागमके सूत्रोंका संस्कृत रूपान्तर पाया जाता है, गोम्मटसार भी सूत्र है, क्योंकि, इसमें भी षट्खंडागमके प्रमेयांशका संग्रह, अर्थात् सूत्ररूपसे समुद्धार किया गया है, इत्यादि। पर यदि हम सूत्रका अर्थ भगवती आराधनाकी परिभाषानुसार लें, तो ये कोई भी ग्रन्थ सूत्र नहीं सिद्ध होते। इस स्थितिसे बचनेका कोई उपाय उपलब्ध नहीं है।

अब इन्हीं आशाधरजीके इसी सागारधर्मामृतके प्रथम अध्यायके १० वें श्लोक और उन्हींके द्वारा लिखी गई उसकी टीकाको देखिये—

शलाकयेवाप्तगिराप्तसूत्रप्रवेशमार्गो मणिवच्च यः स्यात् ।
हीनोऽपि रुच्या रुचिमत्सु तद्वद् भात्यसौ सांव्यवहारिकाणाम् ॥

अर्थात्, जिस प्रकार एक मोती जो कि कांति-रहित है, उसमें भी यदि सलाईके द्वारा छिद्र कर सूत (डोरा) पिरोने योग्य मार्ग कर दिया जाय और उसे कांतिवाले मोतियोंकी मालामें पिरो दिया जाय तो वह कांति-रहित मोती भी कांतिवाले मोतियोंके साथ वैसा ही, अर्थात् कांति-सहित ही सुशोभित होता है। इसी प्रकार जो पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं है वह भी यदि सद्गुरुके वचनोंके द्वारा **अरंहतदेवके कहे हुये सूत्रोंमें** प्रवेश करनेका मार्ग प्राप्त कर ले, तो वह सम्यक्त्व-रहित होकर भी सम्यग्दृष्टियोंमें नयोंके जाननेवाले व्यवहारी लोगोंको सम्यग्दृष्टिके समान ही सुशोभित होता है। सागारधर्मामृतकी टीका भी स्वयं आशाधरजीकी बनाई हुई है। उस श्लोककी टीकामें सूत्रका अर्थ परमागम और प्रवेशमार्गका अर्थ 'अन्तस्तत्त्वपरिच्छेदनोपाय' किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि आशाधरजीके ही मतानुसार अविरतसम्यग्दृष्टिकी तो बात क्या, सम्यक्त्वरहित व्यक्तिको भी परमागमके अन्तस्तत्त्वज्ञान करनेका पूर्ण अधिकार है। और भी सागार-धर्मामृतके दूसरे अध्यायके २१ वें श्लोकमें आशाधरजी कहते हैं—

तत्त्वार्थं प्रतिपद्य तीर्थकथनादादाय देशव्रतं तद्दीक्षाग्रधृतापराजितमहामन्त्रोऽस्तदुर्दैवतः ।
आंगं पौर्वमथार्थसंग्रहमधीत्याधीतशास्त्रान्तरः पर्वान्ते प्रतिमासमाधिमुपयन्धन्यो निहन्त्यंहसी ॥

अर्थात्, तीर्थ याने धर्माचार्य व गृहस्थाचार्यके कथनसे जीवादिक पदार्थोंको निश्चित करके, एक देशव्रतको धरके, दीक्षासे पूर्व अपराजित महामन्त्रका धारी और मिथ्या देवताओंका त्यागी तथा अंगों (द्वादशांग) व पूर्वो (चौदह पूर्वो) के अर्थसंग्रहका अध्ययन करके अन्य शास्त्रोंका भी अधीता पर्वके अन्तमें प्रतिमायोगको धारण करनेवाला पुण्यात्मा जीव पापोंको नष्ट करता है।

इस पद्यमें आशाधरजीने अजैनसे जैन बननेके आठ संस्कारों, अर्थात् अवतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणग्रह, पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ, दृढ़चर्या और उपयोगिताका संक्षेपमें निरूपण किया है, जिसमें उन्होंने जैन बननेसे पूर्व ही अर्थात् अपनी अजैन अवस्थामें ही जैन श्रुतांगों अर्थात् बारह अंग और चौदह पूर्वके 'अर्थसंग्रह' के अध्ययन कर लेनेका उपदेश दिया है। पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ और दृढचर्या क्रियाओंका स्वरूप स्वयं वीरसेनस्वामीके शिष्य तथा जयधवलाके उत्तरभागके रचयिता जिनसेन स्वामीने महापुराणमें भी इस प्रकार बतलाया है—

पूजाराध्याख्यया ख्याता क्रियाऽस्य स्यादतः परा । पूजोपवाससम्पत्त्या शृण्वतोऽङ्गार्थसंग्रहम् ॥
ततोऽन्या पुण्ययज्ञाख्या क्रिया पुण्यानुबन्धिनी । शृण्वतः पूर्वविद्यानामर्थं सब्रह्मचारिणः ॥
तदास्य दृढचर्याख्या क्रिया स्वसमये श्रुतम् । निष्ठाप्य शृण्वतो ग्रंथान्बाह्यानन्यांश्च कांश्चन ॥

यहां भी जैन होनेसे पूर्व ही गृहस्थको अंगोंके अर्थसंग्रहका तथा पूर्वोंकी विद्याओंको सुन लेनेका पूरा अधिकार दिया गया है। यद्यपि मेधावीकृत धर्मसंग्रहश्रावकाचार इस समय हमारे सन्मुख नहीं

है तथापि यह तो सुविदित है कि पं. मेधावी या मीहा जिनचन्द्रभट्टारकके शिष्य थे और उन्होंने अपना यह ग्रन्थ वि. सं, १५४१ में हिसार (पंजाब) नगरमें वसुनन्दि, आशाधर और समन्तभद्रके ग्रन्थोंके आधारसे बनाया था। धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकर श्रावकाचारका तो हमने नाम ही इसी समय प्रथम वार देखा है, और यहां भी न तो उसके कर्ताका कोई नाम-धाम बतलाया गया और न उसकी किसी प्रति मुद्रित या हस्तलिखितका उल्लेख किया गया। अतएव इस अज्ञात कुल-शील ग्रंथकी हम परीक्षा क्या करें? यह कोई प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ तो ज्ञात नहीं होता। लेखकने एक वर्तमान रचयिता मुनि सुधर्मसागरजीके लिखे हुए 'सुधर्मश्रावकाचार' का मत भी उद्धृत किया है। किन्तु प्राचीन प्रमाणोंकी ऊहापोहमें उसे लेना हमने उचित नहीं समझा। वह तो पूर्वोक्त ग्रंथोंके आश्रयसे ही आजका उनका मत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थको सिद्धान्त-ग्रंथोंका निषेध करनेवाले ग्रंथोंमें जिन रचनाओंका समय निश्चयतः ज्ञात है वे १२ हवीं शताब्दिसे पूर्वकी नहीं हैं। उनमें सिद्धान्तका अर्थ भी स्पष्ट नहीं किया गया और जहां किया गया है वहां पूर्वापर-विरोध पाया जाता है। कोई उचित युक्ति या तर्क भी उनमें नहीं पाया जाता। यह तो सुज्ञात ही है कि जिन ग्रंथोंमें पूर्वापर-विरोध या विवेक वैपरीत्य पाया जावे वे प्रामाणिक आगम नहीं कहे जा सकते। इन्द्रनन्दिके वाक्योंका तो सीधे सिद्धान्त ग्रंथोंके ही वाक्योंसे विरोध पाया जाता है, अतः वह प्रामाणिक किस प्रकार गिना जा सकता है? यथार्थतः प्रामाणिक जैन शास्त्रोंकी रचना और शासनके प्रवर्तनका चरमोन्नत काल तो उक्त समस्त ग्रंथोंकी रचनासे पूर्ववर्ती ही है। तब क्या कारण है कि इससे पूर्वके ग्रंथोंमें हमें गृहस्थके सिद्धान्त ग्रंथोंके अध्ययनके सम्बन्धमें किसी नियंत्रणका उल्लेख नहीं मिलता? श्रावकाचारका सबसे प्रधान, प्राचीन, उतम और सुप्रसिद्ध ग्रंथ स्वामी समन्तभद्रकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार है, जिसे वादिराजसूरिने 'अक्षयसुखावह' और प्रभाचन्द्रने 'अखिल सागारमार्गको प्रकाशित करनेवाला निर्मल सूर्य' कहा है। इस ग्रंथमें श्रावकोंके अध्ययनपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया, किन्तु इसके विपरीत सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रको सम्पादन करना ही गृहस्थका सच्चा धर्म कहा है, तथा ज्ञान-परिच्छेदमें, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगसम्बन्धी समस्त आगमका स्वरूप दिखाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि इनका अध्ययन गृहस्थके लिये हितकारी है। द्रव्यानुयोगका अर्थ भी वहां टीकाकार प्रभाचन्द्रजीने 'द्रव्यानुयोग सिद्धान्तसूत्र'[1] किया है, जिससे स्पष्ट है कि गृहस्थके सिद्धान्ताध्ययनमें उन्हें किसी प्रकारकी कैद अभीष्ट नहीं है। इस श्रावकाचारमें उपवासके दिन गृहस्थको ज्ञान-ध्यान परायण[2] होनेका विशेषरूपसे उपदेश है, तथा उत्कृष्ट श्रावकके लिये समय या आगमका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बतलाया है—समयं यदि जानीते, श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति॥ ५, २७. 'यदि समयं आगमं जानीते, आगमज्ञो यदि भवति, तदा ध्रुवं निश्चयेन श्रेयो ज्ञाता स भवति' (प्रभाचंद्रकृत टीका)

---

१ रत्नकरण्डश्रावकाचार (मा. ग्रं, मा.) १, ५. २ रत्नकरण्डश्रावकाचार (मा. ग्रं. मा.) ४, १८.

धर्मपरीक्षादि ग्रन्थोंके विद्वान् कर्ता अमितगति आचार्य विक्रमकी ११ हवीं शताब्दिमें हुए हैं। इनका बनाया हुआ श्रावकाचार भी खूब सुविस्तृत ग्रंथ है[1]। इस ग्रंथमें उन्होंने 'जिन-प्रवचनका अभिज्ञ' होना उत्तम श्रावकका आवश्यक लक्षण माना है। यथा—

ऋजुभूतमनोबुद्धिर्गुरुशुश्रूषणोद्यतः। जिनप्रवचनाभिज्ञः श्रावकः सप्तधोत्तमः॥ १३, २.

आगे चलकर उन्होंने गृहस्थको **आगमका अध्ययन** करना भी आवश्यक बतलाया है—

आगमाध्ययनं कार्यं कृतकालादिशुद्धिना। विनयारूढचित्तेन बहुमानविधायिना॥ १३, १०.

गृहस्थको स्वाध्यायके उपदेशमें स्वाध्यायके पांच प्रकारोंमें वाचना, आम्नाय और अनुप्रेक्षाका भी विधान है। यथा—

वाचना पृच्छनाऽऽम्नायानुप्रेक्षा धर्मदेशना। स्वाध्यायः पंचधा कृत्यः पंचमीं गतिमिच्छता॥ १३, ८१

गृहस्थोंको जहां तक हो सके स्वयं जिनभगवान्‌के वचनोंका पठन और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि, उनके विना वे कृत्याकृत्य-विवेककी प्राप्ति, व आत्म-अहितका त्याग नहीं कर सकते।

जानात्यकृत्यं न जनो न कृत्यं **जैनेश्वरं वाक्यमबुद्धमानः।**
करोत्यकृत्यं विजहाति कृत्यं ततस्ततो गच्छति दुःखमुग्रम्॥ १३, ८९
अनात्मनीनं परिहर्तुकामा ग्रहीतुकामाः पुनरात्मनीनम्।
पठन्ति शश्वज्जिननाथवाक्यं समस्तकल्याणविधायि संतः॥ १३, ९०

यथार्थतः वे मूढ हैं जो स्वयं जिनभगवान्‌के कहे हुए सूत्रोंको छोड़कर दूसरोंके वचनोंका आश्रय लेते हैं। जिनभगवान्‌के वाक्यके समान दूसरा अमृत नहीं है—

सुखाय ये सूत्रमपास्य जैनं मूढाः श्रयंते वचनं परेषाम्। १३, ९१
विहाय वाक्यं जिनचन्द्रदृष्टं परं न पीयूषमिहास्ति किंचित्॥ १३, ९२ इत्यादि

यशःकीर्तिकृत प्रबोधसार[2] भी श्रावकाचारका उत्तम ग्रंथ है। इसमें गृहस्थोंको उपदेश दिया गया है कि श्रुतके अभावमें तो समस्त शासनका नाश हो जायगा, अतः सब प्रयत्न करके श्रुतके सारका उद्धार करना चाहिये। श्रुतसे ही तत्त्वोंका परामर्श होता है और श्रुतसे ही शासन की वृद्धि होती है। तीर्थंकरोंके अभावमें शासन श्रुतके ही आधीन है, इत्यादि.

नश्यत्येव ध्रुवं सर्वं श्रुताभावेऽत्र शासनम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुतसारं समुद्धरेत्॥
श्रुतात्तत्त्वपरामर्शः श्रुतात्समयवर्द्धनम्। तीर्थेशाभावतः सर्वं श्रुताधीनं हि शासनम्॥ ३, ६३–६४.

इस प्रकार प्राचीन श्रावकाचार-ग्रंथोंने गृहस्थोंके लिये न केवल सिद्धान्ताध्ययनका निषेध नहीं किया, किन्तु प्रबलतासे उसका उपदेश दिया है। हम ऊपर बतला ही आये हैं कि स्वयं भगवान् कुंदकुंदाचार्य अपने सूत्रपाहुडमें जिनभगवान्‌के कहे हुए सूत्रके अर्थके ज्ञानको सम्यग्दर्शनका अत्यन्त आवश्यक अंग कहते हैं, और सूत्रार्थसे जो च्युत हुआ उसे वे मिथ्यादृष्टि समझते हैं।

सिद्धान्त किसे कहना चाहिये, इस बातकी पुष्टिमें केवल इन्द्रनन्दि और विबुधश्रीधरकृत

---

१ सखाराम नेमचंद ग्रंथमाला, सोलापुर, १९२८.
२ अनन्तकीर्ति जैनग्रंथमाला, बम्बई, १९७९.

श्रुतावतारोंके ऐसे अवतरण दिये गये हैं, जिनमें कर्मप्राभृत और कषायप्राभृतको 'सिद्धान्त' कहा गया है, तथा अपभ्रंश कवि पुष्पदन्तका वह अवतरण दिया है जहां उन्होंने धवल और जयधवलको सिद्धान्त कहा है। किन्तु इन ग्रन्थोंके सिद्धान्त कहे जानेसे अन्य ग्रंथ सिद्धान्त नहीं रहे, यह कौनसे तर्कसे सिद्ध हुआ, यह समझमें नहीं आता। इस सिलसिलेमें गोम्मटसारको असिद्धान्त सिद्ध करनेके लिये गोम्मटसारकी टीकाके वे अंश उद्धृत किये गये हैं जिनमें कहा गया है कि षट्खंडागमका निरवशेष प्रमेयांश लेकर गोम्मटसारकी रचना की गई है। लेखकके अनुसार "इस कथनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोम्मटसार सिद्धान्तग्रंथ नहीं है, किन्तु सिद्धान्तग्रंथोंसे सार लेकर बनाया गया है। सिद्धान्त ग्रंथ दो ही हैं, यह बात भी इन पंक्तियोंसे सिद्ध हो जाती है।" किन्तु उन पंक्तियोंमें हमें ऐसा व्यवच्छेदक भाव जरा भी दृष्टिगोचर नहीं होता। न तो लेखक सिद्धान्तकी कोई परिभाषा दे सके, जिससे केवल उक्त दो ही सिद्धान्त-ग्रंथ ठहर जायें और अन्य गोम्मटसारादि ग्रंथ सिद्धान्तश्रेणी के बाहर पड़ जायें। और न कोई ऐसा प्राचीन उल्लेख ही बता सके, जहां कहा गया हो कि सिद्धान्त-ग्रंथ केवल दो ही हैं, अन्य नहीं। यथार्थ बात तो यह है कि सिद्धान्त, आगम, प्रवचन ये सब शब्द एक ही अर्थके पर्यायवाची शब्द हैं। स्वयं धवलाकारने कहा है–'आगमो सिद्धंतो पवयणमिदि एयट्ठो' (सत्प्र. १ पृ. २०)

अर्थात्, आगम, सिद्धान्त, प्रवचन, ये सब एक ही अर्थके बोधक शब्द हैं। लेखकने भी आगम और सिद्धान्तको एकार्थवाची स्वीकार किया है। यही नहीं, किन्तु गृहस्थोंको सिद्धान्ताध्ययनका निषेध करनेवाले पूर्वोक्त साधारण परस्पर-विरोधी कथन करनेवाले और युक्ति-हीन वाक्योंको भी वे 'आगम' करके मानते हैं। किन्तु सिद्धान्तोंके निरवशेष प्रमेयांशका समुद्धार करनेवाले गोम्मटसारको सिद्धान्त माननेमें उन्हें ऐतराज है। षट्खंडागम भी तो महाकर्मप्रकृतिपाहुडका संक्षिप्त समुद्धार है। फिर यह कैसे सिद्धान्त बना रहता है, और गोम्मटसार कैसे सिद्धान्त-बाह्य: हो जाता है; यह युक्ति समझमें नहीं आती। यदि किसीके किन्हीं ग्रंथोंको सिद्धान्त कहनेसे ही अन्य दूसरे ग्रंथ असिद्धान्त हो जाते हों, तो गोम्मटसारादि ग्रंथोंके भी सिद्धान्तरूपसे उल्लिखित किये जानेके प्रमाण दिये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, राजमल्लकृत लाटीसंहिता नामक श्रावकाचार ग्रंथमें उल्लेख है–

तदुक्तं गोम्मटसारे सिद्धान्ते सिद्धसाधने। तत्सूत्रं च यथाम्नायात् प्रतीत्यै वच्मि साम्प्रतम्॥ ५, १३४.

इस प्रकारके उल्लेखोंसे क्या गोम्मटसार सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध नहीं होता? और क्या उसके सिद्धान्त ग्रंथ सिद्ध हो जानेसे शेष ग्रंथ सिद्धान्तबाह्य सिद्ध हो जाते हैं?

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो समस्त जैनधर्म और सिद्धान्तका ध्येय जिनोक्त वाक्योंको सर्वव्यापी बनानेका रहा है। स्वयं तीर्थंकरके समवसरणमें मनुष्यमात्र ही नहीं, पशु-पक्षी आदि तक सम्मिलित होते थे, जो सभी भगवान्के उपदेशको सुन समझ सकते थे। जब द्वादशांग वाणीकी आधारभूत दिव्यध्वनि तकको सुननेका अधिकार समस्त प्राणियोंको है, तब उस वाणीके सारांशको ग्रथित करने-

वाले कोई भी सिद्धान्त ग्रंथ श्रावकोंके लिये क्यों निषिद्ध किये जायगे, यह समझमें नहीं आता। सम्यग्दर्शनको निर्मल बनानेके लिये सिद्धान्तका आश्रय अत्यंत वांछनीय है। समस्त शंकाओंका निवारण होकर निःशंकित-अंगकी उपलब्धिका सिद्धान्ताध्ययनसे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। जिन सैद्धान्तिक बातोंके तर्क-वितर्कमें विद्वानोंका और जिज्ञासुओंका न जाने कितना बहुमूल्य समय व्यय हुआ करता है और फिर भी वे ठीक निर्णय पर नहीं पहुंच पाते, ऐसी अनेक गुत्थियां इन सिद्धान्त ग्रंथोंमें सुलझी हुई पड़ी हैं। उनसे अपने ज्ञानको निर्मल और विकसित बनानेका सीधा मार्ग गृहस्थ जिज्ञासुओं और विद्यार्थियोंको क्यों न बताया जाय? स्वयं धवलसिद्धान्तमें कहीं भी ऐसा नियंत्रण नहीं लगाया गया कि ये ग्रंथ मुनियोंको ही पढ़ना चाहिये, गृहस्थोंको नहीं। बल्कि, जैसा हमें ऊपर देख चुके हैं, जगह जगह हमें आचार्योंका यही संकेत मिलता है कि उन्होंने मनुष्यमात्रका ख्याल रखकर व्याख्यान किया है। उन्होंने जगह जगह कहा है कि 'जिन भगवान् सर्वसत्वोपकारी होते हैं, और इसलिये सबकी समझदारीके लिये अमुक बात अमुक रीतिसे कही गई है।' यदि सिद्धान्तोंको पढ़नेका निषेध है, तो वह अर्थ या विषय की दृष्टिसे है कि भाषाकी दृष्टिसे, यह भी विचार कर लेना चाहिए। धवलादि सिद्धान्तग्रंथोंकी भाषा वही है जो कुंदकुंदाचार्यादि प्राकृत ग्रंथकारोंकी रचनाओंमें पाई जाती है, जिसके अनेक व्याकरण आदि भी हैं। अतएव भाषाकी दृष्टिसे नियंत्रण लगानेका कोई कारण नहीं दिखता। यदि विषयकी दृष्टिसे देखा जाय तो यहांकी तत्वचर्चा भी वही है जो हमें तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथोंमें मिलती है। फिर उसी चर्चाको गृहस्थ इन ग्रंथोंमें पढ़ सकता है, लेकिन उन ग्रंथोंमें नहीं, यह कैसी बात है? यदि सिद्धान्त–पठनका निषेध है तो ये सब ग्रंथ भी उस निषेध-कोटिमें आवेंगे। जब सिद्धान्ताध्ययनके निषेधवाले उपर्युक्त अत्यंत आधुनिक पुस्तकोंको सिद्धान्तके पर्यायवाची शब्द आगमसे उल्लिखित किया जा सकता है, तब एक अत्यन्त हीन दलीलके पोषण–निमित्त गोम्मटसार व सर्वार्थसिद्धि जैसे ग्रंथोंको सिद्धान्तबाह्य कह देना चरमसीमाका साहस और भारी अविनय है। यथार्थतः सर्वार्थसिद्धिमें तो कर्मप्राभृतके ही सूत्रोंका अक्षरशः उसी क्रमसे संस्कृत रूपान्तर पाया जाता है, जैसा कि धवलाके प्रकाशित भागोंके सूत्रों और उनके नीचे टिप्पणोंमें दिये गये सर्वार्थसिद्धिके अवतरणोंमें सहज ही देख सकते हैं। राजवार्तिक आदि ग्रंथोंको धवलाकारने स्वयं बड़े आदरसे अपने मतोंकी पुष्टिमें प्रस्तुत किया है। गोम्मटसार तो धवलादिका सारभूत ग्रंथ ही है; जिसकी गाथाएं की गाथाएं सीधी वहांसे ली गई हैं। उसके सिद्धान्तरूपसे उल्लेख किये जानेका एक प्रमाण भी ऊपर दिया जा चुका है। ऐसी अवस्थामें इन पूज्य ग्रंथोंको 'सिद्धान्त नहीं है' ऐसा कहना बड़ा ही अनुचित है।

मैं इस विषयको विशेष बढ़ाना अनावश्यक समझता हूं, क्योंकि, उक्त निषेधके पक्षमें न प्राचीन ग्रंथोंका बल है और न सामान्य युक्ति या तर्कका। जान पड़ता है, जिस प्रकार वैदिक धर्मके इतिहासमें एक समय वेदके अध्ययनका द्विजोंके अतिरिक्त दूसरोंको निषेध किया गया था,

इसी प्रकार जैन समाजके गिरतीके समयमें किसी 'गुरु' ने अपने अज्ञानको छुपानेके लिये यह सार-हीन और जैन उदार-नीतिके विपरीत बात चला दी, जिसकी गतानुगतिक थोड़ीसी परम्परा चलकर आज तक सद्ज्ञानके-प्रचारमें बाधा उत्पन्न कर रही है। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र और चामुण्डरायजी के विषयमें जो कथा कही जाती है वह प्राचीन किसी भी ग्रंथमें नहीं पाई जाती और पीछेकी निराधार निरी कल्पना प्रतीत होती है। ऐसी ही निराधार कल्पनाओंका यह परिणाम हुआ कि गत सैकड़ों वर्षोंमें इन उत्तमोत्तम सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन-पाठन नहीं हुआ और उनका जैन साहित्यके निर्माणमें जब जितना उपयोग होना चाहिये था, नहीं हुआ। यही नहीं, इनकी एक मात्र अवशिष्ट प्रतियां भी धीरे धीरे विनष्ट होने लगी थीं। महाधवलकी प्रतिमेंसे कितने ही पत्र अप्राप्य हैं और कितने ही छिद्रित आदि हो जानेसे उनमें पाठ-स्खलन उत्पन्न हो गये हैं। यह जो लिखा है कि इन सिद्धान्त ग्रंथोंकी कापियां करा कराके जगह जगह विराजमान करा दी जानी चाहिए, सो ये कापियाँ कौन करेगा? श्रावक ही तो? या मुनिजनोंको दिया जायगा, सो भी अल्पबुद्धि नहीं, विद्वान् मुनियोंको? यथार्थतः गृहस्थों द्वारा ही तो उनकी प्रतिलिपियां की गईं, और की जा सकती हैं, तथा गृहस्थों द्वारा ही उनका जो कुछ उद्धार संभव है, किया जा रहा है। इसमें न तो कोई दूषण है, न बिगाड़। अब तो जैन सिद्धान्तको समस्त संसारमें घोषित करनेका यही उपाय है। हाथ कंकनको आरसी क्या?

---

२. शंका-समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शंका—'तद्भ्रमणमंतरेणाशुभ्रमज्जीवानां भ्रमद्भूम्यादिदर्शनानुपपत्तेः इति'। इस वाक्यका अर्थ मुझे स्पष्ट नहीं हो सका। उसमें पृथ्वीके परिभ्रमणका उल्लेखसा प्रतीत होता है। उसका अर्थ खोलकर समझानेकी कृपा कीजिये। (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें शंका यह उठाई गई है कि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं होता, ऐसा क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि, सर्व जीव-प्रदेशोंके भ्रमण माननेपर उनके शरीरके साथ सम्बन्ध-विच्छेदका प्रसंग आता है? इस शंकाका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते हैं कि 'यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीव-प्रदेशोंका भ्रमण नहीं माना जावे, तो अत्यन्त द्रुतगतिसे भ्रमण करते हुए जीवोंको भ्रमण करती हुई पृथिवी आदिका ज्ञान नहीं हो सकता है।' इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति शीघ्रतासे चक्कर लेता है तो उसे कुछ क्षणके लिये अपने आस पास चारों ओरका समस्त भूमंडल पृथिवी, पर्वत, वृक्ष, गृहादि घूमता हुआ दिखाई देता है। इसका कारण उपर्युक्त समाधानमें यह सूचित किया गया है, कि उस व्यक्तिके शीघ्रतासे चक्कर लेनेकी

अवस्थामें उसके जीवप्रदेश भी शरीरके भीतर ही भीतर शीघ्रतासे भ्रमण करने लगते हैं, जिसके कारण उसे पृथिवी आदि सब घूमते हुए दिखाई देने लगते हैं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण जीवप्रदेशोंको स्थिर माना जाय तो उक्त अवस्थामें भूमंडलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण नहीं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते हैं कि 'आत्मप्रदेशोंके भ्रमण करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण आत्मप्रदेशोंका भी भ्रमण स्वीकार कर लेना चाहिये'। आधुनिक मान्यतासम्बन्धी भूभ्रमणका तो दर्शन किसीको किसी अवस्थामें भी होता नहीं है। इसलिये यहां उस भूमिभ्रमणका कोई उल्लेख नहीं प्रतीत होता।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२ शंका— नकशा नं. २ में प्राणके खानेमें सयोगिकेवलीकी अपेक्षा २ प्राण भी होना चाहिये? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर. पत्र, ३-४-४१.)

समाधान—प्रस्तुत प्रकरणमें अपर्याप्त जीवोंके सामान्य आलाप बतलाए गए हैं, जिनमें क्रमशः संज्ञी पंचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तकके समस्त जीवोंकी विवक्षा है, केवलिसमुद्घात जैसी विशेष अवस्थाओंकी यहां विवक्षा नहीं है। इसी कारण शंकाकार द्वारा बतलाये गये २ प्राण न मूल टीकामें कहे गये, न अनुवादमें लिये गये, और न उक्त नकशेमें दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ नं. ४४४ नकशा नं. २५ पर जहां सयोगिकेवलीके ही आलाप बतलाये गये हैं, वहांपर साधारण अवस्थामें होनेवाले चार प्राणोंका और विशेष अवस्थामें होनेवाले उक्त दो प्राणोंका उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३२-४३५

३ शंका—अर्थमें तथा नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ में वेदके आलापमें जो तीन वेद कहे हैं सो वहां ३ भाव वेद कहना चाहिये। (नानकचंदजी, खतौली, पत्र ता. १०-११-४१.)

समाधान—नकशा नं. १४, १५, १६, १७ संबंधी आलापोंमें तथा इससे आगे पीछेके सभी आलापोंमें भाववेदकी ही विवक्षा की गई है। धवलाकारने लेश्या आलापमें जैसे द्रव्यलेश्या और भावलेश्याका विभाग कर पृथक् पृथक् वर्णन किया है, वैसा वेद आलापमें द्रव्यवेद और भाववेदका विभाग कर मूलमें कहीं वर्णन नहीं किया है। अतः उक्त नकशोंमें भी भाववेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहां तथा अन्यत्र भाववेदसे ही है।

पुस्तक २, पृ. ४३४

४ शंका—पृष्ठ ४३३ पर जो प्रमत्तसंयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तका कथन है, उनके यंत्र क्यों नहीं बनाए गए? (नानकचंदजी, खतौली, पत्र ता. १०-११-४१)

समाधान—प्रस्तुत ग्रंथभागमें उन्हीं यंत्रोंको बनाया गया है, जिनका वर्णन धवला टीकामें पाया जाता है। प्रमत्तसंयत पर्याप्त तथा अपर्याप्तके आलापोंका धवला टीकामें कथन नहीं है, अतः उनके पृथक् यंत्र भी नहीं बनाये गये। तो भी विषयके प्रसंगवश विशेषार्थके अन्तर्गत सर्व साधारण

पाठकोंके परिज्ञानार्थ पृ. ४३३ पर उनका कथन किया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ४५१

५ शंका—पृ. ४५१, यंत्र ३१, में प्राणमें अ, लिखा है सो नहीं होना चाहिये ?

(नानकचंदजी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—जिन गुणस्थानों या जीवसमासोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप सम्भव हैं, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकोंको भ्रम न हो, इसलिए पर्याप्त कालमें सम्भव प्राणों के आगे प लिखा गया है । तथा अपर्याप्त कालमें सम्भवित प्राणोंके आगे अ लिखा गया है। इसी नियमके अनुसार प्रस्तुत यंत्र नं. ३१ में नारक सामान्य मिथ्यादृष्टियोंके आलाप प्रकट करते समय पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नीचे प और अपर्याप्त अवस्थामें सम्भव ७ प्राणोंके आगे अ लिखा गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६२३

६ शंका—पृ. ६२३ के विशेषार्थमें यह और होना चाहिए कि चौदहवें गुणस्थानमें पर्याप्तका उदय रहता है, लेकिन नोकर्मवर्गणा नहीं आती ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—उक्त विशेषार्थमें जो बात सयोगिकेवलीके लिये कही गई है, वह अयोगिकेवलीके लिये भी उपयुक्त होती है । अतएव यहां उक्त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ति नहीं ।

पुस्तक २, पृ. ६३८

७ शंका—यंत्र नं. २५३ के प्राणके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए, क्योंकि, योगके खानेमें ६ योग लिखे हैं ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान—योगके खानेमें ६ योग लिखे जानेसे ३ और २ प्राण और भी कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होना स्वाभाविक ही है। किन्तु, यहांपर ६ योगोंका उल्लेख विवक्षाभेदसे ही किया गया है, जैसा कि मूलके ' अथवा तीन योग ' इस कथन से स्पष्ट है, और जिसका कि अभिप्राय वहीं पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया गया है (देखो पृ. ६३८)। इसी कारण प्राणोंके खानेमें ३ और २ प्राणोंका उल्लेख नहीं किया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६४८

८ शंका—पृ. ६४८ पर काययोगी अप्रमत्तसंयत जीवोंके आलापमें वेद लिखा है सो यहां भाववेद होना चाहिए ? (नानकचंदजी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान—इसका उत्तर शंका नं. ३ में दे दिया गया है ।

पुस्तक २, पृ. ६५४, ६६०

९ शंका—पृष्ठ ६५४ पर समाधान जो पहला किया गया है, उसमें लिखा है कि ' अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं

रहता है। यही पृष्ठ ६६० पर समाधान करते हुए लिखा है। यह किस अपेक्षासे कहा है? क्या समुद्धातमें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है? (नानकचंदजी, खतौली, पत्र १०–११–४१)

समाधान—' अपर्याप्त योगमें वर्तमान कपाटसमुद्धातगत सयोगकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता, ' इसका अभिप्राय यह लेना चाहिये कि उक्त अवस्थामें जो आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर फैल गए हैं, उनका शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेपर भी यदि शरीरके साथ सम्बन्ध माना जायगा, तो जिस परिमाणमें जीव-प्रदेश फैले हैं, उतने परिमाणवाला ही औदारिकशरीरको होना पड़ेगा। किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं, अतः यह कहा गया है कि कपाटसमुद्धातगत सयोगकेवलीका पहलेके शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरीरके भीतर हैं, उनसे तो सम्बन्ध बना ही रहता है। इसी प्रकार किसी भी समुद्धातकी दशामें पूर्व मूलशरीरसे सम्बन्ध नहीं छूटता है। समुद्धातके लक्षणमें स्पष्ट ही कहा गया है कि मूलशरीरको न छोड़कर जीवके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्धात कहते हैं।

पुस्तक २, पृ. ८०८

१० शंका—पृ. ८०८ पंक्ति १२ में सात प्राणके आगे दो प्राण और होना चाहिए, क्योंकि, सयोगीके अपर्याप्त अवस्थामें दो प्राण होते हैं। (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३४-४-१)

यंत्र नं. ४७७ में प्राणमें ४–१ प्राण और लिखना चाहिए

(नानकचंदजी, खतौली, पत्र १०–११–४१)

समाधान—इसका उत्तर वही है जो कि शंका नं. २ में दिया गया है।

पुस्तक ३, पृ. २३

११ शंका—$२^{२^{अ}}$ की वर्गशलाका अ होगी यह शुद्ध ज्ञात नहीं होता, क्योंकि $२^{२^{४}}$ = २५६ होता है, और २५६ की वर्गशलाका ३ है, ४ नहीं?

(नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४–११–४१)

समाधान—$२^{२^{अ}}$ का अर्थ है २ का $२^{अ}$ के प्रमाण वर्ग। अब यदि हम अ को ४ के बराबर मान लें तो—$२^{२^{अ}} = २^{२^{४}} = २^{१६}$ = २५६ × २५६ = ६५५३६, जिसकी वर्गशलाका ४ होगी। शंकाकारने भूल यह की है कि $२^{२^{अ}} = (२^{२})^{अ}$ मान लिया है। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रचलित पद्धतिके अनुसार $२^{२^{अ}} = २^{(२^{अ})}$ होता है। अतएव अनवादमें उदाहरण-रूपसे जो बात कही गई है उसमें कोई दोष नहीं है।

पुस्तक ३, पृ. ३०

१२ शंका—यहां सोलह राशिगत अल्पबहुत्व निरूपणमें जो अभव्योंसे सिद्धकालका गुणकार छह महिनोंके अष्टम भागमें एक मिला देनेपर उत्पन्न हुई समय-संख्यासे भाजित अतीत कालका अनन्तवां भाग कहा है वह अशुद्ध प्रतीत होता है। मेरी राय में अतीत कालको छह माह आठ समयसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको ६०८ से गुणा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका अनन्तवां भाग गुणकार होना चाहिये ? (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—उक्त शंकामें शंकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मान्यता पर है जिसके अनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जीव मोक्ष जाते हैं। किन्तु धवलामें उक्त स्थलपर दिये गये अल्पबहुत्वमें उक्त पाठ द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती, जब तक कि उस पाठको विशेषरूपसे परिवर्तित न किया जाय। उक्त स्थलका अर्थ करते समय हमारी भी दृष्टि इस बातपर थी। किन्तु उपलब्ध पाठ वैसा होने तथा मूडबिद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंके मिलानसे भी उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूलको छोड़कर अर्थ करने में असमर्थ रहे। यथार्थतः उक्त पाठसे आगे जो सिद्धोंका गुणकार हमने 'रूपशतपृथक्त्व' ग्रहण कर लिया था वह उपर्युक्त दृष्टिसे ही केवल एक प्रतिके आधार पर किया था। किन्तु दो प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'रूपदश-पृथक्त्व' पाठ था, और मूड़बिद्रीके प्रति-मिलानसे भी इसी पाठकी पुष्टि हुई है। अतः इससे वह संदर्भ और भी शंकास्पद और विचारणीय हो गया है। अतएव जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण इस सम्बन्धका न मिल जावे तब तक उस सम्बन्धमें निर्णयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता।

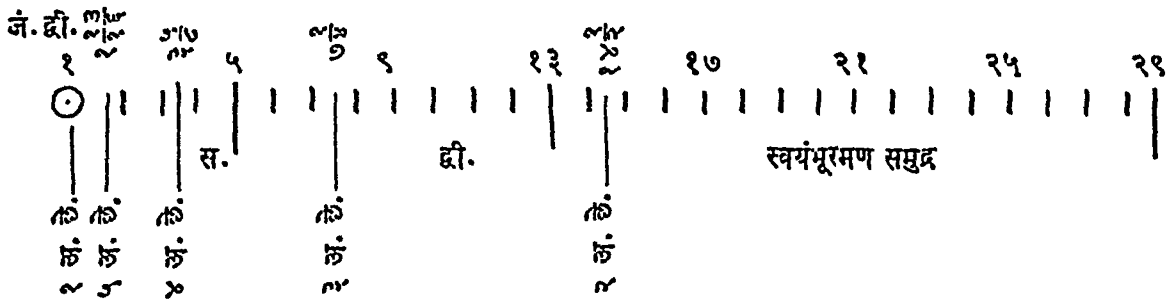
पुस्तक ३, पृ. ३५

१३ शंका—"रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक द्वीप और एक एक समुद्रमें पड़ते हैं, किन्तु लवणसमुद्रमें दो अर्धच्छेद पड़ेंगे।" यह बात समझमें नहीं आती। जब धातकी-खंडमें एक अर्धच्छेद पड़ेगा, और लवणसमुद्र उसका आधा है, तब उसमें दो अर्धच्छेद कैसे पड़ जांयगे ? (नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २३-११-४१.)

समाधान—उपर्युक्त शंकाका समाधान रज्जुके अर्धच्छेदोंकी व्यवस्थाको स्पष्टतः समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है। समस्त तिर्यग्लोक एक रज्जुप्रमाण है। अतः रज्जुको प्रथम वार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ा। दूसरी वार जब हम रज्जुको आधा करेंगे तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमणद्वीपकी परिधिसे कुछ आगे चलकर स्वयंभूरमण-समुद्रमें पड़ेगा, क्योंकि, उक्त समुद्रका विस्तार भीतरके समस्त द्वीप-समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है। इसी प्रकार रज्जुको तीसरी वार आधा करनेपर तीसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण-द्वीपमें उसकी प्रारम्भिक सीमासे कुछ और विशेष आगे चलकर पड़ेगा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोटा होता जावेगा और उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें पड़ते जावेंगे, किन्तु उनका स्थान

उस उस द्वीप-समुद्रकी भीतरी परिधिसे उत्तरोत्तर आगेको बढ़ता जावेगा। इस प्रकार होते होते अन्तिम समुद्र लवणसागरमें एक अर्धच्छेद उसकी बाह्य सीमाके समीप और दूसरा उसकी भीतरी सीमाके समीप पड़ जावेगा। यही बात निम्न चित्रसे और भी स्पष्ट हो जावेगी।

मान लो कि स्वयंभूरमणसमुद्र जम्बूद्वीपसे आगे तीसरे वलयपर है, और उसीकी बाह्य सीमापर रज्जुका अन्त होता है। रज्जुका प्रथम अर्धच्छेद तो जम्बूद्वीपके मध्यमें मेरुपर पड़ेगा ही। अब वहांसे आगेका विस्तार पचास हजार योजनको १ मान लेनपर केवल १+४+८+१६=२९ योजन रहा।



अतएव रज्जुका दूसरा अर्धच्छेद १४½ योजन पर स्वयंभूरमणसमुद्रमें, तीसरा अर्धच्छेद ७¼ योजन पर उससे पूर्ववर्ती द्वीपमें, चौथा अर्धच्छेद ३⅞ योजन पर लवणसमुद्रकी बाह्य सीमाके समीप, तथा पांचवां अर्धच्छेद १$\frac{१५}{१६}$ योजन पर लवणसमुद्रकी आभ्यंतर सीमाके समीप पड़ेगा। इस प्रकार हम कितने ही द्वीप समुद्र आगे आगे मान लें तो भी लवणसमुद्रमें अन्ततः दो ही अर्धच्छेद पड़ेंगे। यही बात त्रिलोकसार की गाथा नं. ३५२-३५८ में कही गई है।

पुस्तक ३, पृ. ४४

१४ शंका—पुस्तक ३ के पृ. ४४ पर क्षेत्राकारके द्वारा जो यह समझाया गया है कि संपूर्ण जीवराशिके वर्गको दूसरे भाग अधिक जीवराशिसे भाजित करनेपर तीसरा भागहीन जीवराशि प्राप्त होती है, सो यह बात वहां दिये गये आकारसे समझमें नहीं आती। कृपया समझाइये?

(नेमीचंदजी वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान—मान लीजिये, सर्व जीवराशि १६ है, इसका वर्ग हुआ १६×१६=२५६. अब यदि हम इस जीवराशिके वर्ग (२५६) में जीवराशि (१६) का भाग देते हैं तो $\frac{२५६}{१६}$=१६ अर्थात् जीवराशि प्रमाण ही लब्धआता है। और यदि उसी जीवराशिके वर्गमें द्विभाग अधिक जीवराशि (१६+८=२४) का भाग देते हैं तो त्रिभागहीन जीवराशिप्रमाण, अर्थात् १६ − $\frac{१६}{३}$ = १०⅔ आता है; जैसे $\frac{२५६}{२४}$ = १०⅔.

इसी बातको धवलाकारने क्षेत्रमिति द्वारा भी समझाया है जिसका कि अनुवादके साथ चित्र भी दिया गया है। इस चित्रमें **स ड** जीवराशि (मानलो १६) है, उसको **स ड'** (१६) से वर्गित करनेपर प्रतराकार क्षेत्र **स ड स' ड'** बन जाता है जिसमें अंकप्रमाण दिखानेके लिये

यहां १६×१२=२५६ खंड किये जाते हैं। इस वर्गक्षेत्रमें जब हम स ड के १६ खंडोंको भाजक

स १६ ड +८ ड

१०२/३

१६

ड' स'

मानते हैं तो स ड' रूप १६ खंड लब्ध रहते हैं। पर यदि हम स ड को दो भाग अधिक अर्थात्

ड' स' डेवढ़ा (२४ खंड प्रमाण) कर दें, तो उसी वर्गराशि प्रमाण क्षेत्रफलको नियत रखनेके लिये हमें स ड' को त्रिभागहीन अर्थात् १०२/३ खंडप्रमाण कर लेना पड़ेगा, जो जीवराशिका त्रिभागहीन (१६–१६/३) भाग है। यही आचार्य द्वारा समझाये गये और चित्र द्वारा दिखाये गये सिद्धान्तका अभिप्राय है।

पुस्तक ३, पृ. २७८–२७९

१५ शंका—यहां जो नारकी व स्वर्गवासियोंकी राशियां लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अवहारकाल बतलाये गये हैं वे खुद्दाबंध और जीवट्ठाणमें न्यूनाधिक क्यों कहे गये हैं? उनमें समानता माननेमें क्या दोष आता है, सो समझ नहीं पड़ता। स्पष्ट कीजिये? (नेमीचंदजी, वकील, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान— खुद्दाबंधमें जो नारकी व देवोंका प्रमाण लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अवहारकाल कहे गये है वे उन उन जीवराशियोंमें गुणस्थानका भेद न करके सामान्यराशिके लिये उपयुक्त होते हैं। किन्तु यहां जीवस्थानमें गुणस्थानकी विवक्षा है, और प्रस्तुतमें अन्य गुणस्थानोंको छोड़कर केवल मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण कहा जा रहा है जो सामान्यराशिसे कुछ न्यून होगा ही। अतः इस न्यून राशिको बतलानेके लिये जीवट्ठाणमें उसकी विष्कंभसूची भी खुद्दाबंधमें कथित विष्कंभसूचीसे कुछ न्यून, तथा अवहारकाल उससे अधिक कहा जाना आवश्यक है। यदि हम खुद्दाबंधमें बतलाये गये सामान्यराशिकी विष्कंभसूचीको ही जीवट्ठाणमें मिथ्यादृष्टिराशिकी विष्कंभसूची मान लें तो उस समस्त सामान्य जीवराशिका मिथ्यादृष्टियोंमें ही समावेश होकर शेष गुणस्थानोंके उक्त देवों व नारकियोंमें अभावका प्रसंग आ जायगा। खुद्दाबंध और यहां जीवट्ठाणमें विष्कंभसूची और अवहारकालको समान मान लेनेमें यही दोष उत्पन्न होता है।

३. विषय-परिचय

जीवस्थानकी पूर्व प्रकाशित दो प्ररूपणाओं– सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगममें क्रमशः जीवका स्वरूप, गुणस्थान व मार्गणास्थानानुसार भेद, तथा प्रत्येक गुणस्थान व मार्गणास्थानसंबंधी जीवोंका प्रमाण व संख्या बतलाई जा चुकी है। अब प्रस्तुत भागमें जीवस्थानसंबंधी आगेकी तीन प्ररूपणाएं प्रकाशित की जा रही हैं–क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम।

१ क्षेत्रानुगम

क्षेत्रानुगममें जीवोंके निवास व विहारादिसंबंधी क्षेत्रका परिमाण बतलाया गया है। इस संबंधमें प्रथम प्रश्न यह उठता है कि यह क्षेत्र है कहां? इसके उत्तरमें अनन्त आकाशके दो विभाग किये गये हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश समस्त आकाशके मध्यमें स्थित है, परिमित है और जीवादि पांच द्रव्योंका आधार है। उसके चारों तरफ शेष समस्त अनन्त आकाश अलोकाकाश है। उक्त लोकाकाशके स्वरूप और प्रमाणके संबंधमें दो मत हैं। एक मतके अनुसार यह लोकाकाश अपने तलभागमें सातराजु व्यासवाला गोलाकार है। पुनः ऊपरको क्रमसे घटता हुआ अपनी आधी उंचाई अर्थात् सात राजुपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। वहांसे पुनः ऊपरको क्रमसे बढ़ता हुआ साढ़े तीन राजु ऊपर जाकर पांच राजु व्यासप्रमाण हो जाता है और वहांसे पुनः साढ़े तीन राजु घटता हुआ अपने सर्वोपरि उच्च भागपर एक राजु व्यासवाला रह जाता है। इस मतके अनुसार लोकका आकार ठीक अधोभागमें, वेत्रासन, मध्यमें झल्लरी और ऊर्ध्वभागमें मृदंगके समान हो जाता है। किन्तु धवलाकारने इस मतको स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि, ऐसे लोकमें जो प्रमाणलोकका घनफल जगश्रेणी अर्थात् सात राजुके घनप्रमाण कहा है, वह प्राप्त नहीं होता। यह बात स्पष्टतः दिखलानेके लिये उन्होंने अपने समयके गणितज्ञानकी विविध और अश्रुतपूर्व प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकारके लोकके अधोभाग व उर्ध्वभागका घनफल निकाला है जो कुल १६४ $\frac{३}{१३}$ $\frac{२८}{५६}$ घनराजु होनेसे श्रेणीके घन अर्थात् ३४३ घनराजुसे बहुत हीन रह जाता है। इसलिये उन्होंने लोकका आकार पूर्व–पश्चिम दो दिशाओंमें तो ऊपरकी ओर पूर्वोक्त क्रमसे घटता बढ़ता हुआ, किन्तु उत्तर–दक्षिण दो दिशाओंमें सर्वत्र सात राजु ही माना है। इस प्रकार यह लोक गोलाकार न होकर समचतुरस्राकार हो जाता है और दो दिशाओंसे उसका आकार वेत्रासन, झल्लरी और मृदंगके सदृश भी दिखाई दे जाता है। ऐसे लोकका प्रमाण ठीक श्रेणीका घन $७^3 = ७ \times ७ \times ७ = ३४३$ घनराजु हो जाता है। यही लोक जीवादि पांचों द्रव्योंका क्षेत्र है।

यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उक्त ३४३ घनराजुप्रमाण केवल असंख्यात प्रदेशात्मक अत्यन्त परिमित क्षेत्रमें अनन्त जीव व अनन्त पुद्गल परमाणु कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि जीवों और पुद्गल-परमाणुओंमें अप्रतिघातरूपसे अन्योन्यावगाहन शक्ति विद्यमान है जिसके कारण अंगुलके असंख्यातवें भागमें भी अनन्तानन्त जीवोंका और जीवके भी प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकादि पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व बन जाता है।

ओघ अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंका क्षेत्र ४ सूत्रोंमें बतला दिया गया है कि मिथ्यादृष्टी जीव सर्वलोकमें व अयोगिकेवली और शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त बारह गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, और सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें, असंख्यात बहु भागोंमें, तथा सर्वलोकमें रहते हैं। धवलाकारने इन सूत्र-वचनोंको एक ओर जीवोंकी नाना अवस्थाओंका विचार करके, और दूसरी ओर सूक्ष्मतर क्षेत्रमानके लिये लोकको पांच विभागोंमें बांटकर बड़े विस्तारसे समझाया है।

क्षेत्रावगाहनाकी अपेक्षासे जीवोंकी तीन अवस्थाएं हो सकती है (१) स्वस्थान (२) समुद्घात और (३) उपपाद। स्वस्थान भी दो प्रकारका है—अपने स्थायी निवासके क्षेत्रको स्वस्थान-स्वस्थान, और अपने विहारके क्षेत्रको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं। जीवके प्रदेशोंका उनके स्वाभाविक संगठनसे अधिक फैलना समुद्घात कहलाता है। वेदना और पीड़ाके कारण जीव-प्रदेशोंके फैलनेको वेदनासमुद्घात कहते हैं। क्रोधादि कषायोंके कारण जीव-प्रदेशोंके विस्तारको कषायसमुद्घात कहते हैं। इसी प्रकार अपने स्वाभाविक शरीरके आकारको छोड़कर अन्य शरीराकार परिवर्तनको वैक्रियिकसमुद्घात, मरनेके समय अपने पूर्व शरीरको न छोड़कर नवीन उत्पत्तिस्थान तक जीव-प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक, तैजसशरीरकी अप्रशस्त व प्रशस्त विक्रियाको तैजसमुद्घात; ऋद्धि-प्राप्त मुनियोंके शंका-निवारणार्थ जीवप्रदेशोंके प्रस्तारको आहारकसमुद्घात, और सर्वज्ञताप्राप्त केवलीके प्रदेशोंका शेष कर्मक्षय-निमित्त दंडाकार, कपाटाकार, प्रतराकार, व लोकपूरणरूप प्रस्तारको केवलिसमुद्घात कहते हैं—जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर तीरके समान सीधे, व एक, दो या तीन मोड़े लेकर अन्य पर्यायके ग्रहणक्षेत्र तक गमन करनेको उपपाद कहते हैं। इन्हीं दश—अर्थात् (१) स्वस्थानस्वस्थान (२) विहारवत्स्वस्थान (३) वेदनासमुद्घात (४) कषायसमुद्घात (५) वैक्रियिकसमुद्घात (६) मारणान्तिकसमुद्घात (७) तैजससमुद्घात (८) आहारकसमुद्घात (९) केवलि-समुद्घात और (१०) उपपाद अवस्थाओंकी अपेक्षासे यथासम्भव जीवके भिन्न भिन्न गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंका क्षेत्रप्रमाण इस क्षेत्ररूपणामें बतलाया गया है।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम क्षेत्रमानके लिये धवलाकारने पांच प्रकारसे लोकका ग्रहण किया है (१) समस्त लोक या सामान्य लोक जो ७ राजुका घनप्रमाण है; (२) अधोलोक जो १९६ घनराजुप्रमाण है, (३) ऊर्ध्वलोक जो १४७ घनराजुप्रमाण है (४) तिर्यकलोक या मध्यलोक

जो १ राजुके प्रतर या वर्गप्रमाण है; और (५) मनुष्यलोक जो अढ़ाई द्वीपप्रमाण, अर्थात् ४५ लाख व्यासवाला वर्तुलाकार क्षेत्र है। किसी भी एक प्रकारके जीवोंका क्षेत्रमान बतलानेके लिये धवलाकारने उस उस जातिविशेषवाली प्रधान राशिको लेकर उसके क्षेत्रावगाहनका विचार किया है। उदाहरणार्थ—विहारवत्स्वस्थानवाले मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका विचार करते समय उन्होंने त्रस-पर्याप्तराशिको ही विहार करनेकी योग्यता रखनेवाली मानकर पहले यह निर्दिष्ट कर दिया कि किसी भी समयमें इस राशिका संख्यातवां भाग ही विहार करेगा। फिर उन्होंने इस विहार करनेवाली राशिमें स्वयंप्रभनागेन्द्र पर्वतके परभागवर्ती बड़े बड़े त्रस जीवोंका विचार किया, जिनमें द्वीन्द्रिय जीव शंख बारह योजनका, त्रीन्द्रिय गोम्ही तीन कोसकी, चतुरिन्द्रिय भ्रमर एक योजनका और पंचेन्द्रिय मच्छ एक हजार योजनका होता है। अतएव ऐसे प्रत्येक जीवका उन्होंने क्षेत्रमितिके सूत्र व विधान देकर प्रमाणांगुलोंमें घनफल निकाला, और फिर इस उत्कृष्ट अवगाहनामें जघन्य अवगाहनाका अंगुलका असंख्यातवां भाग जोड़कर उसका आधा किया जिससे उस राशिके एक जीवकी मध्यम अर्थात् औसत अवगाहना संख्यात घनांगुल आगई। समस्त त्रस पर्याप्तराशि प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे भाजित जगप्रतरप्रमाण है और इसका केवल संख्यातवां भाग विहार करता है। अतः इस संख्यातवें भागको पूर्वोक्त घनफलसे गुणा करने पर विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टिराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलगुणित जगप्रतरप्रमाण होता है, जो लोकका असंख्यातवां भाग, और उसी प्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकका भी असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक या अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात गुणा होगा।

२ स्पर्शनानुगम

स्पर्शनप्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि भिन्न भिन्न गुणस्थानवाले जीव, तथा गति आदि भिन्न भिन्न मार्गणास्थानवाले जीव तीनों कालोंमें पूर्वोक्त दश अवस्थाओंद्वारा कितना क्षेत्र स्पर्श कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र और स्पर्शन प्ररूपणाओंमें विशेषता इतनी ही है कि क्षेत्रप्ररूपणा तो केवल वर्तमानकालकी ही अपेक्षा रखती है, किन्तु स्पर्शनप्ररूपणामें अतीत और अनागतकालका भी, अर्थात् तीनों कालोंका क्षेत्रमान ग्रहण किया जाता है।

उदाहरणार्थ—क्षेत्रप्ररूपणामें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग बताया गया है। यह क्षेत्र वर्तमानकालसे ही सम्बन्ध रखता है, अर्थात् वर्तमानमें इस समय स्वस्थानादि यथासंभव पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके विद्यमान हैं। यही बात स्पर्शनप्ररूपणामें वर्तमानकालिक स्पर्शनको बताते समय कही है। उसके पश्चात् दूसरे सूत्रमें अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र बतलाया गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) और बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किए हैं। इसका अभिप्राय जान लेना आवश्यक है। तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमित इस लोकाकाशके ठीक मध्य भागमें वृक्षमें सारके समान एक राजु लम्बी चौड़ी और

चौदह राजु ऊंची लोकनाली अवस्थित है। इसे त्रसनाली भी कहते हैं, क्योंकि, त्रसजीवोंका संचार इसके ही भीतर होता है। केवल कुछ अपवाद हैं, जिनमें कि इसके भी बाहर त्रस-जीवोंका पाया जाना संभव है। इस त्रसनालीके एक एक राजु लम्बे, चौड़े और मोटे भाग बनाए जावें तो चौदह भाग होते हैं। उनमेंसे जो जीव जितने घनराजुप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करता है, उसका उतना ही स्पर्शनक्षेत्र माना जाता है। जैसे प्रकृतमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र आठ बटे (८/१४) या बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग बताया गया है। इनमेंसे विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने उक्त त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागोंको स्पर्श किया है, अर्थात् आठ घनराजुप्रमाण त्रसनालीके भीतर ऐसा एक भी प्रदेश नहीं है कि जिसे अतीतकालमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी, इन सभीने मिलकर) स्पर्श न किया हो। यह आठ घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके भीतर जहां कहीं नहीं लेना चाहिए, किन्तु नीचे तीसरी वालुका पृथिवीसे लेकर ऊपर सोलहवें अच्युतकल्प तक लेना चाहिये। इसका कारण यह है कि भवनवासी देव स्वतः नीचे तीसरी पृथिवी तक विहार करते हैं, और ऊपर सौधर्मविमानके शिखरध्वजदंड तक। किन्तु उपरिम देवोंके प्रयोगसे ऊपर अच्युतकल्प तक भी विहार कर सकते हैं [देखो. पृ. २२९]। उनके इतने क्षेत्रमें विहार करनेके कारण उक्त क्षेत्रका मध्यवर्ती एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं बचा है कि जिसे अतीत कालमें उक्त गुणस्थानवर्ती देवोंने स्पर्श न किया हो। इस प्रकार इस स्पर्श किये गये क्षेत्रको लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहते है। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भाग स्पर्श किये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि छठी पृथिवीके सासादनगुणस्थानवर्ती नारकी मध्यलोक तक मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनवासी आदि देव आठवीं पृथिवीके ऊपर विद्यमान पृथिवीकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात कर सकते हैं, या करते हैं। इस प्रकार मेरुतलसे छठी पृथिवी तकके ५ राजु, और ऊपर लोकान्त तकके ७ राजु, दोनों मिलाकर १२ राजु हो जाते हैं। यही बारह घनराजुप्रमाण क्षेत्र त्रसनालीके बारह बटे चौदह (१२/१४) भाग, अथवा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे बारह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा जाता है।

इस उक्त प्रकारसे बतलाए गए स्पर्शनक्षेत्रको यथासंभव जान लेना चाहिए। ध्यान रखनेकी बात केवल इतनी ही है कि वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, किन्तु अतीतकालिक स्पर्शनक्षेत्र त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे यथासंभव १/१४, २/१४, को आदि लेकर १२/१४ तक होता है। तथा मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक, वेदना, कषायसमुद्घात आदिकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्शनक्षेत्र होता है, क्योंकि, सारे लोकमें सर्वत्र ही एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं और गमनागमन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा समस्त लोकाकाश वर्तमानमें भी स्पर्श हो रहा है और अतीतकालमें भी स्पर्श किया जा चुका है।

इन एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंके अतिरिक्त सयोगिकेवली भगवान् भी प्रतरसमुद्घातके समय लोकके असंख्यात बहु भागोंको और लोकपूरणसमुद्घातके समय सर्व लोकाकाशको स्पर्श करते हैं। तथा उपपाद और मारणान्तिकसमुद्घातवाले त्रसजीवोंका भी त्रसनालीके बाहर अस्तित्व पाया जाता है। वह इस प्रकारसे कि लोकके अन्तिम वातवलयमें स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगतिद्वारा त्रसनालीके अन्तःस्थित त्रसपर्यायमें उत्पन्न होनेवाला है वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रसपर्यायको धारण करने पर भी वह त्रसनालीके बाहर है, अतएव उपपादकी अपेक्षा त्रसजीव त्रसनालीके बाहर रहता है। इसी प्रकार त्रसनालीमें स्थित किसी ऐसे त्रसजीवने जिसे कि त्रसनालीके बाहर मरकर उत्पन्न होना है, मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा त्रसनालीके बाहरके आकाश-प्रदेशोंका स्पर्श किया, तो उस समय भी त्रसजीवका अस्तित्व त्रसनालीके बाहर पाया जाता है, (देखो. पृ. २१२)। उक्त तीन अवस्थाओंको छोड़कर शेष त्रसजीव त्रसनालीके बाहर कभी नहीं रहते हैं।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणास्थानोंमें उक्त स्वस्थानादि दश पदोंको प्राप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र इस स्पर्शनप्ररूपणामें बतलाया गया है।

स्पर्शनप्ररूपणाकी कुछ विशेष बातें

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र निकालते हुए प्रसंगवश असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके ऊपर आकाशमें स्थित समस्त चंद्रोंके प्रमाणको भी गणितशास्त्रके अनेक अदृष्टपूर्व करणसूत्रोंके द्वारा निकाला गया है और साथ ही यह बतलाया गया है कि एक चंद्रके परिवारमें एक सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छ्यासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोड़ाकोडी (६६९७५००००००००००००००) तारे होते हैं। इस चारों प्रकारके परिवारके प्रमाणसे चन्द्रबिम्बोंकी संख्याको गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिष्क देवोंका प्रमाण निकल आता है।

इसी बीचमें धवलाकारने ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे यह सिद्ध किया है कि चूंकि–स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद पाये जाते हैं, इसलिए स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-रुद्ध योजनोंसे संख्यात हजार गुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयंभू-रमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहां भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं; किन्तु वहांपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं। (देखो पृ. १५०–१६०)

इसी प्रकरणमें उन्होंने अपनी उक्त बातकी पुष्टि करते हुए जो उदाहरण दिए हैं, उनसे एकदम तीन ऐसी बातोंपर प्रकाश पड़ता है, जिनसे पता चलता है कि वे बातें वीरसेनाचार्यके पूर्ववर्ती दिगम्बर साहित्यमें प्रतिष्ठित नहीं थीं और सर्व प्रथम इन्होंने उनकी प्रतिष्ठा की है।

वे नवीन प्रतिष्ठित तीनों बातें इस प्रकार हैं—

(१) 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित और सर्वमान्य

मान्यता को भी 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए अन्तर् शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है।

(२) दूसरी बात आयतचतुरस्र लोक-संस्थानके उपदेशकी है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिये इसी भागके पृ. ११ से २२ तकका अंश देखिए। उससे ज्ञात होता है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणानुयोगसम्बन्धी साहित्यमें लोकके आयतचतुरस्राकार होनेका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाओंके (देखो इसी भागके पृ. २०–२१) आधारपर यही सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयतचतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित $१६४\frac{३२८}{३६६}$ घनराजु प्रमाण मृदंगके आकार। साथ ही उनका दावा है कि यदि ऐसा न माना जायगा तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयतचतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) तीसरी बात स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें पृथिवीके अस्तित्व सिद्ध करनेकी है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। (देखो पृ. १५५-१५८ तक)

इस प्रकार बड़े जोरदार शब्दोंमें उक्त तीनों बातोंका समर्थन करनेके पश्चात् भी उनकी निष्पक्षता दर्शनीय है। वे लिखते हैं– 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परमगुरुओंकी परम्परासे आए हुए उपदेशको युक्तिके, बलसे अयथार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाए गए विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम नहीं है। अत एव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न करके हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्यजनोंके व्युत्पादनके लिये यह दिशा भी दिखाना चाहिए। (देखो. पृ. १५७-१५८)

तिर्यंचोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रका निकालते हुए द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल अनेक करण-सूत्रोंद्वारा पृथक् पृथक् और सम्मिलित निकालनेकी प्रक्रियाएं दी गई हैं, और साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि इस मध्यलोकमें कितना भाग समुद्रसे रुका हुआ है। (देखो. पृ. १९४-२०३)

कायमार्गणामें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शन-क्षेत्रको बतलाते हुए रत्नप्रभादि सातों पृथिवियोंकी लम्बाई चौड़ाईका भी प्रमाण बतलाया गया है।

३. कालानुगम

उक्त प्ररूपणाओंके समान कालप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा कालका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानमें कमसे कम कितने काल तक रहता है, और अधिकसे अधिक कितने काल रहता है।

उदाहरणार्थ—मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानमें कितने काल तक रहते हैं? इस प्रश्नके

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	क्षेत्र	स्पर्शन	
			वर्तमानकालिक	अतीत
१० लेश्यामार्गणा	कृष्ण	सर्वलोक लोकका असंख्यातवां भाग	सर्वलोक लोकका असंख्यातवां भाग	सर्वलोक देशोन ५/१[illegible]
	नील	,, ,, ,,	,, ,, ,,	सर्वलोक देशोन [illegible]/१
	कापोत	,, ,, ,,	,, ,, ,,	सर्वलोक देशोन २/१[illegible]
	तेज	लोकका असंख्यातवां भाग	लोकका असंख्यातवां भाग	,, ८/१[illegible]
	पद्म	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, ८/१[illegible]
	शुक्ल	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	,, [illegible]/१ लोकका [illegible] ,, अ[illegible] सर्वलोक
	अलेश्य	लोकका असंख्यातवां ,,	लोकका असंख्यातवां ,,	लोकका [illegible]
११ भव्यमार्गणा	भव्य	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	,, ,, अ[illegible] सर्वलोक
	अभव्य	,,	,,	,,
१२ सम्यक्त्वमार्ग०	औपशमिकसम्यक्त्व	लोकका असंख्यातवां भाग	लोकका असंख्यातवां भाग	देशोन [illegible]
	क्षायोपशमिक ,,	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, [illegible]
	क्षायिक ,,	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	,, ,, ,, ,, असंख्यात बहु ,, सर्वलोक	लोकका [illegible] ,, अ[illegible] सर्वलोक
	सम्यग्मिथ्यादृष्टि	लोकका असंख्यातवां भाग	लोकका असंख्यातवां भाग	देशोन [illegible]/१
	सासादनसम्यग्दृष्टि	,, ,, ,,	,, ,, ,,	,, [illegible]
	मिथ्यादृष्टि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक
१३ संज्ञिमार्गणा	संज्ञी	लोकका असंख्यातवां भाग	लोकका असंख्यातवां भाग	देशोन [illegible]/१ सर्वलोक
	असंज्ञी	सर्वलोक	सर्वलोक	,,
१४ आहारमार्गणा	आहारक	,,	,,	,,
	अनाहारक	,,	,,	,,

	काल		
	नानाजीवोंकी अपेक्षा	एकजीवकी अपेक्षा	
अनागतकालिक		जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
/४ राजु	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	साधिक तेतीस सागरोपम
/४ राजु	,,	,,	,, सत्तरह ,,
/४ राजु	,,	,,	,, सात ,,
/४ और ९/१४ राजु	,,	,, एकसमय	,, दो ,,
/४ राजु	,,	,, ,,	,, अठारह ,,
/४ ,,			
असंख्यातवां भाग संख्यात बहु ,,	,,	,, ,,	,, तेतीस ,,
असंख्यातवां भाग	अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
,, ,, संख्यात बहु ,,	सर्वकाल	,,	देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन
	,,	×	अनादि अनन्त
८/४ राजु	{ अन्तर्मुहूर्त पल्यो. असं. भाग { एकसमय अन्तर्मुहूर्त	{ अन्तर्मुहूर्त { एकसमय	अन्तर्मुहूर्त
, ,,	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	साधिक छ्यासठ सागरोपम
असंख्यातवां भाग संख्यात बहु ,,	,,	,,	,, तेतीस ,,
८/४ राजु	अन्तर्मुहूर्त पल्यो. असं. भाग	,,	अन्तर्मुहूर्त
९/४ और १३/१४ राजु	एकसमय ,, ,, ,,	एकसमय	,,
	सर्वकाल	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन
८/४ राजु	,,	,,	सागरोपमशतपृथक्त्व
	,,	क्षुद्रभवग्रहण	अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन
	,, ,,	अन्तर्मुहूर्त एकसमय	{ अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण { असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तीन समय, अन्तर्मुहूर्त

उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल ही मिथ्यात्व गुणस्थानमें रहते हैं, अर्थात् तीनों कालोंमें ऐसा एक भी समय नहीं है, जब कि मिथ्यादृष्टि जीव न पाये जाते हों। किन्तु, एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका काल तीन प्रकारका होता है–अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। जो अभव्य जीव हैं, अर्थात् त्रिकालमें भी जिनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होना है, ऐसे जीवोंके मिथ्यात्वका काल अनादि-अनन्त होता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका न कभी आदि है, न अन्त। जो अनादिमिथ्यादृष्टि भव्य जीव हैं, उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त है, अर्थात् अनादि कालसे आज तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति न होनेसे तो उनका मिथ्यात्व अनादि है, किन्तु आगे जाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति और मिथ्यात्वका अन्त हो जानेसे वह मिथ्यात्व सान्त है। धवलाकारने इस प्रकारके जीवोंमेंसे वर्द्धनकुमारका दृष्टान्त दिया है, जो कि उस पर्यायमें सर्व प्रथम सम्यक्त्वी हुए थे। इस प्रकार सर्व प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवोंके सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व समय तक उनके मिथ्यात्वका काल अनादि-सान्त समझना चाहिए। जिन जीवोंने एक वार सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया, तथापि परिणामोंके संक्लेशादि निमित्तसे जो फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाते हैं, उनके मिथ्यात्वका काल सादि-सान्त माना जाता है, क्योंकि, उनके मिथ्यात्वका आदि और अन्त, ये दोनों पाये जाते हैं। इस प्रकारके जीवोंमें भी श्रीकृष्णका दृष्टान्त धवलाकारने दिया है।

प्रकृतमें अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त मिथ्यात्वके कालको छोड़कर सादि-सान्त मिथ्यात्व-कालकी ही विवक्षा की गई है, और उसीकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत या प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मिथ्यात्वदशामें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको, या असंयतसम्यक्त्वको, या संयमासंयम अथवा अप्रमत्तसंयमको प्राप्त हो गया, तो ऐसे जीवके मिथ्यात्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। ऐसे मिथ्यात्वको सादि–सान्त कहते हैं, क्योंकि, उसका आदि और अन्त, दोनों पाये जाते हैं। इसी सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव प्रथम वार सम्यक्त्वी होकर पुनः मिथ्यात्वी हो जाता है तो वह अधिकसे अधिक अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके भीतर अवश्य ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्तकर मोक्ष चला जाता है। (अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके लिये देखिये पृ. ३२५–३३२)

इसी प्रकार शेष गुणस्थानोंके भी जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाये गये हैं।

४ क्षेत्रानुगम-विषय-सूची

शुद्धिपत्र

(पुस्तक १)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		(हिंदी)	
६३	७	ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके	ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंके
२६४	१६	कार्यमार्गणा	कायमार्गणा
३७६	१४	छेदोपस्थापना	सूक्ष्मसाम्पराय
,,	१८	,,	,,
३८४	,,	अवधिज्ञान	अवधिदर्शन

(पुस्तक २)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४७	१२	क्षीण, संज्ञा	क्षीणसंज्ञा,
४५१	२०	और कार्मणकाययोग	और वैक्रियिककाययोग
४७३	१	सम्यक्त्व,	छह सम्यक्त्व,
४८१	८	आहारक, अनाहारक,	आहारक,
४८८	१४	द्रव्यसे कापोत–	आदिके दो दर्शन, द्रव्यसे कापोत–
५४०	१०	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप	सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके आलाप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७७	६	संज्ञिक,	असंज्ञिक,
६३०	८	एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,	एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान,
६४८	६	संज्ञिक,	औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक,
७१५	३	आदिके तीन दर्शन	आदिके दो दर्शन,
७२९	१३	तथा अकषायस्थान भी है,	तथा अकायस्थान भी है,
७३५	४	एगारह जोग,	एगारह जोग, अजोगो वि अत्थि;
"	१५	ग्यारह;	ग्यारह योग और अयोगरूप भी स्थान है;

(आलापोंका)

पृष्ठ	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध, या जो होना चाहिए
४२१	१	संज्ञा	×	क्षीणसंज्ञा
		योग	×	अयोगी,
		लेश्या	×	अलेश्य
		संज्ञि०	×	अनुभय
४२९	१०	आहा०	१	२
"	११	"	२	१
४३१	१२	"	१	२
४३८	२१	गति	१	१ मनुष्यगति
"	"	कषाय	१	१ लोभ
४४७	२६	संज्ञा	१	० क्षीणसंज्ञा
४५२	३२	जीव०	१ स. अ.	१ स. प.
४५६	३८	लेश्या	भा. ३ अशु.	भा० १ कापोत
४५८	४०	ज्ञान	९	६
४६०	४४	पर्याप्ति	६	६ अप०
५०३	१०१	योग	×	अयोग
५१४	११४	"	×	"
५६९	१८३	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५७२	१८७	काय	१ त्रस विना.	५ त्रस विना.
"	"	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
५८४	२०३	प्राण	७, ७,	७, ७, २.
६१२	२१४	योग	×	अयोग

पंक्ति	यंत्र नं.	खाना नाम	अशुद्ध	शुद्ध
६१७	२२८	दर्शन	१ चक्षु०	अचक्षु०
६२२	२३५	आहा०	१ आहा०	२ आहा० अना०
६२३	२३६	"	२ आहा० अना० अनु०	२ आहा० अना०
६३१	२४५	दर्शन	२ चक्षु०	२ चक्षु० अचक्षु०
६३४	२४९	संज्ञा	×	क्षीणसंज्ञा
६४०	२५५	उपयो०	२ साका० अना० यु० उ०	२ साका० अना०
६५५	२७४	"	२ साका० अना०	२ साका० अना० यु० उ०
७१९	३५८	जीव.	५ अ०	६ अ०
७३५	३७७	योग	×	अयोग
७४३	३८७	गुण०	९	१२
७५४	४००	गति	१	३
८०८	४७७	प्राण	१०	१०, ४, १
८०९	४७८	संयम०	४ असं० सामा० छेदो० परि०	४ असं० सामा० छेदो० यथा०
८३४	५१४	भव्य०	१ भ०	२ भ० अ०
"	"	संज्ञि०	१ सं०	१ असं०
८३५	५१६	"	"	"
८५१	५३९	प्राण	×	अतीतप्राण

(पुस्तक ३)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९	३	(ख-क)	(क-ख)
१०९	अन्तिम	$\frac{३२७६७}{१३२९}$	$\frac{२०४९६}{१३२९}$
१५३	१२	१२८	$\frac{१}{१२८}$
"	"	"	"
२७७	२	-णुग्गहट्ठुदा पदस्स	-णुग्गहट्ठदाए तस्स
२७८	८	सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको द्वितीय वर्गमूलसे	सूच्यंगुलको उसके प्रथम वर्गमूलसे
२९८	४	अप्रत्त	अप्रमत्त

(पुस्तक ४)

पंक्ति	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
४	३	विषय है।	विषय है। (२)
२९	४	वेउव्वियओ	वेउव्विओ
३४	८	तीन भागोंमेंसे आठ भाग	आठ भागोंमेंसे तीन भाग
४२	७	व्यासं त्रिगुणितसहितं	व्यासत्रिगुणितसहितं
५५	२१	३४४ + ३४४ +	३५३ + ३५३ +
६३	५	विहारदि-	विहारवदि-
७८	६	तदवासा	तदावासा
८८	५	लोगाणा-	लोगाण-
१०६	८	अजोगिकेवली	सजोगिकेवली
१३७	१६	संज्ञी जीव	आहारक जीव
१५७	३	-सुत्ताणुसारी जोदिसिय-	-सुत्ताणुसारिजोदिसिय-
१५९	३	सकलणाणं	संकलणाणं
१७६	१७	आकाशके प्रदेशके	आकाशके प्रदेश
१९१	४	-पवेसादो	पवेहदो
,,	१८	योजन उस	योजन प्रवेध उस
३०२	२	सजोगिकेवलि	अयोगिकेवलि
३०३	२०	वन जाना	वन जाता
३०९	३	आहारएसु	अणाहारएसु
३२०	१-२	वर्षैर्युगः	त्र्यैर्युगः
३२१	७	ण, एस दोसो,	ण एस दोसो,
३२८	२	अगहिदग्गहणद्धा	(तं) अगहिदग्गहणद्धा
३६०	२	णाणजीवं	णाणाजीवं
३६४	१७	इस प्रकारसे	इस प्रकारके
३९१	२	जिह्वाए	जिब्भाए
३९२	९	सुप्पसिद्ध-	सुत्तसिद्ध-
,,	२६	सुप्रसिद्ध	सूत्रसिद्ध
४१४	२१	और क्षपक	और चारों क्षपक
४५६	६	-मंतोमच्छिय	मंतोमुहुत्तमच्छिय
४६१	१२	प्रस्तारके	प्रस्तारमें
४६३	२१	उद्वर्तनाघात	अपवर्तनाघात

(प्रस्तावना)

पंक्ति	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
१६	११	या मुनिजनोंको	था यह कार्य मुनिजनोंको
२२	१	१६ × १२ =	१६ × १६ =

खेत्ताणुगमो



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

खेत्ताणुगमो

लोयालोयपयासं गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।
णमिऊण[1] खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो ॥

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सर्वज्ञ, गोतम अर्थात् उत्तमवाणीके स्थविर[2] अर्थात् विधाता (दिव्यध्वनिके प्रणेता), और जिन अर्थात् वीतराग, ऐसे त्रिविध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवान्‌को; अथवा, द्वादशांग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और वीर[3] अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गकी ओर चलाते हैं, ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेत्रानुयोगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवान्‌ने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रकाशित करते हैं ।

---

१ म १ प्रतौ ' णमियूण ' इति पाठः ।

२ ' थेरो विही विरिंचो ' पा. ल. ना. २. थेरो के, थेरो ब्रह्मा. दे. ना. मा. ५, २९. स्थविरः...... धाता विधाता. है. को. २, १२५-१२६.

३ विशेषेण ईरयति मोक्षं प्रति प्रेरयति गमयति वा प्राणिन इति वीरः । (अभि. रा. वीर.)

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

किंफलो खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो ? उच्चदे। तं जहा[2]- संताणिओगद्दारादो अत्थित्तेणावगयाणं दव्वाणिओगद्दारे अवगयपमाणाणं चोद्दसजीवसमासाणं खेत्तपमाणावगमफलो। अधवा अणंतो जीवरासी असंखेज्जपएसिए लोगागासे किं सम्मादि, ण सम्मादि त्ति संदेहेण घुलंतस्स सिस्सस्स संदेहविणासणट्ठो वा खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो। एत्थ खेत्तं णिक्खिविदव्वं। णिक्खेवो त्ति किं ? संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितं तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः[3]। अथवा बाह्यार्थविकल्पो निक्षेपः। अप्रकृतनिराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको[4] वा। उक्तं च—

अपगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥१॥

शंका—यहां क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका क्या फल है ?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर देते हैं। वह इस प्रकार है—सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका संख्यारूप प्रमाण जाना है, ऐसे चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबंधी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका फल है। अथवा, असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके संदेहसे घुलनेवाले शिष्यके संदेहके विनाश करनेके लिए इस क्षेत्रानुयोगद्वारका अवतार हुआ है।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप करना चाहिये।

शंका—निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान—संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें अवस्थित वस्तुको उनसे निकालकर जो निश्चयमें क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं। अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते हैं, अथवा, अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है। कहा भी है—

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये, और तत्त्वार्थके अवधारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है ॥ १ ॥

१ क्षेत्रमुच्यते, तत् द्विविधम्। सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

२ म २ प्रतौ 'जथा' इति पाठः।

३ उपायो न्यास इष्यते। लघीय. ३, ५२. तदधिगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोपन्यासो न्यासः। लघीय. ३, ७४. विवृतिः।

४ स किमर्थः ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च। स. सि. १, ५. अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च निक्षेपः फलवान्। लघीय. स्वो. वि. पृ. २६.

सो च एत्थ चउव्विहो णिक्खेवो[1] णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावखेत्तभेएण। कधं णिक्खेवस्स चउव्विहत्तं? दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबिवयणवावारादो। उत्तं च—

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमत्थो[2] ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणम्हि पयट्टो[3] खेत्तसद्दो णामखेत्तं। सो च णामणिक्खेवो वयण-वत्तव्वणिच्चज्झवसायमंतरेण ण होदि त्ति, तब्भव-सरिससामण्णणिबंधणो त्ति वा, वाच्य-वाचकशक्तिद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये असंभवाद्वा दव्वट्ठिय-

---

यह निक्षेप यहां पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है।

शंका—निक्षेप चार प्रकारका कैसे है?

समाधान—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले वचनोंके व्यापारकी अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है। कहा भी है—

नाम, स्थापना और द्रव्य, ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणाके विषय हैं और भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाका विषय है। यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त हुआ 'क्षेत्र' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है। वह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसाय अर्थात् वाच्य-वाचक-सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके विना नहीं होता है इसलिये, अथवा तद्भव-सामान्य-निबन्धनक और सादृश्य-सामान्य-निमित्तक होता है इसलिये, अथवा, वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असंभव है इसलिये, द्रव्यार्थिकनयका विषय है, ऐसा कहा जाता है।

विशेषार्थ—यहां पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतलानेके लिए तीन हेतु दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है। (१) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसायके विना नहीं होता है, इसलिए यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, 'इस शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए' इस प्रकारका संकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका वाचक होता है। यदि यह संकेत या वाच्य-वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय, तो भिन्न देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। किन्तु 'देवदत्त' आदि जो नाम किसी व्यक्तिके बाल्यावस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें भी समानरूपसे उस व्यक्तिके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है। और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया

---

१ म १ प्रतौ 'सो च' इत्यधिकः पाठः।

२ स. त. १, ६.

३ प्रतिषु 'पयट्ठो' इति पाठः।

णयस्सेत्ति वुच्चदे । कट्ठ-दंत-सिलादीणि सब्भावासब्भावसरूवाणि बुद्धीए इच्छिदखेत्तेण-यत्तमुवगयाणि ट्ठवणा णाम । सब्भावासब्भावसरूवेण सव्वदव्ववावि त्ति वा, पधाणापधाण-

....

जाना असंभव है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है। नाम-निक्षेपको तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्य-निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि, विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वापर-कालभावी कटक, केयूरादि पर्यायोंमें विभिन्नता रहते हुए भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिए इस प्रकारकी समानताको तद्भवसामान्य कहते हैं। तथा, किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न प्रकारके सुवर्णोंसे निर्मित कटक, कुण्डल, केयूरादि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता-बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य-सामान्य कहते हैं। इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वापर-कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्भवसामान्यका निमित्त है। तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें विभिन्न देशवर्ती मथुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश-प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्यसामान्यका भी निमित्त होता है। और सामान्यको विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका विषय है; इसलिए नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना युक्ति-संगत ही है। (३) नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतानेके लिए तीसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियों-वाला एक शब्द पर्यायार्थिकनयमें असंभव है, अर्थात् पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि शब्दमें वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियां एक साथ ही पाई जातीं हैं; अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें सदा वाचकशक्ति विद्यमान है। और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिए वाच्यशक्ति भी उसमें सर्वदा पाई जाती है। इस प्रकार किसी भी विवक्षित समयमें वह उक्त दोनों अर्थात् वाच्य-वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा। और इसी कारणसे वह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह द्रव्य कहलाने लगता है। चूंकि शक्ति, गुण या धर्मको कहते हैं, इसलिए 'गुणसमुदायो दव्वं' के नियमानुसार शक्तियोंवालेको द्रव्य ही कहा जायगा, पर्याय नहीं। इस प्रकार जब शब्द पुद्गलद्रव्य सिद्ध हो जाता है, तब वह द्रव्यार्थिकनयका ही विषय हो सकता है, पर्यायार्थिकनयका नहीं। इसलिए भी नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना सर्वथा युक्ति-युक्त ही है।

बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सद्भाव और असद्भाव स्वरूप काष्ठ, दन्त और शिला आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप है। यह स्थापनानिक्षेप, तदाकार और अतदाकार स्वरूपसे सर्व

दव्वाणमेगत्तणिबंधणेत्ति वा दव्वणाणिक्खेवो दव्वट्ठियणयवुल्लीणो[1]। दव्वखेत्तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य। तत्थ आगमदो खेत्तपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो। कधमेदस्स जीवदव्वियस्स सुदणाणावरणीयक्खओवसमविसिट्ठस्स दव्व-भावखेत्तागमवदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तववएसो ? ण एस दोसो, आधारे आधेयोवयारेण कारणे कज्जुवयारेण

द्रव्योंमें व्याप्त होनेके कारण, अथवा, प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिए।

विशेषार्थ— स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इसप्रकार है। (१) स्थापनानिक्षेप सद्भाव और असद्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोकवर्ती सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं; तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सद्भावरूप या तदाकार कहा जाता है, और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुको अनाकार, असद्भाव या अतदाकार कहा जाता है। काष्ठ या दांत वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हींको हाथी, घोड़ा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है, और निश्चित आकारसे घटित नहीं होने पर भी जो संकेतद्वारा किसी वस्तुस्वरूपकी परिकल्पनाकी जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं। इसप्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता है, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होने पर भी तदवस्थ रहता है। इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है। (२) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है। 'यह सिंह है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिंहरूप प्रधानद्रव्य और मट्टी आदिके खिलौनेमें स्थापित सिंहरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्यमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिए भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है। उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका ज्ञाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है।

शंका— श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भावरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशमस्वरूप आगमके उपचारसे; अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

१ म २ प्रतौ 'णवमल्लीणो' इति पाठः।

लद्धागमववएसखओवसमविसिट्ठजीवदव्वावलंबणेण वा तस्स तदविरोहा । णोआगमदो दव्वक्खेत्तं तिविहं, जाणुगसरीरं भवियं तव्वदिरित्तं चेदि । तत्थ जाणुगसरीरं तिविहं, भवियं वट्टमाणं समुज्झादमिदि । समुज्झादं पि तिविहं चुदं चइदं चत्तदेहमिदि । भवदु पुव्विल्लस्स दव्वखेत्तागमत्तादो खेत्तववएसो, एदस्स पुण सरीरस्स अणागमस्स खेत्तववएसो ण घडदि त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं जधा- क्षियत्यक्षैषीत्क्षेप्यत्यस्मिन् द्रव्यागमो भावागमो वेति त्रिविधमपि शरीरं क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा । तत्थ भवियं खेत्तपाहुडजाणगभावी जीवो णिद्दिस्सदे । कधं जीवस्स खेत्तागमखओवसमरहिदत्तादो अणागमस्स खेत्तववएसो ? न, क्षेप्यत्यस्मिन् भावक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य प्रागेव क्षेत्रत्व-सिद्धेः । जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वखेत्तं दुविहं, कम्मदव्वखेत्तं णोकम्मदव्वखेत्तं चेदि । तत्थ कम्मदव्वक्खेत्तं णाणावरणादिअट्ठविहकम्मदव्वं । कधं कम्मस्स खेत्तववएसो ?

....

अथवा, प्राप्त हुई है आगमसंज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञाके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है । उनमेंसे ज्ञायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी ज्ञायकशरीर, वर्तमान ज्ञायकशरीर और अतीत ज्ञायकशरीर । इनमेंसे अतीत ज्ञायकशरीर भी च्युत, च्यावित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका—द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसंज्ञा भले ही रही आवे, किन्तु इस अनागमशरीरके क्षेत्रसंज्ञा घटित नहीं होती है ?

समाधान—उक्त शंकाका यहां परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—जिसमें द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूपआगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास करता था, और आगामी कालमें निवास करेगा; इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र कहलाता है । अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्र-संज्ञा बन जाती है ।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा, ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका—जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस जीवके क्षेत्रसंज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं; क्योंकि, 'भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा' इस प्रकार की निरुक्तिके बलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रपना सिद्ध है ।

ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, वह कर्म-द्रव्यक्षेत्र और नोकर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं ।

शंका—कर्मद्रव्यको क्षेत्रसंज्ञा कैसे प्राप्त हुई ?

न, क्षियन्ति[1] निवसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वसिद्धेः । (जं) णोकम्मदव्वखेत्तं तं दुविहं, ओवयारियं पारमत्थियं चेदि । तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेवमादि । पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं । उत्तं च—

खेत्तं खलु आगासं तव्वदिरित्तं च होदि णोखेत्तं ।
जीवा य पोग्गला वि य धम्माधम्मत्थिया कालो ॥ ३ ॥
आगासं सपदेसं तु उड्ढाधो तिरिओ वि य ।
खेत्तलोगं वियाणाहि अणंत जिण-देसिदं[2] ॥ ४ ॥

एसो वि णिक्खेवो दव्वट्ठियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो । जं तं भावखेत्तं तं दुविहं, आगमदो णोआगमदो भावखेत्तं चेदि । आगमदो भावखेत्तं खेत्त-पाहुडजाणुगो उवजुत्तो । णोआगमदो भावखेत्तं आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो ओदइयादि-

---

समाधान—नहीं; क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है ।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि-(धान्य-) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है । आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है । कहा भी है—

आकाशद्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, और आकाशद्रव्यके अति-रिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रदेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र फैला हुआ है । उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए । उसे जिन भगवान्‌ने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगम भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके विना यह निक्षेप संभव नहीं है ।

जो भावरूप क्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । क्षेत्रविषयक प्राभृतके ज्ञाता और वर्तमानकालमें उपयुक्त जीवको आगमभाव-क्षेत्रनिक्षेप कहते हैं । जो आगमके अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके उपयोगके विना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औदयिक आदि पांच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्र-निक्षेप कहते हैं ।

---

१ क्षि निवासगत्योः ।

२ आगासस्स पएसा उड्ढं च अहे य तिरियलोए य । जाणाहि खित्तलोगं अणंत जिणदेसिअं सम्मं ॥ १९७ ॥ (अभि. रा. लोक.)

पंचविधभावो वा[1]। एदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं ? णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं। णोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? आगासं गगणं देवपथं गोज्झगाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमि त्ति एयट्ठो। कस्स खेत्तं ? सुण्णोयं भंगो। केण खेत्तं ? पारिणामिएण भावेण। कम्हि खेत्तं ? अप्पाणम्हि चेव। कधमेगत्थ आधाराधेयभावो ? ण, सारे त्थंभं[2] इदि एगत्थ वि आधाराधेयभावदंसणादो। केवचिरं खेत्तं ? अणादिय-मपज्जवसिदं। कदिविधं खेत्तं ? दव्वट्ठियणयं च पडुच्च एगविधं। अथवा पओजणमभि-

---

शंका—ऊपर बतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहां पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है ?

समाधान—यहां पर नोआगमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है।

शंका—नोआगमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान—आकाश, गगन, देवपथ, गुह्यकाचरित (यक्षोंके विचरणका स्थान) अवगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोआगमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक नाम हैं।

विशेषार्थ—अब धवलाकार क्षेत्रका विचार, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान, इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे क्रमशः करते हैं। इनमेंसे ऊपर जो निक्षेप या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशके अन्तर्गत समझना चाहिए।

शंका—क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान—यह भंग शून्य है, अर्थात् क्षेत्रका स्वामी कोई नहीं है।

शंका—किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है ?

समाधान—पारिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा निमित्त न होकर वह स्वभावसे है।

शंका—किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है।

शंका—एक ही आकाशमें आधार-आधेय भाव कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं; क्योंकि, 'सारमें स्तम्भ है' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार आधेयभाव देखा जाता है।

शंका—कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है ?

समाधान—क्षेत्र अनादि और अनन्त है।

---

१ ओदइए ओवसमिए खइए अ तहा खओवसमिए अ। परिणामि सन्निवाए अ छव्विहो भावलोगो उ॥ २०० ॥ (अभि. रा. लोक.)

२ म २ प्रतौ 'सारत्थंम' इति पाठः।

समिच्च दुविहं, लोगागासमलोगागासं चेदि। लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि-द्रव्याणि स लोकः। तद्विपरीतोऽलोकः। अथवा देसभेएण तिविहो, मंदरचूलियादो उवरिमुड्ढलोगो, मंदरमूलादो हेट्ठा अधोलोगो, मंदरपरिच्छिण्णो मज्झलोगो[1] त्ति। जधा दव्वाणि ट्ठिदाणि तधावबोधो अणुगमो। खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणु-गमेण सरीरस्सेव दुविहो णिद्देसो। णिद्देसो पदुप्पायणं कहणमिदि एयट्ठो। ओघेण द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन चेदि द्विविधो निर्देशः। किमट्ठमुभयथा णिद्देसो कीरदे? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात्। ण तइओ णिद्देसो अत्थि, णयद्दयसंट्ठियजीववदिरित्तसोदाराणं असंभवादो।

शंका— क्षेत्र कितने प्रकारका है?

समाधान— द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है। अथवा, प्रयोजनके आश्रयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश। जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते है, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। इसके विपरीत जहां जीवादि द्रव्य नहीं देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं। अथवा, देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है। मंदराचल (सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है। मंदराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है। मंदराचलसे परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है। क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं। उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है। निर्देश, प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं। ओघसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे, और आदेशसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयके अवलम्बनसे निर्देश दो प्रकारका है।

शंका— दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये ओघ-निर्देश किया गया है। तथा पर्यायार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये आदेशनिर्देश किया गया है।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश नहीं पाया जाता है, क्योंकि, दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अत-एव दोनों ही प्रकारसे निर्देश किया गया है।

१ मेरुरयं त्रयाणां लोकानां मानदंडः। अस्याधस्तलादधोलोकः। चूलिकामूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोकः। मध्यम-प्रमाणस्तिर्यग्विस्तीर्णस्तिर्यग्लोकः। त. रा. वा. ३, १०. इह च बहुसमभूमिभागे रत्नप्रभाभागे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो रुचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्टान्नव योजनशतानि यावज्जोतिश्चक्रस्योपरितलस्तावत् तिर्यग्लोकस्ततः परत ऊर्द्ध्वभागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसप्तरज्जुप्रमाणो रुचकस्याधस्तनप्रस्तरस्याधो नव योजनशतानि यावत्ताव-त्तिर्यग्लोकः, ततः परतोऽधोभागस्थितत्वादधोलोकः सातिरेकसप्तरज्जुप्रमाणः, अधोलोकोर्ध्वलोकयोर्मध्ये अष्टादश-योजनशतप्रमाणस्तिर्यग्भागस्थितत्वात् तिर्यग्लोक इति। स्थानां. ३, २. टीका.

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति कट्टु ओघणिद्देसट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते[3], सव्वलोगे[2] ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा– ओघणिद्देसो आदेसवुदासट्ठो। मिच्छाइट्ठिणिद्देसो सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो। केवडि खेत्ते इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तप्पदुप्पायणफला[4]। सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिद्देसो। एत्थ लोगे त्ति वुत्ते सत्तरज्जूणं घणो घेतव्वो[6]। कुदो? एत्थ खेत्तपमाणाधियारे—

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी[5]।
लोयपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वा[7] ॥ ५ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इसप्रकार है— सूत्रमें 'ओघ' इस पदका निर्देश, आदेश प्ररूपणाके निराकरणके लिए है। 'मिथ्यादृष्टि' इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है। 'कितने क्षेत्रमें रहते हैं' इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन करना है। 'सर्वलोकमें' इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है। यहां सूत्रमें 'लोक' ऐसा सामान्य पद कहनेपर सात राजुओंका घनात्मक लोक ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि, यहां क्षेत्रप्रमाणाधिकारमें—

पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, लोकप्रतर और लोक, ये आठ मान जानना चाहिए ॥ ५ ॥

१ विवक्षित...जीवैर्वर्तमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्रं। गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः। स. सि. १, ८. मिच्छा उ सव्वलोए ॥ पञ्चसं. २, २६.

३ प्रतिषु 'केवडिगा' इति पाठः।

४ म प्रत्योः 'सुत्तसुपमाणतं पदुप्पायण' इति पाठः; 'अ–आ–क' प्रतिषु 'सुत्तस्स पमाणत्तं पदुप्पायण' इति पाठः।

५ जगसेढीए सत्तमभागो रज्जू पभासंते। ति. प. १, १३२.

६ जगसेढिघणपमाणो लोयायासो सपंचदव्वट्ठिदो। ति. प. १, ९१. चउदस रज्जू लोओ बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो। कर्म. ५ कर्म. ९७.

७ ति. प. १, ९३. त्रि. सा. ९२. पल्योपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूपं ति. प. १, ९३–१३०; स. सि. ३, ३८; त. रा. वा. ३०, ३८. अद्धापल्यस्यार्धच्छेदेन शलाका विरलीकृत्य प्रत्येकमद्धापल्यप्रदानं कृत्वा अन्योन्यगुणिते यावंतश्छेदास्तावद्भिराकाशप्रदेशैर्मुक्तावली

इदि एत्थ वुत्तलोगग्गहणादो । जदि एसो लोगो घेप्पदि, तो पंचदव्वाहारआगासस्स गहणं ण पावदे । कुदो ? तम्हि सत्तरज्जुघणपमाणमेत्तखेत्तस्साभावा[1] । भावे वा —

हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिहो ।
मज्झिमवित्थारेण य चोद्दसगुणमायदो लोगो[2] ॥ ६ ॥
लोगो अकट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो ।
जीवाजीवेहि फुडो णिच्चो तलरुक्खसंठाणो[3] ॥ ७ ॥
लोयस्स य विक्खंभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो ।
सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू मुणेयव्वा[4] ॥ ८ ॥

....

इस गाथामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उससे जाना जाता है कि यहांपर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है ।

विशेषार्थ—एक प्रदेशवाली सात राजु लम्बी आकाश-प्रदेशपंक्तिको जगश्रेणी कहते हैं । तथा जगश्रेणीके वर्गको जगप्रतर और घनको घनलोक कहते हैं । गाथामें इसी क्रमसे जगश्रेणी, जगप्रतर और लोक पदका ग्रहण किया है । इससे यह ज्ञात होता है कि यहांपर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है ।

शंका — यदि यहांपर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है । और, यदि सद्भाव माना जावे तो—

नीचे वेत्रासन (वेंतके मूंढा) के समान, मध्यमें झल्लरीके समान, और ऊपर मृदंगके समान आकारवाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनादि-निधन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालवृक्षके आकारवाला है ॥ ७ ॥

लोकका विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकारका है, ऐसा जानना चाहिये । जिसमेंसे अधोलोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

....

कृता सूच्यंगुलमित्युच्यते । तदपरेण सूच्यंगुलेन गुणितं प्रतरांगुलं । तत्प्रतरांगुलमपरेण सूच्यंगुलेनाभ्यस्तं घनांगुलं । असंख्येयानां वर्षाणां यावंतः समयास्तावत्खंडमद्धापल्यं कृतं, ततोऽसंख्येयान् खंडानपनीयासंख्येयमेकं भागं बुद्धया विरलीकृत्य एकैकस्मिन् घनांगुलं दत्त्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी । सा अपरया जगच्छ्रेण्याभ्यस्ता प्रतरलोकः । स एवापरया जगच्छ्रेण्या संवर्गितो घनलोकः । त. रा. वा. ३, ३८.

१ प्रतिषु 'खेत्तस्समावा' इति पाठः । २ जंबू. प. ११, १०६.

३ त्रि. सा. ४ तत्र चतुर्थचरणे 'सव्वागासावयवो णिच्चो' इति पाठः । ४ जंबू. प. ११, १०७.

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पावेंति त्ति ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे । एत्थ लोगे त्ति वुत्ते पंचदव्वाहारआगासस्सेव गहणं, ण अण्णस्स । 'लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे' इदि वयणादो । जदि लोगो सत्तरज्जुघणपमाणो ण[1] होदि तो 'लोगपूरणगदो केवली लोगस्स संखेज्जदि भागे' इदि भणेज्ज । ण च अण्णाइरियपरूविदमुदिंगायारलोगस्स पमाणगं पेक्खिऊण संखेज्जदिभागत्तमसिद्धं, गणिज्जमाणे तहोवलंभादो । तं जहा– मुदिंगायारलोयस्स सूइं चोद्दसरज्जुआयदं एगरज्जुविक्खंभं वट्टं लोगादो अवणिय पुध ट्ठवेदव्वं[2] । एवं ठविय तस्स फलाणयणविहाणं भणिस्सामो । तं जहा—एदस्स मुहतिरियवट्टस्स एगागासपदेसबाहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि ३५५/११३ । इममद्धेऊण विक्खंभद्धेण गुणिदे एत्तियं होदि ३५५/४५२ । अधोलोगभागमिच्छामो त्ति सत्तहि रज्जूहि गुणिदे खायफलमेत्तियं होदि ५ २२५/४५२ । पुणो णिस्सूईखेत्तं चोद्दसरज्जुआयदं दो खंडाणि करिय तत्थ हेट्ठिमखंडं घेत्तूण उड्ढं पाटिय पसारिदे

ये ऊपर कही गईं सूत्रगाथाएं अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान—अब यहां ऊपरकी शंकाका परिहार कहते हैं । इस प्रकृत सूत्रमें 'लोक' ऐसा पद कहनेपर पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, 'लोकपूरणसमुद्धातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं' इसप्रकारका सूत्रवचन है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो 'लोकपूरणसमुद्धातगत केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इसप्रकार कहना चाहिये । और अन्य आचार्योंके द्वारा प्ररूपित मृदंगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुद्धातगत केवलीका घनलोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करनेपर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग पाया जाता है । वह इसप्रकार है— चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी मृदंगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापन करना चाहिये । इसप्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है— मुखमें तिर्यक्रूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण बाहल्यवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि ३५५/११३ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा नं. १४) इस परिधिके प्रमाणको आधा करके, पुनः उसे एक राजुविष्कम्भके आधेसे गुणा करनेपर, उसके क्षेत्रफल का प्रमाण ३५५/४५२ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल लाना इष्ट है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौड़ी उक्त गोलसूचीका घनफल ५ २२५/४५२ इतना होता है । फिर सूचीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खंड करके उनमेंसे नीचेके अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी

१ प्रतिषु 'पमाणेण' इति पाठः ।　　२ म प्रत्योः 'ट्ठवयव्वं' इति पाठः ।

सुप्पखेत्तं होऊण चेट्ठदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि[1] $\frac{३७१}{११३}$ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि २२$\frac{१५}{११३}$ । एत्थ मुहवित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिंदिदे दो तिकोणखेत्ताणि एयमायदचउरस्सखेत्तं च होइ । तत्थ ताव मज्झिमखेत्तफलमाणिज्जदे । एदस्स उस्सेहो सत्त रज्जूओ । विक्खंभो पुण एत्तिओ होदि $\frac{३७१}{११३}$ । मुहम्मि एगागासपदेसबाहल्लं, तलम्मि तिण्णि रज्जुबाहल्लो त्ति सत्तहि रज्जूहि मुहवित्थारं गुणिय तलबाहल्लद्धेण गुणिदे मज्झिम-खेत्तफलमेत्तियं होइ ३४$\frac{१०७}{२२६}$ । संपहि सेसदोखेत्ताणि सत्तरज्जुअवलंबयाणि तेरसुत्तरसदेण

....

खंडको ग्रहण कर उसे (एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्प (सूपा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है ।

विशेषार्थ—यहांपर शंकाकार, अन्य आचार्योंसे प्ररूपित जिस, मृदंगाकार लोकको दृष्टिमें रखकर यह कथन कर रहा है, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोकका आकार चारों ओरसे गोल ऐसे वेत्रासनके समान मानते हैं । जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौड़ा है, और ऊपर क्रमशः घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौड़ा है । इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौड़ी गोल आकारवाली त्रसनाली है । उसको यदि वेत्रासनाकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर बचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूपाके समान हो जाता है ।

इस सूर्पाकार क्षेत्रके मुखका विस्तार $\frac{३७१}{११३}$ इतना है, और तलका विस्तार २२$\frac{१५}{११३}$ राजुप्रमाण है । इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर छेदनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इसप्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

उक्त प्रकारसे बने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है । और विष्कम्भ $\frac{३७१}{११३}$ इतने राजु है । मुखमें एक प्रदेश-प्रमाण बाहल्य (मोटाई) है और तल-भागमें तीन राजुप्रमाण बाहल्य है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका बाहल्य जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ़ राजुसे गुणा करने पर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल $\frac{३७१}{११३} \times \frac{७}{१} \times \frac{३}{२} = ३४\frac{१०७}{२२६}$ इतना होता है ।

अब शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं वे सात राजु लम्बे हैं, और एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे अड़तालीस खंड अधिक नौ राजु भुजावाले हैं अर्थात् उनका

....

१ अ-क प्रत्योः ' एत्तिओ होदि ' इति पाठो नास्ति ।

एगरज्जुं खंडिय तत्थ अट्ठेतालीसखंडब्भहिय-णवरज्जुभुजाणि भुजकोडिपाओग्गकण्णाणि कण्णभूमीए आलिहिय दोसु वि दिसासु मज्झम्मि फालिदे तिण्णि तिण्णि खेत्ताणि होंति। तत्थ दो खेत्ताणि अद्धुट्ठरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तर-वेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठि-खंडब्भहियखंडसदेण सादिरेयचत्तारिरज्जुविक्खंभाणि दक्खिण-वामहेट्ठिमकोणे तिण्णि रज्जुबाहल्लाणि, दक्खिण-वामकोणेसु जहाकमेण उवरिम-हेट्ठिमेसु दिवड्ढरज्जुबाहल्लाणि, अवसेसदोकोणेसु एगागासबाहल्लाणि, अण्णत्थ कम-वड्ढिगदबाहल्लाणि घेत्तूण तत्थ एग-खेत्तस्सुवरि विदियखेत्ते विवज्जासं काऊण ठविदे सव्वत्थ तिण्णि रज्जुबाहल्लखेत्तं होइ। एदस्स वित्थारमुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे खायफलमेत्तियं होइ $४९\frac{२१७}{४५२}$। अवसेस-चत्तारि खेत्ताणि अद्धुट्ठरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तरवेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठि-

अधोविस्तार $९\frac{४८}{११३}$ है। इसी विस्तारको यहां त्रिकोण क्षेत्रकी अपेक्षासे 'भुजा' कहा है। तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य संभवित कर्णका प्रमाण है। इन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको कर्णभूमिसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें वीचमेंसे काटनेपर तीन तीन क्षेत्र हो जाते हैं।

विशेषार्थ– यहांपर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर कर्णका प्रमाण नहीं दिया है। उसके निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोड़कर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो वर्गमूलका प्रमाण आवे, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिए[2]।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये। उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दायें बायें दोनों ओर जो दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साढ़े तीन राजु उत्सेध है। तथा दो सौ छब्बीससे एक राजुको खंडित कर उनमें एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात् $४\frac{१६१}{२२६}$ प्रमाण विष्कम्भ है। तथा दक्षिण और वाम (दायें बायें) अधस्तन कोन पर तीन राजु बाहल्य है। अन्य दक्षिण वामकोणोंपर यथाक्रमसे ऊपर और नीचे डेढ़ राजु बाहल्य है। अवशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रदेश-प्रमाण बाहल्य है। और अन्यत्र अर्थात् वीचमें क्रमसे वृद्धिको प्राप्त बाहल्य है। इसप्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर) उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपर्यास अर्थात् उलटा करके स्थापित करनेपर सर्वत्र तीन राजु बाहल्यवाला क्षेत्र हो जाता है। इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुनः वेध (मोटाई) से गुणा करने पर घनफल $४\frac{१६१}{२२६} \times ३\frac{१}{२} \times ३ = ४९\frac{२१७}{४५२}$ इतना हो जाता है। अब अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, वे साढ़े तीन राजु उत्सेधवाले हैं, तथा दोसौ छब्बीससे एक राजुको खंडितकर उनमेंसे एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ प्रतिषु 'कम्म-' इति पाठः।

२ इष्टो बाहुर्यःस्यात् तत्स्पर्धिन्यां दिशीतरो बाहुः। त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्ज्ञैः॥ तत्कृत्यो-र्योगपदं कर्णः। लीलावती क्षेत्रव्य. १.

सदखंडेहि सादिरेयचत्तारिरज्जुभुजाणि कण्णक्खेत्ते आलिहिय दोसु वि पासेसु मज्झम्मि छिण्णेसु चत्तारि आयदचउरंसखेत्ताणि अट्ठ तिकोणखेत्ताणि च होंति। एत्थ चदुण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलं पुव्विल्लदोखेत्तफलस्स चउब्भागमेत्तं होदि। चदुसु वि खेत्तेसु बाहल्लाविरोहेण एगट्ठं कदेसु तिण्णिरज्जुबाहल्लं, पुव्विल्लखेत्तविक्खंभायामेहिंतो अद्धमेत्तविक्खंभायामपमाणखेत्तुवलंभादो। किमट्ठं चदुण्हं पि मिलिदाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लत्तं? पुव्विल्लखेत्तबाहल्लादो संपहियखेत्ताणमद्धमेत्तबाहल्लं होदूण तदुस्सेहं पेक्खिदूण अद्धमेत्तुस्सेहदंसणादो। संपहि सेसअट्ठखेत्ताणि पुव्वं व खंडिय तत्थ सोलस तिकोणखेत्ताणि अणंतरादीदखेत्ताणमुस्सेहादो विक्खंभादो बाहल्लादो च अद्धमेत्ताणि अवणिय अट्ठण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलमणंतराइक्कंतचदुखेत्तफलस्स चउब्भागमेत्तं होदि। एवं सोलस-बत्तीस-चउसट्ठिआदिकमेण आयदचउरंसखेत्ताणि पुव्विल्लखेत्तफलादो चउब्भागमेत्तफलाणि होदूण गच्छंति जाव अविभागपलिच्छेदं पत्तं ति। एवमुप्पण्णासेसखेत्तफलमेला-

....

४ $\frac{१}{२}$ $\frac{६}{२}$ $\frac{१}{६}$ राजु प्रमाण भुजावाले हैं। उन्हें कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पार्श्वभागोंमें बीचसे छिन्न करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र और आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं।

यहांपर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंको बाहल्यके अविरोधसे इकट्ठा करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखने पर तीन राजु बाहल्य और पहलेके क्षेत्रके विष्कम्भ और आयामसे अर्धमात्र विष्कम्भ और आयाम प्रमाणवाला क्षेत्र पाया जाता है।

शंका — इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलाने पर तीन राजु बाहल्य कैसे होता है?

समाधान — क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाहल्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाहल्य आधा ही है। और पहलेके उनके उत्सेधकी अपेक्षा अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खंडित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते है।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, विष्कम्भसे और बाहल्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है। इसीप्रकार सोलह, बत्तीस, चौसठ आदिक्रमसे आयतचतुरस्रक्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलोंके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तक चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा। इसप्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलोंके जोड़नेका

....

१ प्रतिषु 'कम्म' इति पाठः।

२ अ-आ-क प्रतिषु 'चउत्थ' इति पाठः।

वणविहाणं वुच्चदे । तं जहा– सव्वखेत्तफलाणि चउगुणकमेण अवट्ठिदाणि त्ति कादूण तत्थ अंतिमखेत्तफलं चउहि[1] गुणिय रूवूणं काऊण तिगुणिदछेदेण ओवट्टिदे एत्तियं होइ $६५\frac{१३२०}{१२३५६}$ । अधोलोगस्स सव्वखेत्तफलसमासो $१०६\frac{२६१}{१२३५६}$ ।

संपहि उड्ढलोगखेत्तफलमाणेमो । तत्थ सूईखेत्तफलं पुव्वविहाणेण आणिदे एत्तियं होइ $५\frac{३३७}{४५२}$ । संपहि उवरिममद्धं[2] पंचरज्जुविक्खंभुद्देसे खंडिय[3] तत्थ एगखंडं पुध ट्ठविय मज्झम्मि सेसखंडं उड्ढं फालिय पसारिदे सुप्पखेत्तं होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि $\frac{३७१}{११३}$ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि $१५\frac{९६}{११३}$ । मुहम्मि एगागासबाहल्लं[4], तलम्मि मुहप्पमाणमज्झम्मि बेरज्जुबाहल्लं, पुणो कमहाणीए गंतूण हेट्ठिमदोकोणेसु एगागासबाहल्लं होदि । एदम्मि खेत्ते मुहवित्थारविक्खंभेण खंडिदे दोण्णि तिकोणखेत्ताणि एगमायद-

विधान कहते हैं। वह इसप्रकार है– सभी क्षेत्रोंका घनफल चतुर्गुणितक्रमसे अवस्थित है, इसलिए उनमें अन्तिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देने पर घनफल $६५\frac{१३२०}{१२३५६}$ इतना होता है। और अधोलोकके सभी क्षेत्रोंका घनफल $१०६\frac{२६१}{१२३५६}$ होता है।

अब चारों ओरसे मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकरूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं। उसमें एक राजु चौड़े, सात राजु लम्बे और गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अधोलोकमें कहे गये विधानसे निकालनेपर $५\frac{३३७}{४५२}$ राजु इतना होता है। (इस सूचीको उर्ध्वलोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये।) अब, लोकको मध्यलोकसे काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उसमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पांच राजु है विष्कम्भ जहांपर ऐसे ब्रह्मलोकके अन्तास्थित प्रदेशपर बीचसे खंडितकर उसमेंसे एक खंडको पृथक् स्थापन कर बचे हुए खंडको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाड़कर पसारनेसे सूपाके आकारवाला क्षेत्र हो जाता है। उसके मुखका विस्तार $\frac{३७१}{११३}$ इतना होता है। तथा तलविस्तार $१५\frac{९६}{११३}$ इतना होता है। इस सूर्पक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है, और तलके मुख-प्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुनः क्रमसे हानिको प्राप्त होती हुई अर्थात् कम होती हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है। इस सूर्पक्षेत्रको, मुखविस्तार-प्रमाण विष्कम्भसे खंडित करनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्र

१ म प्रतौ ' चउ ' इत्यपि पाठः ।

२ म प्रत्योः ' उवरिमधम्मद्धपंच– ', ' उवरिमधम्म पंच– '; अ–आ–क प्रतिषु ' उवरिममद्धपंच– ' इति पाठः ।

३ म २ प्रतौ; ' खंडियं ' इति पाठः ।

४ म प्रत्योः ' बाहिल्ल ' इति पाठः ।

चउरंसखेत्तं च होई। आयदचउरंसखेत्तस्स अद्धुट्ठरज्जुदीहस्स सादिरेयतिण्णिरज्जुविक्खंभस्स तलम्मि वे रज्जु मुहम्मि एगागासबाहल्लस्स फलमाणेमो। तं जहा– विक्खंभेणुस्सेहं गुणेऊण ओवेहेणेगरज्जुणा गुणिदे मज्झिल्लखेत्तफलं होइ। तस्स पमाणमेदं ११ $\frac{१११}{२२६}$।[1] सेस-दो-तिकोणखेत्ताणि अद्धुट्ठरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसदेण खंडिय तत्थ बत्तीसखंडब्भहिय-छरज्जुविक्खंभाणि पुव्वं व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पण्णाणि[2] चत्तारि तिकोणखेत्ताणि ओसारिय दोण्हमायदचउरंसखेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय तत्थ सोलसखंडब्भहिय तिण्णिरज्जुविक्खंभाणं दो-एक्क-सुण्णेक्करज्जुबाहल्लाणं फलमाणेमो। तं जहा– एगखेत्तस्सुवरि विदियखेत्तं विवज्जासं काऊण ठ्ठविदे वेरज्जुबाहल्लमेगं खेत्तं होइ। पुणो विक्खंभुस्सेहाणं संवग्गं काऊण ओवेहेण गुणिदे खेत्तफलं होदि। तस्स

....

क्षेत्र हो जाते हैं। उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढ़े तीन राजु लम्बा है, तीन राजुसे कुछ अधिक अर्थात् ३ $\frac{३२}{११३}$ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते हैं। वह इसप्रकार है— विष्कम्भ $\frac{३७१}{११३}$ से उत्सेध $\frac{७}{२}$ को गुणाकर पुनः उसे मोटाईके प्रमाण एक राजुसे गुणा करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है। उसका प्रमाण $\frac{३७१}{११३} \times \frac{७}{२} \times \frac{१}{१} = ११\frac{१११}{२२६}$ इतना होता है। शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढ़े तीन राजु ऊंचे तथा एक राजुको एक सौ तेरहसे खंडित कर उनमें बत्तीस खंडसे अधिक छह राजु अर्थात् ६ $\frac{३२}{११३}$ राजु चौड़े हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खंडित कर उनमें उत्पन्न हुए चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले, तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमें सोलह खडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात् ३ $\frac{१६}{११३}$ राजु प्रमाण चौड़े, तथा क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके घनफलको निकालते हैं।

विशेषार्थ—यहां पर जो आयतचतुरस्रक्षेत्रकी मोटाई क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोकके पासवाले भीतरी भागकी मोटाई दो राजु है। उसीके बाहरी भागकी मोटाई एक राजु है। कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटाई शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके भागवाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटाई एक राजु है।

वह इसप्रकार है— एक आयतचतुरस्रक्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्रक्षेत्रको उलटा करके रखने पर दो राजुकी मोटाईवाला एक क्षेत्र हो जाता है। पुनः विष्कम्भ और उत्सेधका संवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके वेधसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है,

....

१ म प्रत्योः ११ / १११ / ३२६ इति पाठः।

२ प्रतिषु 'तत्थुप्पण्णा' इति पाठः।

पमाणमेदं $१०\frac{३३५}{२२६}$ । पुणो सेसचउण्हं खेत्ताणं फलमेदस्स चउब्भागमेत्तं होदि । कारणं सुगमं, अधोलोगपरूवणाए परूविदत्तादो । जेणेवं सव्वखेत्तफलाणि अणंतराइक्कंतखेत्तफलादो चउब्भागकमेणावट्ठिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलाविदे एत्तियं होदि $१४\frac{४४८}{६७८}$ । उड्ढलोगखेत्तस्स सव्वफलसमासो एत्तिओ होइ $५८\frac{६७}{१३५६}$ ।[1] उड्ढाधोलोगखेत्तफलसमासो एत्तिओ होदि $१६४\frac{३२८}{१३५६}$ । तदो सिद्धं घणलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं । ण च[2] एदव्वदिरित्तमण्णं सत्तरज्जुघणपमाणं लोगसण्णिदं खेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो अण्णो होज्ज ? ण च लोगालोगेसु दोसु त्रि ट्ठिदसत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणघणलोगववएसो, लोगसण्णाए जादिच्छियत्तप्पसंगा । होदु चे ण, सव्वागास-सेढि-पदर-घणाणं

जिसका प्रमाण $\frac{७}{४}\times\frac{३५५}{११३}\times\frac{२}{१}=१०\frac{२२५}{२२६}$ इतना होता है । पुनः जो शेष चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, उनका घनफल इस आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूपणामें कह आये हैं (पृ. १६)। चूंकि इसप्रकार सर्व त्रिकोण क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिक्रान्त अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागके क्रमसे अवस्थित हैं, इसलिए उनके घनफलको यहां अर्थात् $१०\frac{३३५}{२२६}$ में मिलानेपर $१४\frac{४४८}{६७८}$ इतना प्रमाण हो जाता है । उर्ध्वलोकका समस्त घनफल $५८\frac{६७}{१३५६}$ इतना होता है ।

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोकका यह घनफल इसप्रकार आता है— ऊपर जो प्रमाण बतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त किये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है, इसलिए दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दूना किया, तब $११\frac{१११}{२२६}\times\frac{२}{१}=२२\frac{२२२}{२२६}$ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दूना किया, तब $१४\frac{४४८}{६७८}\times\frac{२}{१}=२९\frac{२१८}{६७८}$ हुआ । इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी सूचीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोण-क्षेत्रोंका समस्त घनफल जोड़ देने पर $५\frac{३३७}{४५२}+२२\frac{२२२}{२२६}+२९\frac{२१८}{६७८}=५८\frac{६७}{१३५६}$ होता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर $१०६\frac{२६१}{१३५६}+५८\frac{६७}{१३५६}=१६४\frac{३२८}{१३५६}$ इतना प्रमाण होता है । इसलिए अन्य आचार्योंके द्वारा माना हुआ लोक घनलोकके संख्यातवें भागप्रमाण सिद्ध हुआ । और, इस लोकके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसंज्ञक अन्य कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूपलोकसे भिन्न माना जावे । और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश, इन दोनोंमें ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाशप्रदेशोंके प्रमाणकी घनलोकसंज्ञा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका— यदि लोकसंज्ञाको यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ ?

समाधान— नहीं; क्योंकि, संपूर्ण आकाश, जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक, इन

---

१ म १ प्रतौ $\frac{५८}{\frac{७७}{१३६६}}$ म २ प्रतौ $\frac{५८}{\frac{६७}{१३५६}}$ इति पाठः ।

२ ' भागत्तं । ण च ' इति स्थाने क प्रतौ ' भागत्तं गणयवए ', आ प्रतौ ' भागत्तं गणिय ', म प्रत्योः ' –भागत्तणं व ' इति पाठः ।

पि जादिच्छियसण्णापसंगादो। किं च 'पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगे असंखेज्जदि-भागूणे[1]। उड्ढलोगेण दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा' इच्चेदस्स सादिरेयदुगुणत्तस्स उड्ढलोगादो कहणण्णहाणुववत्तीदो सिद्धं दोण्हं लोगाणमेगत्तमिदि। तम्हा पमाणलोगो छद्दव्वसमुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो त्ति घेत्तव्वो। कधं लोगो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज्ज? वुच्चदे- लोगो णाम सव्वागास-मज्झत्थो चोद्दसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्ध-तिण्णि-चउब्भाग-चरिमेसु सत्तेक्क-पंचेक्करज्जुरुंदो सव्वत्थ सत्तरज्जुबाहल्लो वड्ढि-हाणीहि ट्ठिददोपेरंतो[2], चोद्दसरज्जुआयद-

....

सभी संज्ञाओंको भी यादृच्छिकपनेका प्रसंग आजायगा।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्घातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है।' इसप्रकार ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिक दुगुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका एकत्व सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है. इसे दूना करनेपर २९४ घनराजु हुए। इसमें १४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण है। प्रतरसमुद्घातगत केवली लोकान्तमें स्थित वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष संपूर्ण क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं, इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर देना चाहिये। यही यहां पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है।

इसलिये, उक्तप्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाण-लोक छह द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रदेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा अर्थ स्वीकार करना चाहिये।

शंका—पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है?

समाधान—उक्त शंकाका उत्तर कहते हैं— जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पांच और एक राजु विस्तार-वाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग

....

१ म प्रत्योः 'लोगो असंखेज्जदिभागूणो' इति पाठः।

२ उदयदलं आयामं वासं पुव्वावरेण भूमिमुहे। सत्तेक्कपंच एक्का य रज्जू मज्झम्हि हाणिचयं॥ त्रि. सा. ११३.

रज्जुवग्गमुहलोगणालिगब्भो[1]। एसो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होदि[2]। जदि लोगो एरिसो ण घेप्पदि तो पदरगदकेवलिखेत्तसाहणट्ठं वुत्त-दो-गाहाओ णिरत्थियाओ होज्ज, तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा संभवाभावा। काओ ताओ दो गाहाओ त्ति वुत्ते वुच्चदे—

मुह-तलसमास-अद्धं वुस्सेधगुणं गुणं च वेधेण।
घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिये खेत्ते[3] ॥ ९ ॥

....

स्थित है, चौदह राजु लम्बी एक राजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् ७ × ७ × ७ = ३४३ राजु है।

विशेषार्थ—लोकका उपर्युक्त विस्तार इसप्रकार है— लोक सर्व आकाशके मध्यमें स्थित है। उसका आयाम चौदह राजु है। पूर्व-पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आधे अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौनभाग अर्थात् साढ़े दस राजु ऊपर जाकर ब्रह्मलोकमें पांच राजु, और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम भागमें एक राजु विस्तार है। लोकका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है। इसप्रकारके लोकके बीच एक राजु चौड़ी चतुष्कोण और चौदह राजु ऊंची त्रसनाड़ी है। पूर्व-पश्चिम भागमें लोक घट-बढ़ विस्तारवाला है। इसप्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है।

यदि इसप्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गईं दो गाथाएं निरर्थक हो जायेंगी, क्योंकि, उन गाथाओंमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर संभव नहीं है।

शंका—वे दोनों गाथाएं कौनसी हैं?

समाधान—ऐसी शंका करनेपर कहते हैं—

मुखभाग और तलभागके प्रमाणको जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेधसे गुणा करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो। ऐसा करनेपर वेत्रासन आकारसे स्थित अधोलोकरूप क्षेत्रका घनफल जानना चाहिये ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—वेत्रासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है। इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए। उसे आधा कर अधोलोककी ऊंचाईके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अट्ठाईस हुए। इस संख्याको अधोलोककी उत्तर-दक्षिण दिशाकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छ्यानवे राजु हुए। यही अधोलोकका घनफल है। जैसे- ७ + १ = ८; ८ ÷ २ = ४; ४ × ७ = २८; २८ × ७ = १९६ घनराजु।

....

१ लोयबहुमज्झदेसे रुक्खे सारव्व रज्जुपदरजुदा। चोद्दसरज्जुत्तुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥ त्रि. सा १४३.
२ सव्वागासमणंतं तस्स य बहुमज्झदेसभागम्हि। लोगोऽसंखपदेसो जगसेढिघणप्पमाणो हु ॥ त्रि. सा. ३.
३ ति. प. १, १६५. जंबू. प. ११, १०८.

मूलं मज्झेण गुणं मुहसहिदद्धमुस्सेधकदिगुणिदं ।
घणगणिदं जाणेज्जो मुइंगसंठाणखेत्तम्हि[1] ॥ १० ॥

ण च एदस्स लोगस्स पढमगाहाए सह विरोहो, एगदिसाए वेत्तासण-मुदिंगसंठाण-दंसणादो । ण च एत्थ झल्लरीसंठाणं णत्थि, मज्झम्हि सयंभुरमणोदहिपरिक्खित्तदेसेण चंदमंडलमिव समंतदो असंखेज्जजोयणरुंदेण जोयणलक्खबाहल्लेण झल्लरीसमाणत्तादो[2] । ण च दिट्ठंतो दारिट्ठंतिएण सव्वहा[3] समाणो, दोण्हं पि अभावप्पसंगादो । ण च ताल-रुक्खसंठाणमेत्थ[4] ण संभवइ, एगदिसाए तालरुक्खसंठाणदंसणादो । ण च तइयाए गाहाए

....

मूलके प्रमाणको मध्यके प्रमाणसे गुणा करो, पुनः मुखसहित अर्ध भागको उत्सेधकी कृति अर्थात् वर्गसे गुणा करो । ऐसा करनेपर मृदंगके आकारवाले क्षेत्रमें प्राप्त घनफल जानना चाहिये ॥ १० ॥

विशेषार्थ— ऊर्ध्वलोक, बीचमें मोटा और ऊपर नीचे सकड़ा होनेसे मृदंगाकारक्षेत्र कहलाता है । इस मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकका मूलभागसम्बन्धी विस्तार एक राजुसे मध्यभागके विस्तार पांच राजुको गुणा करनेपर $१ \times ५ = ५$ हुए । उसमें मुखविस्तार एक राजुको जोड़कर $५ + १ = ६$ आधा करनेपर $६ \div २ = ३$ रहे । इसे ऊंचाई सातके वर्गसे $७ \times ७ = ४९$ गुणा करनेपर $४९ \times ३ = १४७$ हुए । यही एकसौ सैंतालीस राजु ऊर्ध्वलोकका घनफल है । इसप्रकार अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके घनफलोंको जोड़ देनेपर $१९६ + १४७ = ३४३$ तीनसौ तेतालीस राजु सर्व लोकका घनफल होता है ।

और, उक्त प्रकारके इस लोकका 'हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिभो' इत्यादि इस प्रथम गाथाके साथ भी विरोध नहीं है, क्योंकि, एक दिशामें वेत्रासन और मृदंगका आकार दिखाई देता है । यदि कहा जाय कि अभी बताये गए लोकमें (मध्य भागपर) झल्लरीका आकार नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, मध्यलोकमें स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परिक्षिप्त, तथा चारों ओरसे असंख्यात योजन विस्तारवाला और एक लाख योजन मोटाईवाला यह मध्यवर्ती प्रदेश चन्द्रमंडलकी तरह झल्लरीके समान दिखाई देता है । और दृष्टान्त सर्वथा दार्ष्टान्तके समान नहीं होता है, अन्यथा दोनोंके ही अभावका प्रसंग आ जायगा । यदि कहा जाय कि ऊपर बताये गए इस लोकके आकारमें तालवृक्षके समान आकार संभव नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, एक दिशासे देखने पर तालवृक्षके समान संस्थान दिखाई देता है । और 'लोयस्स य विक्खम्भो चउप्पयारो य होइ णायव्वो' इत्यादि इस

....

१ जंबू. प. ११, ११०.

२ पुव्वावरेण लोगो मूले मज्झे तहेव उवरिम्मि । वरवेत्तासण-झल्लरि-मुदिंगसंठाणपरिणामो ॥ उत्तर दक्खिण-पासे संठाणो टंकछिण्णगिरिसरिसो । अहवा कुलगिरिसरिसो आयदचउरंसदरणमिओ ॥ जंबू. प ४, ४-५.

३ म प्रत्योः 'सस्सहा' इति पाठः ।   ४ प्रतिषु '-मेत्त' इति पाठः ।

सह विरोहो, एत्थ वि दोसु दिसासु चउव्विहविक्खंभदंसणादो। ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो। तम्हा एरिसो चेव लोगो त्ति घेत्तव्वो।

एत्थ चोदगो भणदि– कधमणंता जीवा असंखेज्जपदेसिए लोए अच्छंति। जदि एक्कम्हि आगासपदेसे एक्को चेव जीवो अच्छदि तो असंखेज्जजीवाणं वत्तीं[1] होदूण अवरेसिं जीवाणमलोगे अच्छणं पावेदि, तेसिमभावो वा। ण च तेसिमभावो अत्थि, 'अणंता जीवा' त्ति अणेण सुत्तेण सह विरोधा। ण च अलोगागासे वि सेसाणमच्छणमत्थि, लोगालोगविहायस्स अभावावत्तीदो। ण च एगागासपदेसे एगो जीवो अच्छदि, 'एगजीवस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता' त्ति वेदणाखेत्तविधाणे परूविदत्तादो। तम्हा लोगमज्झम्हि जदि होंति, तो लोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेहि चेव जीवेहि होदव्वमिदि?

एत्थ परिहारो वुच्चदे– णेदं घडदे, पोग्गलाणं पि असंखेज्जत्तप्पसंगादो। कधं?

तीसरी गाथाके साथ भी विरोध नहीं आता है, क्योंकि, यहांपर भी पूर्व और पश्चिम इन दोनों ही दिशाओंमें गाथोक्त चारों ही प्रकारके विष्कम्भ देखे जाते हैं। तथा लोकके उत्तर-दक्षिणभागमें सर्वत्र सात राजुका बाहल्य भी करणानुयोगसूत्रके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि, करणानुयोगसूत्रमें सात राजुके बाहल्यके विधान व प्रतिषेधका अभाव है। इसलिए अभी कहे गए आकारवाला ही लोक है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

शंका—यहांपर शंकाकार कहता है कि असंख्यात प्रदेशवाले लोकमें अनन्त संख्यावाले जीव कैसे रह सकते हैं? यदि एक आकाशके प्रदेशमें एक ही जीव रहे, तो भी सर्व लोकमें असख्यात जीवोंकी स्थिति होकर अवशिष्ट अन्य जीवोंका अलोकाकाशमें रहना प्राप्त होता है, अथवा उन शेष जीवोंका अभाव प्राप्त होता है। किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, उक्त कथनका 'जीव अनन्त हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है। और न अलोकाकाशमें भी शेष जीवोंका रहना बनता है, क्योंकि ऐसा माननेपर, लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है। दूसरी बात यह भी है कि आकाशके एक प्रदेशमें एक जीव रहता भी नहीं है, क्योंकि, 'एक जीवकी जघन्य अवगाहना भी अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र होती है' ऐसा वेदनाखंडके वेदनाक्षेत्रविधान नामक अनुयोगद्वारमें प्रतिपादन किया गया है। इसलिये यदि लोकके मध्यमें जीव रहते हैं, तो वे लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होना चाहिए?

समाधान— अब यहांपर इस शंकाका परिहार कहते हैं— शंकाकारका उक्त कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त कथनके मान लेनेपर पुद्गलोंके भी असंख्यातपनेका प्रसंग आ जाता है।

शंका—पुद्गलोंके असंख्यात होनेका प्रसंग कैसे आ जावेगा?

१ म प्रतौ 'च्छत्ती', अ प्रतौ 'वत्ती', क प्रतौ 'वत्ती' इति पाठः।

एगेगलोगागासपदेसे एक्केक्को जदि परमाणू अच्छदि, तो लोगमेत्ता परमाणू भवंति, सेसपोग्गलाणमभावो चेव, अणवगासाणमत्थित्तविरोधा। ण च तेहि लोगमेत्तपरमाणूहि कम्म-सरीर-घड-पड-त्थंभादिसु एगो वि णिप्पज्जदे, अणंताणंतपरमाणुसमुदयसमागमेण विणा एक्किस्से ओसण्णासण्णियाए[1] वि संभवाभावा। होदु चे ण, सयलपोग्गलदव्वस्स अणुवलद्धिप्पसंगादो, सव्वजीवाणमक्कमेण केवलणाणुप्पत्तिप्पसंगादो च। एवमइप्पसंगो मा होदि त्ति अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुववत्तीदो अवगाहणधम्मिओ लोगागासो त्ति

....

समाधान—इस शंकाका परिहार इसप्रकार है—लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें यदि एक एक ही परमाणु रहे, तो लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण ही परमाणु होंगे, और शेष पुद्गलोंका अभाव हो जायगा, क्योंकि, जिन पुद्गलोंको अवकाश नहीं मिला, उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है। तथा उन लोकमात्र परमाणुओंके द्वारा कर्म, शरीर, घट, पट और स्तम्भ आदिकोंमेंसे एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि, अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायका समागम हुए विना एक अवसन्नासन्न संज्ञक भी स्कंधका होना संभव नहीं है।

शंका—एक भी वस्तु निष्पन्न नहीं होवे, तो भी क्या हानि है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त पुद्गल द्रव्यकी अनुपलब्धिका प्रसंग आता है, तथा सर्व जीवोंके एक साथ ही केवलज्ञानकी उत्पत्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—यहांपर समस्त पुद्गलद्रव्यकी अनुपलब्धिका जो दूषण दिया है, उसका अभिप्राय यह है कि घट, पटादि कार्यों के देखनेसे ही कारणरूप पुद्गलपरमाणुओंके अस्तित्वका *अनुमान* होता है। शंकाकारके कथनानुसार जब किसी भी वस्तुकी निष्पत्ति न होगी, तो उन कार्योंके निष्पादक कारणधर्मवाले परमाणु हैं, यह कैसे जाना जा सकेगा? अतएव घट, पटादि कार्योंकी निष्पत्तिके अभावमें पुद्गलद्रव्यके अभावका प्रसंग आता है। तथा, सर्व जीवोंके एक साथ केवलज्ञानकी उत्पत्तिके प्रसंग प्राप्त होनेका जो दूषण दिया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण असंख्यात ही परमाणु होंगे, तो उनसे प्रथम तो एक कार्मणशरीरकी उत्पत्ति ही नहीं होगी। यदि थोड़ी देरके लिए यह कल्पना कर भी ली जाय कि असंख्यात परमाणुओंसे एक कार्मणशरीर या कर्मपिंड बन भी जाता हो, जो कि जीवके ज्ञानादिक गुणोंके आवरण करनेमें समर्थ है, तो भी वह किसी एक ही जीवके गुणोंका आवरण कर सकेगा, अनन्त जीवोंका नहीं। इस प्रकारसे भी सभी जीवोंके आवरक कर्मका अभाव होनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है। अथवा, किसी एक जीवके द्वारा उस कार्मणशरीरका शुक्लध्यानाग्निसे विनाश किये जानेपर समस्त ही जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

इस प्रकार का अतिप्रसंग दोष न होवे, इस लिए अवगाह्यमान जीव और अजीव

....

१ परमाणूहि अणंताणंतहि बहुविहेहिं दव्वेहिं। ओसण्णासण्णी त्ति ॥ ति. प. १, १०२. अनन्तानन्तपरमाणु-संघातपरिमाणादाविर्भूता उत्संज्ञासंज्ञिका। त. रा. वा. ३, ३८.

इच्छिदव्वो खीरकुम्भस्स मधुकुंभो व्व ।

तम्हा ओगाहणलक्खणेण सिद्धलोगागासस्स ओगाहणमाहप्पमाइरियपरंपरागदोवदेसेण भणिस्सामो । तं जहा— उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते खेत्ते सुहुमणिगोदजीवस्स जहण्णोगाहणा भवदि[1] । तम्हि ट्ठिदघणलोगमेत्तजीवपदेसेसु पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतभागमेत्ता होदूण ट्ठिदओरालियसरीरपरमाणूणं तं चेव खेत्तमोगासं जादि[2] । पुणो ओरालियसरीरपरमाणूहिंतो अणंतगुणाणं तेजइयसरीरपरमाणूणं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुव्वभणिदतेजइयपरमाणूहिंतो अणंतगुणा कम्मइयपरमाणू तेणेव जीवेण मिच्छत्तादिकारणेहि संचिदा पडिपदेसमभवसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता तत्थ भवंति[3], तेसिं पि तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि । पुणो

द्रव्योंकी सत्ता अन्यथा न बन सकनेसे क्षीरकुंभका मधुकुंभके समान अवगाहन धर्मवाला लोकाकाश है, ऐसा मान लेना चाहिए।

विशेषार्थ—जैसे क्षीरकुम्भका मधुकुम्भमें अवगाहन हो जाता है, अर्थात् मधुसे भरे हुए कलशमें तत्प्रमाणवाले दूधसे भरे हुए कलशका यदि दूध डाल दिया जाय, तो समस्त दूध उसीमें समा जाता है, ऐसी अवगाहन शक्ति देखी जाती है। उसीके समान आकाशकी भी ऐसी अवगाहना शक्ति है कि असंख्य प्रदेशी होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनन्तानन्त पुद्गलोंका अवगाहन हो जाता है।

इसलिए अब हम अवगाहन लक्षणसे प्रसिद्ध लोकाकाशके अवगाहन माहात्म्यको आचार्य-परम्परागत उपदेशके अनुसार कहते हैं। वह इस प्रकार है— उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्रमें सूक्ष्म निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है। उस क्षेत्रमें स्थित घनलोक मात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र होकरके स्थित औदारिकशरीरके परमाणुओंका वही क्षेत्र अवकाशपनेको प्राप्त होता है। पुनः औदारिकशरीरके परमाणुओंसे अनन्तगुणे तैजसशरीरके परमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। तथा पूर्वमें कहे गए तैजस परमाणुओंसे अनन्तगुणे, उसी ही जीवके द्वारा मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणोंसे संचित और प्रत्येक प्रदेशपर अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे तथा सिद्धोंके अनन्तवें भाग मात्र कर्मपरमाणु उस क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए उन कर्मपरमाणुओंकी भी उसी ही क्षेत्रमें

---

१ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि । अंगुलअसंखभागं जहण्णयं । गो. जी. ९५.

२ प्रतिषु 'नदि' इति पाठः ।

३ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् । अनन्तगुणे परे । त. सू. २, ३८–३९ । परमाणूहिं अणंतहिं वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु । ताहि अणंतहिं णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥ ताणं समयपबद्धा सेढिअसंखेज्जभागगुणिदकमा । णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहुमं खु ॥ गो. जी. २४५, २४६.

ओरालिय-तेजा-कम्मइयविस्ससोवचयाणं पादेक्कं सव्वजीवेहि अणंतगुणाणं पडिपरमाणुम्हि तत्तियमेत्ताणं तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि[1]। एवमेगजीवेणच्छिदअंगुलस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ते जहण्णखेत्तम्हि समाणोगाहणो होदूण विदिओ जीवो तत्थेव अच्छदि। एवमणंताणंताणं समाणोगाहणाणं जीवाणं तम्हि चेव खेत्ते ओगाहणा भवदि। तदो अवरो जीवो तम्हि चेव मज्झिमपदेसमंतिमं काऊण उववण्णो। एदस्स वि ओगाहणाए अणंता-णंतजीवा समाणोगाहणा अच्छंति त्ति पुव्वं व परूवेदव्वं। एवमेगेगपदेसा सव्वदिसासु वड्ढावेदव्वा जाव लोगो आवुण्णो त्ति। एत्थ एक्केक्कोगाहणाए ठिदजीवाणमप्पाबहुगं भणिस्सामो। तं जहा— तेउक्काइया जीवा असंखेज्जा लोगा। तत्तो पुढविकाइया विसेसाहिया। आउकाइया जीवा विसेसाहिया। वाउक्काइया जीवा विसेसाहिया। तत्तो वणप्फदिकाइया अणंतगुणा त्ति। अणेण पयारेण सव्वजीवरासिणा लोगो आवुण्णो त्ति सद्दहेदव्वं, अण्णहा पुव्वुत्तदोसप्पसंगादो।

....

अवगाहना होती है। पुनः औदारिकशरीर, तैजस्कशरीर और कार्मणशरीरके विस्रसोपचयोंका, जो कि प्रत्येक सर्व जीवोंसे अनन्तगुणे हैं, और प्रत्येक परमाणुपर उतने ही प्रमाण हैं, उनकी भी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। इसप्रकार एक जीवसे व्याप्त अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र उसी जघन्य क्षेत्रमें समान अवगाहनावाला होकरके दूसरा जीव भी रहता है। इसीप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीवोंकी उसी ही क्षेत्रमें अवगाहना होती है। तत्पश्चात् दूसरा कोई जीव, उसी ही क्षेत्रमें उसके मध्यवर्ती प्रदेशको अपनी अवगाहनाका अन्तिम प्रदेश करके उत्पन्न हुआ। इस जीवकी भी अवगाहनामें, समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव रहते हैं, इसप्रकार यहां भी पूर्वके समान प्ररूपण करना चाहिये। अर्थात्, उस क्षेत्रमें स्थित घनलोकमात्र जीवके प्रदेशोंमेंसे प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त औदारिकशरीरके परमाणु, औदारिकशरीरसे अनन्तगुणे तैजस्कशरीरके और इससे अनन्तगुणे कार्मणशरीरके परमाणु भी हैं। पुनः इन तीनों शरीरोंके सर्व जीवोंसे अनन्त गुणित विस्रसोपचय भी उसी प्रदेशपर विद्यमान हैं। इसप्रकार समान अवगाहनावाले अनन्तानन्त जीव उसी क्षेत्रमें रहते हैं। इसप्रकारसे लोकके परिपूर्ण होनेतक सभी दिशाओंमें लोकका एक एक प्रदेश बढ़ाते जाना चाहिये। अब यहांपर उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण एक एक अवगाहनामें स्थित जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है— तैजस्कायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तैजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं। पृथिवीकायिक जीवोंसे जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं। जलकायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं। वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं। इसप्रकारसे सर्व जीवराशिके द्वारा यह लोकाकाश परिपूर्ण है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए, अन्यथा पूर्वोक्त दोषोंका प्रसंग प्राप्त होता है।

....

१ जीवादो णंतगुणा पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया। जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडि समाणा हु॥ गो. जी. २४९.

सव्वजीवाणमवत्था तिविहा भवदि, सत्थाण-समुग्घादुववादभेदेण। तत्थ सत्थाणं दुविहं, सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणं चेदि। तत्थ सत्थाणसत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगामे णयरे रण्णे वा सयण-णिसीयण-चंकमणादिवावारजुत्तेणच्छणं[1]। विहारवदिसत्थाणं णाम अप्पणो उप्पण्णगाम-णयर-रण्णादीणि छड्डिय अण्णत्थ सयण-णिसीयण-चंकमणादिवावारेणच्छणं[2]। समुग्घादो[3] सत्तविधो, वेदणसमुग्घादो कसायसमुग्घादो वेउव्वियसमुग्घादो मारणंतियसमुग्घादो तेजासरीरसमुग्घादो आहारसमुग्घादो केवलिसमुग्घादो चेदि। तत्थ वेदणसमुग्घादो णाम अक्खि-सिरो-वेदणादीहि जीवाणमुक्कस्सेण सरीरतिगुणविप्फुज्जणं[4]। कसायसमुग्घादो णाम कोध-भयादीहि सरीरतिगुणविप्फुज्जणं[5]। वेउव्वियसमुग्घादो णाम देव-णेरइयाणं वेउव्वियसरीरोदइल्लाणं साभावियमागारं छड्डिय अण्णागारेणच्छणं[6]। मारणंतियसमुग्घादो णाम अप्पणो वट्टमाणसरीरमछड्डिय रिजुगईए विग्गहगईए

स्वस्थान, समुद्धात और उपपादके भेदसे सर्व जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी है। उनमें स्वस्थान दो प्रकारका है— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान। उनमेंसे अपने उत्पन्न होनेके ग्राममें, नगरमें अथवा अरण्यमें सोना, बैठना, चलना आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम स्वस्थानस्वस्थान है। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम, नगर अथवा अरण्य आदिको छोड़कर अन्यत्र शयन, निषीदन और परिभ्रमण आदि व्यापारसे युक्त होकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है। समुद्धात सात प्रकारका है— १ वेदनासमुद्धात, २ कषायसमुद्धात, ३ वैक्रियिकसमुद्धात, ४ मारणान्तिकसमुद्धात, ५ तैजस्कशरीरसमुद्धात, ६ आहारकशरीरसमुद्धात, और ७ केवलिसमुद्धात। उनमेंसे नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण विसर्पणका नाम वेदनासमुद्धात है। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुणे प्रमाण प्रसर्पणका नाम कषायसमुद्धात है। वैक्रियिकशरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिकसमुद्धात है। अपने वर्तमानशरीरको नहीं छोड़कर

---

१ तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थानम्। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

२ विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

३ हंतेर्गमिक्रियात्वात्संभूयात्मप्रदेशानां वहिरुद्गमनं समुद्धातः। स सप्तविधः। त. रा. वा. १, २०. मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स। णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु॥ गो. जी. ६६८. वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशानां वहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घातः। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

४ तत्र वातिकादिरोगविपादिद्रव्यसंबंधः संतापापादितवेदनाकृतो वेदनासमुद्धातः। त. रा. वा. १, २०.

५ द्वितयप्रत्ययप्रकर्षोत्पादितक्रोधादिकृतः कषायसमुद्धातः। त. रा. वा. १, २०.

६ एकत्वपृथक्त्वनानाविधविक्रियशरीरवाक्प्रचारप्रहरणादिविक्रियाप्रयोजनो वैक्रियिकसमुद्धातः। त. रा. वा. १, २०.

वा जावुप्पज्जमाणखेत्तं ताव गंतूण सरीरतिगुणबाहल्लेण अण्णहा वा अंतोमुहुत्तमच्छणं[1]। वेदण-कसायसमुग्घादा मारणंतियसमुग्घादे किण्ण पदंति त्ति वुत्ते ण पदंति। मारणंतियसमुग्घादो णाम बद्धपरभवियाउआणं चेव होदि। वेदण-कसायसमुग्घादा पुण बद्धाउआणमबद्धाउआणं च होंति। मारणंतियसमुग्घादो णिच्छएण उप्पज्जमाणदिसाहिमुहो होदि, ण चेअराणमेगदिसाए गमणणियमो, दससु वि दिसासु गमणे पडिबद्धत्तादो[2]। मारणंतियसमुग्घादस्स आयामो उक्कस्सेण अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तपज्जवसाणो, ण चेअराणमेस णियमो त्ति। तेजासरीरसमुग्घादो णाम तेजइयसरीरविउव्वणं[3]। तं दुविहं णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि[4]। तत्थ जं तं णिस्सरणप्पगं तेजइयसरीरविउव्वणं तं पि दुविहं,

---

ऋजुगतिद्वारा अथवा विग्रहगतिद्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रतक जाकर, शरीरसे तिगुणे विस्तारसे अथवा अन्यप्रकारसे अन्तर्मुहूर्त तक रहनेका नाम मारणान्तिक समुद्घात है।

शंका—वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात ये दोनों मारणान्तिकसमुद्घातमें अन्तर्भूत क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातका मारणान्तिकसमुद्घातमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, जिन्होंने परभवकी आयु बांध ली है, ऐसे जीवोंके ही मारणान्तिकसमुद्घात होता है। किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, बद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं और अबद्धायुष्क जीवोंके भी होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात निश्चयसे आगे जहां उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। किन्तु अन्य समुद्घातोंके इसप्रकार एक दिशामें गमनका नियम नहीं है, क्योंकि, उनका दशों दिशाओंमें भी गमन पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घातकी लम्बाई उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, किन्तु इतर समुद्घातोंका यह नियम नहीं है।

तैजस्कशरीरके विसर्पणका नाम तैजस्कशरीरसमुद्घात है। वह दो प्रकारका होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक। उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीरविसर्पण है वह

---

१ औपक्रमिकानुपक्रमायुःक्षयाविर्भूतमरणांतप्रयोजनो मारणान्तिकसमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

२ आहारकमारणांतिकसमुद्घातावेकदिकौ ×× शेषाः पंच समुद्घाताः षड्दिकाः। त. रा. वा. १, २०. आहारमारणंतियदुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु। दस दिसिगदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति॥ गो. जी. ६६९.

३ जीवानुग्रहोपघातप्रवणतेजःशरीरनिर्वर्तनार्थस्तेजःसमुद्घातः। त. रा. वा. १, २०.

४ तद् द्विविधं निःसरणात्मकमितरच्च। औदारिकवैक्रियिकाहारकदेहाभ्यंतरस्थं देहस्य दीप्तिहेतुरनिःसरणात्मकं। यतेरुग्रचारित्रस्यातिक्रुद्धस्य जीवप्रदेशसंपृक्तं बहिर्निष्क्रम्य दाह्यं परिवृत्यावतिष्ठमानं निष्पावकहरितपरिपूर्णस्थालीमग्निरिव पचति पक्त्वा च निवर्तते। अथ चिरमवतिष्ठते अग्निसाद्दाह्योर्थो भवति तदेतन्निःसरणात्मकं। त. रा. वा. २, ४९.

पसत्थमप्पसत्थं चेदि । तत्थ अप्पसत्थं बारहजोयणायामं णवजोयणवित्थारं सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जासवणकुसुमसंकासं भूमिपव्वदादिदहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोसिंधणं वामंसप्पभवं इच्छियखेत्तमेत्तविसप्पणं । जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चेव, णवरि हंसधवलं दक्खिणंससंभवं अणुकंपाणिमित्तं मारि-रोगादिपसमणक्खमं । जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरं तेणेत्थ अणधियारो । आहारसमुग्घादो णामपत्तिड्ढीणं महारिसीणं होदि[2] । तं च हत्थुस्सेधं हंसधवलं सव्वंगसुंदरं खणमेत्तेण अणेयजोयणलक्खगमणक्खमं अप्पडिहयगमणं उत्तमंगसंभवं, आणाकणिट्ठदाए असंजमबहुलदाए च लद्धप्पसरूवं । केवलिसमुग्घादो[3] णाम दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणभेएण चउव्विहो । तत्थ दंड-समुग्घादो णाम पुव्वसरीरबाहल्लेण तत्तिगुणबाहल्लेण वा सविक्खंभादो सादिरेयतिगुण-परिट्ठएण केवलिजीवपदेसाणं दंडागारेण देसूणचोद्दसरज्जुविसप्पणं । कवाडसमुग्घादो णाम

भी दो प्रकारका है, प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस । उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्क-शरीरसमुद्घात, बारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला, सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग मोटाईवाला, जपाकुसुमके सदृश लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके जलानेमें समर्थ, प्रति-पक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बायें कंधेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्रप्रमाण विस-र्पण करनेवाला होता है । तथा जो प्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्कशरीरसमुद्घात है, वह भी विस्तार आदिमें तो अप्रशस्ततैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंसके समान धवलवर्णवाला है, दाहिने कंधेसे उत्पन्न होता है प्राणियोंकी अनुकम्पाके निमित्तसे उत्पन्न होता है और मारी, रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है । इनमेंसे जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीरसमुद्घात है, उसका यहांपर अधिकार नहीं है ।

जिनको ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई हैं, ऐसे महर्षियोंके आहारकसमुद्घात होता है । वह एक हाथ ऊंचा, हंसके समान धवल वर्णवाला, सर्वांगसुन्दर, क्षणमात्रमें कई लाख योजन गमन करनेमें समर्थ, अप्रतिहत गमनवाला, उत्तमांग अर्थात् मस्तकसे उत्पन्न होनेवाला तथा जो आज्ञाकी अर्थात् श्रुतज्ञानकी कनिष्ठता अर्थात् हीनताके होनेपर और असंयमकी बहुलताके होनेपर जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया है, ऐसा है ।

दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे केवलिसमुद्घात चार प्रकारका है । उनमें जिसकी अपने विष्कंभसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्वशरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यरूप दंडाकारसे केवलीके जीवप्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजु

१ सं. प. सूत्र ५९ (प्र. भाग. पृ. २९७; तृ. भाग प्रस्तावना शंका १८, पृ. २७.)

२ अथोक्तविधिनाऽल्पसावद्यसूक्ष्मार्थग्रहणप्रयोजनाऽऽहारकशरीरनिर्वर्त्यर्थं आहारकसमुद्घातः । त. रा. वा. १, २०. गो. जी. २३६, २३७.

३ वेदनीयस्य बहुत्वादल्पत्वाच्चायुषोऽनाभोगपूर्वकमायुःसमकरणार्थं द्रव्यस्वभावत्वात् सुराद्रव्यस्य फेनवेग-बुद्बुदाविर्भावोपशमवद्देहस्थात्मप्रदेशानां बहिःसमुद्घातनं केवलिसमुद्घातः । त. रा. वा. १, २०

पुव्विल्लबाहल्लायामेण वादवलयवदिरित्तसव्वखेत्तावूरणं। पदरसमुग्घादो णाम केवलिजीवपदेसाणं वादवलयरुद्धलोगखेत्तं मोत्तूण सव्वलोगावूरणं। लोगपूरणसमुग्घादो णाम केवलिजीवपदेसाणं घणलोगमेत्ताणं सव्वलोगावूरणं। वुत्तं च —

वेदण-कसाय-वेउव्वियओ य मरणंतिओ समुग्घादो।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु[1] ॥ ११ ॥

उववादो एयविहो। सो वि उप्पण्णपढमसमए चेव होदि[2]। तत्थ उज्जुवगदीए उप्पण्णाणं खेत्तं बहुवं ण लब्भदि, संकोचिदासेसजीवपदेसादो। विग्गहो तिविहो, पाणिमुद्दा लांगलिओ गोमुत्तिओ चेदि। तत्थ पाणिमुद्दा एगविग्गहा[3]। विग्गहो वक्को कुटिलो

....

फैलनेका नाम दंडसमुद्धात है। दंडसमुद्धातमें बताये गये बाहल्य और आयामके द्वारा वातवलयसे रहित संपूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्धात है। केवली भगवान्‌के जीवप्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए लोकक्षेत्रको छोड़कर संपूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम प्रतरसमुद्धात है। घनलोकप्रमाण केवली भगवान्‌के जीवप्रदेशोंका सर्व लोकके व्याप्त करनेको केवलिसमुद्धात कहते हैं। कहा भी है—

विशेषार्थ — 'पूर्वशरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यरूप दंडाकारसे, ऐसा कहनेका अभिप्राय यह है कि जब खड्गासनसे विराजमान केवली भगवान् समुद्धात करते हैं उस अवस्थामें पूर्वशरीरके बाहल्यसे कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्मप्रदेश होते हैं। तथा जब पद्मासनस्थ केवली भगवान् समुद्धात करते हैं, तब पूर्वशरीरसे तिगुने बाहल्यकी कुछ अधिक तिगुनी परिधिवाले दंडाकार आत्मप्रदेश निकलते हैं, इसलिए धवलाकारने 'पुव्वसरीरबाहल्लेण तत्तिगुणबाहल्लेण वा' ऐसा विशेषण दिया है।

वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, तैजससमुद्धात, छठा आहारकसमुद्धात और सातवां केवलिसमुद्धात इसप्रकार समुद्धात सात प्रकारका है ॥ ११ ॥

उपपाद एकप्रकारका है और वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है। उपपादमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, इसमें जीवके समस्त प्रदेशोंका संकोच हो जाता है। विग्रह तीन प्रकारका है, पाणिमुक्ता, लांगलिक और गोमूत्रिक। इनमेंसे पाणिमुक्ता गति एक विग्रहवाली होती है। विग्रह, वक्र और कुटिल, ये सब एकार्थ-

....

१ गो. जी. ६६७.

२ परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपादः। गो. जी. जी. प्र. ५४३.

३ एकविग्रहा गतिः पाणिमुक्ता। त. रा. वा. २, २८.

त्ति एगट्ठो[1]। लांगलिओ[2] दुविग्गहो[3]। गोमुत्तिओ तिविग्गहो[4]। तत्थ मारणंतिएण विणा विग्गहगदीए उप्पण्णाणं उजुगदीए उप्पणपढमसमयओगाहणाए समाणा चेव ओगाहणा भवदि। णवरि दोण्हमोगाहणाणं संठाणे समाणत्तणियमो णत्थि। कुदो? आणुपुव्वि-संठाणणामकम्मेहि जणिदसंठाणाणमेगत्तविरोधा। विग्गहगदीए मारणंतियं कादूणुप्पण्णाणं पढमसमए असंखेज्जजोयणमेत्ता ओगाहणा होदि, पुव्वं पसारिदएग-दो-तिदंडाणं पढम-समए उवसंघाराभावादो।

वाची नाम हैं। लांगलिका गति दो विग्रहवाली होती है। और गोमूत्रिका गति तीन विग्रह-वाली होती है। इनमेंसे मारणांतिक समुद्घातके विना विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके ऋजुगतिसे उत्पन्न जीवोंके प्रथम समयमें होनेवाली अवगाहनाके समान ही अवगाहना होती है। विशेषता केवल इतनी है कि दोनों अवगाहनाओंके आकारमें समानता का नियम नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले और संस्थान नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले संस्थानोंके एकत्वका विरोध है।

विशेषार्थ—यहांपर जो आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मसे जनित आकारोंमें एकत्वका विरोध बताया है उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें जीवका आकार आनुपूर्वी नामकर्मके उदयसे होता है, क्योंकि, वहांपर संस्थाननामकर्मका उदय नहीं होता है[5]। किन्तु ऋजुगतिमें आनुपूर्वी नामकर्मका उदय नहीं है, क्योंकि, आनुपूर्वी नामकर्मका उदय कार्मणकाय-योगवाली विग्रहगतिमें ही होता है। ऋजुगतिमें तो कार्मणकाययोग न होकर औदारिकमिश्र या वैक्रियिकमिश्रकाययोग ही होता है और गो. कर्मकांड आदिमें इन दोनों मिश्रयोगोंमें संस्थान नामकर्मका उदय बताया गया है, आनुपूर्वीका नहीं। इससे सिद्ध है कि ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमें ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पत्ति हो जानेसे संस्थान नामकर्मका उदय हो जाता है। इसलिए आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले आकार भिन्न ही होंगे, एकसे नहीं। विग्रहगतिमें आनुपूर्वीके उदयसे जीवके पूर्व शरीरका आकार रहता है, किन्तु संस्थान-नामकर्मके उदयसे वर्तमान पर्यायका आकार हो जाता है।

मारणांतिक समुद्घात करके विग्रहगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंके पहले समयमें असंख्यात योजनप्रमाण अवगाहना होती है, क्योंकि, पहले फैलाये गये एक, दो और तीन दंडोंका प्रथम समयमें संकोच नहीं होता है।

---

१ विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स. सि. २, २७. विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यनर्थान्तरम् त. रा. वा. २, २७.

२ म प्रत्योः 'लांगुलिओ' इति पाठः।

३ द्विविग्रहा गतिर्लांगलिका। त. रा. वा. २, २८.

४ त्रिविग्रहा गतिर्गोमूत्रिका। त. रा. वा. २, २८.

५ ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं। उववादपणविगुव्वदुथीणति-संठाणसंहदी णत्थि॥ गो. क. ११८.

एदेहि दसहि विसेसणेहि जहासंभवं विसेसिदमिच्छाइट्ठिआदि-चोद्दसजीवसमासाणं खेत्तपरूवणं[1] कस्सामो। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे। कुदो? जेण सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागेणूणो सव्वो जीवपुंजो सत्थाणसत्थाणरासी वट्टदे। वेदण-कसायसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्ता। मारणंतियसमुग्घादगदजीवा वि सव्वजीवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्ता। कुदो? एदेसिं तिण्हं रासीणं अप्पणो जीविदस्स संखेज्जदिभागमेत्तसमुग्घादकालत्तादो। उववादरासी पुण सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागो[2], एगसमयसंचयादो। तेणेदे पंच वि रासिणो अणंता, तदो सव्वलोगे भवंति। विहारवदिसत्थाणमिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स

इसप्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्धातके सात भेद और एक उपपाद, इन दश विशेषणोंसे यथासंभव विशेषताको प्राप्त मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानोंके क्षेत्रका निरूपण करते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, और उपपादकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं।

शंका — किस कारणसे?

समाधान — चूंकि, सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागसे न्यून शेष सर्व जीवसमूह स्वस्थानस्वस्थान राशिरूप रहता है। तथा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव भी सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि, उक्त तीन राशियोंके समुद्घातका काल अपने जीवनकालके संख्यातवें भागप्रमाण है। उपपादराशि तो सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भाग हैं, क्योंकि, उपपादराशिका संचय एक समयमें होता है। अतः स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त पांचों जीवराशियां अनन्त हैं, और इसीलिये वे सर्व लोकमें पाई जाती हैं।

विशेषार्थ — आगे मिथ्यादृष्ट्यादि चौदह गुणस्थानोंसे तथा मार्गणास्थानोंसे जीवोंका, क्षेत्र सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पांच प्रकारके लोकोंकी अपेक्षा बतलाया गया है। तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमाण सर्वलोकको सामान्यलोक कहते हैं। एकसौ छ्यानवे घनराजुप्रमाण या चार राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके अधोभागको अधोलोक कहते हैं। एकसौ सैंतालीस घनराजु या तीन राजु मोटे जगप्रतरप्रमाण लोकके ऊर्ध्वभागको ऊर्ध्वलोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके मध्यमें स्थित, पूर्व-पश्चिम दिशामें एक राजु चौड़े, उत्तर-दक्षिण दिशामें सात राजु लम्बे और एक लाख योजन ऊंचे क्षेत्रको तिर्यक्लोक या मध्यलोक कहते हैं। ढाई द्वीपप्रमाण विस्तृत अर्थात् पैंतालीस

१ सामान्याधऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते। गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति। तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं॥ गो. जी. ५४४.

असंखेज्जदिभागे। कुदो? ण ताव तसअपज्जत्तरासी विहरदि, तत्थ विहायगदिणामकम्मस्स उदयाभावा। तसपज्जत्तरासिस्स वि संखेज्जदिभागो चेव विहरमाणरासी होदि। कुदो? ममेदं बुद्धीए पडिगहिदखेत्तं सत्थाणं णाम। तत्तो बाहिं गंतूणच्छणं विहारवदिसत्थाणं। तत्थच्छणकालो सगावासे अवट्ठाणकालस्स संखेज्जदिभागो त्ति। दोण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे। कुदो? चत्तारि रज्जुबाहल्लं जगपदरं अधोलोगपमाणं होदि। तिण्णि रज्जुबाहल्लं जगपदरमुड्ढलोगपमाणं होदि। एदे दोण्णि वि लोगे तसपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागेण संखेज्जघणंगुलगुणिदेण ओवट्टिदे सेढीए असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति। संखेज्ज-

---

लाख योजन चौड़े और एकलाख योजन ऊंचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं। एक लोक-सामान्यके पांच भेद करनेका अभिप्राय यह है कि विवक्षित जीवके बताये गए क्षेत्रका ठीक परिमाण समझमें आजावे। जहां जिन जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक बताया जावे, वहां सामान्य-लोकका ग्रहण करना चाहिए। जहां 'दो लोकोंका निर्देश किया जावे वहां अधोलोक और ऊर्ध्वलोक इन दो लोकोंका ग्रहण करना, जहां तीन लोकोंका निर्देश किया जाय, वहां अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यक्‌लोकका ग्रहण करना, तथा, जहां चार लोकका निर्देश किया जाय, वहां मनुष्यलोकको छोड़कर शेष चारों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए।

विहारवत्स्वस्थान मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। चूंकि त्रसकायिक अपर्याप्तराशि तो विहार करती नहीं है, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्तोंमें विहायोगति नामकर्मका उदय नहीं होता है। त्रसकायिक पर्याप्तकोंके भी संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही विहार करनेवाली होती है, क्योंकि, 'यह मेरा है' इसप्रकारकी बुद्धिसे स्वीकार किया गया क्षेत्र स्वस्थान है। और उससे बाहर जाकर रहनेका नाम विहारवत्स्वस्थान है। उस विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रमें रहनेका काल अपने आवासमें (स्वस्थानमें) रहनेके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये विहारवत्स्वस्थान मिथ्या दृष्टि जीव दोनों लोकोंके अर्थात् अधोलोक और ऊर्ध्वलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसका कारण यह है कि अधोलोकका प्रमाण चार राजु मोटा जगप्रतर है और ऊर्ध्वलोकका प्रमाण तीन राजु मोटा जगप्रतर है। संख्यात घनांगुलगुणित त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्या-तवें भागसे इन दोनों ही लोकोंके भाजित करने पर जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है।

विशेषार्थ—त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा सूच्यंगुलके संख्या-तवें भागके वर्गरूप भागहारसे भाजित जगप्रतर प्रमाण बताया गया है। इस प्रमाणवाली त्रसपर्याप्तराशिके भी संख्यातवें भाग प्रमाण ही विहारकरनेवाली राशि होती है। अब यदि एक त्रसपर्याप्तक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण मानकर उससे विहारकरने वाली राशिके प्रमाणको गुणित भी किया जाय, तो भी उसका जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहना सिद्ध होता है, इसलिए यह सिद्ध होता है कि विहारकरनेवाली त्रसराशि ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागमें रहती है, क्योंकि, इन दोनों लोकोंका प्रमाण जगच्छ्रेणीके वर्गसे भी बहुत अधिक है।

घणंगुलगुणगारो कधमवगम्मदे ? वुच्चदे– सयंपहणगिंदपव्वयपरभागट्ठियतसपज्जत्तरासी पहाणो इयरकम्मभूमिजीवेहिंतो दीहाउवो महल्लोगाहणो य। भोगभूमीसु पुण विगलिंदिया णत्थि। पंचिंदिया वि तत्थ सुट्ठु थोवा, सुहकम्माहियजीवाणं बहुवाणमसंभवादो। सयंपहपव्वयपरभागट्ठियजीवाणमोगाहणा महल्लेत्ति जाणावणसुत्तमेदं—

संखो पुण बारह जोयणाणि गोम्ही भवे तिकोसं तु।
भमरो जोयणमेगं मच्छो पुण जोयणसहस्सो ॥ १२ ॥

एदाओ ओगाहणाओ घणंगुलपमाणेण कीरमाणे संखेज्जाणि घणंगुलाणि हवंति, तेण संखेज्जघणंगुलगुणगारो विहारवदिसत्थाणरासिस्स ठविदो। सयंपहणगिंदपव्वदस्स परदो जहण्णोगाहणा वि जीवा अत्थि त्ति चे ण, मूलग्गसमासं काऊण अद्धं कदे वि संखेज्जघणंगुलदंसणादो। तं कधं ? तत्थ ताव भमरखेत्ताणयणविधाणं भणिस्सामो।

....

शंका—त्रसकायिक पर्याप्तराशिके संख्यातवें भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान राशिका गुणकार संख्यात घनांगुल है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रकृतमें स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके परभागमें स्थित त्रसकायिक पर्याप्त जीवराशि प्रधान है, क्योंकि, यह राशि इतर कर्मभूमिज जीवोंकी अपेक्षा दीर्घायु और बड़ी अवगाहनावाली है। भोगभूमिमें तो विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते हैं और वहांपर पंचेन्द्रिय जीव भी स्वल्प होते हैं, क्योंकि, शुभ कर्मके उदयकी अधिकतावाले बहुत जीवोंका होना असंभव है।

स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें स्थित जीवोंकी अवगाहना सबसे बड़ी होती है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र है—

शंख नामक द्वीन्द्रिय जीव बारह योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है। गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोसकी लम्बी अवगाहनावाला होता है। भ्रमर नामक चतुरिन्द्रिय जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है, और महामत्स्य नामक पंचेन्द्रिय जीव एक हजार योजनकी लम्बी अवगाहनावाला होता है। १२ ॥

योजनों और कोसोंमें कही गई इन अवगाहनाओंको घनांगुलप्रमाणसे करनेपर संख्यात घनांगुल होते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थानराशिका गुणकार संख्यात घनांगुल स्थापित किया है।

शंका—स्वयंप्रभनगेन्द्र पर्वतके उस ओर जघन्य अवगाहनावाले भी जीव पाये जाते है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जघन्य अवगाहनारूप मूल अर्थात् आदि और उत्कृष्ट अवगाहनारूप अन्त, इन दोनोंको जोड़कर आधा करनेपर भी संख्यात घनांगुल देखे जाते हैं। उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहनाओंको जोड़कर आधा करने पर संख्यात घनांगुल कैसे आते हैं, आगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये उन द्वीन्द्रियादिकोंकी अवगाहनाओंमेंसे पहले भ्रमर-क्षेत्रके घनफलके निकालनेका विधान कहते हैं—

भमरखेत्तं[1] पुण जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्ध-मुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णि-अट्ठभागा भवंति । ते घणंगुलाणि कीरमाणे पण्णरहसद-छत्तीसरूवेहि घणीकदेहि तिण्णिसय-वासट्ठिकोडीहि अट्ठहत्तरि-सहस्साहिय-अट्ठत्तीसलक्खेहि छस्सद-छप्पण्णेहि य उस्सेधघणजोयणाणि गुणिदे पमाण-घणंगुलाणि हवंति । गोम्हि-आयामो उस्सेधजोयणतिण्णि चउब्भागो, तदट्ठभागो विक्खंभो,

---

एक योजन लम्बे, आधे योजन ऊंचे और आधे योजनकी परिधिप्रमाण विष्कंभवाले भ्रमरक्षेत्रको स्थापित करके, विष्कंभके आधेको उत्सेधसे गुणा करके, जो लब्ध आवे उसे आयामसे गुणित करनेपर एक योजनके तीन भागोंमेंसे आठ भाग लब्ध आते हैं। और यही भ्रमरक्षेत्रका घनफल है ।

उदाहरण—भ्रमरका आयाम १ योजन, उत्सेध $\frac{१}{२}$ योजन, विष्कंभ $\frac{१}{२}$ योजनकी परिधि-प्रमाण । $\frac{१}{२}$ योजनकी स्थूल परिधि १$\frac{१}{२}$ योजन । $\frac{३}{२} \div २ = \frac{३}{४}$; $\frac{३}{४} \times \frac{१}{२} = \frac{३}{८}$; $\frac{३}{८} \times १ = \frac{३}{८}$ भ्रमरक्षेत्रका योजनोंमें घनफल ।

भ्रमरक्षेत्रके योजनमें आये हुए घनफलके घनांगुल करनेपर इस उत्सेध घनयोजनमें आये हुए घनफलको पन्द्रहसौ छत्तीसके घन तीनसौ वासठ करोड़, अड़तीस लाख, अठहत्तर हजार, छहसौ छप्पनसे गुणित करनेपर प्रमाणघनांगुल होते हैं ।

उदाहरण—भ्रमरक्षेत्रका उत्सेध घनयोजनमें घनफल $\frac{३}{८}$; एक उत्सेध घनयोजनके प्रमाण घनांगुल $१५३६^३ = ३६२३८७८६५६$; $\frac{३}{८} \times ३६२३८७८६५६ = १३५८९५४४९६$ प्रमाण घनांगुलोंमें भ्रमरक्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ—एक उत्सेध योजनमें सात लाख अडसठ हजार उत्सेधसूच्यंगुल होते हैं । इस नियमसे एक उत्सेधघनयोजनके घनांगुल करनेपर उसमें सात लाख अडसठ हजार को तीनवार रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना लब्ध आयगा उतने उत्सेधघनांगुल होंगे । उत्सेधयोजनसे प्रमाणयोजन पांचसौ गुणा बड़ा होता है, अतएव इन उत्सेधघनांगुलोंके प्रमाणघनांगुल करनेके लिये उक्त अंगुलोंके प्रमाणमें पांचसौके घनका भाग देनेपर ३६२३८७८६५६ घनांगुल आ जाते हैं, और वह राशि १५३६ के घनप्रमाण पड़ती है ।

गोम्हीका आयाम उत्सेधयोजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण है । विष्कंभ उत्सेधके आठवें भागप्रमाण है, और बाहल्य विष्कंभसे आधा है । गोम्ही क्षेत्रका घनफल

---

१ सयंपहाचलपरमागट्ठियखेत्ते उप्पण्णभमरस्स उक्कस्सोगाहणं ××× जोयणायामं अद्धजोयणुस्सेहं जोयणद्धपरिहिविक्खंभं ठविय विक्खंभद्धमुस्सेहगुणमायामेण गुणिदे उस्सेहजोयणस्स तिण्णिअट्ठभागा भवंति । तं चेदं $\frac{३}{८}$ । ते पमाणघणंगुला कीरमाणे एकसयपंचतीसकोडीए उणणउदिलक्ख-चउवण्णसहस्स-चउसय-छण्णउदि-रूवेहि गुणिदघणंगुलाणि हवंति । तं चेदं १३५८९५४४९६ । ति. प. प. १९५,

२ म प्रत्योः ' अद्ध ' इति पाठः ।

विक्खंभद्धं बाहल्लं[1] । एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिदे उस्सेधजोयणघणस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । तं पण्णरहसदछत्तीसरूवेहि घणीकदेहि गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होंति । बारहजोयणायाम-चदुजोयणमुहसंखखेत्तफलं—

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतम् ।
द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः[2] ॥ १३ ॥

एदेण सुत्तेण आणिय मुहहीणुस्सेहसहिदुस्सेहचदुब्भागेण गुणिय उस्सेहघणजोयणाणि आणिय पुव्वुत्तगुणगारेण गुणिदे पमाणघणंगुलाणि होंति[3] । जोयणसहस्सायाम-

....

लानेके लिये इन तीनोंके परस्पर गुणित करनेपर उत्सेधयोजनके घनका संख्यातवां भाग लब्ध आता है । इसे पन्द्रहसौ छत्तीसके घनसे गुणित करनेपर गोम्हीके घनरूप क्षेत्रके प्रमाण-घनांगुल आ जाते हैं ।

उदाहरण—गोम्हीका आयाम $\frac{३}{४}$ योजन; विष्कंभ $\frac{३}{३२}$ योजन; बाहल्य $\frac{३}{६४}$ योजन; $\frac{३}{४} \times \frac{३}{३२} = \frac{९}{१२८}$; $\frac{९}{१२८} \times \frac{३}{६४} = \frac{२७}{८१९२}$ उत्सेध घनयोजनमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल । $\frac{२७}{८१९२} \times$ ३६२३८७८६५६ = ११९४३९३६ प्रमाण घनांगुलोंमें गोम्हीक्षेत्रका घनफल ।

बारह योजन आयामवाले और चार योजन मुखवाले शंखक्षेत्रका क्षेत्रफल—

व्यासको उतनी ही बार करके अर्थात् व्यासका जितना प्रमाण है उतनीवार व्यासको रखकर जोड़नेपर जो लब्ध आवे उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको घटाकर, मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ दे । इसप्रकार जो संख्या आवे उसे द्विगुणित करके पश्चात् चारका भाग दे । इसप्रकार जो लब्ध आवे, उसे शंखका क्षेत्रफल कहते हैं ॥ १३ ॥

इस सूत्रसे लाकर उस क्षेत्रफलको मुखसे हीन उत्सेधसहित उत्सेधके चौथे भागसे गुणित करके उत्सेध घनयोजन लाकर और पूर्वोक्त गुणकारसे गुणित करनेपर घनरूप शंखक्षेत्रके प्रमाणघनांगुल हो जाते हैं ।

....

१ सयंपहाचलपरभागट्ठियखेत्ते उप्पण्णगोहीए उक्कस्सोगाहणं × × उस्सेहजोयणस्स तिण्णिचउब्भागो आयामो, तदट्ठमागो विक्खंभो, विक्खंभद्धं बाहल्लं । एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिय पमाणघणंगुले कदे एक्के कोडीए उणवीस लक्खा तेदालसहस्सणवसयछत्तीसरूवेहि गुणिदघणंगुला होंति । ११९४३९३६ । ति. प. प. १९५.

२ आयामकदी मुहदलहीणा मुहवासअद्धवग्गजुदा । बिगुणा वेहेण हदा संखावत्तस्स खेत्तफलं ॥ त्रि. सा. ३२७.

३ सयंपहाचलपरभागट्ठियखेत्ते उप्पण्णबीइंदियस्स उक्कस्सोगाहणा × × बारसजोयणायाम-चउजोयणमुह-संखखेत्तफलं व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतं । द्विगुणं चतुर्विभक्तं सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः ॥ एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे तेहत्तरि उस्सेहजोयणाणि भवंति ७३ । आयामे मुहं सोहिय पुणरवि आयामसहिदमुहभाजियं बाहल्लं णायव्वं संखायारट्ठिये खेत्ते ॥ एदेण सुत्तेण बाहल्लं आणिदे पंच जोयणपमाणं होदि ५ । पुव्वमाणिद-

पंचसदुस्सेह-तदद्धविस्थार-महामच्छखेत्तं पि[१]संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होंति[२]। एत्थ घणंगुलस्स संखेज्जदिभागं पक्खिविय अद्धेण छिण्णे वि संखेज्जाणि पमाणघणंगुलाणि होंति त्ति सिद्धं। किं च विहारवदिसत्थाणे ण तिरिक्खखेत्तस्स पमाणत्तं, किंतु देवखेत्तस्सेव, पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तमुहेण संखेज्जजोयणसहस्सं विहरमाणदेवोगाहणाए संखेज्ज-घणंगुलत्तुवलंभादो। तेण संखेज्जघणंगुलोगाहणाए गुणेयव्वमिदि । असंखेज्जजोयणाणि

....

उदाहरण— शंखक्षेत्रका आयाम १२ योजन; मुख ४ योजन।

$१२ \times १२ = १४४;\ १४४ - \frac{४}{२} = १४२;\ १४२ + (\frac{४}{२})^{२} = १४२ + ४ = १४६;$

$१४६ \times २ = २९२;\ २९२ \div ४ = ७३;$

$१२ - ४ = ८;\ १२ + ८ = २०;\ २० \div ४ = ५;\ ७३ \times ५ = ३६५$ उत्सेध घनयोजनोंमें शंखक्षेत्रका घनफल। $३६५ \times ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४०$ प्रमाण घनांगुलोंमें शंखक्षेत्रका घनफल।

एक हजार योजन आयाम, पांचसौ योजन उत्सेध और उत्सेधके आधे अर्थात् ढाईसौ योजन विस्तारवाले महामत्स्यका क्षेत्र भी घनफलरूप करनेपर संख्यात प्रमाणघनांगुल होता है।

उदाहरण—महामत्स्यका आयाम १००० योजन; उत्सेध ५०० योजन; विष्कंभ २५०। $१००० \times ५०० = ५०००००;\ ५००००० \times २५० = १२५००००००$ योजनोंमें घनफल। $१२५०००००० \times ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२००००००००००$ प्रमाण घनांगुलोंमें महामत्स्यका घनफल।

इसप्रकार उत्कृष्ट अवगाहनारूपसे आये हुए इन प्रमाणघनांगुलोंमें घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवगाहनाको प्रक्षिप्त करके जो जोड़ हो उसे आधेसे छिन्न करनेपर भी संख्यात प्रमाण घनांगुल ही रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

दूसरी बात यह है कि विहारवत्स्वस्थानमें तिर्यंचोंके क्षेत्रकी प्रमाणता (प्रधानता) नहीं है, किन्तु देवक्षेत्रकी ही प्रधानता है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण मुखरूपसे अर्थात् विष्कंभ और उत्सेधरूपसे विहार करनेवाले देवोंकी संख्यात हजार योजन प्रमाण अवगाहनामें घनफलरूपसे संख्यात घनांगुल पाये जाते हैं, इसलिये विहारवत्स्वस्थान राशिको संख्यात घनांगुलरूप अवगाहनासे गुणित करना चाहिये।

....

तेहत्तरिभूदखेत्तफलं पंचजोयणबहल्लेण गुणिदे घणजोयणाणि तिण्णिसयपण्णट्ठी होंति ३६५। एदं घणपमाणंगुलाणि कदे एक्कलक्ख-बत्तीससहस्स-दोण्णिसय-एक्कहत्तरि कोडीओ सत्तावण्णलक्खणवसहस्सचउसयचालीसरूवेहि गुणिद-घणंगुलमेत्त होदि। तं चेदं १३२२७१५७०९४४०। ति. प. प. १९५.

१ सयंपहाचलपरभागट्ठियखेत्ते उप्पण्णसम्मुच्छिममहामच्छस्स सव्वुक्कस्सोगाहणा ×× उस्सेहजोयणेण एक्कसहस्सायामं पंचसदविक्खंभं तदद्धउस्सेहं तं पमाणंगुले कीरमाणे चउसहस्स-पंचसय-एउणतीसकोडीओ चुलसीदि-लक्ख-तेसीदिसहस्स-दुसयकोडिरूवेहि गुणिदपमाणघणंगुलाणि भवंति। तं चेदं ४५२९८४८३२००००००००००। ति. प. प. १९६.

विहरंता वि देवा अत्थि त्ति चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तेण पहाणत्ताभावादो। तं कुदो णव्वदे? 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभाए' त्ति वक्खाणादो। तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं कधं? तिरियलोगो णाम जोयणलक्खसत्तभागमेत्तसूचिअंगुलबाहल्लजगपदरमेत्तो। तं पुव्विल्लविहारवदिसत्थाणखेत्तेणोवट्टिदे संखेज्जरूवाणि लब्भंति। तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति वुत्तं। अड्डाइज्जखेत्तादो विहारवदिसत्थाणजीवखेत्तमसंखेज्जगुणं। कुदो?

....

शंका— असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले भी देव होते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विहार करनेवाले देव सर्व देवराशिके असंख्यातवें भागमात्र हैं, अतः उनकी यहांपर प्रधानता नहीं है।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशि 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है।

शंका— मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थान राशिके रहनेका क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र कैसे है?

समाधान— एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितने सूच्यंगुल लब्ध आवें तत्प्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक है। इसे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानरूप क्षेत्रसे भाजित करनेपर संख्यात रूप लब्ध आते हैं, इसीलिये तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टि विहारवत्स्वस्थानराशि रहती है, ऐसा कहा है।

विशेषार्थ— तिर्यग्लोक पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु लम्बा, और एक लाख योजन ऊंचा है। इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये एक लाख योजनमें सातका भाग देना चाहिये, क्योंकि, तिर्यग्लोक भी उत्तर-दक्षिण सात राजु तो है ही, किन्तु पूर्व-पश्चिम जो एक राजुमात्र है उसे सात राजुप्रमाण प्रकल्पित करनेके लिये उत्सेधमें सातका भाग देनेसे उत्सेध एक लाख योजनका सातवां भाग रह जाता है, और पूर्व-पश्चिममें सात राजु-प्रमाण क्षेत्र हो जाता है। इसप्रकार एक लाख योजनके सातवें भागमें जितने सूच्यंगुल होंगे तत्प्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण तिर्यग्लोक आ जाता है। एक योजनमें ७६८००० सूच्यंगुल होते हैं, इसलिये एक लाख योजनके सातवें भागमें १०९७१४२८५७१$\frac{3}{7}$ सूच्यंगुल होंगे। अतएव १०९७१४२८५७१$\frac{3}{7}$ सूच्यंगुलप्रमाण जगप्रतर तिर्यग्लोक जानना चाहिये। प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका जगप्रतरमें भाग देनेसे त्रसपर्याप्तराशिका प्रमाण आता है, और इसके संख्यात एक भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थानराशि है। विहारवत्स्वस्थानराशिमें एक जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल है तो उपर्युक्त राशिका कितना क्षेत्र होगा, इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर विहारवत्स्वस्थानराशिका क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगप्रतरप्रमाण आ जाता है जो तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है।

विहारवत्स्वस्थान जीवोंका क्षेत्र ढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, अढ़ाई

अड्ढाइज्जम्मि संखेज्जपमाणघणंगुलदंसणादो ।

वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि भागे, दोण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ पुव्वं व ओवट्टणा कायव्वा । णवरि वेउव्वियसमुग्घादस्स जोदिसियरासी सत्तदंडुस्सेहो पहाणो, तेण जोइसियदेवाणं संखेज्जदिभागस्स संखेज्जघणंगुलाणि गुणगारो ठवेयव्वो । कुदो ? संखेज्जजोयणसहस्सं विउव्वमाणदेवाणमुवलंभादो । असंखेज्जजोयणाणि णिरुंभिय विउव्वंता देवा अत्थि त्ति चे ण, तेसिं देवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो । सगोहिखेत्तमेत्तं सव्वे देवा विउव्वंति त्ति के वि भणंति¹, तं ण घडदे, 'तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे' त्ति वक्खाणादो । मिच्छाइट्ठिस्स सेस-तिण्णि विसेसणाणि ण संभवंति, तक्कारणसंजमादिगुणाणमभावादो । मिच्छाइट्ठिस्स सत्थाणादी सत्त विसेसा सुत्तेण अणुद्दिट्ठा

....

द्वीपमें संख्यात प्रमाण घनांगुल ही देखे जाते हैं ।

वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक और अधोलोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां पर अपवर्तना पहलेके समान कर लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातमें सात धनुष उत्सेधरूप अवगाहनासे युक्त ज्योतिष्कदेवराशि प्रधान है, इसलिये ज्योतिष्क देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्धातयुक्त राशिका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, संख्यात हजार योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव पाये जाते हैं ।

शंका— असंख्यात योजन क्षेत्रको रोककर विक्रिया करनेवाले भी देव पाये जाते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजनप्रमाण विक्रिया करनेवाले देव सामान्य देवोंके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं । कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सभी देव अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं । परन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुई राशि 'तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है' ऐसा व्याख्यान देखा जाता है ।

मिथ्यादृष्टि जीवराशिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्धात, तैजससमुद्धात और केवलिसमुद्धात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत संयमादि गुणोंका मिथ्यादृष्टिके अभाव है ।

शंका— स्वस्थानादि सात विशेषण सूत्रमें नहीं कहे गये हैं, फिर भी वे मिथ्यादृष्टि

....

१ णियणियओहिक्खेत्तं णाणारूवाणि तह विकुव्वंता । पूरंति असुरपहुदी भावणदेवा दस वियप्पा ॥ ति. प. ३, १८२.

अत्थि त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। किं च 'मिच्छादिट्ठी' इदि सामण्णवयणेण एदे सत्त वि मिच्छाइट्ठिविसेसा सूचिदा चेव, एदव्वदिरित्तमिच्छाइट्ठीणमभावादो। सेस चत्तारि वि लोगा सुत्तेण सूचिदा चेव, सेसचदुण्हं लोगाणं लोगपुधभूदाणमणुवलंभादो। तम्हा सुत्तसंबद्धमेवेदं वक्खाणमिदि।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभाए[१] ॥ ३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थं भणिस्सामो। जदि वि सव्वगुणट्ठाणाणं पहुडिसद्दस्स ववत्थावाइस्स संगहणसंभवो अत्थि, तो वि सजोगिगुणट्ठाणं णो गेण्हदि। कुदो? पुरदो भण्णमाणबाधगसुत्तदंसणादो। सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे

जीवके पाये जाते हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — मिथ्यादृष्टि जीवके स्वस्थान आदि सात विशेषण पाये जाते हैं, यह बात आचार्यपरंपरासे आये हुए उपदेशसे जानी जाती है।

दूसरी यह बात है कि सूत्रमें आये हुए 'मिथ्यादृष्टि' इस सामान्य वचनसे स्वस्थान आदि सात विशेषण भी मिथ्यादृष्टिके विशेष हैं, यह सूचित हो ही जाता है, क्योंकि, इनको छोड़कर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं। इसीप्रकार घनलोकके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और अढ़ाई द्वीपसम्बन्धी लोक, ये चार लोक भी सूत्रसे सूचित हो ही जाते हैं, क्योंकि, घनलोकसे पृथग्भूत उपर्युक्त शेष चार लोक नहीं पाये जाते हैं। इसलिये स्वस्थानस्वस्थानराशि आदिका व्याख्यान सूत्रसे संबद्ध ही है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं॥ ३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यद्यपि व्यवस्थावाची प्रभृति शब्दके बलसे सभी गुणस्थानोंका संग्रह संभव है, तो भी यहांपर सयोगिकेवली गुणस्थानका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आगे कहा जानेवाला इसका बाधक सूत्र देखा जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, ऊर्ध्वलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८. सासायणाइ सव्वे लोयस्स असंखयम्मि भागम्मि। पञ्चसं. २, २६.

अच्छंति । तं कधं ? एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं सोधम्मीसाणरासी पहाणो[1]। तेसिमोगाहणा सत्तहत्थुस्सेहा, अंगुलगणणाए अट्ठसट्ठिसदुस्सेधंगुलपमाणा, एदस्स दसभागविक्खंभा । कुदो ? जदो देव-मणुस्स-णेरइयाणमुस्सेधो दस-णव-अट्ठतालपमाणेण भणिदो । पुणो वासद्धं[2] वग्गिय विगुणिय अट्ठसट्ठिसदुस्सेधंगुलेहि गुणिय घणीकदपंचसदंगुलेहि ओवट्टिदे पमाणघणंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । एदेण तिण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिरासिं ओघरासिस्स संखेज्जभागं संखेज्जदिभागं[3] च गुणिदे तिण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिखेत्ताणि होंति ।

....

क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका — यह कैसे ?

समाधान — इन तीन गुणस्थानोंमें सौधर्म और ऐशानकल्पसंबन्धी देवराशि प्रधान है । उनकी अवगाहना सात हाथ उत्सेधरूप है, और अंगुलकी अपेक्षा गणना करनेपर एकसौ अड़सठ अंगुलप्रमाण है । इसके दशवें भागप्रमाण उस अवगाहनाका विष्कंभ है ।

शंका — यहांपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ क्यों लिया है ?

समाधान — चूंकि देव, मनुष्य और नारकियोंका उत्सेध दश, नौ और आठ तालके प्रमाणसे कहा गया है, इसलिये यहांपर उत्सेधके दशवें भागप्रमाण विष्कंभ लिया है ।

पुनः व्यासके आधेका वर्ग करके और उसे दूना करके अनन्तर एकसौ अड़सठ उत्सेधके अंगुलोंसे गुणित करके पांचसौ अंगुलोंके घनसे अपवर्तित करनेपर प्रमाण घनांगुलका संख्यातवां भाग लब्ध आता है । इससे सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियां जो कि सासादनसम्यग्दृष्टि आदि ओघराशिके उत्तरोत्तर संख्यातवें संख्यातवें भागप्रमाण हैं, उन्हें गुणित करनेपर तीन गुणस्थानोंकी स्वस्थानस्वस्थान आदि राशियोंके क्षेत्र हो जाते हैं ।

विशेषार्थ — यहां स्वस्थानादि पदपरिणत सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी उपपत्ति बतलाई गई है । प्रकृतमें सौधर्म-ऐशान देवराशि प्रधान है । इन स्वर्गोंके एक देवकी अवगाहना ७ हाथ = १६८ उत्सेधअंगुल ऊंची तथा इसके दशमांश विष्कम्भरूप होती है । तदनुसार एक देवकी अवगाहनाका घनफल इसप्रकार आता है—

उत्सेध १६८ अंगुल, विष्कम्भ $\frac{१६८}{१०}$ अंगुल ।

$\left(\frac{१६८}{१०} \div \frac{१}{२}\right)^{२} \times २ \times १६८$ एक देवकी अवगाहनाके उत्सेध घनांगुल ।

....

१ प्रतिषु 'पहाणा.' इति पाठः । २ प्रतिषु 'वासव्वं '. इति पाठः ।
३ आ प्रतौ ' संखेज्जमागमसंखेज्जदिमागं च ' इति पाठः ।

णवरि वेदण-कसायखेत्ताणि णवहि गुणेयव्वाणि, सरीरतिगुणविक्खंभादो । विहार-वेउव्वियपदाणं संखेज्जाणि घणंगुलाणि । अधवा वेदणादिणा सरीरतिगुणसमुग्घादं करेंता सुट्टु थोवा त्ति मज्झिमगुणगारो णवद्धरूवपमाणो होदि त्ति । एदेहि लोगे भागे हिदे लद्धं विरलेदूण एक्केक्कस्स रूवस्स लोगं समखंडं कादूण दिण्णे एगभागो एदेहि रुद्धखेत्तं होदि । उड्ढलोगपमाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्टणा पुव्वं व कादव्वा । अधोलोगपमाणं चत्तारि रज्जुबाहल्लं जगपदरं । तधा[1] चेव ओवट्टणा । तिरियलोगपमाणं जोयणलक्ख-सत्तभागबाहल्लं जगपदरं । एत्थ वि ओवट्टणा पुव्वं व कायव्वा । एत्थ तिरियलोगपमाणे आणिज्जमाणे विक्खंभायामेहि एगरज्जुपमाणमेव तिण्हं लोगाणम-

---

इसके प्रमाणांगुल हुए $\frac{\frac{१६८^{२}}{२०} \times २ \times १६८}{५००^{३}} = \frac{९४८३२६४}{५००००००००००} = \frac{९२६१}{१९५३१२५}$

यह राशि प्रमाणघनांगुलके संख्यातवें भाग हुई । इसे सौधर्म ईशान स्वर्गोंकी सासादनादि तीन गुणस्थानवर्ती राशियोंसे गुणा करनेपर तीनों गुणस्थानोंके स्वस्थानादि पदोंके क्षेत्रोंका प्रमाण आता है, जो तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा होता है ।

इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये मूल अवगाहनाको नौसे गुणित करना चाहिये, क्योंकि, वेदना और कषाय समुद्घातमें उत्कृष्टरूपसे शरीरसे तिगुना विस्तार पाया जाता है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये संख्यात घनांगुल गुणकार होते हैं । अथवा, वेदनासमुद्घात आदिके द्वारा शरीरसे तिगुने समुद्घातको करनेवाले जीव स्वल्प हैं, इसलिये मध्यम गुणकार नौके आधेरूप अर्थात् साढ़े चार होता है । इन उपर्युक्त गुणकारोंसे लोकके भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उसे विरलित करके और उस विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति लोकको समान खंड करके देयरूपसे दे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति जो एक भाग प्राप्त होता है उतना इन गुणकारोंसे रुद्ध क्षेत्र होता है । तीन राजुबाहल्यसे युक्त जगप्रतरप्रमाण ऊर्ध्वलोक है । यहांपर भी अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये । चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है । यहांपर भी पूर्वके समान अपवर्तना करना चाहिये । एक लाख योजनमें सातका भाग देनेसे जितना लब्ध आवे उतना मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा तिर्यग्लोक है । यहांपर भी अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये । यहां तिर्यग्लोकका प्रमाण लानेपर विष्कंभ और आयामसे एक राजुप्रमाण होते हुए भी घनलोक, ऊर्ध्वलोक और

---

१ अ-क-प्रत्योः 'तत्था' आ प्रतौ 'तत्थ' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागे तिरियलोगो होदि त्ति के वि आइरिया भणंति, तं ण घडदे, पुव्वब्भुवगमेण सह विरोधा। को सो पुव्वब्भुवगमो? चत्तारि-तिण्णि-रज्जुबाहल्लजगपदरपमाणा अध-उड्ढलोगा, सत्तरज्जुबाहल्लजगपदरपमाणो सव्वलोगो त्ति। माणुसलोगपमाणं पणदालीसजोयणसदसहस्सविक्खंभं जोयणसदसहस्सुस्सेधं[1]। पुणो विक्खंभुस्सेधे अंगुलाणि करिय—

> व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपैर्भक्तम्।
> व्यासं त्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम्॥ १४॥

अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोक है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, परंतु उनका इसप्रकारका कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस कथनका पूर्वमें स्वीकार किये गये कथनके साथ विरोध आता है।

शंका— वह पहले स्वीकार किया गया कथन कौनसा है?

समाधान—चार राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा अधोलोक है। तीन राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लंबा चौड़ा ऊर्ध्वलोक है। सात राजु मोटा और जगप्रतरप्रमाण लम्बा चौड़ा सर्वलोक है, यही वह पूर्व स्वीकार किया गया कथन है।

पैंतालीस लाख योजन विष्कंभरूप और एक लाख योजन ऊंचा मानुषलोक है। पुनः पूर्वोक्त गुणकाररूप क्षेत्रसंबन्धी विष्कम्भ और उत्सेधके अंगुल करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन एक और एक अर्थात् एकसौ तेरहका भाग देवे और व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण आ जाता है॥ १४॥

विशेषार्थ—यहांपर मंडलाकार क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण लानेकी प्रक्रिया बतलाई गई है। स्थूल मानसे तो परिधिका विस्तार व्याससे तिगुणा ले लिया जाता है, यथा-वासो तिगुणो परिही (त्रि. सा. १७) इससे भी सूक्ष्मप्रमाण दशका वर्गमूल बतलाया गया है। यथा-विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होदि (त्रि. सा ९६)। किन्तु प्रस्तुत गाथामें इस सूक्ष्मप्रमाणसे भी सूक्ष्मतर प्रमाण निकालनेकी प्रक्रिया बतलाई गई है, जो इसप्रकार है—

उदाहरण—१ राजु व्यासके वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण निम्न प्रकारसे होगा—

$$\frac{१ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१ \times ३}{१} = \frac{३७१}{११३} = ३\frac{३२}{११३} \text{ राजु।}$$

उसीप्रकार ७ राजु वृत्तक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण इसप्रकार होगा—

$$\frac{७ \times १६ + १६}{११३} + \frac{७ \times ३}{१} = \frac{२५०१}{११३} = २२\frac{१५}{११३} \text{ राजु।}$$

---

१ तसणालीबहुमज्झे चित्ताय खिदीय उवरिमे भागे। अइवट्टो मणुवजगो जोयणपणदाललक्खविक्खंभो। ति. प. ४, ६.

एदेण सुत्तेण परिट्ठयं कादूण विक्खंभचउब्भागेण गुणिदे जादाणि पदरंगुलाणि। पुणरवि उस्सेधेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि। पुव्वं व ओवट्टणा एत्थ कायव्वा। मारणंतिय-उववादगद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमेवं चेव वत्तव्वं। णवरि ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडेदूणेगभागो उववादं करेदि। तस्स वि असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उववादं करेंति त्ति ओघरासिस्स दो आवलियाए असंखेज्जदिभागा भागहारं ठवेदव्वा। पुणो रूवूणावलियाए असंखेज्जदिभागो उवरि गुणगारो ठवेदव्वो। सेढीए संखेज्जदिभागायामविदियदंडट्ठियजीवे इच्छिय अवरो आवलियाए असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेयव्वो। उवरि घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमवणिय पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागं संखेज्जपदरंगुलाणि च गुणगारं ठविय किंचूणदिवड्ढरज्जूहि गुणिय ओवट्टेयव्वं। मारणंतियस्स एवं चेव वत्तव्वं। णवरि अप्पणो रासिस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतियं करेदि। मारणंतियकालादो गुणकालस्स संखेज्जगुणत्तादो मारणंतियजीवा सगसव्वजीवेहिंतो संखेज्जगुणहीणा किण्ण होंति? ण, मरंतदेवजीवेहिंतो तम्हि चेव भवे मिच्छत्तं

....

इस सूत्रके नियमानुसार परिधि करके व्यासके चौथे भागसे गुणित करनेपर प्रतरांगुल हो जाते हैं। पुनः इन प्रतरांगुलोंको उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं। यहांपर भी पहलेके समान अपवर्तना करना चाहिये। अर्थात् इन घनांगुलोंके प्रमाणघनांगुल करनेके लिये पांचसौके घनका भाग देना चाहिये।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंका इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतनी राशि उपपाद करती है। तथा इस उपपादराशिके असंख्यात बहुभाग प्रमाण जीव विग्रहगतिसे उपपाद करते हैं, इसलिये दो वार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ओघराशिका भागहार स्थापित करना चाहिये। तथा एक कम आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण ऊपर गुणकार स्थापित करना चाहिये। जगश्रेणीके संख्यातवें भाग लंबे दूसरे दंडमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा फिर भी आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करे और ऊपर घनांगुलके संख्यातवें भागको निकालकर उसके स्थानमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण और संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण गुणकारको स्थापित करके, कुछ कम डेढ़ राजुसे गुणित करके अपवर्तित करना चाहिये, क्योंकि, मध्यलोकसे सौधर्मकल्प डेढ़ राजु ऊंचा है। मारणान्तिकसमुद्घातका भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपने अपने गुणस्थानसंबन्धी राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण राशि मारणान्तिकसमुद्घात करती है।

शंका— मारणान्तिकसमुद्घातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, इसलिये मारणान्तिकजीव अपने अपने गुणस्थानके सर्व जीवोंसे संख्यातगुणे हीन क्यों नहीं होते हैं?

पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो, उवसमसम्मत्तद्धावसेसे आउए उवसमसम्मत्तगुणं पडिवज्जंताण बहुवाणमभावादो, तत्तो तस्स संखेज्जगुणणियमाभावादो च। एत्थ उवरिमरासिस्स गुणगारो पुव्वुत्तो चेव होदि, देवरासिस्स पहाणत्तादो। उववादे पुण तिरिक्खरासी पहाणो। णवरि असंजदसम्माइट्ठि-उववादे देवा पहाणा, मारणंतिए तिरिक्खा पहाणा। सम्मामिच्छाइट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि, तग्गुणस्स तदुहयविरोहित्तादो।

एवं संजदासंजदाणं। णवरि उववादो णत्थि, अपज्जत्तकाले संजमासंजमगुणस्स अभावादो। संजदासंजदाणमोगाहणगुणगारो घणंगुलं। मारणंतिए पदरंगुलं दादव्वं। वेगुव्वियपदेण सगरासिस्स असंखेज्जदिभागो आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण। संजदासंजदाणं कधं वेउव्वियसमुग्घादस्स संभवो? ण, ओरालियसरीरस्स विउव्वणप्पयस्स विण्हुकुमारादिसु दंसणादो[1]। संजदासंजदेसु वि मारणंतियरासी ओघरासिस्स असंखेज्जदि-

समाधान—नहीं, क्योंकि, मरण करनेवाले देवगतिसंबन्धी जीवोंसे उसी भवमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं। अथवा, उपशमसम्यक्त्वके कालप्रमाण आयुके अवशिष्ट रहनेपर उपशमसम्यक्त्व गुणको प्राप्त होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते हैं। और मारणान्तिकसमुद्घातके कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है।

यहांपर उपरिम राशिका गुणकार पूर्वोक्त ही है, क्योंकि, यहां देवराशिकी प्रधानता है। उपपादमें तो तिर्यंचराशि प्रधान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसंबन्धी उपपादमें देव प्रधान हैं। तथा असंयतगुणस्थानसबन्धी मारणान्तिक समुद्घातमें तिर्यंच प्रधान हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि, इस गुणस्थानका इन दोनों प्रकारकी अवस्थाओंके साथ विरोध है।

इसीप्रकार संयतासंयतोंका क्षेत्र जानना चाहिये। इतना विशेष है कि संयतासंयतोंके उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, अपर्याप्त कालमें संयमासंयम गुणस्थान नहीं पाया जाता है। संयतासंयतोंकी अवगाहनाका गुणकार घनांगुल है। मारणान्तिकसमुद्घातमें प्रतरांगुलरूप गुणकार देना चाहिये। वैक्रियिकपदसे आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा अपनी राशिका असंख्यातवां भाग लेना चाहिये।

शंका—संयतासंयतोंके वैक्रियिकसमुद्घात कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विष्णुकुमार आदिमें विक्रियात्मक औदारिकशरीर देखा

१ आह चेदेकः जीवस्थाने योगभंगे सप्तविधकाययोगस्वामिप्ररूपणायामौदारिककाययोगः औदारिकमिश्रकाययोगश्च तिर्यङ्मनुष्याणां, वैक्रियिककाययोगो वैक्रियिकमिश्रकाययोगश्च देवनारकाणामुक्तः, इह तिर्यङ्मनुष्याणामपीत्युच्यते, तदिदमार्षविरुद्धं, इत्यत्रोच्यते— न, अन्यत्रोपदेशात्। व्याख्याप्रज्ञप्तिदंडकेषु शरीरभंगे वायोरौदारिकवैक्रियिकतैजसकार्मणानि चत्वारि शरीराण्युक्तानि, मनुष्याणां च। एवमप्यार्षयोस्तयोर्विरोधः? न विरोधः; अभिप्रायकत्वात्। जीवस्थाने सर्वदेवनारकाणां सर्वकालवैक्रियिकदर्शनात् तद्योगविधिरित्यभिप्रायः। नैवं तिर्यङ्मनुष्याणां लब्धिप्रत्ययं वैक्रियिकं सर्वेषां सर्वकालमस्ति कादाचित्कत्वात् व्याख्याप्रज्ञप्तिदंडकेष्वस्तित्वमात्रमभिप्रेत्योक्तं। त. रा. वा. २, ४९.

भागो। कारणं पुव्वं परूविदं।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति जहण्णिया ओगाहणा आहुट्ठरयणीओ[1], उक्कस्सिया पंचसद-पणवीसुत्तरधणूणि[2]। एदाओ दो वि ओगाहणाओ भरह-इरावएसु चेव होंति, ण विदेहेसु, तत्थ पंचधणुस्सदुस्सेधणियमा[3]। तत्तो थोवूणुस्सेधो वा विदेहसंजदरासी जदो[4] सव्वुक्कस्सो होदि, सो पधाणो, पंचधणुस्सदुस्सेहाविणाभावित्तादो। एत्थ अंगुलाणि कदे[5] उस्सेहणवमभागो विक्खंभो त्ति कट्टु परिट्ठयमद्धं करिय विक्खंभद्धेण गुणिय उस्सेहेण गुणिदे संखेज्जाणि घणंगुलाणि जादाणि। एदेहि संखेज्जघणंगुलेहि अप्पप्पणो रासिं गुणिदे इच्छिदखेत्तं होदि। णवरि आहारसरीरस्स उस्सेधो एया रयणी, उस्सेहदसमभागो तस्स विक्खंभो, दिव्वत्तादो। विहारे सत्थाण-समाणोगाहणमुहमच्छिण्णपउमणालसुत्तसंताणं व मूलाहारसरीराणमंतरे जीवपदेसाणमवट्ठा-णादो। ण च सरीरादो-गदजीवपदेसाणं पुणो तत्थ पवेसाभावो, समुग्घादगदकेवलिजीव-

जाता है।

संयतासंयतोंमें भी मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त जीवराशि ओघसंयतासंयत राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है। इसके कारणका प्ररूपण पहले कर आये हैं। प्रमत्त-संयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंकी जघन्य अवगाहना साढ़े तीन रत्निप्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना पांचसौ पच्चीस धनुष है। ये दोनों ही अवगाहनाएं भरत और ऐरावत क्षेत्रमें ही होती हैं, विदेहमें नहीं, क्योंकि, विदेहमें पांचसौ धनुषके उत्सेधका नियम है। अतः पांचसौ पच्चीस धनुषसे कुछ कम उत्सेधवाली विदेहक्षेत्रस्थ संयतराशि चूंकि सबसे अधिक होती है, इसलिये यहांपर वह राशि प्रधान है, क्योंकि, विदेहस्थ संयतराशिका पांचसौ धनुषकी ऊंचाईके साथ अविनाभावसंबन्ध पाया जाता है। यहांपर अंगुलोंमें घनफल लानेके लिये मनुष्योंके उत्सेधका नौवां भाग विष्कंभ होता है, ऐसा समझकर विष्कंभकी परिधिको आधा करके और विष्कंभके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर संख्यात घनांगुल हो जाते हैं। इन संख्यात घनांगुलोंसे अपनी अपनी राशिके गुणित करनेपर इच्छित गुणस्थानसंबन्धी क्षेत्र होता है। इतनी विशेषता है कि आहारकशरीरका उत्सेध एक रत्निप्रमाण है। तथा उत्सेधके दशवें भागप्रमाण उसका विष्कंभ है, क्योंकि, यह शरीर दिव्यस्वरूप है। विहारमें इस शरीरका मुख अर्थात् विष्कंभ और उत्सेध स्वस्थानस्वस्थानके समान अवगाहनाप्रमाण है, क्योंकि, मूल और आहारक शरीरके अन्तरालमें पद्मनालके अच्छिन्न सूत्रसंतानके समान जीवप्रदेशोंका अवस्थान पाया जाता है। शरीरसे निकले हुए जीवप्रदेशोंका फिरसे शरीरमें प्रवेश नहीं होता है, सो भी

१ मध्यांगुलीकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः। बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः सकनिष्ठिका॥ हलायु. कोष.

२ आहुट्ठहत्थपहुदी पणुवीसब्भहियपणसयधणूणि॥ ति. प. १, २२.

३ पंचसयचावतुंगा ×× ति. प. ४, ५८.

४ प्रतिषु 'जदा' इति पाठः।

५ प्रतिषु 'अंगुलकद' इति पाठः।

पदेसेहि वियहियारादो। एदाणि खेत्ताणि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो त्ति पमत्तादओ चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियस्स सत्तरज्जूहि संखेज्जपदरंगुलगुणिदइच्छिदसंजदरासी गुणेदव्वो। तेण मारणंतियसमुग्घादगदसंजदा माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति। एदं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-

....

बात नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर समुद्घातगत केवलीके जीवप्रदेशोंके साथ व्यभिचार आ जाता है। ये सब क्षेत्र सामान्य आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये प्रमत्तसंयत आदि राशियां चार लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहती हैं, तथा मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं। मारणान्तिकसमुद्घातका क्षेत्र लानेके लिये जिस अभीष्ट संयतराशिका क्षेत्र लाना हो उसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सात राजुओंसे गुणित करना चाहिये। इस कारण मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए संयतजीव मानुषलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

विशेषार्थ— यहां प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिकसमुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र लानेके लिए अभीष्ट राशिको संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करके पुनः सात राजुओंसे गुणित करनेका विधान कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि संयत जीव सौधर्मकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, और इसीलिए वे वहांतक मारणान्तिकसमुद्घात भी कर सकते हैं। सर्वार्थसिद्धि मध्यलोकसे लगाकर कुछ कम ७ राजु ऊंची है। तथा एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात प्रतरांगुल प्रमाण ही होती है। अतः उत्कृष्ट मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्रकी अपेक्षा सात राजुओंसे संख्यात प्रतरांगुलोंके गुणित करनेका विधान किया गया है। एक संयतकी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रतरांगुल निम्न प्रकार आते हैं—

उत्सेध ५०० धनुष; विष्कम्भ $\frac{५००}{९}$ धनुष;

परिधि $\frac{\frac{५००}{९} \times १६ + १६}{११३} + \frac{५००}{९} \times \frac{३}{१} = \frac{१७७६४४}{१०१७}$

क्षेत्रफल $\frac{१७७६४४}{१०१७} \times \left(\frac{५००}{९} \times \frac{१}{४}\right) = \frac{८८८१२०००}{३६६१२}$ धनुष।

$= \frac{८८८१२०००}{३६६१२} \times \frac{९६}{१} = \frac{८५२५९५२०००}{३६६१२}$ प्रतरांगुल।

सर्व संयतराशिका प्रमाण ८९९९९९९७ इतना है। इसमेंसे प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी यथायोग्य राशिके संख्यातवें भागप्रमाण राशि ही मारणान्तिकसमुद्घात करती है। अतएव उससे ऊपर निकाले गये एक अवगाहनाके प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर भी संख्यात प्रतरांगुल ही होते हैं। इस प्रकार मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त समस्त संयतोंका क्षेत्र संख्यात

वेदण-कसाय-वेउव्वियाहार-मारणंतियसमुग्घादाणं उत्तं। णवरि तेजासमुग्घादस्स विक्खंभायामे णव-बारहजोयणपमाणे कदंगुले अण्णोण्णं गुणिय बाहल्लेण गुणिदे तेजासमुग्घादखेत्तं होदि। एदं तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे सव्वखेत्तसमासो होदि। ओवट्टणा पुव्वं व।

अप्पमत्तसंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणत्था केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतिय-अप्पमत्ताणं पमत्तसंजदभंगो। अप्पमत्ते सेसपदा णत्थि। चदुण्हमुवसमा सत्थाणसत्थाण-मारणंतियपदेसु पमत्तसमा। चदुण्हं खवगाणं अजोगिकेवलीणं च सत्थाणसत्थाणं पमत्तसमं। खवगुवसामगाणं णत्थि वुत्तसेसपदाणि। खवगुवसामगाणं ममेदंभावविरहिदाणं कधं सत्थाणसत्थाणपदस्स संभवो? ण एस दोसो, ममेदंभावसमण्णिदगुणेसु तहा गहणादो। एत्थ पुण अवट्ठाणमेत्तगहणादो।

....

प्रतरांगुल गुणित सात राजु होता है, जब कि तिर्यक्लोक एक लाख योजनके सातवें भागप्रमाण मोटे जगप्रतरप्रमाण है। अतः उक्त मारणान्तिक समुद्घातका क्षेत्र चारों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण होता हैं। तथा मनुष्यलोक ४५ लाख चौड़ा और १ लाख योजन ही ऊंचा हैं। अतः संयतोंका मारणान्तिकक्षेत्र मनुष्यलोकसे असंख्यात गुणा सिद्ध होता है।

इसप्रकार उक्त क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, आहारक और मारणान्तिकसमुद्घातवाले जीवोंका कहा। इतनी विशेषता है कि तैजससमुद्घातके नौ योजनप्रमाण विष्कंभ और बारह योजनप्रमाण आयाम क्षेत्रके किये हुए अंगुलोंका परस्पर गुणा करके सूच्यंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यसे गुणित करनेपर तैजससमुद्घातका क्षेत्र होता है। इसे इसके योग्य संख्यातसे गुणित करनेपर तैजससमुद्घातके सर्वक्षेत्रका जोड़ होता है। यहांपर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये।

स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूपसे परिणत अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए अप्रमत्तसंयतोंका क्षेत्र मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए प्रमत्तसंयतोंके क्षेत्रके समान होता है। अप्रमतसंयत गुणस्थानमें उक्त तीन स्थानोंको छोड़कर शेष स्थान नहीं होते हैं। उपशमश्रेणीके चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्घात, इन दोनों पदोंमें स्वस्थानस्वस्थान और मारणान्तिकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतोंके समान होते हैं। क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानवर्ती क्षपक और अयोगिकेवली जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थानके समान होता है। क्षपक और उपशामक जीवोंके उक्त स्थानोंके अतिरिक्त शेष स्थान नहीं होते हैं।

शंका—यह मेरा है, इसप्रकारके भावसे रहित क्षपक और उपशामक जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान नामका पद कैसे संभव है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जिन गुणस्थानोंमें 'यह मेरा है'

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा ॥ ४ ॥

एत्थ सजोगिकेवलिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणाणं पमत्तभंगो। दंडगदो केवली केवडि खेत्ते, चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। तं कधं? अट्ठुत्तरसदपमाणंगुलाणि उस्सेधो उक्कस्सोगाहणकेवलीणं होदि। तस्स णवमभागो विक्खंभो १२ एत्तिओ होदि। तस्स परिट्ठओ सत्ततीस अंगुलाणि पंचाणउदि-तेरससदभागा $३७\frac{९५}{११३}$। इमं विक्खंभचउब्भागेण गुणिदे मुहपदरंगुलाणि होंति। एदाणि देसूण-चोद्दसरज्जूहि गुणिदे दंडखेत्तं होदि। एदं संखेज्जरूवगुणं तेरासियकमेण चदुहि लोगेहि

....

इसप्रकारका भाव पाया जाता है वहां वैसा ग्रहण किया है। परन्तु यहांपर अर्थात् क्षपक और उपशामक गुणस्थानोंमें अवस्थानमात्रका ग्रहण किया गया है।

सयोगिकेवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें, अथवा सर्वलोकमें रहते हैं॥४॥

यहांपर सयोगिकेवलीका स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र प्रमत्तसंयतोंके स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रके समान होता है। दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसंबन्धी लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका — दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलियोंका उक्त क्षेत्र कैसे संभव है?

समाधान — उत्कृष्ट अवगाहनाले युक्त केवलियोंका उत्सेध एकसौ आठ प्रमाणांगुल होता है, और उसका नौंवा भाग अर्थात् वारह १२ प्रमाणांगुल विष्कंभ होता है। इसकी परिधि सैंतीस अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे पंचानवे भाग प्रमाण $३७\frac{९५}{११३}$ होती है। इसे विष्कंभ वारह अंगुलके चौथे भाग तीन अंगुलोंसे गुणित करनेपर मुखरूप वारह अंगुल लंबे और वारह अंगुल चौडे गोल क्षेत्रके प्रतरांगुल होते हैं। इन्हें कुछ कम चौदह राजुओंसे गुणित करनेपर दंडक्षेत्रका प्रमाण आता है। यह एक केवलीके दंडक्षेत्रका प्रमाण हुआ।

उदाहरण—व्यास १२ अंगुल; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार उसकी परिधिका प्रमाण— $\frac{१२\times१६+१६}{११३}+\frac{३६}{१}=\frac{४२७६}{११३}=३७\frac{९५}{११३}$ अंगुल।

क्षेत्रफल $=\frac{४२७६}{११३}\times\frac{१२}{४}$ (व्यासका चतुर्थांश) $=\frac{१२८२८}{११३}$ प्रतरांगुल।

अतएव दंडसमुद्घातगत केवलीका क्षेत्रप्रमाण $=\frac{१२८२८}{११३}\times$ देशोन १४ राजु।

भागे हिदे तेसिं लोगाणमसंखेज्जदिभागो आगच्छदि। माणुसलोगेण भागे हिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि आगच्छंति। णवरि पलियंकेण दंडसमुग्घादगदकेवलिस्स विक्खंभो पुव्व-विक्खंभादो तिगुणो होदि। तस्स पमाणमेदं ३६। एदस्स परिट्ठओ तेरहुत्तरसदंगुलाणि सत्तावीस-तेरहुत्तरसदभागा ११३ $\frac{२७}{११३}$। सेसं पुव्वं व।

कवाडगदो केवली केवडि खेत्ते, तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, (तिरियलोगस्स संखे-ज्जदिभागे,) अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ कवाडगदकेवलिस्स खेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे—

....

विशेषार्थ—यहांपर दंडसमुद्घात क्षेत्रका प्रमाण केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना १०८ प्रमाणांगुल लेकर बतलाया है। किन्तु इससे पूर्व ही केवलीकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष प्रमाण कही गई है। चूंकि उत्सेधांगुलसे प्रमाणांगुल ५०० गुणा होता है, इसलिए ५२५ धनुषके प्रमाणांगुल $\frac{५२५ \times ९६}{५००} = १००\frac{४}{५}$ होते हैं। वर्तमान प्रकरणमें विदेहक्षेत्रकी संयतराशि प्रधान है। अतएव यदि विदेहसम्बन्धी अवगाहना ली जाय, तो वह $\frac{५०० \times ९६}{५००}$ = ९६ प्रमाणांगुल ही होती है। १०८ प्रमाणांगुलके धनुष $\frac{१०८ + ५००}{९६}$ = ५६२ $\frac{१}{२}$ होते हैं जो उक्त ५२५ धनुषके प्रमाणसे बढ़ जाते हैं। इस वैषम्यका कारण विचारणीय है।

एक साथ समुद्घात करनेवाले संख्यात केवलियोंके दंडक्षेत्रका प्रमाण लानेके लिये इसे संख्यातसे गुणित करे। इसप्रकार जो क्षेत्र उत्पन्न हो उसे त्रैराशिकके क्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंसे भाजित करनेपर उन चार लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण दंडक्षेत्र आता है। तथा उक्त दंडक्षेत्रको मानुषलोकसे भाजित करने पर असंख्यात मानुषक्षेत्र लब्ध आते हैं। इतनी विशेषता है कि पल्यंकासनसे दंडसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलीका विष्कंभ पहले कहे हुए बारह अंगुलप्रमाण विष्कंभसे तिगुना होता है। उसका प्रमाण ३६ अंगुल है। इसकी परिधि एकसौ तेरह अंगुल और एक अंगुलके एकसौ तेरह भागोंमेंसे सत्ताईस भागप्रमाण ११३ $\frac{२७}{११३}$ है।

उदाहरण—व्यास ३६; अतएव गाथा नं. १४ के अनुसार परिधिका प्रमाण—

$$\frac{३६ \times १६ + १६}{११३} + \frac{१०८}{१} = ११३\frac{२७}{११३}$$

शेष कथन पूर्वके समान है।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अब यहांपर कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए केवलीका क्षेत्र लानेका विधान कहते हैं—

केवली पुव्वाहिमुहो वा उत्तराहिमुहो वा समुग्घादं करेंतो जदि पलियंकेण समुग्घादं करेदि, तो कवाडबाहल्लं छत्तीसंगुलाणि होंति। अह जइ काउस्सग्गेण कवाडं करेदि, तो बारहंगुल-बाहल्लं कवाडं होदि। तत्थ ताव पुव्वाहिमुहकेवलिस्स कवाडखेत्ताणयणं भण्णमाणे चोद्दस-रज्जुआयामं सत्तरज्जुविक्खंभं छत्तीसंगुलबाहल्लं खेत्तं ठविय मज्झे छेत्तूण एक्कखेत्तस्सुवरि बिदियखेत्तं ठविदे बाहत्तरिअंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि। काउस्सग्गेण ट्ठिदकेवलिकवाडखेत्तं चउव्वीसंगुलबाहल्लं होदि। उत्तराहिमुहो होदूण पलियंकेण समुग्घादगदकेवलिकवाडखेत्तं छत्तीसंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि। इयरस्स १२ बारहंगुलबाहल्लं, वेयणाए विणा तिगुणत्ताभावा। एदं खेत्तं तेरासियकमेण तिण्हं लोगाणं पमाणेण कीरमाणे तेसिं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स पुण संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं होदि।

पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु। लोगस्स असं-खेज्जदिभागं वादवलयरुद्धखेत्तं मोत्तूण सेसबहुभागेसु अच्छदि त्ति जं वुत्तं होदि। घणलोग-पमाणं तेदालीसुत्तरतिसद ३४३ घणरज्जूओ। अधोलोगपमाणं छण्णवुदिसदघणरज्जूओ

केवली जिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्धातको करते हुए यदि पल्यंकासनसे समुद्धातको करते हैं तो कपाटक्षेत्रका बाहल्य छत्तीस अंगुल होता है। और यदि कायोत्सर्गसे कपाटसमुद्धात करते हैं तो बारह अंगुलप्रमाण बाहल्यवाला कपाटसमुद्धात होता है। इनमेंसे पहले पूर्वाभिमुख केवलीके कपाटक्षेत्रके लानेकी विधिका कथन करनेपर चौदह राजु लंबे, सात राजु चौड़े और छत्तीस अंगुल मोटे क्षेत्रको स्थापित करके उसे चौदह राजु लंबाईमेंसे बीचमें सात राजुके ऊपर छिन्न करके एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको स्थापित कर देनेपर बहत्तर अंगुल मोटा जगप्रतर हो जाता है। और कायोत्सर्गसे पूर्वाभिमुख स्थित हुए केवलीका कपाटक्षेत्र चौवीस अंगुल मोटा जगप्रतर होता है। उत्तराभिमुख होकर पल्यंकासनसे समुद्धातको प्राप्त हुए केवलीका कपाटक्षेत्र छत्तीस अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण होता है। तथा इतरका अर्थात् उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्गसे समुद्धातको करनेवाले केवलीका कपाटक्षेत्र बारह अंगुल मोटा जगप्रतरप्रमाण लंबा चौडा होता है, क्योंकि, वेदना-समुद्धातको छोड़कर जीवके प्रदेश तिगुने नहीं होते हैं। यह उपर्युक्त कपाटसमुद्धातगत केवलीका क्षेत्र त्रैराशिकक्रमसे सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके प्रमाणरूपसे करनेपर उन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येक लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा है।

प्रतरसमुद्धातको प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रको छोड़कर लोकके शेष बहुभागोंमें रहते हैं, यह इस कथनका अभिप्राय है। घनलोकका प्रमाण तीनसौ तेतालीस ३४३ घनराजु है। अधोलोकका प्रमाण एकसौ छ्यानवे (१९६) घनराजु है।

हिय पंचण्हं लक्खाणं सत्तभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५४००००}{७}$ । पुणो अवरासु दोसु दिसासु एगरज्जुस्सेधेण तले सत्तरज्जुआयामेण मुहे सत्तभागाहियछरज्जुरुंदत्तेण सट्ठि-जोयणसहस्सबाहल्लेण ट्ठिदवादवलयखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे वीसजोयणसहस्साहिय-पंचवंचासजोयणलक्खाणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५५२००००}{३४३}$ ।[1] एदं पुव्विल्लखेत्तस्सुवरि पक्खित्ते एगूणवीसलक्ख-असीदिसहस्सजोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{३१९८००००}{३४३}$ ।[2] पुणो सत्तरज्जुविक्खंभ-तेरह-

....

इस घनफलको पहले तलभागके घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर पांच लाख चालीस हजार योजनोंके सातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण—$६०००० + \frac{१२००००}{७} = \frac{५४००००}{७}$ योजन मोटा जगप्रतर ।

पुनः दूसरी दो अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें तलभागसे एक राजु ऊंचे, तल-भागमें सात राजु लंबे, एक राजु ऊपर आकर मुखमें एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजु लंबे, और साठ हजार योजन बाहल्यरूपसे स्थित वातवलयक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर पचवन लाख वीस हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण—$\frac{४९}{७} + \frac{४३}{७} = \frac{९२}{७}$; $\frac{९२}{७} \div \frac{२}{१} = \frac{९२}{१४}$; $\frac{९२}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{९२}{७}$;

$\frac{९२}{७} \times ६०००० = \frac{५५२००००}{७}$ । इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेके लिए ४९ का भाग देनेपर $\frac{५५२००००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश होंगे उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं । पूर्व और पश्चिममें तलभागसे एक राजुतक वातरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है ।

इसे पूर्वोक्त घनफलरूपसे आये हुए क्षेत्रमें मिला देनेपर तीन करोड़ उन्नीस लाख अस्सी हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है ।

उदाहरण—$\frac{५४००००}{७} + \frac{५५२००००}{३४३} = \frac{३१९८००००}{३४३}$ योजन मोटा जगप्रतर ।

....

१ उदयमुहभूमिवेहो रज्जुससत्तमछरज्जुसेढी य । जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तमखिदिदक्खिणुत्तरदो ॥ तस्स फलं जगपदरो सट्ठिसहस्सेहि जोयणेहि हदो । वाणउदिगुणो सगघणसंभजिदे उभयपासम्हि ॥ त्रि. सा. १३०, १३१.

२ सेढी छरज्जु चोद्दसजोयणमायामवाससुस्सेहं । पुव्वबरपासजुगले सत्तमदो तिरियलोगो त्ति ॥ तव्वादरुद्ध-खेत्तं जोयणचउवीसगुणिदजगपदरं । उभयदिसासंजणिदं णादव्वं गणिदकुसलेहिं ॥ त्रि. सा. १३२, १३३.

रज्जुआयाम-सोलहबारह-सोलहबारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु ट्ठिदवादखेत्ते जगपदरपमाणेण कदे चउसट्ठिसदजोयणूण-अट्ठारहसहस्सजोयणाणं तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं उप्पज्जदि $\frac{१७८३६}{३४३}$ । पुणो सत्तभागाहिय-छरज्जुमूलविक्खंभेण छरज्जुउस्सेधेण एगरज्जुमुहेण सोलह-बारहजोयणबाहल्लेण दोसु वि पासेसु ट्ठिदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे बादालीसजोयणसदस्स तेदालीस-तिसदभागबाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{४२००}{३४३}$ ।[1] पुणो एग-पंच-एगरज्जुविक्खंभेण सत्तरज्जुउस्सेधेण बारह-सोलह-बारहजोयणबाहल्लेण उवरिमदोसु

....

पुनः उत्तर और दक्षिणमें पूर्वसे पश्चिमतक सात राजु विष्कंभरूपसे, सातवीं पृथिवीके तलभागसे लोकान्ततक तेरह राजु आयामरूपसे और अधोलोककी अपेक्षा सोलह, बारह और ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा सोलह बारह योजन बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर एकसौ चौसठ योजन कम अठारह हजार योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है।

उदाहरण—१३ × ७ = ९१; ९१ × १४ = १२७४; १२७४ × २ = २५४८। इसे जगप्रतररूपसे करनेके लिये सातसे गुणा करे और तीनसौ तेतालीस का भाग दे, तब $\frac{१७८३६}{३४३}$ योजन मोटा जगप्रतर आता है। यह उत्तर और दक्षिणमें सातवीं पृथिवीसे लेकर लोकान्ततक वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल होता है।

पुनः पूर्व और पश्चिम दिशामें सातवीं पृथिवीके पास एक राजुके सातवें भाग अधिक छह राजुप्रमाण मूलमें विष्कंभरूपसे छह राजु उत्सेधरूपसे, मध्यलोकके पास एकराजु मुखरूप से और सोलह, बारह योजनप्रमाण बाहल्यरूपसे दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर ब्यालीससौ योजनोंके तीनसौ तेतालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है।

उदाहरण—$\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \div \frac{२}{१} = \frac{५०}{१४}$; $\frac{५०}{१४} \times \frac{२}{१} = \frac{५०}{७}$; $\frac{५०}{७} \times १४ = \frac{७००}{७}$; $\frac{७००}{७} \times ६ = \frac{४२००}{७}$; इसे जगप्रतररूपसे करनेपर ४९ का भाग देनेसे $\frac{४२००}{३४३}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आ जाते हैं। पूर्व और पश्चिममें सातवीं पृथिवीसे मध्यलोकतक वायुरुद्ध क्षेत्रका यही घनफल है।

पुनः मध्यलोकके पास एकराजु; ब्रह्मलोकके पास पांचराजु और लोकान्तमें एक राजु विष्कंभरूपसे, सात राजु उत्सेधरूपसे तथा, बारह, सोलह और बारह योजनप्रमाण बाहल्य-

....

१ उभयं भूपुह वेहो छरज्जु सत्तमछरज्जु रज्जू य। जोयण चोद्दस सत्तमतिरियो त्ति हु दक्खिणुत्तरदो ॥ तत्थाणिलखेत्तफलं उभये पासम्मि होइ जगपदरं। छस्सयजोयणगुणिदं पविभत्तं सत्तवग्गेण त्रि. सा. १३४, १३५.

त्ति पासेसु ट्ठिदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे अट्ठासीदिसमहिय-पंचजोयणसदाणं एगूण-वंचासभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{५८८}{४९}$ ।[1] उवरि रज्जुविक्खंभेण सत्तरज्जुआयामेण किंचूणजोयणवाहल्लेण ट्ठिदवादखेत्तं जगपदरपमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदाणं वेसहस्स-विसद-चालीसभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{३०३}{२२४०}$ ।[2] एदं सव्वमेगत्थ मेलाविदे चउवीस-कोडिसमहियसहस्सकोडीओ एगूणवीसलक्ख-तेसीदिसहस्स-चदुसद-सत्तासीदिजोयणाणं णव-सहस्स-सत्तसय-सट्ठिरूवाहियलक्खाए अवहिदेगभागवाहल्लं जगपदरं होदि $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ ।[3]

....

रूप से ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दोनों ही पार्श्वोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर पांचसौ अठासी योजनोंके उनचासवें भाग वाहल्यरूप जगप्रतर होता है।

उदाहरण—५ + १ = ६; ६ ÷ २ = ३; ३ × ७ = २१; २१ × २ = ४२; ४२ × १४ = ५८८ इसे जगप्रतरप्रमाणसे करने पर ४९ का भाग देनेसे $\frac{५८८}{४९}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतर लब्ध आते हैं। यही ऊर्ध्वलोकके पूर्व और पश्चिम दो दिशाओंके वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल है।

लोकके उपरिम भागमें एक राजु विष्कंभरूपसे, सात राजु आयामरूपसे, कुछ कम एक योजन वाहल्यरूपसे स्थित वातक्षेत्रको जगप्रतरप्रमाणसे करने पर तीनसौ तीन योजनोंके दो हजार दोसौ चालीसवें भागप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है।

उदाहरण—१ × ७ × $\frac{३०३}{३२०}$ ÷ $\frac{७}{१}$ = $\frac{३०३}{२२४०}$ यही लोकके अग्रभागके वातरुद्धक्षेत्रका घनफल है।

इस सर्व घनफलको एकत्रित करनेपर एक हजार चौबीस करोड़, उन्नीस लाख तेरासी हजार चारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौ हजार सातसौ साठका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने योजनप्रमाण बाहल्यरूप जगप्रतर होता है।

उदाहरण—$\frac{३१९८००००}{३४४} + \frac{१७८३६}{३४४} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{३०३}{२२४०} = \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ योजन वाहल्यरूप जगप्रतर लोकके चारों ओर वातरुद्धक्षेत्रका घनफल होता है।

....

१ आउड्ढरज्जुसेढी जोयण चोद्दस य वासभुजवेहो । बम्हो त्ति पुव्व-अवरे फलमेदं चदुगुणं सव्वं ॥ पंचाहुट्ठिगिरज्जू भूतुंगमुहं विसत्तजोयणयं । वेहो तं चउगुणिदं खेत्तफलं दक्खिणुत्तरदो ॥ त्रि. सा. १३६, १३७.

२ वासुदयभुजं रज्जू इगिजोयणवीसतिसदखंडेसु । सतितिसदं सेढी फलमीसिपभारुवरि दंडवाऊणं ॥ त्रि. सा. १३८.

३ सत्तासीदिचदुस्सदसहस्सतेसीदिलक्खउणवीसं । चउवीसाहियं कोडिसहस्सगुणियं तु जगपदरं ॥ सट्ठीसत्तसएहि णवयसहस्सेगलक्खभजियं तु । सव्वं वादारुद्धं गणियं भणियं समासेण ॥ त्रि. सा. १३९–१४०.

एदं वादरुद्धक्खेत्तं घणलोगम्हि अवणिदे पदरगदकेवलिखेत्तं देसूणलोगो होदि। एदं पदरगदकेवलिखेत्तमधोलोगपमाणेण कदे वे अधोलोगा अधोलोगस्स चदुब्भागेण सादिरेगेण ऊणया। उड्ढलोगपमाणेण कदे दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेया।

लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-प्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५ ॥

इस वातरुद्धक्षेत्रको घनलोकमेंसे घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र कुछ कम लोक प्रमाण होता है। प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका यह क्षेत्र अधोलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर कुछ अधिक अधोलोकके चौथे भागसे कम दो अधोलोकप्रमाण होता है। तथा इसे ही उर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे करनेपर उर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो उर्ध्वलोकप्रमाण होता है।

विशेषार्थ — जगश्रेणीके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण सर्व लोक है। इसमेंसे $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ योजनप्रमाण जगप्रतरोंके घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र होता है। अधोलोकका प्रमाण १९६ घनराजु है, इसलिये यदि इसे अधोलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो दो अधोलोकोंके प्रमाण ३९२ घनराजुओंमेंसे $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ योजनप्रमाण जगप्रतर अधिक अधोलोकके चौथे भागप्रमाण ४९ घनराजु घटा देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है। उर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है, इसलिये यदि इस क्षेत्रको ऊर्ध्वलोकके प्रमाणरूपसे किया जाय तो ऊर्ध्वलोकके एक तिहाई घनराजु ४९ मेंसे $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ योजनप्रमाण जगप्रतरोंको घटाकर जितना शेष रहे उसे दो ऊर्ध्वलोकके प्रमाण २९४ घनराजुओंमें जोड़ देनेपर प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलीका क्षेत्र आ जाता है।

लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं।

आदेशकी अपेक्षा गत्यनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५ ॥

१ गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एत्थ 'आदेसेण' गहणं ओघपडिसेधफलं। गदिगहणमिंदियादिपडिसेहफलं। अणुवादगहणं सुत्तस्स अकट्टिवुत्तपरूवणफलं। णिरयगदिणिद्देसो देवगदियादिपडिसेधफलो। णेरइएसु त्ति वयणं तत्थतणपुढविकाइयादिपडिसेधफलं। लोगस्स असंखेज्जदिभागे इदि वुत्ते सेसलोगाणं कधं गहणं होदि? ण, खेत्त-फोसणसुत्ताणं देसामासिगत्तादो।

संपदि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगद-मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एदस्स अत्थपरूवणट्ठमेत्थोगाहणा वुच्चदे। तं जहा- पढमाए पुढवीए पढमपत्थडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो तिण्णि हत्था। तेरहमपत्थडे सत्त धणू तिण्णि हत्था छ अंगुलाणि णेरइयाणमुस्सेधो होदि[1]।

मुह-भूमिविसेसम्हि दु उच्छेहभजिदम्हि सा हवे वड्ढी।
वड्ढी इच्छागुणिदा मुहसहिदा सा फलं होदि॥ १७॥

इस सूत्रमें आदेश पदके ग्रहण करनेका फल ओघका प्रतिषेध करना है। गति पदके ग्रहण करनेका फल इन्द्रियादिका प्रतिषेध करना है। अनुवाद पदके ग्रहण करनेका फल सूत्रके अकर्तृकत्वका प्ररूपण करना है। नरकगति पदके निर्देश करनेका फल देवगति आदिका प्रतिषेध करना है। नारकियोंमें इसप्रकारके वचनके देनेका फल वहांके क्षेत्रमें रहनेवाले पृथिवीकायिक आदिका प्रतिषेध करना है।

शंका—लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, केवल इतना कहनेपर शेष लोकोंका ग्रहण कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इतने पदके कहनेसे शेष लोकोंका भी ग्रहण हो जाता है।

अब विशेष पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि नारकियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि नारकी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं और अढ़ाईद्वीपप्रमाण मानुषलोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अब इसके अर्थके प्ररूपण करनेके लिये यहांपर नारकियोंकी अवगाहना कहते हैं। वह इसप्रकार है— पहली पृथिवीके पहले पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध तीन हाथ है। तेरहवें पाथड़ेमें सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल नारकियोंका उत्सेध है।

भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेधका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह वृद्धिका प्रमाण होता है। अब जिस पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण लाना हो उसे इच्छा मानकर उससे

---

१ सत्त-त्ति-छदंड-हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए। चरिमिंदयम्मि उदओ। ति. प. २, २१७. रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं ×× सरीरोगाहणा ××× उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं। जीवाभि. ३, २, १२.

एदीए गाहाए सेसएक्कारसपत्थडणेरइयाणमुस्सेधा आणेयव्वा। तेसिं पमाणमेदं–

[1]प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
धनुष	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
हस्त	३	१	२	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अंगुल	०	$८\frac{१}{२}$	१७	$१\frac{१}{२}$	१०	$१८\frac{१}{२}$	३	$११\frac{१}{२}$	२०	$४\frac{१}{२}$	१३	$२१\frac{१}{२}$	६

[2]

....

वृद्धिको गुणित कर दो, और मुखका प्रमाण जोड़ दो। इसका जो फल होगा वही इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध समझना चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—यद्यपि द्वितीयादि नरकोंमें प्रथमादि नरकोंके अन्तिम पटलके नारकियोंका उत्सेध मुख हो जाता है, परन्तु प्रथम नरकमें पहले पाथड़ेके ही नारकियोंका उत्सेध मुख रहेगा। अतएव उक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध नहीं निकाला जा सकता है। पहले नरकमें पदका प्रमाण १२ और शेष नरकोंमें जहां जितने पाथड़े होंगे वहां उतना पदका प्रमाण रहेगा। पहले नरकमें दूसरा पाथड़ा पहला और अन्तिम पाथड़ा बारहवां गिना जायगा।

उदाहरण—प्रथम नरकमें मुखका प्रमाण ३ हाथ और भूमिका प्रमाण ७ धनुष ३ हाथ, ६ अंगुल होता है। एक धनुषमें ४ हाथ, और १ हाथमें २४ अंगुल होते हैं। इस प्रमाणके अनुसार मुखके अंगुल ३×२४=७२ तथा भूमिके अंगुल ७×४+३×२४+६=७५० हुए। उक्त गाथानुसार इसकी प्रक्रिया करनेपर ७५० − ७२ = $\frac{६७८}{१२}$ = $५६\frac{१}{२}$ अं. = $\frac{११३}{२}$ = २हाथ $८\frac{१}{२}$ अंगुल होते हैं, यह प्रथम पृथिवीके प्रति-पटलमें वृद्धिका प्रमाण है।

अब यदि हमें प्रथम नरकके पांचवें पटलका उत्सेधप्रमाण निकालना है तो पूर्वोक्त नियमानुसार $५६\frac{१}{२}$ अंगुलको ४ से गुणितकर प्रथम पटलके उत्सेधका प्रमाण उसमें जोड़ देना चाहिये। $\frac{११३}{२}$ × ४ + ७२ = २२६ + ७२ = २९८ अं. = १२ हा. १० अं. = ३ ध. १० अं. यही प्रथम पृथिवीके पांचवें पटलके नारकियोंके उत्सेधका प्रमाण है।

इस उपर्युक्त गाथाके नियमानुसार पहले नरकके पहले और तेरहवें पाथड़ेके अतिरिक्त शेष ग्यारह पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है (देखो मूलका नकशा)।

....

१ प्रतिपु केवलमङ्का एव निहिताः न प्रस्तारादिपदानि। तानि तु सुबोधार्थमस्माभिः सर्वत्र योजितानि।

२ रयणप्पहपुत्थीए उदओ सीमंतणामपडलम्मि। जीवाणं हत्थतियं सेसेसुं हाणिवड्ढीओ ॥ आदी अंते सोहिय रूऊणद्धाहिदम्मि हाणिचया। मुहसहिदे खिदिसुद्धे णियणियपदरेसु उच्छेहो ॥ हाणिचयाण पमाणं घम्माए होंति दोण्णि हत्थाइं। अट्ठंगुलाणि अंगुलभागो दोहिं विहत्तो य ॥ एक्कधणुमेक्कहत्थो सत्तरसंगुलदलं च णिरयम्मि। इगिदंडो तियहत्थो सत्तरसं अंगुलाणि रोरुगए ॥ दो दंडा दो हत्था भंतम्मि दिवड्ढमंगुलं होदि। उब्भंते दंडतियं दहंगुलाणि च उच्छेहो ॥ तिय दंडा दो हत्था अट्ठारह अंगुलाणि पव्वद्धं। संभंतणामइंदयउच्छेहो पढमपुढवीए ॥

विदियपुढविएक्कारसपत्थडे णेरइयाणमुस्सेधो पण्णरह धणूणि वे हत्था वारह अंगुलाणि[१]। सेसदसपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो। तेसिं पमाणमेदं—

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धनुष	८	९	९	१०	११	१२	१२	१३	१४	१४	१५
हस्त	२	०	३	२	१	०	३	१	०	३	२
अंगुल	$२\frac{२}{११}$	$२२\frac{४}{११}$	$१८\frac{६}{११}$	$१४\frac{८}{११}$	$१०\frac{१०}{११}$	$७\frac{१}{११}$	$३\frac{३}{११}$	$२३\frac{५}{११}$	$१९\frac{७}{११}$	$१५\frac{९}{११}$	१२

[२]

....

दूसरी पृथिवीके ग्यारहवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध पन्द्रह धनुष, दो हाथ, बारह अंगुल है। प्रथमादि शेष दश पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्वोक्त गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये। उन अवगाहनाओंका प्रमाण यह है- (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ—इस दूसरी पृथिवीमें मुखका प्रमाण ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल और भूमिका प्रमाण १५ धनुष, २ हाथ, १२ अंगुल है। तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण २ हाथ, $२०\frac{२}{११}$ अंगुल है।

....

चत्तारो चावाणि सत्तावीसं च अंगुलाणि पि। होदि असंभंतिंदियउदओ पढमाइ पुढवीए॥ चत्तारो कोदंडा तिय हत्था अंगुलाणि तेवीसं। दलिदाणि होदि उदओ विब्भंतयणामि पडलम्मि॥ पंच चिय कोदंडा एक्को हत्थो य वीस पव्वाणि। तत्तिंदयम्मि उदओ पण्णत्तो पढमखोणीए॥ छ च्चिय कोदंडाणि चत्तारो अंगुलाणि पव्वद्धं। उच्छेहो णादव्वो पडलम्मि य तसिदणामम्मि॥ वाणासणाणि छ च्चिय दो हत्था तेरसंगुलाणिं पि। वक्कंतणामपडले उच्छेहो पढमपुढवीए॥ सत्त य सरासणाणि अंगुलया एक्कवीस पव्वद्धं। पडलम्मि य उच्छेहो होदि अवक्कंतणामम्मि॥ सत्त विसिखासणाणिं हत्थाइं तिण्णि छच्च अंगुलयं। चरमिंदयम्मि उदओ विक्कंते पढमपुढवीए॥ ति. प. २, २१८-२३०.

१ दोच्चाए ×× उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जातो रयणीओ। जीवाभि. ३, २, १२.

२ दो हत्था वीसंगुल एक्कारसभजिद दो वि पव्वाइं। एयाइं वड्ढीओ मुहसहिदे होंति उच्छेहो॥ अट्ठ विसिहासणाणिं दो हत्था अंगुलाणि चउवीसं। एक्कारसभजिदाइं उदवो पुण विदियवसुहाए॥ णव दंडा बावीसंगुलाणि एक्कारसम्मि चउपव्वं। भजिदाओ सो भागो विदिए वसुहाय उच्छेहो॥ णव दंडा तिय हत्थं चउरुत्तरदोसयाणि पव्वाणिं। एक्कारसभजिदाइं उदओ मणइंदयम्मि जीवाणं॥ दस दंडा दो हत्था चोद्दस पव्वाणि अट्ठ भागा य। एक्कारसेहिं भजिदा उदओ तणगिंदयम्मि विदियाए॥ एक्कारस चावाणिं एक्को हत्थो दसंगुलाणिं पि। एक्कारसहिददसंसा उदओ घादिंदयम्मि विदियाए॥ वारस सरासणाणिं पव्वाणिं अट्ठहत्तरी होंति। एक्कारस भजिदाणिं संघादे णारयाण उच्छेहो॥ वारस सरासणाणिं तिय हत्था तिण्णि अंगुलाणिं च। एक्कारसहियतिभाया उदओ जिब्भिदअम्मि विदियाए॥ तेरण्णाण य हत्था तेवीसा अंगुलाणि पणभागा। एक्कारसेहिं भजिदा जिब्भगपडलम्मि उच्छेहो। चोद्दस दंडा सोलसजुत्ताणि दोसयाणि पव्वाणि। एक्कारसभजिदाहिं लोलयणामम्मि उच्छेहो॥ एक्कोणसट्ठि हत्था पणरस अंगुलाणि णव भागा। एक्कारसेहिं भजिदा लोलयणामम्मि उच्छेहो॥ पण्णरसं कोदंडा दो हत्था बारसंगुलाणिं च। अंतिमपडले थणलोलगम्मि विदियाय उच्छेहो॥ ति. प. २, २३१-२४२.

तदियपुढविणवमपत्थडम्हि णेरइयाणमुस्सेधो एक्कत्तीस धणूणि एगो हत्थो य[1]। सेसट्ठपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पुव्विल्लगाहाए आणेदव्वो। णवरि एत्थ एक्कत्तीस धणूणि सहत्थाणि भूमी होदि। पण्णरस धणूणि वे हत्था वारह अंगुलाणि मुहं होदि। भूमीदो मुहं सोहिय उस्सेधेण णवहि भागे हिदे वड्ढी होदि। तं वड्ढिं णवसु ठाणेसु ठविय एगादि-एगुत्तरेहि गुणगारेहि गुणिय मुहम्मि पक्खित्ते इच्छिदउस्सेधो होदि। तस्स पमाणमेदं—[2]

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७	८	९
धनुष	१७	१९	२०	२२	२४	२६	२७	२९	३१
हस्त	१	०	३	२	१	०	३	२	१
अंगुल	१०$\frac{२}{३}$	९$\frac{१}{३}$	८	६$\frac{२}{३}$	५$\frac{१}{३}$	४	२$\frac{२}{३}$	१$\frac{१}{३}$	०

चउत्थपुढविसत्तमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो वासट्ठी धणूणि वे हत्था य[3]। एदं भूमिं

तीसरी पृथिवीके नौवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध इकतीस धनुष और एक हाथ है। शेष आठ पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध पूर्व गाथाके नियमानुसार ले आना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहांपर इकतीस धनुष और एक हाथ भूमि है। पन्द्रह धनुष, दो हाथ और वारह अंगुल मुख है। भूमिमेंसे मुखको घटाकर उत्सेध (पद) नौ का भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण आता है। (तीसरी पृथिवीमें प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १ धनुष, २ हाथ और २२$\frac{२}{३}$ अंगुल है।) इस वृद्धिको नौ स्थानोंमें स्थापित करके एक आदि एकोत्तर गुणकारोंसे गुणित करके मुखमें मिला देनेपर इच्छित पाथड़ेके नारकियोंका उत्सेध आता है। उसका प्रमाण यह है– (देखो मूलका नकशा)।

चौथी पृथिवीके सातवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध वासठ धनुष और दो हाथ है।

१ तच्चाए ×× उक्कोसेणं एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी। जीवामि. ३, २, १२.

२ एक्क धणू दो हत्था बावीसं अंगुलाणि दो भागा। तियभजिदं णायव्वा मेघाए हाणिवुड्ढीओ॥ सत्तरसं चावाणिं चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा। तियभजिदा मेघाए उदओ तत्तिदयम्मि जीवाणं॥ एक्कोणवीसं दंडा अट्ठावी-संगुलाणि तिहिदाणि। तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो॥ वीसस्स दंडसहियं सीदीए अंगुलाणि होदि तदा। तदियं चिय पुढवीए तवणिंदयणारयम्मि उच्छेहो॥ णउदिपमाणा हत्था तियविहत्ताणि वीस पव्वाणि। मेघाए तवणिंदयठिदाण जीवाण उच्छेहो॥ सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तियविहत्ताणि। उदओ णिदाघणामाए पडले णारया जीवा॥ छव्वीसं चावाणिं चत्तारी अंगुलाणि मेघाए। पज्जलिदणामपडले ठिदाण जीवाण उच्छेहो॥ सत्तावीसं दंडा तिय हत्था अट्ठ अंगुलाणिं च। तियभजिदाइं उदओ उज्जलिदे णारयाण णादव्वो॥ एकोणतीस दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारिं। तियभजिदाइं उदओ संजलिदे तदियपुढवीए॥ इकतीसं दंडाए एक्को हत्थो अ तदिय-पुढवीए। संपज्जलिदे चरिमिंदयणारयाणं होदि उच्छेहो॥ ति. प. २, २४३-२५२.

३ चउत्थीए × वासट्ठी धणूइं दोण्ण रयणीओ। जीवामि. ३, २, १२.

करिय सेस-छ-पत्थडणेरइयाणमुस्सेधो आणेदव्वो । तस्स पमाणमेदं —[1]

प्रस्तार	१	२	३	४	५	६	७
धनुष	३५	४०	४४	४९	५३	५८	६२
हस्त	२	०	२	०	२	०	२
अंगुल	२०$\frac{४}{७}$	१७$\frac{१}{७}$	१३$\frac{४}{७}$	१०$\frac{२}{७}$	६$\frac{६}{७}$	३$\frac{३}{७}$	०

पंचमपुढविपंचमपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो पणुवीसुत्तरसदधणूणि[2] । एदं भूमिं करिय सेसचदुण्हं पत्थडाणमुस्सेधो आणेदव्वो । तेसिं पमाणमेदं —[3]

प्रस्तार	१	२	३	४	५
धनुष	७५	८७	१००	११२	१२५
हस्त	०	२	०	२	०

....

इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष छह पाथड़ोंमें नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ—इस पृथिवीमें मुख का प्रमाण ३१ धनुष, १ हाथ और भूमिका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ है। तथा, प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४ धनुष, १ हाथ और २०$\frac{४}{७}$ अंगुल है।

पांचवीं पृथिवीके पांचवें पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध एकसौ पच्चीस धनुष है। इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष चार पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उसका प्रमाण यह है— (देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ—पांचवीं पृथिवीमें मुखका प्रमाण ६२ धनुष, २ हाथ और भूमिका प्रमाण १२५ धनुष है। तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण १२ धनुष और २ हाथ है।

....

१ चउ दंडा इगि हत्थो पव्वाणि वीस सत्त पडिहत्ता । चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणिवड्ढीओ ॥ पणतीसं दंडाए हत्थाइं दोण्णि वीस पव्वाणिं । सत्तहिदा चउभागा उदओ आरट्ठिदाण जीवाणं ॥ चालीसं कोदंडा वीसब्भहिअं सयं च पव्वाणिं । सत्तहिदं उच्छेहो तुरिमाए मारपडलजीवाणं । चउदालं चावाणिं दो हत्था अंगुलाणि छण्णउदी । सत्तहिदो उच्छेहो तारिंदयसंठिदाण जीवाणं ॥ एक्कोणवण्ण दंडा बाहत्तरि अंगुला य सत्तहिदा । चच्चिदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ तेवण्णा चावाणिं दो हत्था अट्ठताल पव्वाणि । सत्तहिदाणिं उदओ दमगिंदय-संठियाण जीवाणं ॥ अट्ठावण्णा दंडा सत्तहिदा अंगुला य चउवीसं । घादिंदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥ बासट्ठी कोदंडा हत्थाइं दोण्णि तुरिमपुढवीए । चरिमिंदयम्मि खलखलणामाए णारयाण उच्छेहो ॥ ति. प. २,२५३-२६०

२ पंचमीए × पणवीसं धणुसयं । जीवाभि. ३. २, १२.

३ बारस सरासणाणिं दो हत्था पंचमीय पुढवीए । खयवड्ढीए पमाणं णिद्दिट्ठं वीयराएहिं ॥ पणहत्तरिपरिमाणा कोदंडा पंचमीए पुढवीए । पढमिंदयम्मि उदओ तमणामे संठिदाण जीवाणं ॥ सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए खोणीए । पडलम्मि य भमणामे णारयजीवाण उच्छेहो ॥ एक्कं कोदंडसयं झसणामे णारयाण उच्छेहो । चावाणि

छट्ठीए पुढवीए तदियपत्थडणेरइयाणमुस्सेधो अड्ढाइज्जसदधणूणि[1]। एदं भूमिं करिय सेसदोण्हं पत्थडाणमुस्सेधो आणेदव्वो। तस्स पमाणमेदं--[2]

प्रस्तार	१	२	३
धनुष	१६६	२०८	२५०
हस्त	२	१	०
अंगुल	१६	८	०

सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणमुस्सेधो पंचसदधणूणि[3]। तेसिं पमाणमेदं--[4]

प्रस्तार	१
धनुष	५००

एत्थ णेरइएसु उस्सेधअट्ठमभागो विक्खंभो त्ति कट्टु परिट्ठियमद्धं करिय विक्खंभद्धेण गुणियुस्सेहेण गुणिदे णेरइयाणमोगाहणा होदि। ओगाहणं पडि सत्तमपुढवी

....

छठवीं पृथिवीके तीसरे पाथड़ेमें नारकियोंका उत्सेध ढाईसौ धनुष है। इसे भूमिरूपसे स्थापित करके शेष दो पाथड़ोंके नारकियोंका उत्सेध ले आना चाहिये। उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा)।

विशेषार्थ—छठी पृथिवीमें मुखका प्रमाण १२५ धनुष और भूमिका प्रमाण २५० धनुष है। तथा प्रतिपटल वृद्धिका प्रमाण ४१ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल है।

सातवीं पृथिवीके नारकियोंका उत्सेध पांचसौ धनुष है। उसका प्रमाण यह है—(देखो मूलका नकशा)।

यहां नारकियोंमें उत्सेधके आठवें भागप्रमाण विष्कम्भ होता है. ऐसा समझकर, विष्कम्भकी परिधिको आधा करके, और विष्कम्भके आधेसे गुणित करके उत्सेधसे गुणित करनेपर नारकियोंकी अवगाहना होती है। अवगाहनाकी अपेक्षा सातवीं पृथिवी प्रधान है,

....

बारसुत्तरसयमेक्कं अंधयम्मि दो हत्था ॥ एक्कं कोदंडसयं अब्भाहियं पंचवीसरूवेहिं। धूमप्पहाए चरिमिंदयम्मि तिमिसयम्मि उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६१-२६५.

१ छट्ठीए × अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं। जीवाभि. ३, २, १२.

२ एक्कत्तालं दंडा हत्थाइं दोण्णि सोलसंगुलया। छट्ठीए वसुहाए परिमाणं हाणिवड्ढीए ॥ छासट्ठी अधियसयं कोदंडा दोण्णि होंति हत्था य। सोलस पव्वा य पुढं हिमपडलगदाण उच्छेहो ॥ दोण्णि सयाणिं अट्ठाउत्त दंडाणि अंगुलाणं च। बत्तीसं छट्ठीए वंदलठिदजीवउच्छेहो ॥ पण्णासब्भाहियाणिं दोण्णि सयाणि सरासणाणिं च। लल्लंकणामइंदयठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥ ति. प. २, २६६-२६९.

३ सत्तमाए × पंचधणुसयाइं। जीवाभि. ३. २, १२.

४ पंचसयाइं धणूणिं सत्तमअवणीइ अवधिठाणम्मि। सव्वेसिं णिरयाणं काउच्छेहो जिणादेसो ॥ ति. प. २, २७०.

पधाणा, पढमपुढविओगाहणादो सत्तमपुढविओगाहणाए संखेज्जगुणत्तुवलंभादो। दव्वं पडि पढमपुढवी पहाणा, सेसपुढविदव्वादो पढमपुढविदव्वस्स असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो। ओगाहणगुणगारादो दव्वगुणगारो बहुगो त्ति पढमपुढवी पहाणा कायव्वा।

सामण्णेण एत्थ अत्थपदं वुच्चदे। सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा होदि। विहारदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदि-भागो। एदमत्थपदं सव्वत्थ जोजेदव्वं। पुणो अप्पप्पणो रासीओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तोगाहणाए गुणिय चदुहि लोगेहि ओवट्टिदे चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो आगच्छदि। माणुसखेत्तेणोवट्टिदे असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि होंति। णवरि वेयण-कसायेसु णवगुणा[1], वेउव्वियसमुग्घादे संखेज्जगुणा ओगाहणा सव्वत्थ कायव्वा[2]। एवं मारणंतियपदस्स। णवरि ओवट्टणं ठविज्जमाणे पढमपुढविदव्वं पहाणं कायव्वं। कुदो? मारणंतिएहि परिणदजीवस्स तत्थ विग्गहगईए रज्जुअसंखेज्जदिभागमेत्तदीहत्तस्स वि

क्योंकि, पहली पृथिवीकी अवगाहनासे सातवीं पृथिवीकी अवगाहना संख्यातगुणी पाई जाती है। तथा, द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा पहली पृथिवी प्रधान है, क्योंकि, द्वितीयादि शेष छह पृथिवियोंके द्रव्यप्रमाणसे पहली पृथिवीका द्रव्य असंख्यातगुणा पाया जाता है। इसप्रकार सातवीं पृथिवीके अवगाहनाके गुणकारसे पहली पृथिवीके द्रव्यप्रमाणका गुणकार बहुत बड़ा है, इसलिये यहांपर पहली पृथिवीको प्रधान करना चाहिये।

अब सामान्यरूपसे यहांपर अर्थपदका निरूपण करते हैं— स्वस्थानस्वस्थानराशि मूल नारकराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषाय-समुद्धात, और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। यह अर्थपद सर्वत्र जोड़ लेना चाहिये। पुनः अपनी अपनी राशियोंको स्थापित करके, उन्हें अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनासे गुणित करके जो लब्ध आवे उसे सामान्य आदि चार लोकोंसे पृथक् पृथक् भाजित करनेपर, अर्थात् सामान्य आदि चार लोकोंके, तत्प्रमाण खंड करनेपर, चार लोकोंका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है। तथा उक्त प्रमाणको मानुषलोकसे अपवर्तित करनेपर अर्थात् उक्त प्रमाणके मानुषक्षेत्रप्रमाण खंड करनेपर असंख्यात मानुषक्षेत्र आते हैं। इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्धात और कषायसमु-द्धातमें सर्वत्र अवगाहनाको नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्धातमें अवगाहनाको सर्वत्र संख्यात-गुणी कर लेना चाहिये। मारणान्तिकसमुद्धातका कथन इसीप्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पहली पृथिवीके द्रव्यको प्रधान करना चाहिये, क्योंकि, मारणान्तिक समुद्धातसे परिणत हुए जीवके यहां विग्रहगतिमें राजुके

१ वेदणासमुग्घाएणं समोहते ×× सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं नियमा छद्दिसिं ×× प्रज्ञा. ३६, १७. एवं कसायसमुग्घातोवि भाणितव्वो। प्रज्ञा. ३६, १८.

२ वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहते ×× सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्कोसेणं संखिज्जातिं जोयणातिं एगदिसिं विदिसिं वा एवइए खित्ते ×× प्रज्ञा. ३६, १९.

उवलंभादो। तेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपढमपुढविउवक्कमणकालेण ओवट्टिय लद्धस्स असंखेज्जा भागा विग्गहं करेंति। तेसिं पि असंखेज्जा भागा मारणंतियं करेंति त्ति। पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तमारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियरासी आगच्छदि। पुणो णेरइयमुहवित्थारेण णवगुणरज्जुअसंखेज्जदिभागेण मारणंतियरासिं गुणिदे तक्खेत्तं होदि। उववादस्सोवट्टणं ठविज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण विदियपुढविदव्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो विदियपुढवीए उप्पज्जमाणमिच्छाइट्ठिणो होंति। पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिएण उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति। पुणो अवरेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविदे तिरिक्खेहिंतो विग्गहगदीए रज्जुपडिभागेण मारणंतियं करिय उप्पज्जमाणतिरिक्खमिच्छाइट्ठिणो होंति त्ति वत्तव्वं। सव्वत्थ रज्जुमेत्तायामविदियदंडुवलंभादो। पुणो एदं दव्वं तिरिक्खोगाहणमुहवित्थारेण णवरज्जुगुणिदेण गुणेदव्वं। ओवट्टणा पुव्वं व कादव्वा। एवं सासणस्स। णवरि उववादो णत्थि।

असंख्यातवें भागप्रमाण दीर्घता भी पाई जाती है। इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पहली पृथिवीके उपक्रमणकालसे प्रतिसमयमें मरनेवाली राशिको भाजित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव विग्रहको करते हैं। तथा इनके भी असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव प्रति समयमें मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं। पुनः इसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र मारणान्तिकसमुद्घातके उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिक समुद्घातराशि होती है। पुनः नारकियोंके मुखविस्तारसे नौ गुणे राजुके असंख्यातवें भागसे मारणान्तिकराशिको गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र होता है। उपपादकी अपवर्तनाके स्थापित करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे दूसरी पृथिवीसंबन्धी द्रव्यके भाजित करनेपर तिर्यंचोंमेंसे दूसरी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप एक दूसरा भागहार स्थापित करके एक कमसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। पुनः एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करनेपर तिर्यंचोंमेंसे विग्रहगतिमें राजुके प्रतिभागरूपसे मारणान्तिक समुद्घात करके उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि, सर्वत्र राजुमात्र आयामसे युक्त दूसरा दंड पाया जाता है। पुनः इस द्रव्यको नौ गुणी राजुसे गुणित तिर्यंचोंकी अवगाहनाके मुखविस्तारसे करना चाहिये। यहां पर अपवर्तना पहलेके समान करना चाहिये।

इसीप्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि समझना

मारणंतियरासिमिच्छिय दो आवलियाए असंखेज्जदिभागे अण्णोण्णगुणे करिय पुव्वरासिस्स भागहारं ठविय तप्पाओग्गेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि। सेसविधी पुव्वं व। एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स। णवरि मारणंतियं पि णत्थि। असंजदसम्माइट्ठिस्स सासणभंगो। णवरि उववादो अत्थि। मारणंतिय-उववादेसु णेरइया सम्माइट्ठिणो संखेज्जा चेव होंति। सेसं जाणिय वत्तव्वं।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ६ ॥

दव्वट्ठियणयमवलंबिय सुत्तं जदो ट्ठिदं[1] तदो सत्तण्हं पुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति घडदे। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे पढमपुढविपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, सव्वगुणाणं सव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो। ण विदियादिपंचपुढवीणं परूवणा ओघपरूवणाए पदं पडि तुल्ला, तत्थ असंजदसम्माइट्ठीणं उववादाभावादो। ण सत्तमपुढविपरूवणा वि णिरओघपरूवणाए तुल्ला, सासणसम्माइट्ठिमारणंतियपदस्स असं-

चाहिये। इतनी विशेषता है कि उनके उपपाद नहीं पाया जाता है। जब मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त राशिके लानेकी इच्छा हो तब दो बार आवलीके असंख्यातवें भागको परस्पर गुणित करके और उसे पूर्वराशिका भागहार स्थापित करके उसके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशि होती है। शेष विधि पहलेके समान है। इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदि जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके मारणान्तिकसमुद्घात भी नहीं होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदिके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके उपपाद पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादमें सम्यग्दृष्टि नारकी संख्यात ही पाये जाते हैं। शेष कथन जानकर करना चाहिये।

इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

चूंकि यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलंबन लेकर स्थित है, इसलिये सातों पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, यह कथन घटित हो जाता है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर तो पहली पृथिवीकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, क्योंकि, पहली पृथिवीमें सामान्यप्ररूपणासे सर्व गुणस्थानोंकी सर्वपदोंकी अपेक्षा समानता पाई जाती है। किंतु स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा द्वितीयादि पांच पृथिवियोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान नहीं है, क्योंकि, उन पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है। इसीप्रकार सातवीं पृथिवीकी प्ररूपणा भी नारक सामान्यप्ररूपणाके तुल्य नहीं है, क्योंकि, सातवीं पृथिवीमें सासादनसम्यग्दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिकपदका और असंयतसम्य-

१ प्रतिषु 'जदो ट्ठिदं तदो ट्ठिदं' इति पाठः।

जदसम्माइट्ठिमारणंतिय-उववादपदाणं च तत्थ अभावादो। सत्तण्हं पुढवीणं ओगाहणाभेदो मारणंतिय-उववादाणं ठविज्जमाणरज्जुभेदो दव्वविसेसो च वत्तव्वो। पढमपुढविमिच्छाइट्ठि-मारणंतियखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं। कुदो? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागगुणिदतद्दव्वे सेढीए संखेज्जदिभागेण गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो त्ति[1] एगपदेसमादिं कादूण जा उक्कस्सेण सगुप्पत्तिपदेसो त्ति मारणंतियखेत्तायामस्सुवलंभादो[2]। ण चेदमसिद्धं, महामच्छखेत्तट्ठाणपरूवणण्णहाणुववत्तीदो। तत्थ जेण सेढीए असंखेज्जदिभागायामेण मारणंतियं करिय मरंता बहुवा, तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं घडदे।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए ॥ ७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा ओघमिच्छादिट्ठिपरूवणाए तुल्ला। णवरि वेउव्विय-समुग्घादगदजीवा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे, तिरिक्खेसु विउव्वमाणरासी पलि-

---

दृष्टिसंबन्धी मारणान्तिक और उपपाद पदका अभाव है। यहांपर सातों पृथिवियोंकी अवगाहनाका भेद, और मारणान्तिक तथा उपपादका स्थापित होनेवाला राजुभेद और द्रव्यविशेषका कथन करना चाहिये। पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशिको प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः जगश्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र पाया जाता है। तथा एकप्रदेशसे लेकर उत्कृष्टरूपसे अपनी उत्पत्तिके प्रदेशतक मारणान्तिकक्षेत्रका आयाम पाया जाता है, इसलिये भी पहली पृथिवीके मिथ्यादृष्टियोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है। और यह कथन असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि, महामत्स्यके क्षेत्रस्थानकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है। वहांपर चूंकि जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग आयामरूपसे मारणान्तिकसमुद्घातको करके मरनेवाले जीव बहुत हैं, इसलिये तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बन जाता है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा ओघमिथ्यादृष्टि प्ररूपणाके समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यंच जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र घनांगुलोंसे

---

१ प्रतिषु 'त्ति ण' इति पाठः।

२ मारणंतियसमुग्घातेणं ×× सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खम्भबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं असंखेज्जातिं जोयणातिं एगदिसिं एवतिते खेत्ते ×× प्रज्ञा. ३६, १८.

दोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तघणंगुलेहि गुणिदसेढिमेत्तो त्ति गुरूवदेसादो।

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियएहि परिणदसासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। रासिपमाणं भण्णमाणे सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा। सेसरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ। णवरि वेउव्वियसमुग्घादरासी मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागो। कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाणजीवाणं पउरं संभवाभावादो। एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो, एगघणंगुलं वा[2]।

गुणित जगश्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थानतकके तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ८ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातरूपसे परिणत सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान आदि उक्त राशियोंके प्रमाणका कथन करने पर स्वस्थानस्वस्थान जीवराशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है। तथा शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भाग मात्र हैं। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त राशि मूलराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाले जीव प्रचुर संभव नहीं हैं। यहां पर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण अथवा एक घनांगुल है।

विशेषार्थ—यहां पर अवगाहनाका गुणकार जो संख्यात घनांगुल अथवा एक घनांगुल कहा है उसका यह भाव प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण होती है, अतः उसका घनफल लानेके लिए अवगाहनका गुणकार भी संख्यात घनांगुल ही होगा। किन्तु त्रसपर्याप्त तिर्यंचोंकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण ही है। यद्यपि इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाईका पृथक् पृथक् उपदेश आज नहीं पाया जाता है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख गोम्मटसारकी जी. प्र. टीकाकारने

१ बादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा। विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥ पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु। वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति गो. जी. २५८–२५९.

२ गो. जी. ९६.

एवं सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणं । मारणंतियसमुग्घादगद-सासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणे अच्छंति । ओघरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे मरंतसासणसम्मा-इट्ठिरासी होदि । पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण[1] हरिय रूवूणेण गुणिदे मारणं-तियसमुग्घादगदरासी होदि । पुणो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जु-मेत्तायामेण मारणंतियसमुग्घादगद-एगसमयसंचिदरासी होदि । तमावलियाए असंखे-ज्जदिभागेण गुणिदे तक्कालसंचिदरासी होदि । एदं संखेज्जपदरंगुलगुणिदरज्जूए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एवमसंजद-संजदासंजदाणं । सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतियं णत्थि ।

उववादगदसासणसम्माइट्ठी केवडि खेत्ते, चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ रासिपमाणमाणिज्जमाणे मूलरासिमावलियाए असंखेज्जदि-

....

किया है, तो भी उनके घनांगुलका प्रमाण उत्तरोत्तर संख्यातगुणा कहा है । वहांपर पंचेन्द्रिय पर्याप्तजीवोंकी जघन्य अवगाहना एकवार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण कही है । संभवतः धवलाकारने उसी जघन्य अवगाहनाके घनफलको दृष्टिमें रखकर ' एक घनांगुल ' गुणाकारका प्रमाण कहा है ।

इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके भी स्वस्थानस्वस्थान आदिके विषयमें समझना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । ओघराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर मरनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि होती है । फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके एक कम उससे गुणित करने पर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त राशि होती है । फिर भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर रज्जुमात्र आयामकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त एक समयमें संचित जीवराशि होती है । इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक समुद्घातके कालमें संचित हुई राशि होती है । इसे संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित राजुसे गुणा करने पर मारणान्तिकक्षेत्र होता है । इसीप्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके मारणान्तिकसमुद्घातके विषयमें कहना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्घात नहीं होता है ।

उपपादको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां पर सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंकी उपपादराशिका प्रमाण लाने पर मूलराशिको

....

१ प्रतिषु ' भागं ' इति पाठः ।

भाएण भागे हिदे उप्पज्जमाणसासणसम्माइट्ठिरासी होदि। पुणो अवरेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रूवूणेण गुणिदे विग्गहगईए मारणंतिएण उप्पज्जमाणरासी होदि। संखेज्जा भागा मारणंतियं कादूणुप्पज्जंति त्ति के वि भणंति, एदं जाणिय वत्तव्वं। णत्थि एत्थ मज्झणियमो। तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे उज्जुदो[1] आगच्छमाणरासी होदि। एदस्स पदरंगुलस्स संखेज्जदिभाएण गुणिदरज्जुं गुणगारं ठविदे उववादखेत्तं होदि। एत्थ ओवट्टणा पुव्वं व। एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स। णवरि उववादे संखेज्जा होंति, पुव्वं बद्धायुगमणुस्ससम्मादिट्ठीहि विणा अण्णेसिं तत्थ उववादाभावादो। ओगाहणगुणगारो वि संखेज्जपदरंगुलमेत्तो, एगपदरंगुलमेत्तो वा। सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजदाणं उववादं णत्थि।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर उत्पन्न होनेवाली सासादनसम्यग्दृष्टि राशि होती है। पुनः एक दूसरे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर और एक कम उक्त भागहारसे गुणित करनेपर विग्रहगतिमें मारणान्तिकसमुद्घातसे उत्पन्न होनेवाली जीवराशि है। उत्पन्न होनेवाली राशिके संख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घात करके उत्पन्न होते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, इसलिये इसको जानकर कथन करना चाहिये। किन्तु इस विषयमें कोई मध्यम नियम नहीं है। इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर ऋजुगतिसे आनेवाली राशिका प्रमाण होता है। प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे राजुको गुणित करके जो लब्ध आवे उसे इस राशिका गुणकार स्थापित करने पर उपपादक्षेत्र होता है। यहां पर अपवर्तना पहलेके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका उपपाद जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपपादमें असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच संख्यात ही होते हैं; क्योंकि, जिन मनुष्योंने सम्यग्दर्शनके पहले तिर्यंचायुका बंध कर लिया है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके विना दूसरे सम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है। इनकी अवगाहनाका गुणकार भी संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण अथवा एक प्रतरांगुलमात्र है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके उपपाद नहीं होता है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ९ ॥

१ प्रतिषु 'रज्जुदो' इति पाठः।

एदं[1] पि देसामासियं सुत्तमेव, संगहिदाणेगसुत्तत्थादो । तं जहा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तरासिं मोत्तूण पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तरासी चेव घेत्तव्वो, अपज्जत्तोगाहणादो पज्जत्तोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तुवलंभादो । एत्थ सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जभागमेत्ता होदि । सेसरासीओ तस्स संखेज्जदिभागमेत्तीओ । एत्थ ओगाहणगुणगारो संखेज्जघणंगुलमेत्तो । ओवट्टणं जाणिदूण कादव्वं । एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छादिट्ठीणं । वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीमिच्छाइट्ठीणं । मारणंतियसमुग्घादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तरासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारस्स

यह भी सूत्र देशामर्शक ही है, क्योंकि, इसमें अनेक सूत्रोंका अर्थ संग्रहीत है उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवराशिको छोड़कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त राशिका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, अपर्याप्तोंकी अवगाहनासे पर्याप्तोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी पाई जाती है । यहांपर स्वस्थानस्वस्थानराशि मूलराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण होती है । शेष राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागमात्र होती हैं। यहांपर अवगाहनाका गुणकार संख्यात घनांगुलप्रमाण है । अपवर्तनाका कथन जानकर करना चाहिये । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंकी स्वस्थानस्वस्थानराशि आदि समझना चाहिये । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका वैक्रियिकसमुद्घातगत क्षेत्र जानना चाहिये । मारणांतिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक इन तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्तराशिका भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाया जाता है ।

१ मप्रतौ ' एवं ' इति पाठः

सत्तादो। तं कधं ? संखेज्जवस्साउअतिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण तेरासियकमेण भागे हिदे मरंतपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठिपमाणं होदि। एत्थ उवक्कमणकालागमणविधी वुच्चदे- संखेज्जावलियासु जदि आवलियाए असंखेज्जदिभागो णिरंतरुवक्कमणकालो लब्भदि, तो उवक्कमणाणुवक्कमणप्पयम्मि आयुट्ठिदिम्हि केत्तियमुवक्कमणकालं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदमिच्छमोवट्टिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालो लब्भदि। एवं संखेज्जवस्साउअरासीणं सांतराणमुवक्कमणकालो अण्णेसिं पि आणेदव्वो[1]। पुणो मारणंतियरासिमिच्छिय अवरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय रूवूणेण गुणिय रज्जुआयामेण ट्ठिदरासिमिच्छिय अण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागहारो ठवेयव्वो। पुणो एत्थतणसंचयमिच्छिय मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिय पुणो एदं रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलेहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि। एदेण तिण्णि लोगे भागे हिदे

....

शंका — यह कैसे ?

समाधान — संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे त्रैराशिक क्रमसे भाजित करने पर प्रत्येक समयमें मरनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है।

अब यहां पर उपक्रमणकालके लानेकी विधिको कहते हैं—संख्यात आवलियोंके भीतर यदि आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण निरन्तर उपक्रमणकाल प्राप्त होता है, तो उपक्रमण और अनुपक्रमणरूप आयुकी स्थितिके भीतर कितने उपक्रमणकाल प्राप्त होंगे, इसप्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण फलराशिसे उपक्रमण और अनुपक्रमणात्मक आयुकी स्थितिरूप इच्छाराशिको गुणित करके और संख्यात आवलीप्रमाण प्रमाणराशिका भाग देने पर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है। इसीप्रकार संख्यात वर्षकी आयुवाली अन्य सान्तर राशियोंका भी उपक्रमणकाल ले आना चाहिये। पुनः यहां मारणान्तिक राशिका प्रमाण लाना है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार स्थापित करके और एक कम उसीसे गुणित करके राजुप्रमाण आयामकी अपेक्षा स्थित राशि लाना इच्छित है, इसलिये एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागरूपसे भागहार स्थापित करना चाहिये। पुनः यहांपर मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवराशिका संचय इच्छित है, इसलिये मारणान्तिकसंबन्धी उपक्रमणकाल आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करके पुनः क्षेत्र लानेके लिये इस राशिको राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करने पर मारणान्तिकक्षेत्रका प्रमाण होता है। इस क्षेत्रके प्रमाणसे सामान्यलोक आदि

....

१ सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासट्ठिदिवाणे। आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥ गो. जी. २६५

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति सिद्धं । तिरिय-णरलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं । उववादगदपंचिंदियतिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । एत्थ उववादखेत्तमाणिज्जमाणे मारणंतियभंगो । णवरि पढमं उवसंहरिय विदियदंडट्ठिय-जीवे इच्छिय अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो, असंखेज्ज-जोयणविदियदंडायामजीवाणं बहूणमणुवलंभादो । एसो एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणगारं अवणिदे रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलाणि गुणगारो होदि । एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीणं वत्तव्वं । सेसगुणट्ठाणाणं तिरिक्खोघभंगो । णवरि जोणिणीसु असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि ।

तीनों ही लोकोंके भाजित करने पर पल्योपमका असंख्यातवां भाग आता है, इसलिये सामान्य लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव रहते हैं, यह बात सिद्ध हुई। तथा मारणान्तिकसमुद्घातगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव तिर्यग्लोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये।

उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। यहां पर उपपाद-क्षेत्रके लाते समय मारणान्तिकक्षेत्रके समान कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथम दंडका उपसंहार करके दूसरे दंडमें स्थित जीवोंका प्रमाण लाना इच्छित है, इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये, क्योंकि, असं-ख्यात योजन आयामवाले दूसरे दंडमें स्थित जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं। यह एक समयमें संचित जीवराशि हुई, इसलिये आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणकारके अपनीत करने पर राजुसे गुणित संख्यात प्रतरांगुल गुणकार होता है। इसीप्रकार उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और योनिमतियोंका कथन करना चाहिये। उपपादकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंका कथन तिर्यंच ओघके कथनके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है।

विशेषार्थ— यहांपर जो प्रथम दंड आदिका कथन किया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि विग्रहगतिमें मरणक्षेत्रसे लगाकर प्रथम मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह प्रथम दंड है। तथा प्रथम मोड़ेसे लगाकर द्वितीय मोड़े तक जीवका जो सीधा गमन होता है वह द्वितीय दंड है। इसीप्रकारसे तीसरा दंड भी समझना चाहिए।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदि-भागे ॥ १० ॥

एदस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? उस्सेदघणंगुलं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदमेत्तोगाहणत्तादो । अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । विहार-वदिसत्थाणं वेउव्वियसमुग्घादो य णत्थि । मारणंतिय-उववादगदा केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । कुदो ? रासिस्स भागहारभूदा होदूण जहाकमेण दोण्णि तिण्णि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा लब्भंति त्ति । तिरिय-माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । सुगममेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ११ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १० ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उत्सेध घनांगुलको पल्योमके असंख्यातवें भागसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवकी अवगाहना है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात नहीं पाया जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, राशिके भागहार-रूप होकर यथाक्रमसे अर्थात् मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा दो वार पल्योपमके असंख्यातवें भाग और उपपादकी अपेक्षा तीन वार पल्योपमका असंख्यातवां भाग पाया जाता है। तथा तिर्यग्लोक और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादके प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव रहते हैं। इसप्रकार इसका व्याख्यान सुगम है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ११ ॥

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदीसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। कुदो ? मणुसपज्जत्तमिच्छाइट्ठिखेत्तग्गहणादो। सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तमणुसअपज्जत्ताणं खेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जंगुलेसु वा अवट्ठाणादो। मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-णरलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। कुदो ? पहाणीकदमणुसअपज्जत्तरासीदो। एवमुववादस्स वि णवरि एगो आवलियाए असंखेज्जदि भागो दोण्णि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागा च मणुसअपज्जत्तरासिस्स भागहारा ठ्वेदव्वा।

सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउव्वियसमुग्घादेहि परिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य पर्याप्त मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका ग्रहण किया है।

शंका— अपर्याप्त मनुष्य जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, अतएव यहां उनके क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पर्याप्त मनुष्यका अवस्थान अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें पाया जाता है, इसलिये यहांपर अपर्याप्त मनुष्योंके क्षेत्रका ग्रहण नहीं किया है।

मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर मनुष्य अपर्याप्तराशिकी प्रधानता है। इसीप्रकार उपपादका भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तराशिके एकवार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण और दो वार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिये।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातसे परिणत हुए सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्य लोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए

असंखेज्जगुणे। सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादपरिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदि-भागे। संजदासंजदा सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घाद-परिणदा केवडि खेत्ते ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। पमत्तसंजदप्पहुडिं जाव अजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि मिच्छाइट्ठीणं सासणसम्माइट्ठिभंगो। मणुसिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि। पमत्ते तेजाहारसमुग्घादा णत्थि।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, ओघं[1] ॥ १२ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो मूलोघमवधारिय लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा त्ति वत्तव्वो।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यागुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातरूपसे परिणत हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन पदोंसे परिणत हुए संयतासंयत मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिक-समुद्घातको प्राप्त हुए संयतासंयत मनुष्य सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक मनुष्योंके यथासंभव स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंका क्षेत्र मूलोघप्ररूपणाके समान जानना चाहिये। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मिथ्यादृष्टियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंके समान कथन है। मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद नहीं पाया जाता है। इसीप्रकार उन्हींके प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं पाया जाता है।

सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ओघप्ररूपणामें सयोगिजिनोंका जो क्षेत्र कह आये हैं, तत्प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ, मूलोघ सूत्रका निश्चय करके सयोगिकेवली जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, इसप्रकार कहना चाहिये।

---

१ सयोगिकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८,

मणुसअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १३ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादेहि परिणदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे णिचिदकमेण। विण्णासकमेण पुण असंखेज्जाणि माणुसखेत्ताणि। मारणंतियसमुग्घादो माणुसोघतुल्लो। मारणंतियखेत्तं ठविज्जमाणे सूचिअंगुलपढम-तदियवग्गमूले गुणेदूण सेढिम्हि भागे हिदे दव्वं होदि। तम्हि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयम्हि मरंतरासी होदि। तं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिय रूवूणेण गुणिदे एगसमयसंचिदमारणंतियरासी होदि। पुणो तमावलियाए असंखेज्जदिभाएण मारणंतिय उवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियकालब्भंतरे संचिदरासी होदि। पुणो अवरेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुआयामेण मुक्कमारणंतियरासी होदि रज्जुआयस्स विक्खंभो पदरंगुले पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ओवट्टिदे होदि। एवमुववादस्स वि। णवरि एगसमयसंचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणगारो अवणेदव्वो। विदियदंडे सेढीए संखेज्जदिभागायामेण मुक्क-

---

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कपायसमुद्घातसे परिणत हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य निचितक्रमसे सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। विन्यासक्रमसे तो असंख्यात मनुष्यक्षेत्र लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र है। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका क्षेत्र ओघमनुष्यप्ररूपणाके समान है। मारणान्तिकक्षेत्रके स्थापित करनेपर सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलको परस्पर गुणित करके जो राशि आवे उसका जगश्रेणीमें भाग देनेपर लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका द्रव्यप्रमाण होता है। इसमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशिका प्रमाण होता है। इसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करके और एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यराशि होती है। पुनः इस राशिको आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिकालके भीतर संचित जीवराशिका प्रमाण होता है। पुनः इसे एक दूसरे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्घात जिन्होंने, ऐसे लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी राशि होता है। प्रतरांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर राजुप्रमाण आयतक्षेत्रका विस्तार होती है। इसीप्रकार उपपादका भी क्षेत्र समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपपादराशि एक समयमें संचित होती है, इसलिये ऊपर जो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणाकार कह आये हैं वह निकाल देना चाहिये। अब दूसरे दंडमें जगश्रेणीके संख्यातवें भाग आयामरूपसे किया है मारणान्तिकसमुद्घात जिन्होंने, ऐसे

मारणंतियजीवे इच्छामो त्ति अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगददेवमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? पधाणीकदजोइसियरासित्तादो। मारणंतिय-उववादपरिणदमिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ खेत्तपमाणं जाणिय ठ्वेदव्वं। सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ॥ १५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूचिद-अत्थो वुच्चदे। तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-उववादपरिणदभवणवासियमिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगा-

---

जीवोंको लाना इष्ट है, इसलिये एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए देव मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर ज्योतिष्क देवराशि प्रधान है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादरूपसे परिणत हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर क्षेत्रके प्रमाणको जानकर स्थापित करना चाहिये। देवोंके शेष गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके समान है।

भवनवासी देवोंसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकके विमानवासी देवों तकका क्षेत्र इसीप्रकार होता है ॥ १५ ॥

अब इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित हुए अर्थको कहते हैं। वह इसप्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और उपपादरूपसे परिणत हुए भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके

---

१ देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

णमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिणो कण्णागारेण ट्ठिदभवणवासियखेत्तेसु उप्पज्जमाणा वे विग्गहे कादूण सेढीए संखेज्जदिभागायामेण उप्पज्जंता संभवंति, तदो तिरियलोगादो असंखेज्जगुणेण उववादखेत्तेण होदव्वमिदि ? सच्चमेदं जइ सेढीए संखेज्जदिभागमेत्तायामो उववादखेत्तस्स लब्भइ। किंतु संखेज्ज-सूचिअंगुलमेत्तो चेव। एत्तो संखेज्जजोयणाणि हेट्ठा गंतूण भवणवासियविमाणाणमव-ट्ठाणाणुवलंभादो। ण च तिरियलोगे सव्वत्थ तदवासा, तिरियलोगस्स मज्झिमासंखेज्जदि-भागे चेव तेसिमत्थित्तदंसणादो। ण च उवरिमदेवेसुप्पज्जमाणतिरिक्खाणं व भवणवासिए-सुप्पज्जमाणतिरिक्ख-मणुस्साणं सगुप्पत्तिदिसं मुच्चा तिरिच्छेण गमणमत्थि, कंडुज्जुवाए गईए भवणवासियजगपणिधिमागंतूण हेट्ठावलिए भवणवासिएसुप्पत्तिदंसणादो। एदं कुदो णव्वदे ? भवणवासियाणमुववादखेत्तस्स तिरियलोगासंखेज्जदिभागत्तण्णहाणुववत्तीदो। सगच्छिदट्ठाणादो हेट्ठा ओयरिय भवणवासिएसुप्पज्जमाणाणमुववादखेत्तायामो सेढीए संखेज्जदिभागो लब्भदि त्ति तग्गहणं जुत्तं, तहा तत्थुप्पज्जमाणाणं सुट्ठु त्थोवत्तादो। एदं

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, और अढाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका—कर्णरेखाके आकारसे स्थित भवनवासियोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव दो विग्रह करके जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामरूपसे उत्पन्न होते हुए पाये जाना संभव है, इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होना चाहिए ?

समाधान—यदि उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता, तो यह उक्त कथन सत्य होता। किन्तु, उपपादक्षेत्रका आयाम संख्यात सूच्यंगुलमात्र ही है, क्योंकि इससे संख्यात योजन नीचे जाकर भवनवासियोंके विमानोंका अवस्थान नहीं पाया जाता है, तथा तिर्यग्लोकमें भी सर्वत्र भवनवासियोंके आवास नहीं है, क्योंकि, तिर्यग्लोकके मध्यवर्ती असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही भवनवासी देवोंका अस्तित्व देखा जाता है। दूसरे, उपरिम देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंचोंके समान भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्योंका अपनी उत्पत्तिकी दिशाको छोड़कर तिरछा गमन होता हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि मनुष्य और तिर्यंचोंकी बाणके समान सीधी गतिसे भवनवासी लोकके समीप आकर अधस्तनश्रेणीमें स्थित भवनवासी देवोंमें उत्पत्ति देखी जाती है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्यथा बन नहीं सकता है, इससे उक्त कथन जाना जाता है।

अपने रहनेके स्थानसे नीचे जाकर भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तिर्यंचोंके उपपादक्षेत्रका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है, इसलिये उसका ग्रहण उपयुक्त है किन्तु, उक्त प्रकारसे उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव स्वल्प होते हैं।

कुदो णव्वदे ? तिरियलोगस्सासंखेज्जदिभागे त्ति वक्खाणादो। मारणंतियसमुग्घादगद-मिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो वि असंखेज्जगुणे। सेसमोघं। णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि। वाणवेंतर-जोइसियाणं देवोघभंगो। णवरि असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू चेय।
वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा[1] ॥ १८ ॥

एदम्हादो उस्सेहादो एत्थ ओगाहणखेत्तमाणेदव्वं। सोधम्मीसाणे सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदमिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे। एत्थ सगलखेत्तपरिक्खा भवणवासियभंगो। अप्पणो ओहिखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति त्ति जं आइरियवयणं[2] तण्ण घडदे, लोगस्स असं-

---

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—उपपादपरिणत भवनवासी देव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते है, इसप्रकारके व्याख्यानसे उक्त कथन जाना जाता है।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें और अढ़ाई-द्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। शेष कथन ओघप्ररूपणाके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भवनवासियोंमें उपपाद नहीं होता है। वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र देवसामान्यके क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि-योंका वानव्यन्तर और ज्योतिषियोंमें उपपाद नहीं होता है।

भवनवासियोंके दश भेदोंमेंसे प्रथम भेद असुरकुमारोंके शरीरकी ऊंचाई पचीस धनुष और शेष नौ कुमारोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष है। तथा व्यन्तर देवोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊंचाई सात धनुष जानना चाहिये ॥ १८॥

इस उपर्युक्त उत्सेधसे यहां अवगाहनाक्षेत्र ले आना चाहिये। सौधर्म और ईशान कल्पमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त हुए मिथ्यादृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर सर्व पदगत क्षेत्रोंकी परीक्षा भवनवासियोंके क्षेत्रके समान करना चाहिये। देव अपने अपने अवधिज्ञानके क्षेत्र-प्रमाण विक्रिया करते हैं, इसप्रकार जो अन्य आचार्योंका वचन है वह घटित नहीं होता है,

---

१ त्रि. सा. २४९. तत्र चतुर्थचरणे 'दस सत्त सरीरउदओ दु' इति पाठः।

२ केसा वेंतरदेवा णिय-णिय-ओहीण जेत्तियं खेत्तं। पूरंति तेत्तियं पि हु पत्तेक्कं विकरणबलेण। ति. प. ५, ९६.

खेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियखेत्तस्सप्पसंगादो । मारणंतिय-उववादाणं देवोघभंगो । उववादखेत्तं ठविज्जमाणे विक्खंभसूचीगुणिदसेढिं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाएण सोहम्मीसाणउवक्कमणकालेण ओवट्टिदे उप्पज्जमाणजीवा होंति । असंखेज्जजोयणविदियदंडेण उप्पज्जमाणजीवे इच्छिय अवरो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो । एक्कपदरंगुलविक्खंभेण सेढीए संखेज्जदिभागायामेण खेत्तं फुसंति त्ति पदरंगुलगुणिदसेढीए संखेज्जदिभागो गुणगारो ठवेदव्वो । सव्वत्थ उजुगदीए उप्पज्जमाणजीवेहिंतो विग्गहगदीए उप्पज्जमाणजीवा असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेढीदो उस्सेढीए बहुत्तुवलंभादो । भवणवासियउववादखेत्तं व तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो किं ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, पभापत्थडे उप्पज्जमाणाणं तिरिक्खाणं सव्वेसिं पि सेढीए संखेज्जदिभागायामो विदियदंडस्स लब्भदे, तेणेदमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं त्ति । सेसगुणट्ठाणाणं देवभंगो । सणक्कुमारप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छादिट्ठी ओघभंगो ।

क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकसमुद्धातगत क्षेत्रके माननेका प्रसंग आ जाता है । सौधर्म और ईशानकल्पमें देवमिथ्यादृष्टियोंके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादसम्बन्धी क्षेत्र देवसामान्यके मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादगतके समान जानना चाहिये । उपपादक्षेत्रके स्थापित करते समय सौधर्म-ऐशान देवमिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित जगश्रेणीको स्थापित करके पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप सौधर्म और ऐशानसम्बन्धी उपक्रमणकालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः असंख्यात योजनरूप दूसरे दंडसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंका लाना इष्ट है, ऐसा समझकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण एक दूसरा भागहार स्थापित करना चाहिये । तथा एक प्रतरांगुल प्रमाण विष्कम्भसे और जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे क्षेत्रके स्पर्श करते हैं, इसलिये प्रतरांगुलगुणित जगश्रेणीका संख्यातवां भागप्रमाण गुणकार स्थापित करना चाहिये । सर्वत्र ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि, श्रेणीकी अपेक्षा उच्छ्रेणियां बहुत पाई जाती हैं ।

शंका—सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र भवनवासी देवोंके उपपादक्षेत्रके समान तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों नहीं आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म ईशान कल्पके इकतीसवें प्रभापटलमें उत्पन्न होनेवाले सभी तिर्यंचोंके दूसरे दंडका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है । इसलिये सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, यह सिद्ध हुआ । सौधर्म और ईशानकल्पके देवोंके शेष गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रका कथन देवसामान्यके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके समान जानना चाहिये । सनत्कुमारकल्पसे लेकर उपरिम-उपरिमग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि देवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ मिथ्यादृष्टिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रके समान है । तथा उन्हींके सासादन-

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओघभंगो ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगद-असंजदसम्माइट्ठिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वत्तव्वं । णवरि सव्वट्ठे सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेसु माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कधं ? सव्वट्ठे वेदण-कसायसमुग्घादाणं तेहिंतो समुप्पज्जमाणथोवविप्फुज्जणं पडुच्च तधोवदेसादो, कारणे कज्जोवयारादो वा ।

एवं गदिमग्गणा समत्ता ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[1] ॥ १७ ॥

सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्र ओघ-सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि क्षेत्रोंके समान होते हैं ।

नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा यहां कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धात इन स्थानोंमें देव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिमें वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत देवोंके उनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाला स्तोक विस्फूर्जन होता है, अर्थात् उक्त दोनों समुद्धातोंमें आत्मप्रदेशोंका बाह्य विस्तार बहुत कम होता है, इस अपेक्षा उक्त प्रकारका उपदेश दिया है । अथवा, कारणमें कार्यके उपचारसे उक्त प्रकारका उपदेश दिया है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रियजीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १७ ॥

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां क्षेत्रं सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

एत्थ लोगणिद्देसेण पंचण्हं लोगाणं गहणं, देशामर्शकत्वाल्लोकस्य । बादर-सुहु-मादिवयणेण सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदजीवाणं गहणं, छव्विहावत्थावदिरित्तबादरादीणमभावादो । तदो सव्वसुत्ताणि देसामासिगाणि चेव ? ण एस णियमो वि, उभयगुणोवलंभा । सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एइंदिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण विण्णायदे, संपहियकाले विसिट्ठुवएसाभावा । तं जहा– वेउव्वियमुट्ठावेंत-रासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अहवा तस्स ओगाहणा उस्सेहघणंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । विउव्वमाण-एइं-

इस सूत्रमें लोक पदके निर्देशसे पांचों लोकोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहां लोक पदका निर्देश देशामर्शक है । सूत्रमें बादर और सूक्ष्म आदि वचनसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदसे परिणत हुए जीवोंका ग्रहण किया है, क्योंकि, उक्त छह प्रकारकी अवस्थाओंके अतिरिक्त बादर आदि जीव नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है, तो सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं ?

समाधान—सर्व सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम भी नहीं है, क्योंकि, सूत्रोंमें दोनों प्रकारके धर्म पाये जाते हैं । अर्थात् कुछ सूत्र देशामर्शक हैं और कुछ नहीं, इसलिये सभी सूत्र देशामर्शक ही हैं, यह नियम नहीं किया जा सकता है ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात, और उपपादको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए एकेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं, क्योंकि, वर्तमानकालमें इसप्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता है । आगे इसी विषयका स्पष्टीकरण करते हैं–विक्रियाको उत्पन्न करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अथवा, विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ।

शंका—उत्सेधघनांगुलमें जिसका भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है, उस असंख्यातवें भागका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अर्थात् पल्योपमके असं-ख्यातवें भागका उत्सेधघनांगुलमें भाग देनेसे उत्सेधघनांगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है जो विक्रियात्मक एकेन्द्रिय जीवके शरीरकी अवगाहना है ।

ऊपर विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि भी पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

दियरासीदो घणंगुलस्स भागहारो किमप्पो बहुगो समो वा इदि ण[1] णव्वदे ? जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होदि, तो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। अह असंखेज्जगुणो, तो असंखेज्जदिभागे। अह सरिसो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। ण च एत्थ एदं चेव होदि त्ति णिच्छओ अत्थि, तदो माणुसखेत्तं ण णव्वदि त्ति सिद्धं।

बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोएहिंतो असंखेज्जगुणे। तं जहा– मंदरमूलादो उवरि जाव सदर-सहस्सारकप्पो त्ति पंचरज्जु-उस्सेधेण लोगणाली समचउरंसा वादेण आउण्णा, तं जगपदरं कस्सामो। एक्कुणवंचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्भदि, तो पंचरज्जु-पदराणं किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्टिदे[2] बे-पंचभागूण-एगूणसत्तरिरूवेहि

प्रमाण बतलाई है और उत्सेधघनांगुलका भागहार भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, इसलिये विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार क्या छोटा है, या बड़ा है, या समान है, यह कुछ नहीं जाना जाता है। अब यदि एकेन्द्रिय वैक्रियिकराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, ऐसा लेते हैं तो विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, ऐसा अभिप्राय निकलता है। अथवा, विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेध-घनांगुलका भागहार असंख्यातगुणा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है, यह अभिप्राय होता है। और यदि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशिसे उत्सेधघनांगुलका भागहार समान है, ऐसा लेते हैं तो वह राशि मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है यह अभिप्राय होता है। परंतु यहांपर मानुषक्षेत्रका इतना ही भाग लिया गया है, ऐसा कुछ भी निश्चय नहीं है, इसलिये मानुषक्षेत्रके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जाना जाता है कि विक्रिया करनेवाली एकेन्द्रिय जीवराशि उसके कितने भागमें रहती है, यह सिद्ध हुआ।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—मन्दराचलके मूल भागसे लेकर ऊपर शतार और सहस्रारकल्प तक पांच राजु उत्सेधरूपसे समचतुरस्र लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है। अब उसे जगप्रतरके प्रमाणस्वरूप करते हैं— यदि उनंचास प्रतरराजुओंके एक पटलका एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पांच प्रतरराजुओंका क्या प्राप्त होगा, इसप्रकार त्रैराशिक करके एक जगप्रतरप्रमाण फल-राशिसे पांच प्रतरराजुप्रमाण इच्छाराशिको गुणित करके उनंचास प्रतरराजुप्रमाण प्रमाण-

१ प्रतिषु 'ण' इति पाठो नास्ति। २ प्रतिषु '-दों चे' इति पाठः।

घणलोगे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । लोगपेरंतवादखेत्तं संखेज्जजोयणवाहल्लं जगपदरं पुव्वपरूविदमाणेदूण एत्थेव पक्खित्तिय अट्ठपुढविखेत्तं तेसिं हेट्ठा ट्ठिदवादजगपदरं संखेज्जजोयणवाहल्लमाणेदूण पक्खित्ते जेण लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्ताणं खेत्तं जादं, तेण वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्ता[1] लोगस्स संखेज्जदि-भागे होंति त्ति सिद्धं । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं एइंदिओघभंगो । मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे । वादरेइंदियअपज्जत्ताणं वादरेइंदियभंगो । णवरि वेउव्वियपदं णत्थि । सुहुमेइंदिया तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ता य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे, सुहुमाणं सव्वत्थ अच्छणं पडि विरोहाभावादो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ १८ ॥

राशिसे भाजित करनेपर, दो बटे पांच कम उनहत्तरसे घनलोकके भाजित करनेपर जो एक भाग होता है उतना लब्ध आता है, जो कि ५ घनराजु प्रमाण है ।

उदाहरण—१ × ५ = ५, ५ ÷ ४९ = $\frac{५}{४९}$ जगप्रतर । चूंकि यह वातपरिपूर्ण क्षेत्र १ राजु मोटा है, अतएव ५ घनराजु हुआ, जो कि $\frac{३४३}{१} \div ६८\frac{३}{५} = \frac{५}{३४३}$ घनलोक प्रमाण होता है।

तथा पहले प्ररूपित किये गये लोकके चारों ओर प्रान्तभागमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर इसी पूर्वोक्त वातक्षेत्रमें मिलाकर तथा आठों पृथिवियोंके क्षेत्र और उनके नीचे स्थित वायुक्षेत्र, जो कि संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण हैं, उनको उसी पूर्वोक्त क्षेत्रमें मिला देनेपर चूंकि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र होता है, इसलिये बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र वैक्रियिकसमुद्घातगत सामान्य एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान होता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका क्षेत्र बादर एकेन्द्रियोंके समान होता है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म जीवोंके सर्व लोकमें पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव और उन्हींके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव

१ प्रतिषु ' वादरेइंदिय० खेत्तं जादं । तेण वादरेइंदियपज्जत्ताणं ' इति पाठः ।

२ विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घाद-परिणदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। णवरि तिण्हमपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो वि असंखेज्जगुणे। एत्थ मारणंतियखेत्तमाणिज्जमाणे बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-उवक्कमणकालेण खंडियं तस्स असंखेज्जदिभागो वा संखेज्जदिभागो वा मारणंतिएण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जा भागा संखेज्जा भागा[1] वा घेत्तूण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभाएण गुणिदे मारणंतियरासी होदि। रज्जुमेत्तायामेण छिदरासिमिच्छामो त्ति पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहारं ठविय अप्पप्पणो विक्खंभवग्गगुणिदरज्जूए गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि। उववादखेत्तं ठविज्जमाणे एदं चेव ठविय मारणंतिय-उवक्कमण-

कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत हुए उक्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इतनी विशेषता है कि तीनों ही विकलेन्द्रियोंके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। मारणांतिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए तीनों विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें तथा अढ़ाईद्वीपसे भी असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर मारणान्तिकक्षेत्रके लाते समय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा उनकी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवराशिको स्थापित कर उसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे खंडित करके उसका जो असंख्यातवां भाग अथवा संख्यातवां भाग लब्ध आवे, उतनी राशि मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करती है। इसलिये इस राशिके असंख्यात बहुभाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण राशिको ग्रहण करके उसे मारणान्तिकसमुद्धातके उपक्रमण कालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर मारणान्तिक जीवराशि होती है। यहां एक राजुमात्र आयामसे स्थित मारणान्तिक जीवराशि इच्छित है, इसलिये उक्त राशिके नीचे भागहारके स्थानमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भागहारको स्थापित करके और अपने अपने विष्कंभके वर्गसे गुणित राजुसे उक्त राशिके गुणित करने पर मारणान्तिकसमुद्घातगत विकलत्रय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र होता है। उपपादक्षेत्रके लाते समय इसी मारणान्तिक जीवराशिको स्थापित करके और उसमेंसे मारणा-

१ प्रतिषु 'असंखेज्जा भागं संखेज्जा भागं' इति पाठः।

कालगुणगारमवणिदे एगसमयसंचिदो मारणंतियरासी होदि । तस्स असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उप्पज्जंति त्ति तस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण ओवट्टिदे सेढीए संखेज्जदिभागायामेण विदियदंडट्ठिदरासी होदि ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि-केवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ १९ ॥

एदस्स अत्थो-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगद-पंचिंदियमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एदाणं खेत्ताणमाणयणं पुव्वं व कादव्वं । सासणादीण-मोघभंगो । एवं पज्जत्ताणं पि वत्तव्वं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २० ॥

न्तिक उपक्रमणकालके गुणकारको निकाल लेने पर एक समयमें संचित हुई मारणान्तिक जीवराशि होती है । एक समयमें संचित हुई इस मारणान्तिक जीवराशिके असंख्यात बहुभाग जीव विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिये उसके असंख्यात भागको ग्रहण करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करने पर जगश्रेणीके संख्यातवें भाग आयामरूपसे दूसरे दंडमें स्थित जीवराशि होती है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगि-केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानके जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असं-ख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ १९ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इन क्षेत्रोंको पहलेके समान ले आना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि आदिका स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्र ओघसासादनसम्यग्दृष्टि आदिके स्वस्थानस्वस्थान आदि पदगत क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार पर्याप्तोंके क्षेत्रका भी कथन करना चाहिये ।

सयोगिकेवलियोंका क्षेत्र सामान्यप्ररूपणाके समान है ॥ २० ॥

१ पंचेन्द्रियाणां मनुष्यवत् । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति ण वुच्चदे ।

पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २१ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदपंचिंदियअपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-ओगाहणादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

एवमिंदियमग्गणा गदा ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्वलोगे[१] ॥ २२ ॥

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा पहले कर आये हैं, इसलिये यहां पर पुनः उसका कथन नहीं करते हैं ।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रियोंकी अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांच बादर कायसम्बन्धी अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २२ ॥

---

१ कायानुवादेन पृथिवीकायादिवनस्पतिकायिकान्तानां सर्वलोकः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– पुढविकाइया सुहुमपुढविकाइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता, आउकाइया सुहुमआउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, तेउकाइया सुहुमतेउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता, वाउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए, असंखेज्जलोगमेत्त-परिमाणादो । णवरि तेउकाइया वेउव्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, वाउकाइया वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । बादरपुढविकाइया तेसिं चेव अपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे[1], अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तं जहा– जेण बादरपुढविकाइया सापज्जत्ता पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति, तेण पुढवीओ जगपदरपमाणेण कस्सामो । [2]तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुदीहा वीस-सहस्सूण-वे-जोयणलक्खबाहल्ला, एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तमभागबाहल्लं जगपदरं होदि ।

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए पृथिवीकायिक और सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, अप्कायिक और सूक्ष्म अप्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, तैजस्कायिक और सूक्ष्म तैजस्कायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव, वायुकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त राशियोंका परिमाण असंख्यात लोकप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई तैजस्कायिकराशि पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुई वायुकायिकराशि मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहती है, यह नहीं जाना जाता है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–चूंकि बादर पृथिवीकायिक जीव और उन्हींके अपर्याप्त जीव पृथिवीका आश्रय लेकर ही रहते हैं, इसलिये पृथिवियोंको जगप्रतरके प्रमाणसे करते हैं । उनमेंसे एक राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बीस हजार योजन कम दो लाख योजन मोटी पहली पृथिवी है । यह घनफलकी अपेक्षा अपने बाहल्यके अर्थात् एक लाख अस्सी हजार योजनके सातवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है ।

१ प्रतिषु ' असंखेज्जगुणे ' इति पाठः ।

२ इत आरभ्याष्टपृथिवीप्ररूपकोऽधस्तनो गद्यभागस्त्रिलोकप्रज्ञप्तेः प्रथमाधिकारस्यान्तिमभागेन सह शब्दशः समानः ।

बिदियपुढवी सत्तमभागूण-बे-रज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला सोलहसहस्साहियचदुण्हं लक्खाणं एगुणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी बे-सत्तभागहीण-तिण्णिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठावीसजोयणसहस्सबाहल्ला बत्तीससहस्साहियं पंचलक्खजोयणाणं एगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । चउत्थपुढवी तिण्णि-सत्तभागूण-चत्तारिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीसजोयण-सहस्सबाहल्ला छजोयणलक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । पंचमपुढवी

....

उदाहरण—पहली पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक एक राजु और एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, अतएव १८०००० योजनोंके प्रमाणमें ७ का भाग देनेसे $२५७१४\frac{२}{७}$ योजन लब्ध आते हैं और एक राजुके स्थानमें जगश्रेणीका प्रमाण हो जाता है। इसप्रकार $२५७१४\frac{२}{७}$ योजनोंके जितने प्रदेश हों उतने जगप्रतरप्रमाण पहली पृथिवीका घनफल होता है।

दूसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे एक भाग कम दो राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और बत्तीस हजार योजन मोटी है । यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—दूसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{१३}{७}$ राजु और ३२००० योजन मोटी;

$$\frac{१३}{७}\times\frac{७}{१}=\frac{१३}{१};\quad \frac{१३}{१}\times\frac{३२०००}{१}=\frac{४१६०००}{१},\quad \frac{४१६०००}{१}\div\frac{४९}{१}=\frac{४१६०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

तीसरी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे दो भाग कम तीन राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बत्तीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—तीसरी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक ७ राजु लम्बी, पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{१९}{७}$ राजु चौड़ी; और २८००० योजन मोटी है।

$$\frac{१९}{७}\times\frac{७}{१}=\frac{१९}{१};\quad \frac{१९}{१}\times\frac{२८०००}{१}=\frac{५३२०००}{१};\quad \frac{५३२०००}{१}\div\frac{४९}{१}=\frac{५३२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतर.

चौथी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे तीन भाग कम चार राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और चौवीस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—चौथी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु, पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{२५}{७}$ राजु

चत्तारि-सत्तभागूणपंचरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा वीसजोयणसहस्सबाहल्ला वीस-सहस्साहियछण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । छट्ठपुढवी पंच-सत्त-भागूण-छरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा सोलहजोयणसहस्सबाहल्ला वाणउदिसहस्साहिय-पंचण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । सत्तमपुढवी छ-सत्तभागूण-सत्त-रज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जु-

और मोटी २४००० योजन है।

$$\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{२५}{१}; \quad \frac{२५}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{६०००००}{१}; \quad \frac{६०००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६०००००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

पांचवी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे चार भाग कम पांच राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और वीस हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा छह लाख वीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण--पांचवी पृथिवी उत्तरसे दक्षिणतक सात राजु; पूर्वसे पश्चिमतक $\frac{३१}{७}$ राजु और मोटी २०००० योजन है।

$$\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३१}{१}; \quad \frac{३१}{१} \times \frac{२००००}{१} = \frac{६२००००}{१}; \quad \frac{६२००००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{६२००००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

छठी पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे पांच भाग कम छह राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और सोलह हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बानवे हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—छठी पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{३७}{७}$ राजु और मोटी १६००० योजन है।

$$\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} = \frac{३७}{१}; \quad \frac{३७}{१} \times \frac{१६०००}{१} = \frac{५९२०००}{१}; \quad \frac{५९२०००}{१} \div \frac{४९}{१} = \frac{५९२०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

सातवीं पृथिवी एक राजुके सात भागोंमेंसे छह भाग कम सात राजु चौड़ी, सात राजु लम्बी और आठ हजार योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चवालीस हजार योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण—सातवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक $\frac{४३}{७}$ राजु और मोटी ८००० योजन है।

रुंदा अट्ठजोयणबाहल्ला सत्तमभागाहिय-एक्कजोयणबाहल्लं जगपदरं होदि। एदाणि सव्वाणि एगट्ठे कदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि। एत्थ असंखेज्जा लोगमेत्ता पुढविकाइया चिट्ठंति, तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो त्ति सिद्धं। एदेहि पदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागे चिट्ठंता बादरपुढविकाइया सुत्तेण सव्वलोगे चिट्ठंति त्ति वुत्ता, तं कधं घडदे ? ण, मारणंतिय-उववादपदे पडुच्च तधोवदेसादो। मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे। एवं बादरआउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च। पुढवीसु सव्वत्थ ण जलमुवलं-

---

$$\frac{४३}{७}\times\frac{७}{१}=\frac{४३}{१};\quad \frac{४३}{१}\times\frac{८०००}{१}=\frac{३४४०००}{१};\quad \frac{३४४०००}{१}\div\frac{४९}{१}=\frac{३४४०००}{४९}$$

योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

आठवीं पृथिवी सात राजु लम्बी, एक राजु चौड़ी और आठ योजन मोटी है। यह घनफलकी अपेक्षा एक योजनके सात भाग करनेपर उनमेंसे सातवां भाग अर्थात् एक भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है।

उदाहरण--आठवीं पृथिवी उत्तरसे दक्षिण तक सात राजु; पूर्वसे पश्चिम तक एक राजु और आठ योजन मोटी है।

$१\times७=७;\quad ८\div७=\frac{८}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण.

इन सबको एकत्रित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातगुणे बाहल्यरूप जगप्रतर होता है। इन पृथिवियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण पृथिवीकायिक जीव रहते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—तिर्यग्लोकका प्रमाण घनफलकी अपेक्षा $१४२८५\frac{५}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है और आठों पृथिवियोंका घनफल $६२२४३६\frac{६}{७}$ योजन बाहल्यरूप जगप्रतर है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिर्यग्लोकके प्रमाणसे आठों पृथिवियोंका क्षेत्र संख्यातगुणा है। बादर पृथिवीकायिक जीव इन आठों पृथिवियोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं, इसलिये वे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह सिद्ध हो जाता है।

शंका—उपर्युक्त स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक जीव जब कि लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे 'सर्व लोकमें रहते हैं' ऐसा जो सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा 'बादर पृथिवीकायिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं,' इसप्रकारका उपदेश दिया गया है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। इसीप्रकार बादर अप्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका भी कथन करना चाहिये। अर्थात् पृथिवीकायिक और अपर्याप्त पृथिवी-

भदि त्ति आउकाइया सव्वत्थ पुढवीसु ण होंति त्ति णासंकणिज्जं, बादरकम्मोदएण बादरत्तमुवगयाणं अणुवलंभमाणाणं पि सव्वपुढवीसु अत्थित्तविरोधाभावादो। एवं बादर-तेउकाइयाणं तस्सेव अपज्जत्ताणं च। णवरि वेउव्वियपदमत्थि, ते च पंचण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे। तेउकाइया बादरा सव्वपुढवीसु होंति त्ति कधं णव्वदे? आगमादो। एवं बादरवाउकाइयाणं तेसिमपज्जत्ताणं च। णवरि सत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दो-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। माणुसखेत्तं ण विण्णायदे। सव्वअपज्जत्तेसु वेउव्वियपदं णत्थि।

....

कायिक जीवोंके समान स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातको प्राप्त हुए बादरजलकायिक और बादरजलकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें, तथा मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादको प्राप्त हुए बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं।

शंका—पृथिवियोंमें सर्वत्र जल नहीं पाया जाता है, इसलिये जलकायिक जीव पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं रहते हैं?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि, बादरनामक नाम-कर्मके उदयसे बादरत्वको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथिवियोंमें सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथिवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

इसीप्रकार अर्थात् बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके समान बादर तैजस्कायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानस्वस्थान आदि पूर्वोक्त पदोंमें कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि बादर तैजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुद्धातपद भी होता है और वे पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका—बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आगमसे यह जाना जाता है कि बादर तैजस्कायिक जीव सर्व पृथिवि-योंमें रहते हैं।

इसीप्रकार बादर वायुकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके पदोंका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, और कषायसमुद्धातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दो लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिकसमुद्धातको प्राप्त हुए बादर वायुकायिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु यहां मनुष्यक्षेत्र नहीं जाना जाता है कि उसके कितने भागमें रहते हैं। सभी अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकसमुद्धातपद नहीं होता

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता बादरणिगोदपदिट्ठिदा तस्सेव अपज्जत्ता च बादरपुढवितुल्ला ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— बादरपुढविपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणं ठविय जोएदव्वं । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एवं बादरआउकाइयपज्जत्ता । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-सरीर-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणमेवं चेव । णवरि बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता वेदण-कसाय-सत्थाणेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । एदेसिं रासीणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता जगपदराणि पदरंगुलेण खंडिदेयखंडमेत्तपमाणं होदि । ओगाहणा पुण

है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उन्हींके अपर्याप्त जीव तथा बादर निगोद-प्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीव, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान हैं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव, बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त जीव और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ॥ २३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तनाकी स्थापना करके योजना कर लेना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त हुए बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें, तथा मनुष्य और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव भी स्वस्थानस्वस्थान आदि पदोंमें इसीप्रकार रहते हैं । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंके पदोंका इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और स्वस्थान पदगत बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जगप्रतरोंको प्रतरांगुलसे खंडित करके जो एक भाग लब्ध आवे उतना इन राशियोंका प्रमाण है । तथा अवगाहना घनांगुलके

घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। तस्स को पडिभागो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तओगाहणा वि घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, अण्णहा तदो बीइंदियपज्जत्तओगाहणा असंखेज्जगुणा ण होज्ज। तदो पत्तेयसरीरपज्जत्त-रासी तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागेण होज्ज? ण एस दोसो, घणंगुलभागहारो पदरंगुल-भागहारादो संखेज्जगुणो त्ति। पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णो-गाहणा असंखेज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे? वेदणाखेत्तविहाणम्हि वुत्तवोगाहणदंडयादो। तं जहा- सव्वत्थोवा सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा। सुहुम-वाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। बादर-

....

असंख्यातवें भागप्रमाण है।

शंका—उसका क्या प्रतिभाग है, अर्थात् जिसका भाग घनांगुलमें देनेसे उसका विवक्षित असंख्यातवां भाग आता है, वह प्रतिभाग क्या है?

समाधान—पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

शंका—बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवकी अवगाहना भी घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यदि ऐसा न माना जावे तो इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी अवगाहना असंख्यातगुणी नहीं हो सकती है, इसलिये प्रत्येकशरीर पर्याप्तराशि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होना चाहिये?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, घनांगुलका भागहार प्रतरांगुलके भागहारसे संख्यातगुणा है।

शंका—वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—वेदनाक्षेत्रविधानमें कहे गये अवगाहनादंडकसे यह जाना जाता है कि प्रत्येकशरीरकी जघन्य अवगाहनासे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

आगे इसीका स्पष्टीकरण करते हैं-सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना सबसे स्तोक है। इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर

वाउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरतेउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरआउकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरपुढविकाइयअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । णिगोदपदिट्ठिद-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । बेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । चउरिंदिय-अपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । पंचिंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । सुहुमणिगोदजीवणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमवाउकाइय-णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । सुहुमतेउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव अप-

....

वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर निगोद अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है ।

ज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। सुहुमपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरवाउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असं-खेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरतेउकाइयणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्क-स्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरआउकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। तस्सेव णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया। बादरपुढविकाइयणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स

....

इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्त्य-पर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर वायुकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर तैजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर तैजस्कायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर तैजस्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर अप्कायिक निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्तिपर्याप्त

जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । बादरणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । (णिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तस्सेव णिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया । तस्सेव णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा विसेसाहिया ।)[1] बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । वेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्य जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । पंचिंदियणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । तेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । चउरिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । वेइंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा । बादर-वणप्फइकाइयपत्तेयसरीरणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा ।

जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर पृथिवीकायिक निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे बादर निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । (इससे निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यात-गुणी है । इससे निगोदप्रतिष्ठित निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे निगोदप्रतिष्ठित निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ।) इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी जघन्य अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है । इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट

---

१ प्रतिषु कोष्टकान्तर्गतपाठो नास्ति, वेदनाखंडादत्र योजितः ।

पंचिंदियणिव्वत्तिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। तेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। चउरिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। बेइंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। बादरवणप्फइपत्तेयसरीरणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। पंचिंदियणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया ओगाहणा संखेज्जगुणा। सुहुमादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। सुहुमादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1]। बादरादो सुहुमस्स ओगाहणागुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। बादरादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। बादरादो बादरस्स ओगाहणागुणगारो संखेज्जा समया। एत्थ बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो इदि वुत्ते होदु णामेदं, पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो त्ति कुदो णव्वदे ? तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति गुरूवएसादो। एदम्हादो चेव एदिस्से ओगा-

अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे त्रीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चतुरिन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे पंचेन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्त जीवकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

एक सूक्ष्मजीवसे दूसरे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। सूक्ष्मजीवसे बादर जीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। बादरजीवसे सूक्ष्मजीवकी अवगाहनाका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। बादरजीवसे अन्य बादरजीवकी अवगाहनाका गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। बादरसे बादरकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है, अर्थात् बादर पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवकी जघन्य अवगाहनासे बादर पर्याप्त त्रीन्द्रिय आदि जीवोंकी अवगाहनाका गुणकार संख्यात समय है।

शंका—यहां पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग कही है, सो वह भले ही रही आवे, किन्तु प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और स्वस्थानपदोंकी अपेक्षा 'तिर्यक्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं' इस प्रकारके गुरूपदेशसे जाना जाता है कि प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है।

१ सुहुमेदरगुणगारो आवलिपल्ला असंखभागो दु। गो. जी. १०१.

हणाए जीवबहुत्तं च णायव्वं। बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता किमिदि सुत्तम्हि ण वुत्ता? ण, तेसिं पत्तेयसरीरेसु अंतब्भावादो। बादरतेउकाइयपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे।

बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा बादरवाउपज्जत्ता तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। बादरवाउपज्जत्तरासी लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तो मारणंतिय-उववादगदो सव्वलोगे किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, रज्जुपदरमुहेण पंचरज्जुआयामेण[1] ट्ठिदखेत्ते चेव पाएण तेसिमुप्पत्तीदो।

तथा, उक्त इसी गुरूपदेशसे बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरकी अवगाहनामें जीवोंकी अधिकता भी जानना चाहिए।

शंका—सूत्रमें बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव क्यों नहीं कहे?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रत्येकशरीर पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवोंमें अन्तर्भाव हो जाता है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर-तैजस्कायिक पर्याप्त जीव पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वे ही बादर तैजस्कायिक जीव चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत बादरवायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका—बादर वायुकायिक पर्याप्तराशि लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, जब वह मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमें क्यों नहीं रहती है?

समाधान—नहीं रहती है, क्योंकि, राजुप्रतरप्रमाण मुखसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्रायः करके उन बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है।

१ बादरवातकायिकानां विकुर्वणाद् रज्जुव्यासायाम-पंचरज्जूदयक्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं भवति। गो. जी. जी. प्र. गा. ५४५.

अण्णखेत्तंतरं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणमइथोवत्तं कधमवगम्मदे ? बादरवाउक्काइयपज्जत्ता लोगस्स संखेज्जदिभागे इदि सुत्तादो। अण्णहा सुत्तस्स पुध आरंभो णिरत्थओ होज्ज, बादरवाउअपज्जत्तेसु अंतब्भावादो। वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। अड्ढाइज्जं ण विण्णायदे।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ॥ २५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा वणप्फदिकाइया सुहुमवणप्फइ-काइया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता च सत्थाण-वेदणसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे। मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए। बादरा पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति त्ति[1] लोगस्स असंखेज्जदिभागे होंति।

शंका—अन्य क्षेत्रान्तरको जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव अत्यन्त थोड़े हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं,' इस सूत्रसे जाना जाता है कि राजुप्रतरप्रमाण मुखवाले और पांच राजु आयामवाले क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होनेवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव बहुत कम होते हैं। यदि ऐसा न माना जावे, तो इस सूत्रका पृथक् आरंभ निरर्थक हो जायगा, क्योंकि, फिर तो उनका बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंमें अन्तर्भाव हो जायगा।

वैक्रियिकसमुद्घातगत बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अढ़ाईद्वीपसे अधिक क्षेत्रमें रहते हैं या कममें, यह जाना नहीं जाता।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २५ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत वनस्पतिकायिक, स्वस्थान और वेदनासमुद्घातगत सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिक-समुद्घात और उपपादगत उपर्युक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं। बादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकर रहते हैं, इसलिये वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

---

१ आधारे थूला ओ। गो. जी. १८४.

एदं कधं णव्वदे ? गुरूवएसादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २६ ॥

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तमिच्छाइट्ठी सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा जाणिय कायव्वा । सेसगुणट्ठाणाणं पंचिंदियभंगो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २७ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ २८ ॥

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना जाता है कि बादर वनस्पतिकायिक जीव पृथिवियोंके ही आश्रयसे रहते हैं ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव तीनों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना जानकरके करना चाहिये । सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवोंके क्षेत्रोंके समान जानना चाहिए[1] ।

सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघनिरूपित सयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके क्षेत्रके समान है ॥ २८ ॥

---

१ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

एदं पि सुत्तं सुगमं, पुव्वं परूविदत्तादो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे– पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं कधं मणजोग-वचिजोगाणं संभवो ? ण, तेसिं पि णिप्पण्णुत्तरसरीराणं मणजोग-वचिजोगाणं परावत्तिसंभवादो । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । मारणंतियसमुग्घादगदाणं असंखेज्जजोयणायामेण ठिदाणं मुच्छिदाणं कधं मण-वचिजोगसंभवो ? ण, वारणाभावादो अवत्ताणं णिब्भरसुत्त-

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, इसका पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, निष्पन्न हुआ है विक्रियात्मक उत्तरशरीर जिनके, ऐसे जीवोंके मनोयोग और वचनयोगोंका परिवर्तन संभव है ।

मारणान्तिकसमुद्घातगत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त, असंख्यात योजन आयामसे स्थित और मूर्छित हुए संज्ञी जीवोंके मनोयोग और वचनयोग कैसे संभव हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बाधक कारणके अभाव होनेसे निर्भर (भरपूर) सोते

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

जीवाणं व तेसिं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो। मण-वचिजोगेसु उववादो णत्थि। सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव असमुग्घादसजोगिकेवलि त्ति मूलोघभंगो। णवरि सासण-असंजदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि।

कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं[1] ॥ ३० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा कायजोगिमिच्छाइट्ठी सव्वलोए। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा जाणिय कायव्वा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

जोगाभावादो एत्थ अजोगीणमग्गहणं। सेसं सुगमं।

हुए जीवोंके समान अव्यक्त मनोयोग और वचनयोग मारणान्तिकसमुद्घातगत मूर्छित-अवस्थामें भी संभव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंमें उपपादपद नहीं होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर समुद्घातरहित सयोगिकेवली गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका क्षेत्र मूलोघ क्षेत्रके समान है। विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ३० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

योगका अभाव होनेसे इस सूत्रमें अयोगिकेवलियोंका ग्रहण नहीं किया गया है। शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

---

१ काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३२ ॥

गुणपडिवण्णाणमेगजोगो किण्ण कदो ? ण, सजोगिम्हि लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा इदि विसेसुवलंभादो ।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ३३ ॥

एदे सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियसमुग्घादगदा सव्वलोए, सुहुमपज्जत्ताणं सव्वलोगखेत्तेसु संभवादो[1]। उववादो णत्थि, णिरुद्धोरालियकायजोगादो। विहारवदिसत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, तसपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागस्स संचारो होदि त्ति गुरूवएसादो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे वेउव्वियकायजोगिसहगदवेउव्वियसमुग्घादस्स असंभवादो।

काययोगवाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघसयोगिकेवलीके क्षेत्रके समान है ॥३२॥

शंका—सासादनादि गुणस्थानप्रतिपन्न सभी जीवोंका एक योग क्यों नहीं किया ? अर्थात् पूर्वोक्त 'सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि' इत्यादि सूत्रका और इस 'सजोगिकेवली ओघं' सूत्रका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें, 'सयोगिकेवली लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्व लोकमें रहते हैं' इस प्रकारका विशेष कथन पाया जाता है, इसलिए उक्त दोनों सूत्रोंका एक योग नहीं किया।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥३३॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत ये औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रिय जीव सर्व लोकवर्ती क्षेत्रोंमें संभव हैं। किन्तु उक्त जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, यहां पर औदारिककाययोगसे निरुद्ध जीवोंका क्षेत्र बताया जा रहा है। विहारवत्स्वस्थानवाले औदारिककाययोगी जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, समस्त त्रसपर्यायराशिके संख्यातवें भागका ही संचार (विहार) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है। उक्त औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिकसमुद्घातगत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय वैक्रियिककाययोगी जीवोंके होनेवाला वैक्रियिकसमुद्घात असंभव है।

विशेषार्थ—इस उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि अभी ऊपर वैक्रियिकसमु-

---

१ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा। गो. जी. १८४.

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३४ ॥

कधं सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे ? ण एस दोसो, ओरालियकायजोगे णिरुद्धे ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगसहगदकवाड-पदर-लोगपूरणाणमसंभवादो। सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि। पमत्ते आहारसमुग्घादो णत्थि। सेसं जाणिय वत्तव्वं।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३५ ॥

....

द्घातको प्राप्त औदारिककाययोगी जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग बताया है, तब शंका की जा सकती है कि वैक्रियिकशरीरवाले जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र तो तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग बतलाया गया है, फिर यहां उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग क्यों कहा ? इस आशंकाका समाधान करते हुए धवलाकार कहते हैं कि यहां पर औदारिककाययोगका प्रकरण है, अतएव औदारिकशरीरवाले मनुष्य और तिर्यंचोंके जो वैक्रियिकसमुद्घात होता है, उसका क्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकता है, अधिक नहीं। हां, वैक्रियिकशरीरवाले देवादिकोंके जो वैक्रियिकसमुद्घात होता है उसका क्षेत्र अवश्य तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। किन्तु उसका यहां प्रकरण नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगका क्षेत्र-कथन करते समय वैक्रियिककाययोगिसहगत वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र कहना असंभव है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

शंका— सयोगिकेवली भगवान् लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, इतना ही क्यों कहा ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगसे निरुद्ध क्षेत्रका वर्णन करते समय औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगके साथमें होनेवाले कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंका होना संभव नहीं है। इसलिए औदारिककाययोगी सयोगिकेवली लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिककाययोगी जीवोंके उपपादपद नहीं होता है। प्रमत्तगुणस्थानमें आहारकसमुद्घातपद भी नहीं है, क्योंकि, यहांपर औदारिककाययोगियोंका क्षेत्र बताया जा रहा है। शेष गुणस्थानोंमें यथासंभव पद जानकर कहना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते है ॥ ३५ ॥

बहुसु कधमेगवयणणिद्देसो ? ण एस दोसो, बहूणं पि जादीए एगत्तुवलंभादो। अधवा मिच्छाइट्ठी इदि एसो बहुवयणणिद्देसो चेव। कधं पुण एत्थ विहत्ती णोवलब्भदे ? 'आइ-मज्झंतवण्णसरलोवो' इदि विहत्तिलोवादो। सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद-गदा ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठी सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादा णत्थि, तेण तेसिं विरोहादो। ओरालियमिस्सस्स वेउव्वियादिपदेहि भेदसंभवादो ओघ-णिद्देसो ण घडदे ? ण एस दोसो, एत्थ विज्जमाणपदाणं परूवणा ओघपरूवणाए तुल्लेत्ति ओघत्तविरोधाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३६ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो ओरालियमिस्सकायजोगो अणुवट्टदे। तेणेवं संबंधो भवदि-

....

शंका—मिथ्यादृष्टियोंके बहुत होने पर भी यहां सूत्रमें एक वचनका निर्देश कैसे किया गया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि संख्याकी अपेक्षा बहुतसे भी जीवोंके जातिकी विवक्षासे एकत्व पाया जाता है। अथवा, 'मिच्छाइट्ठी' यह पद बहुवचनका ही निर्देश समझना चाहिए।

शंका—तो फिर यहां बहुवचनकी विभक्ति क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—'आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है,' इस प्राकृतव्याकरणके सूत्रानुसार बहुवचनकी विभक्तिका लोप हो गया है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। यहांपर विहारवत्स्व-स्थान और वैक्रियिकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगके साथ इन दोनों पदोंका विरोध है।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगका वैक्रियिकसमुद्घात आदि पदोंके साथ भेद पाया पाया जाता है, अतएव सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहां औदारिकमिश्रकाययोगमें विद्यमान स्वस्थान आदि पदोंकी प्ररूपणा ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगि-केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३६ ॥

इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे 'औदारिकमिश्रकाययोग' इस पदकी अनुवृत्ति होती है।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते इदि। सासणसम्मादिट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? ओरालियमिस्सम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसासणसम्मादिट्ठिरासिस्स संभवादो। एत्थ सेसपदाणि णत्थि, तेण तेसिं तत्थ विरोधादो। असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे, संखेज्जपरिमाणादो। सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो किमट्ठं ण उत्तो? ण, ओरालियमिस्सम्हि ट्ठिदाणमोरालियमिस्सकायजोगेसु उववादाभावादो। अधवा उववादो अत्थि, गुणेण सह अक्कमेण उपात्तभवसरीरपढमसमए उवलंभादो, पंचावत्थावदिरित्तओरालियमिस्सजीवाणमभावादो च। सजोगि-

---

इसलिए सूत्रके अर्थका इसप्रकार सम्बन्ध होता है— औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी राशिका पाया जाना संभव है। यहांपर शेष विहारवत्स्वस्थान आदि पद नहीं होते हैं, क्योंकि, सासादन गुणस्थानके साथ उन पदोंका यहांपर विरोध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे संख्यात राशिप्रमाण होते हैं।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगमें स्थित जीवोंका पुनः औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपाद नहीं होता है। अथवा, उपपाद होता है, क्योंकि, सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ अक्रमसे उपात्त भव-शरीरके प्रथम समयमें उसका सद्भाव पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, केवलिसमुद्धात और उपपाद इन पांच अवस्थाओंके अतिरिक्त औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका अभाव है।

विशेषार्थ—यहांपर प्रथम तो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया गया। पुनः, अथवा करके औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका सद्भाव भी बतला दिया गया। ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध सी प्रतीत होती हैं। किन्तु यथार्थतः उनमें कोई विरोध नहीं है। भेद केवल कथन-शैलीका है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथम जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंका

केवली कवाडगदो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणे।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३७ ॥

एदस्सत्थो– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उपपादका अभाव बतलाया, उसका अभिप्राय यह है कि औदारिकमिश्रकाययोग तिर्यंच और मनुष्योंकी अपर्याप्त दशामें ही होता है और, अपर्याप्तदशाको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरणको प्राप्त नहीं होता है, जिससे कि वह पुनः औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयत-सम्यग्दृष्टि तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न हो सके। अतएव उसमें सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उपपादका अभाव बतलाना सर्वथा युक्तिसंगत ही है। पुनः, अथवा करके जो औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उनके उपपादका सद्भाव बतलाया गया, उसका अभिप्राय यह है कि पूर्वभवके शरीरको छोड़कर उत्तरभवके प्रथम समयमें प्रवर्तनको उपपाद कहा गया है। वह उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होता है, अतएव यदि कोई औदारिककाययोगी या वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर मनुष्य तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है, तो उसके उत्पत्तिके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगका सद्भाव पाया जायगा। इसीलिए कहा गया है कि सासादनसम्यग्दृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके साथ युगपत् धारण किये गये आगामी भवसम्बन्धी शरीरके प्रथम समयमें औदारिकमिश्रकाययोगियोंके उपपादका सद्भाव पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों कथनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है, भेद केवल कथन-शैली व विवक्षाका ही है।

कपाटसमुद्घातगत औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असं-ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे

असंखेज्जगुणे, पहाणीकयजोइसियरासित्तादो। मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टिय दट्ठव्वं। सासणादिपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला, णवरि सव्वत्थ उववादो णत्थि।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३८ ॥

एदस्सत्थो– वेउव्वियमिस्सकायजोगी मिच्छादिट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

....

असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां वैक्रियिककाययोगके प्रकरणमें ज्योतिष्क देवराशिकी प्रधानता है। मारणान्तिकसमुद्धातगत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना स्वयं जान लेना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है। विशेषता केवल यह है कि इन सभी गुणस्थानोंमें उपपादपद नहीं होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमे मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। स्वस्थान, वेदनासमुद्धात और कषायसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

आहारकाययोगियोंमें और आहारमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

एदस्स अत्थो– सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदपमत्तसंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसपदाणि णत्थि । आहारमिस्सकायजोगिणो पमत्तसंजदा सत्थाणगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-उववादगदा कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो जेण सव्वत्थ सव्वद्धं होंति, तेण सव्वलोगे वुत्ता ।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्माइट्ठी ओघं ॥ ४१ ॥

एदे दो वि रासीओ जेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान इन दोनों पदोंसे परिणत आहारकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातगत आहारकाययोगी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । आहारकाययोगी प्रमत्तसंयतके उक्त तीन पदोंके सिवाय शेष सात पद नहीं होते हैं । स्वस्थानगत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयत सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघमिथ्यादृष्टिके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४० ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव चूंकि सर्वत्र सर्वकालमें पाये जाते हैं, इसलिए वे सर्वलोकमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त कार्मणकाययोगी राशियां चूंकि सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहती हैं, इसलिए सूत्रमें ‘ओघ’ ऐसा पद कहा गया है ।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ४२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४३ ॥

एदस्स अत्थो– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा इत्थिवेदमिच्छाइट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पहाणीकददेवित्थिवेदरासित्तादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा देवोघतुल्ला । सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघभंगो । णवरि असंजदसम्मादिट्ठिम्हि उववादो णत्थि । पमत्तसंजदे ण होंति तेजाहारा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहु भागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं-- स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर देवगतिसम्बन्धी स्त्रीवेदराशिकी प्रधानता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर अपवर्तना देवोंके ओघक्षेत्रके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानतकके स्त्रीवेदी जीवोंका क्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें स्त्रीवेदियोंके उपपादपद नहीं होता है। तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें

१ वेदानुवादेन स्त्रीपुंवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

वेउव्वियसमुग्घादगदा पुरिसवेद-मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति। मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि उवसामग-खवगा त्ति ओघभंगो।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ४४ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदणवुंसयवेदमिच्छादिट्ठी सव्वलोए। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे। णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते जेण अच्छंति तेण ओघमिदि घडदे। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी त्ति एदेसिं पि परूवणा ओघतुल्ला त्ति ओघमिदि वुत्तं।

....

तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, नरलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंके स्वस्थानादि पदोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ४४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत वे ही जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। तथा उक्त दोनों पदोंको प्राप्त नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव, चूंकि अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इसलिए सूत्रमें कहा गया 'ओघ' यह पद घटित हो जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भी इन नपुंसकवेदी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा ओघवर्णित क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है, इससे भी सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा गया है।

....

१ नपुंसकवेदानां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

णवरि पमत्ते तेजाहारपदं णत्थि ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४५ ॥

एदस्स अत्थो– चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे सत्थाणत्था अच्छंति । मारणंतियसमुग्घादगदा उवसामगा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वुत्तं होदि ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ४६ ॥

पुव्वं परूविदत्थमिदं सुत्तमिदि एत्थ एदस्स अत्थो ण वुच्चदे ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४७ ॥

चदुकसाइमिच्छाइट्ठिणो सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा ओघ-

....

विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें नपुंसकवेदियोंके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदगत अपगतवेदी जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा गया है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ४६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए यहां पर इसका अर्थ पुनः नहीं कहा जाता है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद

....

१ ×× अपगतवेदानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगम्हि अच्छणेण अणुहरंति । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणं पडि अणुहरंति । तदो चदुकसायमिच्छादिट्ठिणो दव्वट्ठियणएण ओघत्तमुवलभंते ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४८ ॥

एत्थ सुत्ते ओघमिदि किण्ण वुत्तं ? ण एस दोसो, दव्वट्ठियणयावलंबणाभावादो । सो वि किमिदि णावलंबिदो ? पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं । जदि एवं, तो दव्वट्ठियसिस्सा अणणुग्गहिदा होंति ? ण, पुव्वुत्तसुत्तेण मिच्छादिट्ठिपडिबद्धेण दव्वट्ठियसिस्साणमणु-

---

पदगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद पदगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके साथ सर्व लोकमें अवस्थानके द्वारा अनुकरण करते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव भी सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत ओघमिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका अनुकरण करते हैं, इसलिए चारों कषायवाले मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा ओघक्षेत्रताको प्राप्त होते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

शंका—इस सूत्रमें 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतनेके स्थानपर 'ओघ' इतना ही पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यहांपर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन नहीं किया गया है।

शंका—उस द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पर्यायार्थिकनयी शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए यहां द्रव्यार्थिकनयका ग्रहण नहीं किया गया।

शंका—यदि ऐसा है, तो द्रव्यार्थिकनयी शिष्य इस सूत्रसे अनुगृहीत नहीं किये गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रसे प्रतिबद्ध पूर्वोक्त सूत्रसे द्रव्यार्थिक-

---

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायाकषायाणां लोभकषायाणां च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १. ८.

ग्गहकरणा । एदेण दव्व-पज्जवट्ठियणयपज्जायपरिणदजीवाणुग्गहकारिणो जिणा इदि जाणाविदं । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगद-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्माइट्ठिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणे खेत्ते अच्छंति । 'लोगस्स असंखेज्जदिभागे' इदि सुत्ते वुत्तं, तेण माणुसखेत्तस्स वि असंखेज्जदिभागे एदेहि होदव्वं, लोगत्तं पडि विसेसाभावादो ? ण एस दोसो । होदि एस दोसो, जदि पज्जवट्ठियमस्सिदूण एस लोगसद्दो ट्ठिदो । किंतु दव्वट्ठियणयमवलंबिऊण ट्ठिदत्तादो सव्वलोगसमूहस्स अखंडस्स वाचगो, तेण 'लोगस्स असंखेज्जदिभागे' इदि सुत्तवयणं ण विरुज्झदे । जदि एवं, तो पज्जवट्ठियणयमवलंबिऊण ट्ठिदवक्खाणवयणं सुत्तेण असंबद्धं होदि त्ति ? ण, विसेसवदिरित्तजादीए अभावादो । विसेसालिंगिदसामण्ण-लोगो जेण सुत्तम्मि वुत्तो तेण लोगस्स अवयवभूदचत्तारि लोगे अस्सिदूण जं वक्खाणं तण्ण सुत्तविरुज्झमिदि । एवं सम्मामिच्छाइट्ठीणं । णवरि मारणंतिय-उववादपदं णत्थि ।

....

नयी शिष्योंका अनुग्रह कर ही दिया गया है ।

इस विवेचनसे यह बात बतलाई गई कि जिन भगवान् द्रव्यार्थिक और पर्या-यार्थिक, इन दोनों नयस्वरूप पर्यायोंसे परिणत जीवोंके अनुग्रह करनेवाले होते हैं ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिक-समुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त चारों कषायवाले सासादन-सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—'लोकके असंख्यातवें भागमें' इतना ही पद सूत्रमें कहा है, इसलिए 'मानुषक्षेत्रके भी असंख्यातवें भागमें रहते हैं' ऐसा अर्थ होना चाहिए, क्योंकि, लोकत्वकी अपेक्षा सामान्यलोक, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक और मनुष्यलोक, इन पांचों ही लोकोंमें विशेषताका अभाव है, अर्थात् समानता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है । यह दोष होता, यदि केवल पर्यायार्थिकनयका ही आश्रय लेकर यह लोकशब्द स्थित होता । किन्तु यह लोकशब्द द्रव्यार्थिकनयका अव-लम्बन करके स्थित है, अतएव अखंड सर्वलोकके समूहका वाचक है, इसलिए 'लोकके असंख्यातवें भागमें' इस प्रकारका यह सूत्र-वचन विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करके स्थित व्याख्यान-वचन सूत्रके साथ असंबद्ध होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेषसे व्यतिरिक्त जातिका अभाव पाया जाता है । चूंकि, विशेषसे आलिंगित सामान्यलोक सूत्रमें कहा है, इसलिए लोकके अवयवभूत ऊर्ध्वलोक आदि चार लोकोंका आश्रय करके जो व्याख्यान किया गया है, वह सूत्रसे विरुद्ध नहीं है, अपि तु संबद्ध है ।

एवं संजदासंजदाणं। णवरि उववादपदं णत्थि। सेसगुणट्ठाणाणि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। णवरि मारणंतियसमुग्घादगदा माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे होंति।

लोभकसायविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णवरि विसेसो, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ४९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो।

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं[2] ॥ ५० ॥

एत्थ ट्ठाणसद्दो गुणट्ठाणवाचगो, 'अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्तन्ते' इति न्यायात्। यथा सत्यभामा भामा, वलदेवो देवः, भीमसेनः सेन इति। कधमुवसंत-

इसीप्रकारसे चारों कषायवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि यहांपर मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। इसी प्रकार चारों कषायवाले संयतासंयतोंका क्षेत्र होता है। विशेषता यह है कि इनके उपपाद पद नहीं है। शेष गुणस्थानवर्ती चारों कषायवाले जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेषता यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातगत चारों कषायवाले संयत जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

अव लोभकषायकी विशेषता वतलानेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानोंका क्षेत्र ओघ-क्षेत्रके समान है ॥ ५० ॥

यहांपर 'स्थान' शब्द गुणस्थानका वाचक है, क्योंकि, 'अवयवोंमें प्रवृत्त हुए शब्द समुदायोंमें भी रहते हैं' ऐसा न्याय है। जैसे 'भामा' कहनेसे सत्यभामा, 'देव' कहनेसे वलदेव और 'सेन' कहनेसे भीमसेनका ज्ञान होता है, इसी प्रकार यहां भी 'स्थान' शब्दसे गुणस्थानका बोध होता है।

शंका—जहां कषायोंका उपशमन ही है, ऐसे उपशान्तकषाय गुणस्थानको अक-

१ ×× सूक्ष्मसाम्परायाणां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ ×× अकषायाणां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

कसाओ अकसाओ ? ण, भावकसायाभावं पेक्खिदूण तस्स वि अकसायत्तसिद्धीदो। बहुव्वीहिसमासं कादूण 'अकसाएसु' त्ति णिद्देसो किण्ण कदो ? ण, पज्जयपडिसेधे कदे कसायविरहिदथंभादीणं पि अकसायत्तप्पसंगादो। दव्वपडिसेहे कदे सो दोसो ण पावदे, एदेण णावएण ओसारिदपसज्जपडिसेहत्तादो। कस्स णयस्स एस ववहारो ? सद्दत्थसंबंधस्स णिच्चत्तमिच्छंतसद्दणयस्स। 'अवगदवेदएसु' त्ति दव्वणिद्देसो वि एवं चेव वक्खाणेदव्वो। सेसं सुगमं।

एवं कसायमग्गणा समत्ता।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[१] ॥ ५१ ॥

एसा णिद्धारणे सत्तमी, मदि-सुदअण्णाणीणं मिच्छादिट्ठिवदिरित्ताणं सासणाणं पि

पाय कैसे कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहांपर भावकषायके अभावकी विवक्षासे उपशान्तकषाय गुणस्थानके भी अकषायपनेकी सिद्धि हो जाती है।

शंका—'नहीं हैं कषाय जिनके' ऐसा बहुव्रीहि समास करके 'अकषायोंमें' इस प्रकारका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायके प्रतिषेध कर देनेपर कषायसे विरहित स्तम्भादिकोंके भी अन्यथा अकषायताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। किन्तु, द्रव्यके प्रतिषेध करनेपर वह अतिप्रसंग दोष नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, इसी ज्ञापक (न्याय) के द्वारा आए हुए दोषप्रसंगका प्रतिषेध कर दिया गया।

शंका—यह उक्त व्यवहार किस नयका है ?

समाधान—शब्द और अर्थके वाच्यवाचकसम्बन्धको नित्य माननेवाले शब्दनयका यह व्यवहार है।

वेदमार्गणाके अन्तमें दिये हुए (नं. ४५ वें) सूत्रके 'अपगतवेदियोंमें' इस पदके द्रव्यनिर्देशका भी इसी प्रकारसे व्याख्यान करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ५१ ॥

यहां पर 'मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें' यह सप्तमी विभक्ति निर्द्धारणके अर्थमें है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे व्यतिरिक्त सासादनगुणस्थानवर्ती भी मत्यज्ञानी और

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

संभवादो। सेसं पुव्वं पदुप्पादिदमिदि पुव्वुत्तट्ठावधारिदसिस्साणुरोहेण ण वुच्चदे।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ५२ ॥

एत्थ पुव्वसुत्तादो मदि-सुदअण्णाणीसु त्ति अणुवट्टदे? कधं णिच्चेयणस्स खण-खइणो सद्दस्स अविणट्ठरूवेण अणुवत्ती? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स अवयवभावेण ट्ठिदअण्णसद्दस्स पुव्वसद्देण समाणत्तमवेक्खिय सो चेव एसो इदि पच्चयहिण्णाण-पच्चयणिमित्तस्स अणुवत्तिविरोहाभावादो। सेसो गदट्ठो।

विभंगण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो– विभंगण्णाणी मिच्छाइट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो एदं? पहाणीकदपज्जत्तदेवरासित्तादो। मारणंतिय-

श्रुताज्ञानी पाये जाते हैं। शेष व्याख्यान पहले कर आए हैं, अतः पूर्वोक्त अर्थके अवधारण करनेवाले शिष्योंके अनुरोधसे पुनः नहीं कहते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र ओघ-सासादनसम्यग्दृष्टिके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ५२ ॥

यहां पर पूर्वसूत्रसे 'मति-श्रुताज्ञानियोंमें' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है।

शंका— अचेतन और क्षण-क्षयी शब्दकी अविनष्टरूपसे अनुवृत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इस सूत्रके अवयवरूपसे स्थित अन्य शब्दकी पूर्व शब्दके साथ समानता देखकर 'यह वही है' इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञानकी प्रतीतिके निमित्तभूत शब्दकी अनुवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शेष सूत्रका अर्थ पहले किया जा चुका है।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका— स्वस्थानादि पदगत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें क्यों रहते हैं?

१ विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

समुग्घादगदा एवं चेव। णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं। उववादपदं णत्थि। सासणसम्मादिट्ठी सव्वेहि वि पदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ वि उववादो णत्थि।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ५४ ॥

एदं सुत्तं वुत्तत्थमिदि पुणो ण एदस्स अत्थो वुच्चदे।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ५५ ॥

समाधान—चूंकि, यहांपर पर्याप्त देवराशिकी प्रधानता है, इसलिए स्वस्थानादि पदोंको प्राप्त वे देव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

मारणान्तिकसमुद्घातगत विभंगज्ञानियोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है। विशेषता केवल इतनी कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, पर्याप्तावस्थामें ही विभंगज्ञान उत्पन्न होता है)। विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानादि सभी संभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चारों लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहांपर भी उपपाद पद नहीं है। (कारण भी उपर्युक्त ही समझना चाहिए)।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह दिया गया है, इसलिए पुनः इसका अर्थ नहीं कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

१ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्टयादीनां क्षीणकषायान्तानां ××× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ ×× मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकषायान्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

किमट्ठं एदेसु तीसु सुत्तेसु पज्जयणयदेसणा ? बहूणं जीवाणमणुग्गहट्ठं । दव्वट्ठिएहिंतो पज्जवट्ठियजीवाणं बहुत्तं कधमवगम्मदे ? ण, संगहरुइजीवेहिंतो बहूणं वित्थररुइजीवाणमुवलंभादो । सेसमेवं गदट्ठं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ५६ ॥

एत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणओ अवलंबिदो ? ण, पज्जवट्ठियणयावलंबणे कारणाभावा । पज्जवट्ठियणओ अवलंबिज्जदे विसेसपदुप्पायणट्ठं, ण च एत्थ को वि विसेसो अत्थि । ण च पुव्वसुत्तेहि वियहिचारो, पादेक्कं गुणट्ठाणेसु तत्थ णाणभेदोवलंभादो । सेसं सुगमं ।

अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ ५७ ॥

एसो णवसु पदेसु कत्थ वट्टदे ? सेसपदसंभवाभावादो सत्थाणे पदे ।

शंका—इन अभी कहे गए तीनों सूत्रोंमें पर्यायार्थिकनयका उपदेश किस लिए दिया गया है ?

समाधान—बहुतसे जीवोंके अनुग्रह करनेके लिए पर्यायार्थिकनयका उपदेश दिया गया है ।

शंका—द्रव्यार्थिकनयी जीवोंसे पर्यायार्थिकनयवाले जीव बहुत हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, संक्षेपरुचिवाले जीवोंसे विस्ताररुचिवाले जीव बहुत पाये जाते हैं ।

शेष सूत्रका अर्थ तो अवगत ही है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ५६ ॥

शंका—इस सूत्रमें किसलिए द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करनेका यहां कोई कारण नहीं है । पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन विशेष प्रतिपादनके लिए किया जाता है । किन्तु यहांपर कोई भी विशेषता नहीं है, (जिसके कि बतलानेके लिए पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन किया जाय) । और न यहांपर पूर्व सूत्रसे (जो कि पर्यायार्थिकनयी है) व्यभिचार दोष ही आता है, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें ज्ञानभेद पाया जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

अयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५७ ॥

शंका—ये अयोगिकेवली भगवान् स्वस्थानादि नौ पदोंमेंसे किस पदमें रहते हैं ?

समाधान—अयोगिकेवलीके विहारवत्स्वस्थानादि शेष अशेष पद संभव न होनेसे वे स्वस्थानस्वस्थान पदमें रहते हैं ।

---

१ ×× केवलज्ञानिनां सयोगानां × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

२ ×× केवलज्ञानिनां × अयोगानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

उप्पण्णपदेसो घरं गामो देसो वा सत्थाणं, तस्स वि उवयारदंसणादो। ण च ममेदंबुद्धीए पडिगहिदपदेसो सत्थाणं, अजोगिम्हि खीणमोहम्हि ममेदंबुद्धीए अभावादो त्ति? ण एस दोसो, वीदरागाणं अप्पणो अच्छिदपदेसस्सेव सत्थाणववएसादो। ण सरागाणमेस णाओ, तत्थ ममेदंभावसंभवादो। अधवा एस चेव णाओ सव्वत्थ घेप्पउ, विरोहाभावादो। जदि एवं सत्थाणस्स अत्थो वुच्चदि, तो सासणसत्थाणफोसणस्स अट्ठ चोद्दसभागा पावंति त्ति चे ण, फोसणे ममेदंबुद्धिपडिगहिदस्स सस्सामिसंबंधेण वारिदस्स चेव सत्थाणववदेसादो। सेसं सुगमं।

एवं णाणमग्गणा समत्ता।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ५८ ॥

शंका—अपने उत्पन्न होनेके प्रदेश, घर, ग्राम अथवा देशको स्वस्थान कहते हैं। इस प्रकारका यह स्वस्थानपद भी अयोगिकेवलीमें केवल उपचारसे ही देखा जाता है, (न कि यथार्थतः)। तथा 'यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिसे प्रतिगृहीत प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं, किन्तु क्षीणमोही अयोगी भगवान्‌में ममेदंबुद्धिका अभाव है, इसलिए (किसी भी प्रकारसे) अयोगिकेवलीके स्वस्थानपद नहीं बनता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वीतरागियोंके अपने रहनेके प्रदेशको ही स्वस्थान नामसे कहा गया है। किन्तु सरागियोंके लिए यह न्याय नहीं है, क्योंकि, इनमें ममेदंभाव संभव है। अथवा, 'अपने रहनेके प्रदेशको स्वस्थान कहते हैं' यही न्याय सर्वत्र ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, उसके माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—यदि इस प्रकार स्वस्थानका अर्थ कहते हैं, तो सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्थानस्वस्थानपदके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह $\frac{8}{14}$ राजु प्रमाण प्राप्त होता है, (जो कि आगे स्पर्शनानुयोगद्वारमें बताया नहीं गया है)?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुयोगद्वारमें, ममेदंबुद्धिसे प्रतिगृहीत और अपने स्वामित्वके सम्बन्धसे रोके हुए क्षेत्रको ही स्वस्थान संज्ञा प्राप्त है।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संयत जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५८ ॥

१ संयमानुवादेन ××× संयतानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

एत्थ किमट्ठं दव्वट्ठियणयदेसणा कीरदे ? ण, संजमसामण्णे पहाणीकदे ओघं पडि विसेसाभावादो । पज्जवट्ठियणयपरूवणा एत्थ जाणिय वत्तव्वा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ५९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, खेत्तं पडि सेसगुणट्ठाणेहिंतो सजोगिस्स विसेसोवलंभादो । जदि एवं, तो सेसगुणट्ठाणाणं पि णाणाविहभेयभिण्णाणं पुध पुध सुत्तकरणं पावेदि त्ति चे ण, तेसिं पहाणीकयखेत्तजणिदविसेसाभावादो । एत्थ सेसा पज्जवट्ठियणयपरूवणा सव्वा वत्तव्वा ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ६० ॥

शंका— इस सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयकी देशना किस लिए जा रही है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, संयमसामान्यके प्रधान करनेपर ओघक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा संयममार्गणाके अनुवादसे क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है ।

यहांपर पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा जान करके करना चाहिए ।

संयोगिकेवली भगवान् ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें, लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका— इन दोनों सूत्रोंका एक समास क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षेत्रकी अपेक्षा शेष गुणस्थानोंसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रमें विशेषता पाई जाती है ।

शंका— यदि ऐसा है, तो नाना प्रकारके भेदोंसे भिन्नताको प्राप्त शेष गुणस्थानोंके भी पृथक् पृथक् सूत्रोंकी रचना प्राप्त होती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, शेष गुणस्थानोंकी पृथक् पृथक् प्रधानता करनेपर भी क्षेत्र-जनित विशेषताका अभाव है, इसलिए पृथक् पृथक् सूत्र-रचनाका प्रसंग नहीं प्राप्त होता है ।

यहांपर सभी गुणस्थानसम्बन्धी शेष सर्व पर्यायार्थिकनयकी क्षेत्रप्ररूपणा कहना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

---

१ × सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

ओघपमत्तादिरासीदो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदपमत्तादओ समाणा त्ति एदेसिं परूवणा ओघं भवदि । ण च सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेहिंतो पुधभावभूदा परिहारसुद्धिसंजदा अत्थि, जेण तदो भेदो होज्ज । किमिदि पुधभूदा णत्थि ? दुणयवदिरित्त-[1]छदुमत्थजीवाभावादो । सेसं सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६१ ॥

एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति संपहि ण वुच्चदे । णवरि पमत्तसंजदे तेजाहारं णत्थि ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदउवसमा खवगा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[3] ॥ ६२ ॥

ओघमें कही गई प्रमत्तसंयतादिराशिसे सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमवाले प्रमत्तसंयतादिक समान हैं, इसलिए इनके क्षेत्रकी प्ररूपणा ओघोक्त क्षेत्रके समान बन जाती है । और, सामायिक तथा छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे परिहारविशुद्धिसंयत पृथग्भावरूप हैं नहीं, जिससे कि उनसे उनका भेद हो जाय ।

शंका — परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंसे पृथग्भूत क्यों नहीं है ?

समाधान — क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंसे भिन्न छद्मस्थ जीवोंका अभाव है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६१ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए अब नहीं कहते हैं । विशेष बात यह है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती परिहारविशुद्धिसंयतके तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात ये दो पद नहीं होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशमक और क्षपक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६२ ॥

---

१ प्रतिषु ' दुण्णय ' इति पाठः

२ × × × परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

३ × × × सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां × × × सामान्योक्तं क्षेत्रम् । स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु त्ति आधारणिद्देसो। तत्थ सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दुविधा होंति उवसामगा खवगा चेदि। ते अप्पणो पदेसु वट्टमाणा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे होंति। णवरि मारणंतियपदे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे होंति।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणमोघं[1] ॥ ६३॥

एत्थ ट्ठाणसद्दो पुव्वुत्तणाएण गुणट्ठाणवाची। चदुण्हं ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी, सा ओघं होदि। उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिजिणाणं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं अप्पणो ओघपरूवणं होदि त्ति जं वुत्तं होदि।

संजदासंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ६४ ॥

एदस्स अत्थो पुव्वं परूविदो।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठी ओघं[3] ॥ ६५ ॥

'सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें' इस पदसे आधारका निर्देश किया गया। इस गुणस्थानमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत दो प्रकारके होते हैं, उपशामक और क्षपक। वे दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत अपने यथासंभव पदोंमें रहते हुए सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातपदमें उपशामक जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक चारों गुणस्थानवाले संयतोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ६३ ॥

इस सूत्रमें आया हुआ 'स्थान' शब्द पूर्वोक्त न्यायसे गुणस्थानका वाचक है। चार गुणस्थानोंके समुदायको 'चतुःस्थानी' कहते हैं। उनका क्षेत्र ओघके समान है। अर्थात्, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिजिन और अयोगिजिन गुणस्थानवर्ती यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र अपने ओघक्षेत्रके समान होता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

संयतासंयत जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

१ ××× यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां चतुर्णां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ ××× संयतासंयतानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

३ ×× असंयतानां च चतुर्णां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

ओघपरूणा गुणट्ठाणाणमभेदेण भेदेण च जा कदा, सा अत्थोघ-आदेसोघेहिं दुविधा होदि। आदेसोघो वि गुणट्ठाणभेदेण चोद्दसविहो होदि। एत्थ ओघमिदि वुत्ते कदमस्स ओघस्स गहणं? आदेसोघस्स अवयवभूदमिच्छादिट्ठीणमोघस्स। कधमेदं लब्भदे? पच्चासत्तीदो। अण्णेहि वि ओघेहि सह कथंचि पच्चासत्ती अत्थि त्ति भणिदे ण, अण्णेहि सह मिच्छादिट्ठीहि जेम पयरिसेण पच्चासत्तीए अभावादो। एदमत्थपदं सव्वत्थ जोजेयव्वं। असंजदचदुगुणट्ठाणाणमेगजोगो किण्ण कदो? ण, मिच्छादिट्ठीणं सेसगुणट्ठाणेहि सह खेत्तेण पयरिसपच्चासत्तीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ६६ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण पच्चासत्ती अत्थि त्ति एगजोगो कदो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

शंका—ओघप्ररूपणा गुणस्थानोंके अभेदसे और भेदसे जो की गई है, वह अर्थ-ओघ और आदेश-ओघके भेदसे दो प्रकारकी होती है। आदेश-ओघ भी गुणस्थानोंके भेदसे चौदह प्रकारका होता है। सो यहां 'ओघ' ऐसा सामान्यपद कहनेपर किस ओघका ग्रहण किया गया है?

समाधान—आदेश-ओघके अवयवभूत मिथ्यादृष्टियोंके ओघका ग्रहण किया गया है।

शंका—यह अर्थ कैसे प्राप्त होता है?

समाधान—प्रत्यासत्तिसे, अर्थात् सामीप्यसे, आदेश-ओघका ग्रहण किया गया है, यह जाना जाता है।

शंका—प्रत्यासत्ति तो कथंचित् अन्य भी ओघोंके साथ हो सकती है?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि नहीं, क्योंकि, अन्य ओघोंके साथ मिथ्यादृष्टियोंके समान प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है।

यह अर्थपद सर्वत्र लगाना चाहिए।

शंका—असंयत चारों गुणस्थानोंका एक योग (समास) क्यों नहीं किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंकी शेष सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतम प्रत्यासत्तिका अभाव है।

असंयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६६ ॥

इन सूत्रोक्त तीनों ही गुणस्थानोंका सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागके साथ और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रके साथ प्रत्यासत्ति पाई जाती है, इसलिए उक्त तीनों गुणस्थानोंका एक योग इस सूत्रमें किया गया है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीण-कसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा चक्खु-दंसणी मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जादिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणा जाणिय कादव्वा । एवं मारणंतियसमुग्घादगदा । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादगदाणं पि वत्तव्वं । अपज्जत्त-काले चक्खुदंसणाभावादो उववादो णत्थि त्ति णासंकणिज्जं, अपज्जत्तकाले वि खओवसमं पडुच्च चक्खुदंसणुवलंभादो । जदि एवं, तो लद्धिअपज्जत्ताणं पि चक्खुदंसणित्तं पसज्जदे । तं च णत्थि, चक्खुदंसणिअवहारकालस्स पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपमाण-प्पसंगादो ? ण एस दोसो, णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणमत्थि; उत्तरकाले णिच्छएण चक्खुदंसणोवजोगसमुप्पत्तीए अविणाभाविचक्खुदंसणखओवसमदंसणादो । चउरिंदिय-

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान विहारवत्स्वस्थान वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिक-समुद्धातगत चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहांपर अपवर्तना जानकर करना चाहिए। इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र है । विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्धातगत चक्षुदर्शनी जीव तिर्यग्लोकसे असं-ख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपपादगत चक्षुदर्शनियोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए । अपर्याप्तकालमें चक्षुदर्शनका अभाव होनेसे यहांपर उपपादपद नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें भी क्षयोपशमकी अपेक्षा चक्षुदर्शन पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनीपनेका प्रसंग प्राप्त होता है । किन्तु लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता नहीं है । यदि लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी चक्षुदर्शनका सद्भाव माना जायगा, तो चक्षुदर्शनी जीवोंके अवहारकालको प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र प्रमाणपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, निर्वृत्त्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन होता है, इसका कारण यह है कि उत्तरकालमें, अर्थात् अपर्याप्तकाल समाप्त होनेके पश्चात् निश्चयसे चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनका क्षयोपशम देखा जाता

१ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

पंचिंदियलद्धिअपज्जत्ताणं चक्खुदंसणं णत्थि, तत्थ चक्खुदंसणोवओगसमुप्पत्तीए अविणाभाविचक्खुदंसणक्खओवसमाभावादो। सेसगुणट्ठाणाणं पज्जवट्ठियपरूवणा जाणिय वत्तव्वा।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ६८ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ ६९ ॥

एदेसिमणंतरदोसुत्ताणमेगत्तं किण्ण कदं ? ण, मिच्छादिट्ठीहि सेसगुणट्ठाणाणं पच्चासत्तीए अभावादो।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो[2] ॥ ७० ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[3] ॥ ७१ ॥

है। हां, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके चक्षुदर्शन नहीं होता है, क्योंकि, उनमें चक्षुदर्शनोपयोगकी समुत्पत्तिका अविनाभावी चक्षुदर्शनावरणकर्मके क्षयोपशमका अभाव है।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६९ ॥

शंका—इन अनन्तरोक्त दोनों सूत्रोंका एकत्व क्यों नहीं किया, अर्थात् एक सूत्र क्यों नहीं बनाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवोंके साथ शेष गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्रत्यासत्तिका अभाव है।

अवधिदर्शनी जीवोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७० ॥

केवलदर्शनी जीवोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ७१ ॥

---

१ अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १. ८.

२ अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत्। स. सि. १, ८.

३ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्। स. सि. १, ८.

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति पज्जवट्ठियपरूवणा ण कीरदे।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ७२ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगच्छणेण, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छणेण च सरिसत्तमत्थि त्ति ओघमिदि भणिदं। णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ७३ ॥

चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तणेण च

....

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणा नहीं की जाती है।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ओघके समान सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहनेसे, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहनेकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके क्षेत्रके सदृशता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातगत तीनों अशुभलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव ओघके समान लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७३ ॥

तीनों अशुभलेश्यावाले उक्त तीनों गुणस्थानवर्ती जीवोंके स्वसंभव पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहनेसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे

....

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि, १, ८.

सरिसत्तुवलंभादो सिद्धमोघत्तं। विसेसदो पुण मारणंतिय-उववादगदा किण्ह-णील-काउ-लेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा वि होदूण माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे खेत्ते अच्छंति, असंखेज्जजोयणायामत्तादो।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७४ ॥

तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। मारणंतियसमुग्घादगदा एवं चेव। णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं। एवं चेव उववादगदाणं। एत्थ ओवट्टणं ठविज्जमाणे सुधम्मरासिं ठविय अप्पणो उवक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुववज्जमाणजीवा होंति। पुणो अवरमेगं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं भागहार-सरूवेण ठविदे रज्जुआयामेण उववादगदरासी होदि। पुणो संखेज्जपदरंगुलमेत्तरज्जूहि

क्षेत्रमें रहनेसे सदृशता पाई जाती है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना सिद्ध हुआ। किन्तु विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत कृष्ण, नील और कापोत-लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यात होकरके भी मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत दंडका आयाम असंख्यात योजन पाया जाता है।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार है। विशेष बात यह कहना चाहिए कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार उपपाद पदगत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिए। यहांपर अपवर्तनाके स्थापित करते समय सौधर्मकल्पकी जीवराशिको स्थापित कर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अपने उपक्रमणकालसे भाग देनेपर एक समयमें उनमें उत्पन्न होनेवाले जीव होते है। पुनः एक दूसरा पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहारस्वरूपसे स्थापित कर एक राजुप्रमाण आयामवाली उपपादपदको प्राप्त जीवराशिका प्रमाण होता

---

१ तेजःपद्मलेश्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

गुणिदे उववादखेत्तं होदि। ओवट्टणा जाणिय कायव्वा। तेउलेस्सियगुणपडिवण्णाणं ओघभंगो। पम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठी सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीभूदतिरिक्खरासित्तादो। वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पधाणीकदसणक्कुमार-माहिंद-रासीदो। सासणादिगुणपडिवण्णाणं अप्पमत्तसंजदंताणं ओघभंगो।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ७५ ॥

सुक्कलेस्सियमिच्छाइट्ठिणो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता, तेण सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो। णवरि

....

है। पुनः संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है। यहांपर अपवर्तना जान करके करना चाहिए। गुणस्थानप्रतिपन्न तेजोलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातगत पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर तिर्यंच-राशिकी प्रधानता है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको प्राप्त पद्म-लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहांपर सानत्कुमार-माहेन्द्र देवराशिकी प्रधानता है। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पद्मलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

शुक्लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७५ ॥

चूंकि, शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इस-लिए वे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमु-द्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। विशेष बात यह है

....

१ शुक्लेश्यानां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि सव्वगुणट्ठाणेसु मारणंतिय-उववादपदेसु जीवा संखेज्जा चेव।

सजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं। जधा कसायमग्गणाए अकसाइया वुत्ता, तधा एत्थ लेस्सामग्गणाए अलेस्सिया किण्ण वुत्ता त्ति भणिदे वुच्चदे- जत्थ दव्वं पहाणीभूदं, तत्थ भणिदं होदि। जत्थ पुण पज्जओ पहाणो, तत्थ ण होदि। लेस्सामग्गणा पुण पज्जयपहाणा एत्थ कदा, तेण अलेस्सिया ण परूविदा।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[2] ॥ ७७ ॥

एदं सुत्तं सव्वं पि मूलोघादो अविसिट्ठमिदि मूलोघपज्जवट्ठियपरूवणं लभदे।

....

कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक शेष सभी गुणस्थानोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंमें शुक्ललेश्यावाले जीव संख्यात ही होते हैं।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शंका—जिस प्रकार कषायमार्गणामें अकषायी जीवोंका क्षेत्र बतलाया गया, उसी प्रकार यहां लेश्यामार्गणामें अलेश्य जीवोंका क्षेत्र क्यों नहीं कहा?

समाधान—ऐसी आशंका करने पर कहते हैं—जिस मार्गणामें द्रव्य प्रधानतासे ग्रहण किया गया है, उस मार्गणामें तो प्रतिपक्षी 'अकषायी' आदिका क्षेत्र आदि कहा गया है। किन्तु जिस मार्गणामें पर्याय प्रधान है, उस मार्गणामें प्रतिपक्षी 'अलेश्य' आदिका क्षेत्र-निरूपण नहीं किया गया है। यहां पर लेश्यामार्गणा पर्याय-प्रधान कही गई है, इसलिए अलेश्य जीवोंका क्षेत्र नहीं कहा गया है।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान है ॥ ७७ ॥

यह सम्पूर्ण ही सूत्र मूल-ओघसे अविशिष्ट है, इसलिए मूल-ओघ-पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाको प्राप्त होता है, अर्थात्, भव्यजीवोंका क्षेत्र ओघमें कहे गये क्षेत्रके समान ही है।

....

१ सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ भव्यानुवादेन भव्यानां चतुर्दशानां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

अभवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवडि खेत्ते, सव्वलोए[1] ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा अभवसिद्धिया सव्वलोगे। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदट्ठिदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे। तं जधा– सव्वत्थोवा धुवबंधगा। सादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा। अद्धुवबंधगा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण ? धुवबंधगेणूणसादियबंधगमेत्तेण। तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव अभवसिद्धिया होंति त्ति एदं कुदो णव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसादियबंधगेहिंतो असंखेज्जगुणहीणत्तण्णहाणुववत्तीदो। सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति कुदो णव्वदे ? जुत्तीदो। का जुत्ती ? वुच्चदे–

अभव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदको प्राप्त अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदस्थित अभव्यसिद्धिक जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

शंका — यह कैसे जाना कि विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातगत अभव्यजीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ?

समाधान—त्रसराशिका आश्रय करके कहे गये बंधसम्बन्धी अल्पबहुत्वानुयोगद्वारके सूत्रोंसे यह जाना जाता है। वह इस प्रकार है—' ध्रुवबंधक सबसे कम हैं। ध्रुवबंधकोंसे सादिबंधक असंख्यातगुणे हैं। सादिबंधकोंसे अनादिबंधक असंख्यातगुणे हैं। अनादिबंधकोंसे अध्रुवबंधक विशेष अधिक हैं। कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ? ध्रुवबंधकोंसे हीन सादिबंधकोंकी राशिके प्रमाणसे अधिक हैं।

शंका—त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही अभव्यसिद्धिक जीव होते हैं, यह कैसे जाना जाता है ? '

समाधान—पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधकोंसे ध्रुवबंधकोंके असंख्यातगुणहीनता अन्यथा बन नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि त्रसराशिमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

शंका—सादिबंध करनेवाले जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, यह कैसे जाना ?

१ अभव्यानां सर्वलोकः। स. सि. १, ८.

तसेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा वासपुधत्तंतरेण तसट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुवलंभादो। एइंदिएसु संचिदअणंतसादियबंधगेहिंतो पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता सादियबंधगा तसेसु किण्ण उप्पज्जंति? ण, सव्वगुण-मग्गणट्ठाणेसु आयाणुसारि-वओवलंभादो। जेण एइंदिएसु आओ संखेज्जो, तेण तेसिं वएण वि तत्तिएण चेव होदव्वं। तदो सिद्धं सादियबंधगा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति।

एवं भवियमग्गणा समत्ता।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ७९ ॥

दव्वट्ठियपरूवणं पडि विसेसो णत्थि त्ति ओघमिदि वुत्तं। पज्जवट्ठियपरूवणाए वि णत्थि कोइ विसेसो। णवरि खइयसम्मादिट्ठीसु संजदासंजदाणं मणुसपज्जत्तसंजदा-

....

समाधान — युक्तिसे।

शंका — वह युक्ति कौनसी है?

समाधान — वह युक्ति इस प्रकार है — त्रसजीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सादिबंधक जीव होते हैं, क्योंकि, वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे त्रसकायकी स्थितिका पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल पाया जाता है।

शंका — एकेन्द्रिय जीवोंमें संचयको प्राप्त अनन्त सादिबंधकोंमेंसे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण सादिबंधक जीव त्रसजीवोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सभी गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें आयके अनुसार ही व्यय पाया जाता है। चूंकि, एकेन्द्रियोंमें आयका प्रमाण संख्यात ही है, इसलिए उनका व्यय भी उतना अर्थात् संख्यात ही होना चाहिए। इसलिए सिद्ध हुआ कि त्रसराशिमें सादिबंधक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

द्रव्यार्थिकनयके प्ररूपणकी अपेक्षा सूत्र-प्रतिपादित जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है। पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें भी कोई विशेषता नहीं है। केवल क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवोंके मनुष्य-

....

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां ××× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

संजदपरूवणा कादव्वा । असंजदसम्मादिट्ठी वि मारणंतिय-उववादपदेसु वट्टमाणा संखेज्जा। सेसं सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

पुव्विल्लेहि सह खेत्तं पडि पयरिसेण पच्चासत्तीए अभावादो पुध सुत्तारंभो। सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ८१ ॥

एत्थ ओघपज्जवट्ठियपरूवणा णिरवयवा सव्वगुणट्ठाणेसु परूवेदव्वा, विसेसाभावादो ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[2] ॥ ८२ ॥

पर्याप्त संयतासंयतोंमें संभव पदोंकी अपेक्षा ही क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिए। मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं। शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

सयोगिकेवली भगवान्का क्षेत्र ओघ-कथित क्षेत्रके समान है ॥ ८० ॥

सयोगिकेवली गुणस्थानकी पूर्ववर्ती गुणस्थानोंके साथ क्षेत्रकी अपेक्षा प्रकर्षतासे प्रत्यासत्तिका अभाव है, इसलिए यह पृथक् सूत्र बनाया गया है। शेष सूत्रका अर्थ सुगम है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८१ ॥

यहांपर ओघमें कही गई पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा सम्पूर्ण पदोंकी अपेक्षा सर्व गुणस्थानोंमें प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां ××× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तानां ×× सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा असंजद-सम्माइट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। मारणंतिय-उववादपदेसु एसो चेव आलावो। णवरि तेसु पदेसु[1] ट्ठिदजीवा संखेज्जा चेव होंति, उवसमसेढीदो ओदरिय उवसमसम्मत्तेण सह असंजमं पडिवण्णजीवाणं संखेज्जत्तुवलंभादो। सेसउवसमसम्मादिट्ठीणं किण्ण मरणमत्थि त्ति वुत्ते सभावदो। एवं संजदासंजदाणं पि[2]। णवरि उववादपदं णत्थि। सेसाणमोघं। णवरि पमत्तसंजदस्स उवसमसम्मत्तेण तेजाहारं णत्थि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ ८३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८४ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८५ ॥

....

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद इन दोनों पदोंमें भी यही उक्त क्षेत्र-आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उन दोनों पदोंमें वर्तमान जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, उपशमश्रेणिसे उतर कर उपशमसम्यक्त्वके साथ असंयमभावको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी संख्या संख्यात ही पाई जाती है।

शंका—उपशमश्रेणीसे उतर कर मरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त शेष अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण क्यों नहीं होता है?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होता है।

इसी प्रकारसे संयतासंयत गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है। शेष गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघ-वर्णित क्षेत्रके समान है। विशेषता केवल इतनी है कि प्रमत्तसंयतके उपशमसम्यक्त्वके साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८४ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ ८५ ॥

....

१ प्रतिषु 'पदेसेसु' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'हि' इति पाठः।

३ × × × सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि त्ति एदेसिं परूवणा ण कीरदे।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥ ८६॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा सण्णि-मिच्छादिट्ठी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एवं मारणंतिय-उववादपदेसु वि वत्तव्वं। णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे इदि भाणिदव्वं। सेसगुणट्ठाणाणमोघभंगो, तदो विसेसाभावादो।

असण्णी केवडि खेत्ते, सव्वलोगे॥ ८७॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता।

ये उक्त तीनों ही सूत्र सुगम हैं, इसलिए उनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीण-कषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं॥ ८६॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घात, इन पांच पदोंको प्राप्त संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इसीप्रकार मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दो पदोंमें वर्तमान संज्ञी मिथ्या-दृष्टि जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिए। केवल इतनी बात विशेष कहना चाहिए कि ये तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र ओघ-क्षेत्रके समान है, क्योंकि, ओघके क्षेत्रसे सासादनादि गुणस्थानोंके संज्ञी जीवोंके क्षेत्रमें कोई विशेषता नहीं है।

असंज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं॥ ८७॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्। स. सि. १, ८

२ असंज्ञिनां सर्वलोकः। स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सव्वपदेहि ओघपरूवणादो विसेसो णत्थि त्ति ओघत्तं जुज्जदे ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८९ ॥

एदस्स सुत्तस्स पज्जवट्ठियपरूवणा ओघपरूवणाए तुल्ला । णवरि उववादो सरीरगहिदपढमसमए वत्तव्वो । सजोगिकेवलिस्स वि पदर-लोगपूरणसमुग्घादा वि णत्थि, आहारित्ताभावादो ।

अणाहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९० ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघं होदि । पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण उववादपदमेक्कं चेव अत्थि । सेसं णत्थि । सेसं सुगमं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका क्षेत्र ओघके समान सर्व लोक है ॥ ८८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्वस्थान आदि सभी पदोंके साथ क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणासे विशेषता नहीं है, इसलिए उनके क्षेत्रके ओघपना बन जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती संज्ञी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८९ ॥

इस सूत्रकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा ओघक्षेत्रप्ररूपणाके समान है । विशेष बात यह है कि आहारक जीवोंके उपपादपद शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें कहना चाहिए, (क्योंकि, तभी जीव आहारक होता है) । आहारक सयोगिकेवलीके भी प्रतर और लोकपूरणसमुद्धात नहीं होते हैं, क्योंकि, इन दोनों अवस्थाओंमें केवलीके आहारकपनेका अभाव है, अर्थात् प्रतर और लोकपूरणसमुद्धातकी अवस्थामें सयोगिकेवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ।

अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ९० ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणासे अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र ओघके समान होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा तो एक उपपादपद ही होता है । शेष पद नहीं होते हैं, (क्योंकि, अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंमें स्वस्थानादि शेष सभी पद असंभव हैं) । शेष सूत्रका अर्थ सुगम है ।

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तं क्षेत्रम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी अजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे[1] ॥ ९१ ॥

पज्जवट्ठियणएण उववादगदा सासणसम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। असंजदसम्मादिट्ठीणं परूवणा एवं चेव। अजोगिकेवली चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे।

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा[2] ॥ ९२ ॥

पदरगदो सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु वा होदि, लोगपेरंतट्ठिदवादवलयवदिरित्तसयललोगखेत्तं समावूरिय ट्ठिदत्तादो। लोगपूरणे पुण सव्वलोगे भवदि, सव्वलोगमावूरिय ट्ठिदत्तादो।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं खेत्ताणिओगद्दारं समत्तं[3]।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९१ ॥

पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षा उपपादको प्राप्त अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अनाहारक अयोगिकेवली भगवान् सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं।

अनाहारक सयोगिकेवली भगवान् कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यात बहुभागोंमें और सर्वलोकमें रहते हैं ॥ ९२ ॥

प्रतरसमुद्धातगत सयोगिकेवली जिन लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, वे लोकके चारों ओर स्थित वातवलय-व्यतिरिक्त सकल लोकके क्षेत्रको समापूरित करके स्थित होते हैं। पुनः लोकपूरणसमुद्धातमें वे ही सयोगिकेवली जिन सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, उस समय वे सर्व लोकको आपूरण करके स्थित होते हैं।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्ययोगकेवलिनां सामान्योक्तं क्षेत्रम्। स. सि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

३ क्षेत्रनिर्णयः कृतः। स. सि. १, ८.

फोसणाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

फोसणाणुगमो

णमिऊणेलाइरिए तिहुवणभवणेक्कमंगलप्पईवे ।
कलिकलुसफुसणवसणे सुत्तं फोसासियं वोच्छं ॥

फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

णामफोसणं ठवणफोसणं दव्वफोसणं खेत्तफोसणं कालफोसणं भावफोसणं चेदि छव्विहं फोसणं । तत्थ णामफोसणं फोसणसद्दो । एसो दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो, धुवत्तेण

त्रिभुवनरूपी भवनके प्रकाशित करनेके लिए अद्वितीय मंगलप्रदीप, और कलिकालकी कलुषताके संमार्जनके लिए वस्त्रस्वरूप श्री एलाचार्यको नमस्कार करके स्पर्शनानुगमाश्रित सूत्रोंके अर्थको कहता हूं ॥

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन कालस्पर्शन और भावस्पर्शनके भेदसे स्पर्शन छह प्रकारका है । उनमें 'स्पर्शन' यह शब्द नामस्पर्शन निक्षेप है । यह निक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, ध्रुवपनेके विना वाच्य-वाचकभावरूप सम्बन्ध

---

१ स्पर्शनमुच्यते-तद् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

विणा वाचिय-वाचयभावाणुववत्तीदो। सोयमिदि बुद्धीए अण्णदव्वेण अण्णदव्वस्स एयत्तकरणं ठवणफोसणं णाम। जहा, घड-पिढरादिसु एसो उसहो अजीवो अहिणंदणो त्ति। एसो वि दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो, दोण्हमेयत्त-धुवत्तेहि विणा ठवणापवुत्तीए असंभवादो। आगम-णोआगमभेदेण दुविहं दव्वफोसणं। तत्थ फोसणपाहुडजाणगो अणुवजुत्तो खओवसमसहिओ आगमदो दव्वफोसणं णाम। णोआगमदव्वफोसणं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तदव्वफोसणभेएण तिविहं। तत्थ जाणुगसरीरदव्वफोसणं भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेएण तिविहं। कधमेदस्स तिविहसरीरस्स फोसणववदेसो? फोसणपाहुडसहचारादो। जहा, असिसहचरिदो असी, धणुसहचरिदो धणुहमिदि। भवियदव्वफोसणं भविस्सकाले फोसणपाहुडजाणओ। कधमेदस्स दव्वफोसणववएसो? पुव्वुत्तरावत्थाणं दव्वेण एगत्तादो। जहा, इंदट्ठमाणिदकट्ठस्स इंदो त्ति ववदेसो। तव्वदिरित्तदव्वफोसणं सचित्त-अचित्त-

....

नहीं बन सकता है। 'यह वही है' इस प्रकारकी बुद्धिसे अन्य द्रव्यके साथ अन्य द्रव्यका एकत्व स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। जैसे, घट, पिठर (पात्रविशेष) आदिकमें 'यह ऋषभ है, यह अजीव है, यह अभिनन्दन है' इत्यादि। यह स्थापनानिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, दो पदार्थोंकी एकता और ध्रुवताके विना स्थापनानिक्षेपकी प्रवृत्ति असंभव है। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्पर्शननिक्षेप दो प्रकारका है। उनमें स्पर्शनविषयक शास्त्रका ज्ञायक, किन्तु वर्तमानमें अनुपयोगी और क्षयोपशमसहित जीव आगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप है। नोआगमद्रव्यस्पर्शननिक्षेप ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्पर्शनके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें ज्ञायकशरीर द्रव्यस्पर्शन भावी, वर्तमान और समुज्झित (त्यक्त) के भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका—इस तीन प्रकारके शरीरको 'स्पर्शन' यह व्यपदेश (संज्ञा) कैसे प्राप्त हो सकता है?

समाधान—स्पर्शनप्राभृतके साहचर्यसे उक्त तीन प्रकारके शरीरको भी स्पर्शनसंज्ञा प्राप्त हो जाती है। जैसे, असि (तलवार) से सहचरित पुरुषको असि और धनुषसे सहचरित पुरुषको धनुष संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

भविष्यकालमें स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायकको भव्यद्रव्यस्पर्शन कहते हैं।

शंका—इस भव्यशरीरवालेके 'द्रव्यस्पर्शन' यह संज्ञा कैसे है?

समाधान—विवक्षित द्रव्यकी पूर्व अवस्था और उत्तर अवस्थाका उस द्रव्यके साथ एकत्व पाया जाता है। जैसे, इन्द्र बनानेके लिये लाए गए काष्ठकी 'इन्द्र' यह संज्ञा देखी जाती है।

मिस्सयभेदेण तिविहं । सचित्ताणं दव्वाणं जो संजोओ सो सचित्तदव्वफोसणं । अचित्ताणं दव्वाणं जो अण्णोण्णेण संजोओ सो अचित्तदव्वफोसणं । मिस्सयदव्वफोसणं छण्हं दव्वाणं संजोएण एगूणसट्ठिभेयभिण्णं । सेसदव्वाणमागासेण सह संजोओ खेत्तफोसणं । अमुत्तेण आगासेण सह सेसदव्वाणं मुत्ताणममुत्ताणं वा कधं पोसो ? ण एस दोसो, अवगेज्झाव-

तद्व्यतिरिक्तद्रव्यस्पर्शन सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । जो सचित्त द्रव्योंका संयोग होता है, वह सचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । अचित्त द्रव्योंका जो परस्परमें संयोग होता है, वह अचित्तद्रव्यस्पर्शन कहलाता है । मिश्रद्रव्यस्पर्शन चेतन-अचेतनस्वरूप छहों द्रव्योंके संयोगसे उनसठ भेदवाला होता है ।

विशेषार्थ — किसी विवक्षित राशिके द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि भंग निकालनेके लिए विवक्षित राशिप्रमाणसे लेकर एक एक कम करते हुए एकके अंक तक अंक स्थापित करना चाहिए । पुनः दूसरी पंक्तिमें उनके नीचे एकसे लेकर विवक्षित राशि तक अंक लिखना चाहिए । पहली पंक्तिके अंकोंको अंश या भाज्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको हार या भागहार कहते हैं । यहां पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागहारोंके साथ अगले भागहारोंका गुणा करना चाहिए । पुनः भाज्योंके गुणनफलमें भागहारोंके गुणनफलका भाग देना चाहिए जो इस प्रकार प्रमाण आवे, उतने ही विवक्षित स्थानके भंग समझना चाहिए । इस करणसूत्र (गो. कर्मकांड गाथा नं. ७९९) के नियमानुसार छह द्रव्योंके संयोगी भंग इस प्रकार होंगे — द्विसंयोगी — $\frac{६ \times ५}{१ \times २} = १५$ । त्रिसंयोगी $\frac{६ \times ५ \times ४}{१ \times २ \times ३} = २०$ । चतुःसंयोगी $\frac{६ \times ५ \times ४ \times ३}{१ \times २ \times ३ \times ४} = १५$ । पंचसंयोगी $\frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५} = ६$ । षट्संयोगी $\frac{६ \times ५ \times ४ \times ३ \times २ \times १}{१ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६} = १$ । इन सब संयोगी भंगोंका योग १५+२०+१५+६+१=५७ सत्तावन होता है । इन ५७ भंगोंके अतिरिक्त जीवका जीवके साथ, तथा पुद्गलका पुद्गलके साथ, इस प्रकार दो भंग और भी संभव हैं, जिन्हें मिलाकर ५९ संयोगी भंग हो जाते हैं । धर्मास्तिकाय आदि शेष चार द्रव्य अखंड एक एक ही होते हैं, अतः उनके इस प्रकारके एक ही द्रव्यके भीतर संयोगी भंग संभव नहीं हैं । जीव आदि छहों द्रव्योंके पृथक् पृथक् छह भंग और होते हैं, जो असंयोगी (एक संयोगी) होनेसे यहां ग्रहण नहीं किये गये ।

शेष द्रव्योंका आकाशद्रव्यके साथ जो संयोग है, वह क्षेत्रस्पर्शन कहलाता है ।

शंका — अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

गाहगभावस्सेव उवयारेण फासववएसादो, सत्त-पमेयत्तादिणा अण्णोण्णसमाणत्तणेण वा। कालदव्वस्स अण्णदव्वेहि जो संजोओ सो कालफोसणं णाम। एत्थ अमुत्तेण कालदव्वेण सेसदव्वाणं जदि वि पासो णत्थि, परिणामिज्जमाणाणि सेसदव्वाणि परिणामत्तेण कालेण पुसिदाणि त्ति उवयारेण कालफोसणं वुच्चदे। खेत्त-कालपोसणाणि दव्वफोसणम्हि किण्ण पदंति त्ति वुत्ते ण पदंति, दव्वादो दव्वेगदेसस्स कथंचि भेदुवलंभादो। भावफोसणं दुविहं आगम-णोआगमभेएण। फोसणपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमदो भावफोसणं। पासगुण-परिणदपोग्गलदव्वं णोआगमभावफोसणं।

एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयदं। अस्पार्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम्। फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण। णिद्देसो कहणं वक्खाणमिदि एयट्ठो। सो दुविहो, जहा पयई। ओघेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो। आदेसेण भेदेण

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अवगाह्य-अवगाहकभावको ही उपचारसे स्पर्शसंज्ञा प्राप्त है, अथवा, सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है।

कालद्रव्यका अन्य द्रव्योंके साथ जो संयोग है, उसका नाम कालस्पर्शन है। यहां यद्यपि अमूर्त्त कालद्रव्यके साथ शेष द्रव्योंका स्पर्शन नहीं है, तथापि परिणमित होने वाले शेष द्रव्य परिणामत्वकी अपेक्षा कालसे स्पर्शित हैं, इस प्रकारके उपचारसे कालस्पर्शन कहा जाता है।

शंका—क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन ये दोनों स्पर्शन, द्रव्यस्पर्शनमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होते हैं?

समाधान—ऐसी शंकापर उत्तर देते हैं कि क्षेत्रस्पर्शन और कालस्पर्शन द्रव्यस्पर्शनमें अन्तर्भूत नहीं होते हैं, क्योंकि, द्रव्यसे द्रव्यके एक देशका कथंचित् भेद पाया जाता है।

भावस्पर्शन आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। स्पर्शनविषयक शास्त्रके ज्ञायक और वर्तमानमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावस्पर्शन कहते हैं। स्पर्शगुणसे परिणत पुद्गलद्रव्यको नोआगमभावस्पर्शन कहते हैं।

इन उक्त छह प्रकारके स्पर्शनोंमेंसे यहांपर जीवद्रव्यसम्बन्धी क्षेत्रस्पर्शनसे प्रयोजन है। जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कहलाता है। स्पर्शनके अनुगमको स्पर्शनानुगम कहते हैं, उससे, अर्थात् स्पर्शनानुगमसे। निर्देश, कथन और व्याख्यान, ये तीनों एकार्थक नाम हैं। वह निर्देश प्रकृतिके निर्देशके समान दो प्रकारका होता है। ओघ, पिंड और अभेद, ये सब एकार्थक नाम हैं। आदेश, भेद

विसेसेणेत्ति समाणट्ठो। ओघणिद्देसो आदेसणिद्देसो त्ति दुविहो चेव णिद्देसो होदि, दव्व-पज्जवट्ठियणए अणवलंबिय कहणोवायाभावादो। जदि एवं, तो पमाणवक्कस्स अभावो पसज्जदे इदि वुत्ते, होदु णाम अभावो, गुणप्पहाणभावमंतरेण कहणोवायाभावादो। अधवा, पमाणुप्पाइदं वयणं पमाणवक्कमुवयारेण वुच्चदे।

ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो ताव ओघेणेत्ति[2] वयणं। सेसगुणट्ठाण-पडिसेहट्ठं मिच्छादिट्ठीहिं त्ति वयणं। केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि पुच्छासुत्तं सत्थस्स पमाणत्तपदुप्पायणफलं। खेत्ताणिओगद्दारे सव्वमग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठं खेत्तं पदुप्पादिदं, संपदि पोसणाणिओगद्दारेण किं परूविज्जदे? चोद्दस मग्गणट्ठाणाणि अस्सिदूण सव्वगुणट्ठाणाणं अदीदकालविसेसिदखेत्तं फोसणं वुच्चदे। एत्थ

और विशेष ये सब समानार्थक नाम हैं। ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश इस प्रकारसे निर्देश दो ही प्रकारका होता है, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयोंके अवलम्बन किये विना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका अभाव है।

शंका—यदि ऐसा है तो प्रमाणवाक्यका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान—उक्त शंकापर धवलाकार कहते हैं कि भले ही प्रमाणवाक्यका अभाव हो जावे, क्योंकि, गौणता और प्रधानताके विना वस्तुस्वरूपके कथन करनेके उपायका भी अभाव है। अथवा, प्रमाणसे उत्पादित वचनको उपचारसे प्रमाणवाक्य कहते हैं।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार सूत्रमें पहले 'ओघसे' ऐसा वचन कहा। सासादनादि शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए 'मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा' यह वचन कहा। 'कितना क्षेत्र स्पर्श किया है' यह पृच्छा-सूत्र शास्त्रके प्रमाणता-प्रतिपादन करनेके लिए कहा गया है।

शंका—क्षेत्रानुयोगद्वारमें सर्व मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकर सभी गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन कर दिया गया है। अब पुनः इस स्पर्शनानुयोगद्वारसे क्या प्ररूपण किया जाता है?

समाधान—चौदह मार्गणास्थानोंका आश्रय लेकरके सभी गुणस्थानोंके अतीत (भूत) काल विशिष्ट क्षेत्रको स्पर्शन कहा गया है। (अतएव यहां उसीका प्ररूपण किया जाता है।)

---

१ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'ताव ओवं च णामिमित्ति त्ति ओघेणेत्ति' इति पाठः।

वट्टमाणखेत्तपरूवणं पि सुत्तणिबद्धमेव दीसदि। तदो ण पोसणमदीदकालविसिट्ठखेत्त-पदुप्पाइयं, किंतु वट्टमाणादीदकालविसेसिदखेत्तपदुप्पाइयमिदि ? एत्थ ण खेत्तपरूवणं, तं तं पुव्वं खेत्ताणिओगद्दारपरूविदवट्टमाणखेत्तं संभराविय अदीदकालविसिट्ठखेत्तपदु-प्पायणट्ठं तस्सुवादाणा। तदो फोसणमदीदकालविसेसिदखेत्ते पदुप्पाइयमेवेत्ति सिद्धं। सव्वलोगो, सव्वो लोगो मिच्छादिट्ठीहि च्छुत्तो त्ति जं वुत्तं होदि। एत्थ लोगपमाणं पुव्वं व आणेदव्वं। अधवा—

मुहसहिदमूलमद्धं छेत्तूणद्धेण सत्तवग्गेण।
हंतूणेगट्ठकदे घणरज्जू होंति लोगम्हि ॥ १ ॥

एदीए गाहाए आणेदव्वो। अधवा सत्तरज्जुविक्खंभ-चोद्दसरज्जुआयदखेत्तं ठविय

....

शंका—यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्र-निबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीतकालविशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है, किन्तु वर्तमान और अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ?

समाधान—यहां स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है, किन्तु, पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमानक्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल-विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है। अतएव स्पर्शनानुयोगद्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है, यह सिद्ध हुआ।

'सर्वलोक' अर्थात् सम्पूर्ण लोक मिथ्यादृष्टि जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, ऐसा कहा गया है। यहांपर लोकका प्रमाण पहले क्षेत्रप्ररूपणामें बताये गये नियमके अनुसार निकाल लेना चाहिए। अथवा–

लोकको अर्धभागसे छेदकर अर्थात् मध्यलोकसे दो विभाग कर, दोनों विभागोंके पृथक् पृथक् मुखसहित मूलके विस्तारको आधा करके, पुनः सातके वर्गसे गुणा करके, उन दोनों राशियोंको जोड़ देनेपर, लोकसम्बन्धी घनराजु उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

इस गाथाके अनुसार लोकका प्रमाण निकालना चाहिए।

विशेषार्थ—लोकको मध्यसे विभक्त करनेपर दो भाग हो जाते हैं, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक। इनमेंसे अधोलोकका मुख १ राजु और मूल ७ राजुप्रमाण है। अतएव इन दोनोंका योग ८ राजु हुआ। इसके आधे ४ को ७ के वर्ग (७ × ७ = ४९) से गुणा करनेपर (४ × ४९ =) १९६ राजु आते हैं। यही अधोलोकके घनराजुओंका प्रमाण है। इसी प्रकारसे ऊर्ध्वलोकका मुख १ राजु और मूल ५ राजुप्रमाण है, दोनोंका योग ६ राजु हुआ। इसके आधे ३ को ७ के वर्गसे गुणा करनेपर (३ × ४९ =) १४७ राजु आते हैं। यही ऊर्ध्वलोकके घनराजुओंका प्रमाण है। उक्त दोनों प्रमाणोंको एकत्रित करनेपर (१९६ + १४७ =) ३४३ लोकसम्बन्धी घनराजुओंका प्रमाण होता है।

आयामं चोद्दसखंडाइं कादूण विक्खंभेण सत्त खंडे करिय लोगपमाणादो अधियखेत्तं फुसिय फेलिदे सगल-विगलावयवसहिदलोगखेत्तं परिप्फुडं होदूण दीसदि। तत्थ ट्ठिद-सुत्तवसेण सव्वाणि खेत्तखंडाणि आणिय मेलाविदे वि तं च्चेव लोगपमाणं होदि।

....

अथवा, सात राजुप्रमाण चौड़े और चौदह राजुप्रमाण लम्बे क्षेत्रको स्थापन करके आयामकी अपेक्षा चौदह खंड करके और विष्कम्भकी अपेक्षा सात खंड करके, पुनः लोकके प्रमाणमेंसे अधिक क्षेत्रको लेकर राजुके प्रमाणसे खंडित करनेपर, अपने सकल और विकल अवयवोंसे सहित लोकरूप क्षेत्र परिस्फुट होकर दिखाई देता है। पुनः वहांपर बताये गए सूत्रके अनुसार समस्त क्षेत्रखंडोंको निकाल करके मिलानेपर भी वही तीन सौ तेतालीस घनराजु लोकका प्रमाण हो जाता है।

विशेषार्थ—उक्त कथनका अभिप्राय यह है कि पुरुषाकार लोकके आकारमें त्रसनाली तथा उसके आगे पीछे त्रसनालीके समान ही जो क्षेत्र है वह सब पूर्व-पश्चिम एक राजु चौड़ा, उत्तर-दक्षिण सात राजु मोटा और ऊपर-नीचे चौदह राजु लम्बा है। इस कपाटाकार आयत-चतुरस्र क्षेत्रको लम्बाईकी ओरसे एक एक राजु प्रमाणसे खंडित करके पुनः मोटाईकी ओरसे भी एक राजुप्रमाणसे खंडित करना चाहिए। इस प्रकारसे उक्त कपाटाकार आयत-चतुरस्रक्षेत्रके एक राजुप्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे अर्थात् घनात्मक खंड (१४ × ७ = ९८) अठ्यानवे होते हैं। पुनः लोकप्रमाणमेंसे इस क्षेत्रके (इन खंडोंके) अतिरिक्त जो अवशिष्ट क्षेत्र बचा है, उसे लेकर सम विभागोंको ऊपर-नीचे स्थापनकर पूर्वोक्त प्रमाणसे ही एक एक राजुप्रमाणके खंड करना चाहिए, जिसका क्रम इस प्रकार है—मध्यलोकसे नीचे अधोभागके जो शेष दोनों पार्श्ववर्ती दो भाग हैं, उन्हें एकके ऊपर दूसरेको विपर्यासक्रमसे रखना चाहिए। ऐसा करने पर वह सात राजुप्रमाण लम्बा, चौड़ा समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र तीन राजुप्रमाण हो जाती है। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करने पर (७ × ७ × ३ = १४७) एकसौ सैंतालीस खंड होते हैं। इसी प्रकारसे ऊर्ध्व-लोकके अवशिष्ट क्षेत्रको ब्रह्मलोकके पाससे छिन्न कर देनेपर समान मापवाले चार भाग हो जाते हैं। इन्हें क्रमशः विपर्यासक्रमसे स्थापित करने पर सात राजु लम्बे, साढ़े तीन राजु चौड़े और दो राजु मोटे, ऐसे दो आयत-चतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं। यदि इन दोनों भागोंको भी चौड़ाईकी ओरसे मिला दिया जाय, तो सात राजुप्रमाण लम्बा-चौड़ा एक समचतुरस्र क्षेत्र बन जाता है, जिसकी कि मोटाई सर्वत्र दो राजु होगी। इसके भी एक एक घनराजुप्रमाण खंड करने पर (७ × ७ × = ९८) अठ्यानवे खंड होते हैं। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए इन समस्त खंडोंको जोड़ देने पर (९८ + १४७ + ९८ = ३४३) तीन सौ तेतालीस खंड हो जाते हैं, जो कि प्रत्येक एक एक घनराजुप्रमाण हैं। अतएव इस प्रकारसे भी लोकका प्रमाण ३४३ घनराजु निकल आता है।

एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा वुच्चदे । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदमिच्छादिट्ठीहि अदीदेण वट्टमाणेण च सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि वट्टमाणे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं । एत्थ ओवट्टणाए खेत्तभंगो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । तं जधा– लोगणालिं चोद्दस खंडे करिय मेरुमूलादो हेट्ठिम-दो-खंडाणि उवरिम-छ-खंडाणि च एगट्ठे कदे अट्ठ चोद्दसभागा होंति । ते च हेट्ठिमजोयणसहस्सेणूणा होंति ।

सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३ ॥

एदं सुत्तं मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठं खेत्ताणिओगद्दारे उत्तमेव पुणरवि उत्तं, अदीदाणागदवट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तेसु चोद्दसगुणट्ठाणणिबद्धेसु पुच्छिदेसु तस्सिस्ससंदेहविणासणट्ठं वा दु-कालविसिट्ठखेत्तपरूवणं कीरदे । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-

अब यहांपर पर्यायार्थिक नयसम्बन्धी प्ररूपणा कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकाल और वर्तमानकालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर अपवर्तना क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्धातगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा देशोन (कुछ कम) आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) राजु क्षेत्र स्पर्श किया है, वह इस प्रकारसे है—लोकनालीके चौदह खंड करके मेरुपर्वतके मूलभागसे नीचेके दो खंडोंको और ऊपरके छह खंडोंको एकत्रित करने पर आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग हो जाते हैं । ये आठ बटे चौदह राजु तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनोंसे हीन प्रमाण होते हैं, इसीलिए इन्हें 'देशोन' कहा है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३ ॥

क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया ही यह सूत्र मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए फिर भी कहा गया है । अथवा, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमानकाल विशिष्ट तथा चौदह गुणस्थानोंसम्बन्धी क्षेत्रोंके पूछने पर उस शिष्यके संदेह-विनाशनार्थ भूतकाल और भविष्यकाल, इन दो कालोंसे विशिष्ट वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा की जा रही है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ द्वादश वा चतुर्दशभागा देशोनाः । स. सि. १, ८.

कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो। माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं खेत्तं फोसिदं। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४ ॥

सासणसम्मादिट्ठीहिं ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे। अदीदकालखेत्तपदुप्पायणट्ठमिदं सुत्तमागदं। तं कधं णव्वदे? अट्ठ बारह चोद्दसभागण्णहाणुववत्तीदो। जेणेदं देसामासिग-सुत्तं, तेणेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणा पज्जवट्ठियजणाणुग्गहट्ठं कीरदे। तं जहा- सत्थाण-सत्थाणगदेहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं। अदीदसत्थाणखेत्तस्साणयणविधाणं वुच्चदे। तं जधा- तत्थ ताव तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो। तसजीवा लोगणालीए अब्भंतरे चेव होंति, णो बहिद्धा[1]। तं कुदो णव्वदे? 'अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा' त्ति वयणादो। तदो रज्जु-

---

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ ४ ॥

इस सूत्रमें 'सासादनसम्यग्दृष्टियोंने' इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है। यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रके प्रतिपादन करनेके लिए आया है।

शंका—यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणाके लिए आया है, यह कैसे जाना?

समाधान—आठ बटे चौदह और बारह बटे चौदह भागोंकी प्ररूपणा अन्यथा बन नहीं सकती है, अतः इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि यहां पर अतीतकाल-सम्बन्धी क्षेत्रका प्रतिपादन करना अभीष्ट है।

चूंकि यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा पर्यायार्थिकनयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिए की जाती है। वह इस प्रकार है—स्वस्थानस्वस्थानपदको प्राप्त सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है; तथा अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अब अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है—उसमेंसे पहले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं। त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं।

शंका—यह कैसे जाना?

---

१ प्रतिषु 'बहिम्मा' इति पाठः।

पदरब्भंतरे सव्वत्थ सासणा संभवंति। तसजीवविरहिदेसु असंखेज्जेसु समुद्देसु णवरि सासणा णत्थि[1]। वेरियवेंतरदेवेहि घित्ताणमत्थि संभवो, णवरि ते सत्थाणत्था[2] ण होंति, विहारेण परिणदत्तादो। तं खेत्तं तिरियलोगपमाणेण कीरमाणे एगं जगपदरं पुरदो भण्णमाणपमाणेहि संखेज्जरूवेहि खंडिय लद्धं रज्जूपदरम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं होदूण संखेज्जंगुलबाहल्लं जगपदरं होदि।

संपहि जोइसियसासणसम्माइट्ठिसत्थाणखेत्तं भणिस्सामो। तं जहा– जंबूदीवे वे चंदा, वे सूरा। लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा, चत्तारि सूरा। धादइखंडे पुध पुध बारह चंदाइच्चा। कालोदयसमुद्दे बादाल चंदाइच्चा। पोक्खरदीवद्धे बाहत्तरि चंदाइच्चा[3]। माणुसोत्तरसेलादो बाहिरपंतीए चोद्दालसदमेत्ता। तदो चत्तारि रूवपक्खेवं कादूण णेदव्वं

समाधान—'सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है' इस सूत्र-वचनसे जाना जाता है कि त्रसजीव लोकनालीके भीतर ही रहते हैं, बाहर नहीं।

इसलिए राजुप्रतरके भीतर सर्वत्र सासादनसम्यग्दृष्टि जीव संभव हैं। विशेषता केवल यह है कि त्रसजीवोंसे विरहित (मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ती) असंख्यात समुद्रोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं। यद्यपि वैरभाव रखनेवाले व्यन्तर देवोंके द्वारा हरण करके ले जाये गये जीवोंकी वहां संभावना है, किन्तु वे वहांपर स्वस्थानस्वस्थानस्थ नहीं कहलाते हैं, क्योंकि, उस समय वे विहाररूपसे परिणत हो रहे हैं। इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकके प्रमाणसे करनेपर, एक जगप्रतरको आगे कहे जानेवाले संख्यातरूप प्रमाणसे खंडित करके जो लब्ध आवे, उसे राजुप्रतरमेंसे निकाल करके पुनः संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होकर संख्यात अंगुल बाहल्यवाला जगप्रतर होता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिषी देवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको कहते हैं। वह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। लवणसमुद्रमें चार चन्द्र और चार सूर्य हैं। धातकीखंडमें पृथक् पृथक् बारह चन्द्र और बारह सूर्य हैं। कालोदकसमुद्रमें ब्यालीस चन्द्र और ब्यालीस सूर्य हैं। पुष्करद्वीपार्धमें बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य हैं। मानुषोत्तर-

१ लवणोदे कालोदे जीवा अंतिमसयंभुरमणम्मि। कम्ममहीसंबद्धे जलयरया होंति ण हु सेसे॥ ति. प. ५, ३१. जलयरजीवा लवणे कालेयंतिमसयंभुरमणे य। कम्ममहीपडिबद्धे न हि सेसे जलयरा जीवा॥ त्रि. सा. ३२०.

२ प्रतिषु 'सव्वाणद्धा', म प्रतौ 'सव्वाणत्था' इति पाठः।

३ चत्तारो लवणजले धादइदीवम्मि बारस मियंका। बादाल कालसलिले बाहत्तरि पुक्खरद्धम्मि। ति. प. पत्र २२१-२२२. दो दोवग्गं बारस बादाल बहत्तरिंदुइणसंखा। पुक्खरदलो त्ति परदो अवट्ठिया सव्वजोइगणा॥ त्रि. सा. ३४६.

जाव बाहिरमट्ठ पंतीओ गदाओ त्ति । तदो समुद्दब्भंतरपढमपंतीए वेसद-अट्ठासीदिमेत्ता । तदो चदुरूवब्भहियं कादूण णेदव्वं जाव एत्थतणबाहिरपंति त्ति[1] । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति । वुत्तं च–

चंदाइच्च-गहेहिं चेवं णक्खत्त-ताररूवेहिं ।
दुगुण-दुगुणेहिं णीरंतरेहि दुवग्गो तिरियलोगो[2] ॥ २ ॥

एदाणि सव्वविमाणाणि मेलाविदे संखेज्जपदरंगुलेहि जगपदरम्हि भागे हिदे एग-भागमेत्ताणि विमाणाणि होंति[3] । पुणो ताणि–

शैलसे बाहिरी पंक्ति (वलय) में एकसौ चवालीस चन्द्र और इतने ही सूर्य हैं। इससे आगे चार संख्याको प्रक्षेप करके, अर्थात् चार चार बढ़ाते हुए बाहरी आठवीं पंक्ति आने तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ— पुष्करार्धद्वीपसे ५० हजार योजन आगे जाकर ज्योतिर्मंडलकी प्रथम पंक्ति या वलय है, वहांपर चन्द्र और सूर्य की संख्या १४४, १४४ है। उससे आगे एक एक लाख योजन आगे आगे जाकर सात वलय और हैं, जिनपर कि चन्द्र और सूर्योंकी संख्या ४, ४ बढ़ती जाती है, अर्थात् वहांपर क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२ चन्द्र वा इतने ही सूर्योंकी संख्या हो जाती है । इस प्रकारके वलय स्वयम्भूरमणसमुद्र तक अवस्थित हैं ।

इससे आगेके समुद्रकी भीतरी पंक्तिमें दो सौ अठासी चन्द्र वा इतने ही सूर्य हैं। इससे आगे प्रत्येक वलयपर चार चार चन्द्र और सूर्यकी संख्या यहांकी बाहरी पंक्ति आने तक बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए। इस प्रकारसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक चन्द्र और सूर्यकी संख्या बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए। कहा भी है—

चन्द्र, आदित्य (सूर्य), ग्रह, नक्षत्र और ताराओंकी दूनी दूनी संख्याओंसे निरन्तर तिर्यग्लोक द्विवर्गात्मक है ॥ २ ॥

ये सर्व (चन्द्र या सूर्य) विमान एकट्ठे मिलाने पर संख्यात प्रतरांगुलोंसे जगप्रतरमें भाग देने पर एक भागप्रमाण विमान होते हैं। पुनः वे सब—

---

१ मणुसुत्तरगिरिंदादो पण्णाससहस्सजोयणाणं गंतूण पढमवलयं होदि। तत्तो परं पत्तेक्कमेक्कलक्खजोयणाणि गंतूण विदियादिवलयाओ होंति जाव सयंभुरमणसमुद्दो त्ति । णवरि सयंभुरमणसमुद्दस्स वेदीए पण्णाससहस्स-जोयणाणिमपाविय तम्मि पदेसे चरिमवलयं होदि। ति. प. पत्र २२४. मणुसुत्तरसेलादो वेदियमूलादु दीवउवहीणं । पण्णाससहस्सेहिं य लक्खे लक्खे तदो वलयं ॥ दीवद्धपढमवलये चउदालसयं तु वलयवलयेसु । चउ चउ वड्ढी आदी आदीदो दुगुणदुगुणकमा ॥ त्रि. सा ३४९-३५०. २ द्रव्यप्र. पृ. ३६.

३ अट्ठ चउ दु ति ति सत्त सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणि । छत्तीस सत्त दु णव अट्ठा तिचउक्का होंति अंकक्कमा ॥ एदेहि गुणिदसंखेज्जरूवपदरंगुलेहिं भजिदाए । सेढिकदीए लद्धं माणं चंदाण जोइसिंदाणं ॥ ति. प. ७, ११, १२.

(अट्ठासीतिं च गहा अट्ठावीसं तु हुंति नक्खत्ता ।
एगससीपरिवारो इत्तो ताराण वोच्छामि[१] ॥)
छावट्ठिं च सहस्सं णवयसदं पंचसत्तरि य होंति ।
एयससीपरिवारो ताराणं कोडिकोडीओ[२] ॥ ३ ॥

एदाहि ताराहि चंदाइच्च-गह-णक्खत्तेहि य पंचट्ठाणट्ठिदं परिवाडीए गुणिय मेलाविदे जोदिसियसव्वविमाणाणि होंति[३] । तिरियलोगावट्ठिदसयलचंदाणं सपरिवाराणमाणयणविहाणं वत्तइस्सामो[४] । तं जहा– जंबूदीवादिपंचदीवसमुद्दे मोत्तूण तदियसमुद्दमादिं कादूण जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति एदासिमाणयणकिरिया ताव उच्चदे– तदियसमुद्दम्मि

(एक चन्द्रके परिवारमें (एक सूर्यके अतिरिक्त) अठासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं, तथा तारोंका परिमाण आगे कहते हैं ॥)

एक चन्द्रके परिवारमें छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी ६६९७५०००००००००००००० तारे होते हैं ॥ ३ ॥

इन ताराओंसे, तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंसे पांच स्थानपर अवस्थित उपर्युक्त चन्द्र विमानसंख्याको परिपाटी-क्रमसे गुणितकर मिला देनेपर ज्योतिषी देवोंके सर्व विमान हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—अभी ऊपर जो चन्द्र-बिम्बोंकी संख्या निकाल आए हैं, उसे पांच स्थानोंपर स्थापित करना चाहिए । पुनः चूंकि एक चन्द्रके परिवारमें एक सूर्य, अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और ऊपर बताये गए प्रमाणवाले तारे होते हैं, इसलिए इनसे क्रमशः पांच स्थानोंपर अवस्थित चन्द्र-संख्याको गुणित करनेपर उनका प्रमाण इस प्रकार आ जाता है—

चन्द्रसंख्या,	सूर्यसंख्या,	ग्रहसंख्या,	नक्षत्रसंख्या,	तारासंख्या
च × १;	च × १;	च × ८८;	च × २८;	च × ६६९७५००००००००००००००

अब तिर्यग्लोकमें अवस्थित सपरिवार सकल चन्द्रोंके प्रमाणको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है— जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लवणसमुद्रादि दो समुद्र, इन पांच द्वीप समुद्रोंको छोड़कर तृतीय समुद्रको आदि करके स्वयम्भूरमणसमुद्र आने तक

१ गाथेयं प्रतिषु नोपलभ्यते, किन्तूत्तरगाथया सहास्या अविनाभावित्वादत्रोध्दृता । इयं गाथोत्तरगाथया सह सूर्यप्रज्ञप्तावुपलभ्यते । (अभि. रा. कोष, चन्द्रशब्दे)

२ अडसीदट्ठावीसा गहरिक्खा तार कोडकोडीणं । छावट्टि सहस्साणि य णवसयपण्णत्तरिगि चंदे ॥ त्रि. सा. ३६२.

३ आणिय गुणसंकलिदं किंचूणं पंचठाणसंठविदं । चंदादिगुणं मिलिदे जोइसबिंबाणि सव्वाणि ॥ त्रि. सा. ३६१

४ इत आरभ्याग्रेतनः संदर्भः अम्तन-रूपोनमादिसंगुणेत्यादि आर्यासूत्रखंडात्प्राक् तिलोयपण्णत्ति-ज्योतिर्लोकाधिकारगतेनानेन प्रकरणेन प्रायः शब्दशः समानः

गच्छो बत्तीस, चउत्थदीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिमसमुद्दे गच्छो अट्ठावीसुत्तरसयं । एवं दुगुणक्कमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति । संपहि एदेहिं गच्छेहिं पुध गुणिज्जमाणरासिपरूवणा कीरदे । तदियसमुद्दे बेसदमट्ठासीदं, उवरिमदीवे तत्तो दुगुणं । एवं दुगुण-दुगुणक्कमेण गुणिज्जमाणरासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं पत्ताओ त्ति । संपहि अट्ठासीदि-बिसदेहि सव्वगुणिज्जमाणरासीओ ओवट्टिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय अट्ठासीदि-बेसदमेव सव्वगच्छाणं गुणिज्जमाणं कायव्वं । एवं कदे सव्वगच्छा अण्णोण्णं पेक्खिदूण चदुग्गुणक्कमेण अवट्ठिदा जादा । संपहि चत्तारिमादिं कादूण चदुरुत्तरकमेण गदसंकलणाए आणयणे कीरमाणे पुव्विल्लगच्छेहिंतो संपहियगच्छा रूऊणा होंति, दुगुणजादट्ठाणे चत्तारिरूववड्ढीए अभावादो । एदेहि गच्छेहि गुणिज्जमाणमज्झिमधणाणि चउसट्ठिमादिं काऊग दुगुण-दुगुणक्कमेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं ति । पुणो गच्छसमी-

....

इनके विमानोंकी संख्या निकालनेकी प्रक्रिया पहले कहते हैं— तृतीय समुद्रमें गच्छका प्रमाण बत्तीस, चतुर्थ द्वीपमें गच्छका प्रमाण चौंसठ, इससे आगेके समुद्रमें गच्छका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस होता है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गच्छ स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं। अब इन गच्छोंसे पृथक् पृथक् गुण्यमान (गुणा की जानेवाली) राशियोंकी प्ररूपणा करते हैं। तृतीय समुद्रमें गुण्यमानराशि दो सौ अठासी है, उससे उपरिम द्वीपमें गुण्यमानराशि इससे दूनी (२८८ × २ = ५७६) है। इस प्रकार दूने दूने क्रमसे गुण्यमान राशियां स्वयम्भूरमणसमुद्र प्राप्त होने तक दूनी होती हुई चली जाती हैं।

उदाहरण—२८८, ५७६, ११५२, २३०४, ४६०८, ९२१६, १८४३२ इत्यादि। (गुण्यमानराशियां)

अब दो सौ अठासीसे सभी गुण्यमान राशिओंको अपवर्तितकर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणित करके दो सौ अठासीको ही सर्व गच्छोंकी गुण्यमानराशि करना चाहिए। ऐसा करनेपर सर्व गच्छ परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण-क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं।

उदाहरण—(१) $\frac{२८८}{२८८}$ = १; १ × ३२ = ३२; (२) $\frac{५७६}{२८८}$ = २; २ × ६४ = १२८; इत्यादि। यहांपर प्रथम गच्छ ३२ से द्वितीय गच्छ १२८ चौगुणा हो गया है।

अब चारको आदि करके चार चारके उत्तरक्रमसे वृद्धिंगत संकलनके निकालनेपर पहलेके गच्छोंसे इस समयके गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि, दुगुणे हुए स्थानपर चार रूपकी वृद्धिका अभाव है। इन गच्छोंसे गुणा किये जानेवाले मध्यमधन, चौंसठको आदि करके दुगुण दुगुणक्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक बढ़ते हुए चले जाते हैं।

करणट्ठं सव्वगच्छेसु एगेगरूवपक्खूणो[1] कायव्वो। एवं कादूण चउसट्ठिरूवेहिं मज्झिमधणाणि ओवट्टिय लद्धेण सग-सगगच्छे गुणिय सव्वगच्छाणं चउसट्ठिरूवाणि गुणिज्जमाणत्तणेण ठवेदव्वाणि। एवं कदे वड्ढिदरासिस्स[2] पमाणं वुच्चदे- एगरूवमादिं कादूण गच्छं पडि दुगुण-दुगुणकमेण सयंभूरमणसमुद्दो त्ति गच्छरासी वड्ढिदो होदि। संपहि

विशेषार्थ—गच्छकी मध्यसंख्यापर जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उसे मध्यमधन कहते हैं। यह धन उत्तरोत्तर दुगुणरूपसे बढ़नेवाले गच्छोंमें दुगुणा होता जाता है। तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ है। प्रथम स्थानपर तो चारकी वृद्धि होती नहीं है, अतएव उसे छोड़कर जो शेष ३१ स्थान बचते हैं, उनमें सोलहवां स्थान मध्यम रहता है और उसकी वृद्धिका प्रमाण ६४ होता है। जैसे—

१,	२,	३,	४,	५,	६,	७,	८,	९,	१०,	११,	१२,	१३,	१४,	१५,	
४,	८,	१२,	१६,	२०,	२४,	२८,	३२,	३६,	४०,	४४,	४८,	५२,	५६,	६०,	१६
१२४,	१२०,	११६,	११२,	१०८,	१०४,	१००,	९६,	९२,	८८,	८४,	८०,	७६,	७२,	६८,	६४
३१,	३०,	२९,	२८,	२७,	२६,	२५,	२४,	२३,	२२,	२१,	२०,	१९,	१८,	१७,	

इस क्रमसे गच्छके मध्यवर्ती सोलहवें स्थानपर वृद्धिका प्रमाण ६४ आता है। इसलिए तृतीय समुद्रसम्बन्धी मध्यमधन ६४ है। इसी प्रकार आगेके द्वीपका गच्छ ६४ होनेसे इसका मध्यमधन १२८ होगा, जो अपने पूर्ववर्ती मध्यमधन ६४ के प्रमाणसे दुगुणा होता है। इस प्रकार आगे आगेके द्वीप और समुद्रोंका मध्यमधन दुगुण-प्रमाणसे बढ़ता जाता है।

पुनः गच्छोंके समीकरणके लिए सभी गच्छोंमें एक एक रूपकी हानि (कमी) करना चाहिए। ऐसा करके चौंसठ रूपोंसे मध्यम धनोंको अपवर्तित कर लब्धराशिसे अपने अपने गच्छोंको गुणा करके चौंसठ संख्याको सर्व गच्छोंकी गुण्यमान राशिरूपसे स्थापित करना चाहिए। ऐसा करने पर बढ़ी हुई राशिका प्रमाण कहते हैं—एक रूपको आदि करके, एक एक गच्छपर दुगुण दुगुण-क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक गच्छराशि बढ़ती हुई चली जाती है।

उदाहरण—मध्यमधन ६४;

(१) $\frac{६४}{६४}$ × ३१ × ६४ = १९८४ उत्तरधन, अर्थात् कुल वृद्धिका प्रमाण। इस उत्तरधनको २८८ × ३२ = ९२१६ में मिला देनेसे तृतीय समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है— (९२१६ + १९८४ = ११२०० सर्वधन)

---

१ प्रतिषु ' पक्खेण ' इति पाठः।

२ त्रिलोकप्रज्ञप्तौ अत्र अग्रतोऽपि च ' वड्ढिद ' स्थाने ' रिण ' इति पाठः।

एवं ट्ठिदसंकलणाणमाणयणं वुच्चदे– छरूवाहियजंबूदीवछेदणएहि परिहीणरज्जुच्छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलणा आणिज्जदि तो जोदिसियजीवरासी ण उप्पज्जदि, जगपदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गभागहाराणुववत्तीदो। तेण रज्जुच्छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गाणं संखेज्जरूवाणं हाणिं काऊण गच्छो ठवेदव्वो। एवं कदे तदियसमुद्दो आदी ण होदि त्ति णासंकणिज्जं; सो चेव आदी होदि, सयंभूरमणसमुद्दस्स परभागसमुप्पण्णरज्जुछेदणयसलागाणमागयणकारणादो[1]।

सयंभूरमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि त्ति कुदो णव्वदे? बेछप्पण्णं-

---

(२) $\frac{१२८}{६४}$ × ६३ × ६४ = ८०६४ उत्तरधन। इस उत्तरधनको ५७६ × ६४ = ३६८६४ में मिला देनेसे चतुर्थ द्वीपसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

(३६८६४ + ८०६४ = ४४९२८ सर्वधन)

(३) $\frac{२५६}{६४}$ × १२७ × ६४ = ३२५१२ उत्तरधन। इस उत्तरधनको ११५२×१२८=१४७४५६ में मिला देनेसे चतुर्थ समुद्रसम्बन्धी समस्त चन्द्रोंका प्रमाण हो जाता है—

(१४७४५६ + ३२५१२ = १७९९६८ सर्वधन)

इसी क्रमसे आगेके प्रत्येक द्वीप और समुद्रका स्वयंभूरमणसमुद्र तक उत्तरधन एवं सर्वधन निकालते जाना चाहिए।

अब इस प्रकारसे अवस्थित संकलनोंके निकालनेके प्रकारको कहते हैं—छह रूप अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजुके अर्धच्छेदोंको गच्छराशि बना करके यदि संकलनराशि निकाली जाती है, तो ज्योतिष्क जीवराशि नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि, ऐसा करनेपर जगप्रतरका दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गप्रमाण भागहार नहीं उत्पन्न होता है। इसलिए राजुके अर्धच्छेदोंमें तत्प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए। ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, किन्तु वही, अर्थात् तृतीय समुद्र ही, आदि होता है, क्योंकि, इसका कारण स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाले राजुके अर्धच्छेदसम्बन्धी शलाकाओंका आना है।

शंका—स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें राजुके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूच्यंगुलके

---

१ लवणे दु पढिदेक्कं जंबूए देज्जमादिमा पंच। दीउदही मेरुसला पयदुवजोगी ण छिज्जेदे ॥ तियहीण-बेदिछेदणमेत्तो रज्जुच्छिदी हवे गच्छो। जंबूदीवच्छिदिणा छरूवजुत्तेण परिहीणा ॥ त्रि. सा. ३५८-३५९.

२ म प्रतौ 'सलागाणमरणवयणकारणादो' अन्यप्रतिषु 'सलागाणमरणक्करणादो' इति पाठः।

गुलसदवग्गसुत्तादो[1]। 'जत्तियाणि दीव-सागररूवाणि जंबूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुछेदणाणि' त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स; तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो। तत्थ

वर्गप्रमाण जगप्रतरका भागहार बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी राजुके अर्धच्छेद होते हैं।

शंका—'जितनी द्वीप और सागरोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, एक अधिक उतने ही राजुके अर्धच्छेद होते हैं' इस प्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह उपर्युक्त व्याख्यान क्यों नहीं विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—भले ही परिकर्म-सूत्रके साथ उक्त व्याख्यान विरोधको प्राप्त होवे, किन्तु प्रस्तुत सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है। इसलिए इस ग्रन्थके व्याख्यान-को ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकि, वह व्याख्यान सूत्रसे विरुद्ध है। और, जो सूत्र-विरुद्ध हो, उसे व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें ज्योतिषी देवोंकी संख्या निकालनेके लिए द्वीप-सागरोंकी संख्या ज्ञात करना धवलाकारको आवश्यक प्रतीत हुआ। द्वीप-सागरोंकी संख्या अन्य आचार्योंके उपदेशानुसार राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे ६ तथा जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम करनेसे प्राप्त होती है, मेरु व जम्बूद्वीप आदि प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंमें जो राजुके छह अर्धच्छेद पड़ते हैं वे यहां सम्मिलित नहीं किये गये, क्योंकि, इन द्वीप-समुद्रोंकी चन्द्रगणना पृथक् की गई है। किन्तु धवलाकारका मत है कि यदि इतना ही द्वीप-सागरोंका प्रमाण लिया जावे, तो उसके आधारसे निकाली हुई ज्योतिषी देवोंकी संख्या २५६² के भागहारसे निकाली हुई संख्यासे विषम पड़ती है। उसके वैषम्यको दूर करनेके लिए धवलाकारको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि द्वीप-सागरोंकी संख्या निकालनेके लिए राजुके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त ६ ही नहीं, किन्तु छहसे अधिक संख्यात अंक और कम करना चाहिए। इसपरसे ज्ञात होता है कि केवल ६ अंक कम करनेसे द्वीप-सागरोंकी संख्याद्वारा ज्योतिषीदेवोंका जो प्रमाण निकलेगा, वह २५६² के भागहारद्वारा प्राप्त संख्यासे बढ़ जाता है।

छहसे अधिक संख्यात अंकोंके कम करनेमें धवलाकारने हेतु यह दिया है कि स्वयम्भूरमणसमुद्रसे परे जो पृथिवी है, वहां भी राजुके अर्धच्छेद पड़ते हैं, किन्तु वहां ज्योतिषी देव नहीं है। इसलिए वहांके संख्यात अर्धच्छेद भी उक्त गणनामें कम करना

---

१ खेत्तेण पदरस्स वेछप्पण्णंगुलसयवग्गपडिभागेण। जी. द. सू. ५५, भजिदम्मि सेढिवग्गे बेसयछप्पण्ण-अंगुलकदीए। जं लद्धं सो रासी जोदिसियसुराण सव्वाणं॥ ति. प. ७, १०.

जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो। एसा तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिददीवसायररूवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरि-ओवदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारी जोदिसियदेवभागहारपदु-प्पाइयसुत्तावलंबिजुत्तिवलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबल-विजृंभितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानो-पदेशवद्वा। तदो ण एत्थ इदमित्थमेवेत्ति एयंतपरिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरु-

....

आवश्यक है। इस विधानसे परिकर्मके 'जत्तियाणि दीवसागररूवाणि' आदि कथनमें जो विरोध पड़ता है, उसके विषयमें धवलाकारने यहां स्पष्ट कहा है कि उक्त कथन सूत्र-विरुद्ध होनेसे ग्राह्य नहीं है। किन्तु द्रव्यप्रमाणानुगममें उस विरोधका भी एक प्रकारसे परिहार किया है। (देखो तृ. भाग, सूत्र ४, पृ. ३३-३६)

शंका — वहां, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें ज्योतिष्क देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

यह तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे सहित द्वीप-सागरोंके रूपप्रमाण राजुसम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि अन्य आचार्योंकी उपदेश-परम्पराकी अनुसरण करनेवाली नहीं है, किन्तु केवल त्रिलोकप्रज्ञप्तिसूत्रकी अनुसरण करनेवाली है, जो कि ज्योतिष्क देवोंके भागहारको उत्पन्न करनेवाले सूत्रसे अवलम्बित युक्तिके बलसे प्रकृत गच्छके साधनार्थ, प्रतिनियत सूत्रके अवष्टम्भ-बलसे विजृम्भित अर्थात् तत्प्रतिपादक सूत्रके आश्रयसे गुणस्थान-प्रतिपन्न सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंसे प्रतिबद्ध असंख्यात आवलियोंके अवहारकालके उपदेशके समान, तथा आयत-चतुष्कोण पुरुषाकार लोक-संस्थानके उपदेशके समान हमने निरूपण की है।

विशेषार्थ—यहां धवलाकारने दृष्टान्तपूर्वक दार्ष्टान्तको सिद्ध करनेके लिए जिन विशेषताओंका उल्लेख किया है, उनके कहनेका अभिप्राय क्रमशः निम्न प्रकार है—

(१) पहला दृष्टान्त प्रतिनियत सूत्राश्रयसे सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके असंख्यात आवलिकात्मक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण भागहारके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए द्रव्यप्रमाणानुगम तृतीय भाग पृ. ६९ के मूल पाठ और विशेषार्थको देखिए। यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि 'संख्यात आवलियोंका एक अन्तर्मुहूर्त होता है' इस प्रचलित एवं सर्व-मान्य मान्यताको भी 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेण' (द्रव्यप्र. सू. ६) इस सूत्रके आधारसे 'अन्तर्मुहूर्त' इस पदमें पड़े हुए 'अन्तर्' शब्दको सामीप्यार्थक मानकर यह सिद्ध किया है कि अन्तर्मुहूर्तका अभिप्राय मुहूर्तसे अधिक कालका भी हो सकता है, और इसलिए प्रकृतमें 'अन्तर्मुहूर्त' का अर्थ मुहूर्तसे अधिक कालका ही लेना चाहिए।

परंपरागओवएसस्स जुत्तिबलेण विदधाविदुमसक्कियत्तादो, अदिंदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थवियप्पाणमविसंवादणियमाभावादो। तम्हा चिरंतणाइरियवक्खाणापरिच्चाएण एसा वि दिसा हेदुवादाणुसारिउप्पण्णसिस्साणुरोहेण अउप्पण्णजणउप्पायणट्ठं च दरिसेदव्वा। तदो ण एत्थ संपदायविरोहासंका कायव्वा त्ति।

....

(२) दूसरा दृष्टान्त आयत-चतुरस्र लोकसंस्थानके उपदेशका दिया है, जिसका अभिप्राय समझनेके लिए क्षेत्रानुगम (इसी चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ११ से २२ तकका अंश देखिए। यहांपर उल्लेख करनेका प्रयोजन यह है कि धवलाकारके सामने विद्यमान करणानुयोगसम्बन्धी साहित्यमें आयत-चतुरस्र लोकके आकारका विधान या प्रतिषेध कुछ भी नहीं मिल रहा था, तो भी उन्होंने प्रतरसमुद्धातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाओंके (देखो क्षेत्रप्र. पृष्ठ २०, २१) आधारपर यह सिद्ध किया है कि लोकका आकार आयत-चतुष्कोण है, न कि अन्य आचार्योंसे प्ररूपित १६४$\frac{३२६}{११}$ घनराजुप्रमाण मृदंगके समान। यदि ऐसा न माना जायगा, तो उक्त दोनों गाथाओंको अप्रमाणता और लोकमें ३४३ घनराजुओंका अभाव प्राप्त होगा। इसलिए लोकका आकार आयत-चतुरस्र ही मानना चाहिए।

(३) धवलाकारने जिस प्रकार उक्त दोनों बातोंको तात्कालिक करणानुयोगसम्बन्धी शास्त्रोंमें उल्लेख अथवा, आचार्योंकी उपदेश-परम्पराके नहीं मिलनेपर भी उक्त प्रकारकी सूत्रावलम्बित युक्तियोंके बलसे उन्हें सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करणानुयोगके ग्रन्थोंमें या आचार्य-उपदेशपरम्परामें उपलब्ध नहीं होनेपर भी प्रतिनियत सूत्राश्रित तर्कके बलसे वे यह सिद्ध कर रहे हैं कि स्वयम्भूरमणसमुद्रके परभागमें भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके व्यास-रुद्ध योजनोंसे संख्यात हजारगुने योजन आगे जाकर तिर्यग्लोककी समाप्ति होती है, अर्थात् स्वयम्भूरमणसमुद्रकी बाह्यवेदिकाके परे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहां भी राजुके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहांपर ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं।

इसलिए यहांपर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार एकान्त हठ पकड़ करके असद् आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि, परम गुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको युक्तिके बलसे अयथार्थ सिद्ध करना अशक्य है, तथा अतीन्द्रिय पदार्थोंमें छद्मस्थ जीवोंके द्वारा उठाये गए विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम नहीं है। अतएव पुरातन आचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न करके यह भी दिशा हेतुवाद (तर्कवाद) के अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्य जनोंके व्युत्पादनके लिए दिखाना चाहिए। इसलिए यहांपर सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करना चाहिए।

....

१ प्रतिषु 'विद्दाविदु', म प्रतौ 'विद्दाविदु' इति-पाठः।

एदेण विहाणेण परूविदगच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णब्भत्थं करिय 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा'[1] एदेण गाहाखंडेण संकलणाओ आणिय दोण्हं सकलणाणं धणं कादूण तदियसंकलणे अवणिदे चंदबिंबसलागाओ उप्पज्जंति[2]। ताओ अट्ठारससयसमहियताराहि गुणिदे जोदिसियाणं सयलबिंबसलागाओ होंति। ताओ संखेज्जघणंगुलेहि गुणिदाओ सत्थाणखेत्तं होदि। सत्थाणखेत्तं

ऊपर बताये गए इस विधानसे प्ररूपित गच्छको विरलन करके प्रत्येक एकके ऊपर चार चारको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा करके 'उनमेंसे एक कम करे, पुनः आदिधनसे संगुणित करे, पुनः एक कम गुणकारका भाग दे, तब इच्छित राशि उत्पन्न होती है' इस गाथाखंडरूप सूत्रसे संकलनराशियोंको निकालकर दोनों संकलनराशियोंका धन (जोड़) करके इस राशिमेंसे तीसरी संकलनराशिको घटा देने पर चन्द्रबिम्बकी शलाकाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

उदाहरण—गच्छ ३२; आदिधन ११२०० (तृतीय समुद्रका सर्वसंकलन), सर्व द्वीपसमुद्रोंकी संख्या असंख्यात = ३ (काल्पनिक)।

प्रथम संकलन—$\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४$; $६४ - १ = ६३$; $\frac{६३ \times ११२००}{४ - १} = २३५२००$।

द्वितीय संकलन—$\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४$; $६४ - १ = ६३$; $\frac{६३ \times ६४}{४ - १} = १३४४$।

तृतीय संकलन—$\frac{२}{१} \times \frac{२}{१} \times \frac{२}{१} = ८$; $८ - १ = ७$; $\frac{७ \times ६४}{२ - १} = ४४८$।

प्रथम संकलन		द्वितीय संकलन		तृतीय संकलन		समस्त चन्द्र-शलाकाएं।
२३५२००	+	१३४४	−	४४८	=	२३६०९६

इस प्रमाणमें पहले बताई हुई प्रथम पांच द्वीप समुद्रोंसंबन्धी चंद्रोंकी संख्या सम्मिलित नहीं है।

ठीक यही संख्या प्रथम पांच द्वीप-समुद्रोंको छोड़कर आगेके तीन समुद्र वा द्वीपोंके पृथक् पृथक् निकाले हुए चंद्रोंकी संख्याके योगसे आती है—

$$\overset{१}{११२००} + \overset{२}{४४९२८} + \overset{३}{१७९९६८} = २३६०९६$$ (देखो पृ. १५४-१५५)

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुई चन्द्रबिम्बकी शलाकाओंको एक सौ अठारहसे अधिक ताराओंके प्रमाणसे गुणा कर देनेपर ज्योतिष्क देवोंके सकल बिम्बोंकी शलाकाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

विशेषार्थ—अभी पहले जो एक चन्द्रका परिवार बताया गया है, उसमेंसे एक चन्द्र, एक सूर्य, अठ्यासी ग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र, इनको जोड़ देनेपर (१+१+८८+२८=११८)

१ पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूवपरिहीणे। रूऊणगुणेणहिए मुहेण-गुणियम्मि गुणगणियं॥ त्रि. सा २३१.

२ ति. प. पत्र २२६.

संखेज्जरूवेहिं गुणिय संखेज्जघणंगुलेहि ओवट्टिदे जोइसियरासी होदि । एदाणि जोदिसिय-देवुस्सेधगुणिदविमाणब्भंतरपदरंगुलेहि गुणिदे जोइसियसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । णवरि देवुस्सेधगुणिदविमाणब्भंतरपदरंगुलाणि उस्सेहंगुलाणि त्ति कट्टु पमाणंगुलाणि कायव्वाणि । उस्सेहंगुलाणि त्ति कधं णव्वदे ? अण्णहा जंबूदीवब्भंतरे जंबूदीवताराणमोगासाभावादो । अधवा एदाणि पमाणंगुलाणि चेव । कधं पुण सम्मांति ? ण, जंबूदीव-लवणसमुद्देदि वे[1] अस्सिदूण अवट्ठाणादो ।

एक सौ अठारह होते हैं । इसमें ताराओंका प्रमाण जोड़कर उत्पन्न हुई राशिका चन्द्र-बिम्बकी शलाकाओंसे गुणा कर देनेपर समस्त ज्योतिषी देवोंके विमानोंकी शलाकाएं निकल आती है ।

उन्हें संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सर्व ज्योतिषी देवोंके विमानोंका स्वस्थान-क्षेत्र हो जाता है । स्वस्थानक्षेत्रको संख्यातरूपोंसे गुणा करके संख्यात घनांगुलोंसे अपवर्तित करनेपर ज्योतिष्क देवोंकी राशि हो जाती है । इस राशिको ज्योतिष्क देवोंके शरीरोत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुलोंसे गुणा करनेपर ज्योतिष्क देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है । विशेष बात यह है कि देवोंके शरीरके उत्सेधसे गुणित विमानोंके भीतरी प्रतरांगुल, उत्सेधांगुल हैं, ऐसा समझ करके उनके प्रमाणांगुल करना चाहिए ।

शंका—वे प्रतरांगुल उत्सेधांगुल हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि उन प्रतरांगुलोंको उत्सेधांगुल न माना जायगा, तो जम्बूद्वीपके भीतर जम्बूद्वीपस्थ तारागणोंके रहनेको अवकाश न मिल सकेगा ।

अथवा, ये प्रतरांगुल प्रमाणांगुल ही हैं ।

शंका—तो फिर ये जम्बूद्वीपमें कैसे समाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, इन दोनोंको ही आश्रय करके वे ज्योतिष्क विमान अवस्थित हैं । अर्थात्, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, इन दोनों क्षेत्रोंमें जम्बूद्वीपसम्बन्धी ज्योतिष्क-विमान रहते हैं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपसम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके परिवारमें तारोंकी संख्या एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी है । एक तारेका जघन्य विष्कंभ $\frac{१}{४}$ कोशका और उत्कृष्ट १ कोशका कहा गया है, तथा उत्सेध विष्कंभसे आधा तथा आकार उत्तान गोलार्ध सदृश है । (त्रिलोकसार गाथा ३३७, ३३८) । तदनुसार मध्यम विष्कंभ $\frac{३}{४}$ कोश लेकर एक

---

१ प्रतिषु 'समुद्देहि वि ' इति पाठः ।

वेंतरदेवसासणसम्माइट्ठिसत्थाणखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। तं कधं ? वेंतरदेवरासिं ट्ठविय एक्केक्कम्हि वेंतरावासे संखेज्जा चेव वेंतरदेवा होंति त्ति

....

तारेका स्थूल घनफल—$\frac{२}{३} \times \frac{३}{१} \times \frac{२}{१२} \times \frac{२}{९} = \frac{२}{२७}$; तथा जम्बूद्वीपके समस्त तारोंका घनफल स्थूल रूपसे $१३३९५ \times १०^{१५} \times \frac{२}{२७}$ = ९९२२ कोड़ाकोड़ी घनकोश हुआ।

तारागण पृथिवीसे ७९० योजन ऊपरसे लगाकर ९०० योजन तक अर्थात् ११० योजन-वाहल्य आकाशमें रहते हैं। (देखो त्रिलोकसार गाथा ३३२-३३४)। अतः एक लाख योजन व्यासवाले जम्बूद्वीपके ऊपर ११० योजन क्षेत्रका घनफल निकालनेसे—
$१२ \times १०^{५} \times १०^{५} \times ४४० = ५२८ \times १०^{११}$ घनकोश हुए। इस प्रकार तारोंके घनफलमें १८ अंक हैं, किन्तु जम्बूद्वीपसम्बन्धी उक्त क्षेत्रमें केवल १४ अंक आते हैं। इस प्रकार वे सब तारे उक्त क्षेत्रमें नहीं समा सकते। किन्तु यदि तारोंमें उत्सेधांगुलोंका प्रमाण स्वीकार किया जाय और उक्त क्षेत्रमें प्रमाणांगुलोंका, तो उक्त क्षेत्रके प्रमाणको $५००^{३}$ से गुणा कर देने पर वह क्षेत्र $५२८ \times १२५ \times १०^{१७} = ६६ \times १०^{२०}$ अर्थात् २२ अंक प्रमाण हो जाता है, जिससे उक्त तारोंको उस क्षेत्रके भीतर सावकाश रहनेके लिए स्थान मिल जाता है। इसीलिये धवलाकारने कहा है कि विमानोंके प्रमाणमें उत्सेधांगुल ही ग्रहण करना चाहिए, और यही वात त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथोंसे भी सिद्ध है।

धवलाकारने जो दूसरे प्रकारसे उक्त वैषम्यका समाधान किया है कि विमानोंके प्रमाणमें प्रमाणांगुल ग्रहण करके भी जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र, दोनोंके आश्रयसे उन विमानोंके अवस्थानके योग्य क्षेत्र वन जाता है, सो यह बात गणितमें ठीक नहीं उतरती, क्योंकि, जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र दोनोंके ऊपरका ११० योजन-वाहल्य क्षेत्र केवल—
$६ \times १०^{६} \times ५ \times १०^{५} \times ४४० = १३२ \times १०^{१३}$ घनकोश आता है। यह क्षेत्र केवल १६ अंकप्रमाण होनेसे केवल जम्बूद्वीपके तारोंके लिए भी पर्याप्त अवकाश नहीं प्रदान कर सकता। तिसपर लवणसमुद्रसम्बन्धी चार चन्द्रोंके परिवारके तारोंको भी वहां अवकाश प्राप्त होना है। इस प्रकार तारोंके विमानोंको प्रमाणांगुलोंके मापमें लेकर धवलाकारने उनको किस प्रकार अवकाश प्राप्त कराया है, यह समझमें नहीं आता।

सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—व्यन्तर देवोंकी राशिको स्थापित करके एक एक व्यन्तरावासमें संख्यात

संखेज्जरूवेहि भागे हिदे वेंतरावासा होंति। ण एस कमो भवणवासिय-सोधम्मादीणं, तत्थ संखेज्जेसु भवणविमाणेसु असंखेज्जजोयणायामेसु असंखेज्जा देवा देवीओ होंति। कुदो? तेसिमसंखेज्जत्तण्णहाणुववत्तीदो। पुणो वेंतरावासे अप्पणो विमाणब्भंतरसंखेज्ज-घणंगुलेहि गुणिदे वेंतरदेवसासणसम्माइट्ठिसत्थाणखेत्तं होदि। एदाणि तिण्णि वि खेत्ताणि एगट्ठ मेलिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-वेउव्विय-समुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। केत्तियमेत्तेणूणा? तदियपुढवीए हेट्ठिल्लजोयणसहस्सेण। मारणंतियसमुग्घादगदेहि बारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। तं जहा- मेरुमूलादो उवरि जावीसिपब्भारपुढवि त्ति सत्त रज्जू, हेट्ठा जाव छट्ठी पुढवि त्ति पंच रज्जू। एदाओ मेलिदे सासणमारणंतियखेत्तायामो होदि। णवरि हेट्ठिमजोयण-सहस्सेण ऊणो त्ति वत्तव्वो। जदि सासणा एइंदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणट्ठाणाणि

ही व्यन्तर देव होते हैं, इसलिए संख्यात रूपोंसे भाग देनेपर व्यन्तर देवोंके आवासोंकी संख्या हो जाती है। किन्तु यह क्रम भवनवासी और सौधर्मादि कल्पवासी देवोंके नहीं हैं, क्योंकि, उनमें असंख्यात योजन आयामवाले संख्यात भवनों और विमानोंमें असंख्यात देव और देवियां रहती हैं। कारण, यदि ऐसा न माना जाय, तो उनकी राशिके असंख्यात-पना नहीं बन सकता है। पुनः व्यन्तरोंके आवासक्षेत्रको अपने विमानोंके भीतरी संख्यात घनांगुलोंसे गुणित करनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। इन तीनों ही क्षेत्रोंको अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंके स्वस्थानक्षेत्रको, सासादनसम्यग्दृष्टि ज्योतिष्क देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंके स्वस्थानक्षेत्रको इकट्ठे मिलानेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग होता है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे देशोन आठ भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है।

शंका—यहां देशोनसे तात्पर्य कितने प्रमाण क्षेत्रसे न्यून है?

समाधान—तीसरी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्रसे न्यून क्षेत्र देशोनसे अभीष्ट है।

मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने लोकनालीके चौदह राजुओंमेंसे देशोन बारह भागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे जानना चाहिए— सुमेरुपर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भारपृथिवी तक सात राजु होते है, और नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं। इन दोनोंको मिला देनेपर सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रकी लम्बाई हो जाती है। विशेष बात यह है कि छठी पृथिवीके नीचेके एक हजार योजनसे न्यून क्षेत्र यहांपर भी कहना चाहिए।

होंति। ण च एवं, संताणिओगद्दारे तत्थ एक्कमिच्छादिट्ठिगुणप्पदुप्पायणादो[1] दव्वाणिओगद्दारे वि तत्थ एगगुणट्ठाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो च[2]। को एवं भणदि जधा सासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति। किंतु ते तत्थ मारणंतियं मेल्लंति त्ति अम्हाणं णिच्छओ। ण पुण ते तत्थ उप्पज्जंति त्ति, छिण्णाउअकाले तत्थ सासणगुणाणुवलंभादो। जत्थ सासणाणमुववादो णत्थि, तत्थ वि जदि सासणा मारणंतियं मेल्लंति, तो सत्तमपुढविणेरइया वि सासणगुणेण सह पंचिंदियतिरिक्खेसु मारणंतियं मेल्लंतु[3], सासणत्तं पडि विसेसाभावादो? ण एस दोसो, भिण्णजादित्तादो। एदे सत्तमपुढविणेरइया पंचिंदियतिरिक्खेसु गब्भोवक्कंतिएसु चेव उप्पज्जणसहावा, ते पुण देवा पंचिंदिएसु एइंदिएसु य उप्पज्जणसहावा, तदो ण समाणजादीया। जं जाए जादीए पडिवण्णं, तं ताए चेव जादीए होदि त्ति पडिवज्जेदव्वं, अण्णहा अणवत्थापसंगादो। तम्हा सत्तमपुढविणेरइया सासणगुणेण सह देवा इव मारणंतियं

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं तो उनमें (वहांपर) दो गुणस्थान प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वारमें, एकेन्द्रियोंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही बताया गया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें भी उनमें एक ही गुणस्थानके द्रव्यका प्रमाण-प्ररूपण किया गया है।

समाधान—कौन ऐसा कहता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं? किन्तु वे उस गुणस्थानमें मारणान्तिकसमुद्धातको करते हैं, ऐसा हमारा निश्चय है। न कि वे उस गुणस्थानमें, अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं; क्योंकि, उनमें आयुष्यके छिन्न होनेके समय सासादनगुणस्थान नहीं पाया जाता है।

शंका—जहां पर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं है, वहां पर भी यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्धातको करते हैं, तो सातवीं पृथिवीके नारकियोंको सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मारणान्तिकसमुद्धात करना चाहिए, क्योंकि, सासादनगुणस्थानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, अर्थात् समानता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति है। ये सातवीं पृथिवीके नारकी गर्भजन्मवाले पंचेन्द्रियोंमें ही उपजनेके स्वभाववाले है, और वे देव पंचेन्द्रियोंमें तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेरूप स्वभाववाले हैं, इसलिए दोनों समान जातीय नहीं हैं। जो जिस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, वह उसी ही जातिका माना जाता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग आ जायगा। इसलिए सातवीं पृथिवीके नारकी सासादनगुणस्थानके साथ देवोंके समान मार-

१ एइंदिया बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया असण्णिपंचिंदिया एक्कम्मि चेव मिच्छाइट्ठिट्ठाणे। जी. सं. सू. ३६.

२ जी. द. सू. ७४–७६.

३ प्रतिषु 'मेल्लंति' इति पाठः

ण करेंति त्ति सिद्धं । देवसासणा एइंदिएसु मारणंतियं करेमाणा सव्वलोगेइंदिएसु किण्ण मारणंतियं करेंति त्ति ? ण, तेसिं सासणगुणपाहम्मेण लोगणालीए बाहिरमुप्पज्जणसहावाभावादो । लोगणालीए अब्भंतरे मारणंतियं करेंता वि भवणवासियजगमूलादोवरिं चेव देव-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठिणो मारणंतियं करेंति, णो हेट्ठा । कुदो ? सासणगुणपाहम्मादो चेव । रज्जुपदरमेत्तपुढवी उवरि णत्थि । देवा वि सुहुमेइंदिएसु ण उप्पज्जंति । ण च बादरेइंदिया वाउक्काइयवदिरित्ता पुढवीए विणा अण्णत्थ अच्छंति । तदो सासणमारणंतियखेत्तस्स बारह चोद्दसभागोवदेसो ण घडदि त्ति ? ण एस दोसो, ईसिपब्भारपुढवीदो उवरि सासणाणमाउक्काइएसु मारणंतियसंभवादो, अट्ठमपुढवीए एगरज्जुपदरब्भंतरं सव्वमावूरिय ट्ठिदाए तेसिं मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो च । वाउक्काइएसु सासणा मारणंतियं किण्ण करेंति ? ण, सयलसासणाणं देवाणं व तेउ-वाउकाइएसु मारणंतियाभावादो,

णान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं, यह बात सिद्ध हुई।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि देव, जबकि एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्धात करते हुए पाए जाते हैं, तो फिर सर्वलोकवर्ती एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं मारणान्तिकसमुद्धात करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनके सासादनगुणस्थानकी प्रधानतासे लोकनालीके बाहर उत्पन्न होनेके स्वभावका अभाव है। और लोकनालीके भीतर मारणान्तिकसमुद्धातको करते हुए भी भवनवासी लोकके मूलभागसे ऊपर ही देव या तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मारणान्तिकसमुद्धातको करते हैं, उससे नीचे नहीं, क्योंकि, उनमें सासादनगुणस्थानकी ही प्रधानता है।

शंका—राजुप्रतरप्रमाण पृथिवी ऊपर नहीं है। देव भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, और बादर एकेन्द्रिय जीव वायुकायिक जीवोंको छोड़कर पृथिवीके विना अन्यत्र रहते नहीं हैं। इसलिए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकक्षेत्रका बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भागका उपदेश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईषत्प्राग्भार पृथिवीसे ऊपर सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अप्कायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्धात संभव है, तथा एक राजुप्रतरके भीतर सर्वक्षेत्रको व्याप्त करके स्थित आठवीं पृथिवीमें उन जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धात करनेके प्रति कोई विरोध भी नहीं है।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्धातको क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सकल सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंके समान

पुढविपरिणाम-विमाण-तल-सिला-थंभ-थूभेतल-उब्भसालहंजिया-कुड्ड-तोरणादीणं तदुप्पत्ति-जोगाणं दंसणादो च । उववादगदेहि देसूणेक्कारह चोद्दसभागा फोसिदा । तं जहा– हेट्ठा जाव छट्ठी पुढवि त्ति पंच रज्जू, उवरि जाव आरण-अच्चुदकप्पो त्ति छ रज्जू, आयामो वित्थारो च एगरज्जू, एदं उववादखेत्तपमाणं । के वि आइरिया 'देवा णियमेण मूल-सरीरं पविसिय मरंति' त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण दस-चोद्दसभागा देसूणा । एदं वक्खाणमेत्थेव कम्मइयसरीरसासणउववादफोसणस्स एक्कारह-चोद्दसभागपरूवयसुत्तेण विरुद्धं ति ण घेत्तव्वं । जे पुण देवसासणा एइंदिएसुप्पज्जंति त्ति भणंति, तेसिमभिप्पाएण बारह चोद्दसभागा देसूणा उववादफोसणं होदि[2], एदं पि वक्खाणं संत-दव्वसुत्तविरुद्धं[3] ति ण घेत्तव्वं ।

....

तैजसकायिक और वायुकायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातका अभाव माना गया है। और पृथिवीके विकाररूप विमान, शय्या, शिला, स्तम्भ और स्तूप, इनके तलभाग, तथा खड़ी हुई शालभंजिका (मिट्टी आदिकी पुतली) भित्ति और तोरणादिक उनकी उत्पत्तिके योग्य देखे जाते हैं।

उपपादगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने लोकके कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग ($\frac{11}{14}$) स्पर्श किए है। वह इसप्रकार हैं—मेरुतलसे नीचे छठी पृथिवी तक पांच राजु होते हैं, ऊपर आरण-अच्युतकल्प तक छह राजु होते हैं और आयाम तथा विस्तार एक राजु है। इस प्रकार ग्यारह राजु उपपादक्षेत्रका प्रमाण है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि देव नियमसे मूलशरीरमें प्रवेश करके ही मरते हैं। उनके अभिप्रायसे सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम दस बटे चौदह भाग ($\frac{10}{14}$) प्रमाण होता है। किन्तु यह व्याख्यान यहींपर विग्रह-गतिको प्राप्त कार्मणशरीरवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपाद-स्पर्शनके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भागके प्ररूपक सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए। और जो ऐसा कहते हैं कि सासादनसम्यग्दृष्टि देव, एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके अभिप्रायसे कुछ कम बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग उपपादपदका स्पर्शन होता है; किन्तु यह भी व्याख्यान सत्प्ररूपणा और द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके विरुद्ध पड़ता है, इसलिए उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए।

....

१ प्रतिषु 'थूलतलंउम' इति पाठः ।

२ अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ताः ।

३ जी. सं. सू. २६. । जी. द. सू. ७४-७६.

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो । माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । कारणं खेत्तभंगो । असंजदसम्माइट्ठीणं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदाण खेत्तम्हि वुत्तत्थो संभरिय[2] वत्तव्वो ।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६ ॥

पुव्वसुत्तादो सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि अणुवट्टदे । अदीदकालेणेत्ति वयणस्स अज्झाहारो कायव्वो । कुदो ? एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तस्स पुव्वं परूविदत्तादो । सम्मामिच्छादिट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही जानना चाहिए। स्वस्थानस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिकसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदको प्राप्त असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणामें कहे गये अर्थको स्मरण करके कहना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ६ ॥

यहांपर पूर्वसूत्रसे 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है' इतने पदकी अनुवृत्ति होती है। तथा 'अतीतकालसे' इस वचन का भी अध्याहार करना चाहिए; क्योंकि, दोनों गुणस्थानोंके वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका पहले प्ररूपण किया जा चुका है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा तथा तिर्यग्लोकका

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ वा चतुर्दशभागा देशोनाः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'संभविय' इति पाठः।

संखेज्जदिभागो। एत्थ सत्थाणखेत्तमेलावणविहाणं पुव्वं व कायव्वं। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। एत्थ देसूण-विधाणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागखेत्तुप्पायणे सासणभंगो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादगदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, उवरि छ रज्जू, हेट्ठा दो रज्जु त्ति। उववादगदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, हेट्ठा असंजदसम्माइट्ठीणं उववादखेत्ताणुवलंभादो।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[1] ॥ ७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदाणं पज्जव-

---

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। यहांपर स्वस्थानक्षेत्रके मिलानेका विधान पूर्ववत् ही करना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। यहांपर देशोनका विधान पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागरूप क्षेत्रके उत्पन्न करनेमें सासादनगुणस्थानके स्पर्शनके समान ही वर्णन जानना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छह राजु और नीचे दो राजुप्रमाण हैं। उपपादपदको प्राप्त उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, इससे नीचे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र नहीं पाया जाता है।

संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदगत संयतासंयतोंकी पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शन-

---

१ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

ट्ठियपरूवणा खेत्ततुल्ला ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८ ॥

पुव्वं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तं परूविदमिदि कट्टु इदं सुत्तमदीदकालसंबंधीदि अवगम्मदे । अणागदकालसंबंधी ण होदि, तेण ववहाराभावादो । अधवा अदीदाणागद-कालविसिट्ठखेत्ताणं परूवयाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि त्ति णिच्छओ कायव्वो, उभयत्थ विसेसाभावादो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणसत्थाणखेत्ताणयणविधाणं वुच्चदे–

सयंभूरमणसमुद्दविक्खंभो दोहि वि पासेहि सादिरेगमेगरज्जुअद्धपमाणं होदि । सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं पि दोहि वि पासेहि एगरज्जु-अट्ठमभागमेत्तविक्खंभो होदि । ते दो वि मेलिदे पंचट्ठभागा होंति । एदे रज्जुविक्खंभम्हि अवणिदे तिण्णि अट्ठभागा होंति । एदम्हि खेत्ते सुज्जमंडलागारेण संट्ठिदे भोगभूमिपडिभागे णत्थि संजदासंजदा । बाहि-

प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है ।

संयतासंयत जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८ ॥

पूर्वमें वर्तमानकालविशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यह सूत्र अतीतकालसम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है । किन्तु यह अनागत (भविष्य) काल सम्बन्धी नहीं है, क्योंकि, उसके साथ व्यवहारका अभाव है । अथवा, पीछेके सभी सूत्र अतीत और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि, भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात-गत संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अब यहांपर संयता-संयत जीवोंके स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रके निकालनेका विधान है–

स्वयम्भूरमणसमुद्रका विष्कम्भ दोनों ही पार्श्व भागोंसे साधिक एक राजुके अर्धप्रमाण है । स्वयंप्रभपर्वतका परभागवर्ती क्षेत्र भी दोनों ही पार्श्व भागोंकी अपेक्षा एक राजुके अष्टमभागमात्र विष्कम्भवाला है । ये दोनों ही विष्कम्भ मिला देनेपर एक राजुके आठ भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण ($\frac{5}{8}$) क्षेत्र हो जाता है । ये पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भाग राजुके विष्कम्भमेंसे निकाल देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भाग अवशिष्ट रहते हैं । इस तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भागवाले सूर्यमंडलके आकारसे संस्थित और भोगभूमिसे प्रतिबद्ध क्षेत्रमें संयतासंयत जीव नहीं होते हैं । किन्तु बाहरी पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भागोंमें जम्बूद्वीप

रिल्लएसु पंचसु अट्ठभागेसु अड्ढाइज्जदीवेसु दोसु समुद्देसु च अत्थि; कम्मभूमित्तादो। 'व्यासार्धकृतित्रिकं समस्तफलितमिति' एदेण सुत्तेण मज्झिल्लखेत्तफलमाणिदे सोलस-सत्तावीसभागब्भहियचदुसट्ठि-चदुसदरूवेहि जगपदरे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि। तं रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। सेसपदाणं खेत्तमाणिज्जमाणे एगं जगपदरं ठविय संखेज्ज-सूचिअंगुलेहि संजदासंजदउस्सेधस्स एगूणवंचासभागमेत्तेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखे-ज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि। कधं संजदासंजदाणं सेसदीव-समुद्देसु संभवो? ण, पुव्ववेरिय-देवेहि तत्थ घित्ताणं संभवं पडि विरोधाभावा। कधमेसो अत्थो सुत्तेण अकहिदो अव-गम्मदे? ण एस दोसो, सुत्तट्ठिएण 'वा' सद्देण अवुत्तसमुच्चयट्ठेण सूचिदत्तादो।

धातकीखंड और पुष्करार्ध इन अढ़ाई द्वीपोंमें और लवणोदधि वा कालोदधि इन दो समुद्रोंमें संयतासंयत जीव रहते हैं; क्योंकि, वहां पर कर्मभूमि है। 'व्यासके आधेका वर्ग करके उसका तिगुना कर देनेसे विवक्षित क्षेत्रका समस्त क्षेत्रफल निकल आता है' इस करण-सूत्रसे मध्यवर्ती अर्थात् भोगभूमि-प्रतिबद्ध क्षेत्रका क्षेत्रफल निकालनेपर जो प्रमाण आता है वह सोलह बटे सत्ताईस भागसे अधिक चारसौ चौसठ ($४६४\frac{१६}{२७}$) रूपोंसे जगप्रतरमें भाग देनेपर उपलब्ध एक भागके बराबर होता है।

उदाहरण—मध्यम क्षेत्रफलका व्यास $\frac{३}{८}$; $३ \left(\frac{३}{८} \times \frac{१}{२}\right)^{२} = \frac{२७}{२५६}$

$$\text{व } \frac{७^{२}}{४६४\frac{१६}{२७}} = \frac{१३२३}{१२५४४} = \frac{२७}{२५६}$$

यह स्वयंप्रभाचलके आभ्यन्तर भागवर्ती मध्यमक्षेत्रका क्षेत्रफल है।

इसे एक राजुप्रतरमेंसे निकालकर संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदोंका क्षेत्र निकालनेपर—एक जगप्रतरको स्थापित करके संयतासंयत जीवोंके शरीरकी ऊंचाईके उनंचास भागमात्र संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है।

शंका—मानुषोत्तरपर्वतसे परभागवर्ती और स्वयंप्रभाचलसे पूर्वभागवर्ती शेष द्वीप-समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी संभावना कैसे है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके द्वारा वहां ले जाये गये तिर्यंच संयतासंयत जीवोंकी संभावनाकी अपेक्षा कोई विरोध नहीं है।

शंका—सूत्रसे नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे जाना जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और अनुक्तका अर्थात् नहीं कहे गये अर्थका समुच्चय करनेवाले 'वा' शब्दसे उक्त अकथित अर्थ सूचित किया गया है।

मारणंतियसमुग्घादगदेहिं छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । कुदो ? सव्वत्थ लोगणालीए अब्भंतरे अच्छिय मारणंतियकरणं पडि विरोहाभावादो । केण ऊणा छ चोद्दसभागा ? हेट्ठिमेण जोयणसहस्सेण आरणच्चुदविमाणाणमुवरिमभागेण च ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ९ ॥

दव्वट्ठियणयमस्सिदूण भण्णमाणे अदीद-वट्टमाणकालेसु 'लोगस्स असंखेज्जदिभागो' इदि होदि । पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो । वट्टमाणकालमस्सिदूण पज्जवट्ठियणयपरूवणाए खेत्तभंगो । संपदि अदीदकालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणा कीरदे । तं जधा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियतेजाहारसमुग्घाद-गदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । विउव्वणादिइड्ढिपत्तेहि माणुसखेत्तब्भंतरे अप्पडिहयगमणेहि रिसीहि अदीदकाले सव्वं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि त्ति 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो' इदि वयणं ण घडदे ? ण

मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, लोकनालीके भीतर सर्वत्र रहकर मारणान्तिकसमुद्घात करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

शंका — यहांपर यह छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग किस क्षेत्रसे कम करना चाहिए ?

समाधान — सुमेरुसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोंके उपरिम भागसे कम करना चाहिए ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९ ॥

द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्पर्शनक्षेत्रके कहनेपर अतीत और वर्तमानकालमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्शनका क्षेत्र होता है । किन्तु पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करनेपर कुछ विशेषता है । उसमेंसे वर्तमानकालका आश्रय करके पर्यायार्थिकनय-सम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही स्पर्शनका क्षेत्र है । अब अतीतकालका आश्रय लेकर पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातगत प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और मनुष्य-क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका — विक्रियादि ऋद्धिप्राप्त और मानुषक्षेत्रके भीतर अप्रतिहत गमनशील ऋषियोंने अतीतकालमें सम्पूर्ण मानुषक्षेत्र स्पर्श किया है, इसलिए 'मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है' यह वचन घटित नहीं होता है ?

१ प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एस दोसो, उवरि जोयणलक्खुप्पायणेण जोयणलक्खमेत्तगमणे संभवाभावादो। मेरुमत्थय-चढणसमत्थाणमिसीणं किमिदि जोयणलक्खुप्पायणे ण संभवो? होदु णाम मेरुपव्वदुद्देसे[1] सा सत्ती, ण सव्वत्थ, 'माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे' इदि आइरियवयणण्णहाणुववत्तीदो। अधवा अदीदकाले लद्धिसंपण्णमुणिवरेहिं सव्वं पि माणुसखेत्तं पुसिज्जदि, तस्स माणुसखेत्तववएसण्णहाणुववत्तीदो। सत्थाणे पुण माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो चेव पोसिदो। जदि एवं, तो पंचिंदियतिरिक्खाणं पि पुव्ववेरियदेवाणं पयोगादो जोयण-लक्खुप्पायणं पावदि? होदु, ण को वि[2] दोसो। मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो पोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। मारणंतियखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, तदो संखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं वा किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि। ण

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक लाख योजन ऊपर उड़नेकी अपेक्षा एक लाख योजन प्रमाण गमन करनेकी उनमें संभावना नहीं है।

शंका—सुमेरुपर्वतके मस्तक (शिखर) पर चढ़नेमें समर्थ ऋषियोंके क्या एक लाख योजन ऊपर उड़कर गमन करनेकी संभावना नहीं है?

समाधान—भले ही सुमेरुपर्वतके ऊर्ध्वप्रदेशमें ऋषियोंके गमन करनेकी शक्ति रही आवे, किन्तु मानुषक्षेत्रके ऊपर एक लाख योजन उड़कर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नहीं है, अन्यथा 'मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें' ऐसा आचार्योंका वचन नहीं बन सकता है।

अथवा, अतीतकालमें विक्रियादि लब्धिसम्पन्न मुनिवरोंने सर्व ही मनुष्यक्षेत्र स्पर्श किया है, अन्यथा उसका 'मनुष्यक्षेत्र' यह नाम नहीं बन सकता है।

स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा उक्त प्रमत्तादि संयतोंने मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है।

शंका—यदि ऐसा है, तो पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भी पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन ऊपर तक जाना प्राप्त होता है?

समाधान—यदि तिर्यंचोंका ऊपर एक लाख योजन तक जाना प्राप्त होता है, तो होवे, उसमें भी कोई दोष नहीं है।

मारणान्तिकसमुद्धातगत उन्हीं प्रमत्तसंयतादिकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त प्रमत्तसंयतादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका मारणान्तिक क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा अथवा असंख्यातगुणा क्यों नहीं होता है?

१ म १ प्रतौ '-दुद्देसणसत्ती', म २ प्रतौ अन्यप्रतिषु च '-दुद्देसे सा सत्ती' इति पाठः।
२ म प्रतौ 'को वि', अन्यप्रतिषु 'को थि' इति पाठः।

ताव उड्ढवट्टाणं पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभाणं समपरिमंडलसंट्ठिदाणं सत्तरज्जु-आयदाणं खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, संखेज्जपदरंगुलमेत्तसेढिपमाणत्तादो। ण च पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभसंखेज्जंगुलबाहल्लं संखेज्जरज्जुआयदकप्पवासिय-विमाणमेत्ततिरिच्छवट्टाणं खेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, एदस्स पुव्व-खेत्तादो संखेज्जगुणहीणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तविरोधा। विमाणप्पडिट्ठिद-असंखेज्जुववादभवणसम्मुहवट्टखेत्तेसु समुदिदेसु किण्ण तं होइ ? ण, सेढीए असंखेज्जदि-भागासंखेज्जजोयणरुंदयखेत्तेसु गहिदेसु वि तदसंभवादो।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणाए खेत्तभंगो। अदीद-

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, ऊपरकी ओर प्रवर्तमान, पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाले, समपरिमंडल आकारसे संस्थित, और सात राजु आयत, ऐसे मारणान्तिक-समुद्धात करनेवाले प्रमत्तसंयतादि जीवोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग नहीं होता है, क्योंकि, वह क्षेत्र संख्यात प्रतरांगुलमात्र जगश्रेणीके प्रमाण ही होता है। और न संख्यात राजु आयत, तथा कल्पवासी विमानोंके प्रमाण तिर्यग्रूपसे प्रवर्तमान उक्त जीवोंका पैंतालीस लाख योजन विस्तार और संख्यात अंगुल बाहल्यवाला मारणान्तिकक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त क्षेत्रसे संख्यातगुणे हीन इस क्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग माननेमें विरोध आता है।

शंका—विमानोंमें प्रतिष्ठित असंख्यात उपपादशय्यावाले भवनोंके सम्मुख प्रवर्तमान उक्त जीवोंके समस्त मारणान्तिकक्षेत्र संयुक्त करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रेणीके असंख्यातवें भाग तथा असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्रोंके ग्रहण करने पर भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होना असंभव है।

सयोगिकेवली भगवन्तोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। अतीतकालको आश्रय करके पर्यायार्थिकनयसम्बन्धी प्ररूपणा भी क्षेत्रके समान ही है। विशेष बात यह है कि कपाटसमुद्धातगत केवलीका स्पर्शनक्षेत्र

१ प्रतिषु 'णं' स्थाने 'ए' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'रुंदपंथ' इति पाठः।

कालमस्सिदूण पज्जवट्ठियपरूवणाए खेत्तभंगो चेव। णवरि कवाडगदस्स पणदालीस-जोयणसदसहस्सबाहल्लं जगपदरमेगं कवाडखेत्तं होदि। अवरं णवदिजोयणसदसहस्स-बाहल्लं जगपदरं होदि। एवं दोण्णि कवाडखेत्ताणि मेलिदे तिरियलोगादो संखेज्जगुणाणि।

(एवमोघपरूवणा समत्ता)

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ११ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो वट्टमाणकाले पोसिदो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। सेसं खेत्तभंगो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १२ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो अत्थो सुत्ते अवुत्तो कधं परूविज्जदे ? ण, सुत्तत्थेण 'वा' सद्देण

पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाला एक जगप्रतरप्रमाण कपाटक्षेत्र होता है। (यह कायोत्सर्गस्थ केवलीकी अपेक्षा जानना)। और दूसरा अर्थात् समुपविष्ट केवलीके कपाटसमुद्घातका क्षेत्र नव्वै लाख योजन बाहल्यवाले जगप्रतरप्रमाण कपाटसमुद्घातसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र होता है। इस प्रकार दोनों कपाटक्षेत्रोंको मिला देनेपर तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र हो जाता है।

(इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।)

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है। शेष कथन क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए।

नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १२ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका— सूत्रमें नहीं कहा गया यह अर्थ कैसे कहा जा रहा है ?

---

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकैश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

समुच्चयट्ठेण सूचिदत्तादो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-खेत्ताणि अदीदकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि किण्ण होंति त्ति वुत्ते ण होंति, इंदय[1]-सेढीबद्ध-पइण्णएहि रुद्धसव्वखेत्तस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। इंदय-सेढीबद्ध-पइण्णएसु संचरंतेहिं णेरइयमिच्छाइट्ठीहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो किण्ण पुसिज्जदि त्ति वुत्ते ण पुसिज्जदि, णेरइयाणं परखेत्तगमणाभावादो। परखेत्तगमणाभावे विहारवदिसत्थाणस्स अभावो पसज्जदि त्ति वुत्ते ण पसिज्जदे, एक्कम्हि इंदए सेढीबद्ध-पइण्णए च संट्ठिदगामागार-बहुविधबिलगमणसंभवादो। असंखेज्जजोयणमेत्तायामसेढीबद्ध-पइण्णया अत्थि त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति णासंकणिज्जं, असंखेज्जजोयणायामसेढीबद्ध-पइण्णयाणं पि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तादो। मारणंतिय-उववादपदेहि णेरइयमिच्छादिट्ठीहि

समाधान—नहीं, क्योंकि, सूत्रमें स्थित और समुच्चयार्थक 'वा' शब्दसे उक्त अर्थ सूचित किया गया है।

शंका—अतीतकालकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टियोंके विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि, इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकबिलोंसे रुद्ध भी सर्वक्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र ही होता है।

शंका—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरकोंमें संचार करनेवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग क्यों नहीं स्पर्श किया?

समाधान—नहीं स्पर्श किया है, क्योंकि, नारकियोंका स्वक्षेत्रको छोड़कर परक्षेत्रमें गमन नहीं होता है।

शंका—परक्षेत्रमें गमनका अभाव माननेपर विहारवत्स्वस्थानका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान—विहारवत्स्वस्थानका अभाव नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके बिलोंमें गमन सम्भव होनेसे विहारवत्स्वस्थानपद बन जाता है।

शंका—असंख्यात योजनप्रमाण आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक होते हैं, इसलिए तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र बन जाता है?

समाधान—ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, असंख्यात योजन आयामवाले श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नरक भी तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदवाले नारकी मिथ्यादृष्टियोंने अतीतकालमें

१ प्रतिषु 'इंदिय' इति पाठः।

अदीदकाले छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। ऊणपमाणं देसूणतिण्णिजोयणसहस्सं। तिरिक्ख-णेरइयाणं सव्वदिसासु गमणागमणसंभवो अत्थि त्ति छ चोद्दसभागा होंति, कधं देसूणत्तं ? वुच्चदे- विग्गहो जीवाण किं सहेउओ, आहो अहेउओ त्ति ? ण ताव अहेउओ, णिक्कारण-कज्जाणुवलंभादो। बिदिये कारणं वत्तव्वमिदि। कम्मं तक्कारणं, संसारिजीवसव्वावत्थाणं कम्मवादीरित्तकारणाणुवलंभादो। तत्थ वि आणुपुव्विणामं चेव कारणं, अण्णासिं सव्व-पयडीणं पुध पुध कज्जाणमुवलंभादो, पुव्वुत्तरसरीराणमंतरालखेत्ते आणुपुव्वीए विवागो होदि त्ति गुरूवदेसादो वा। आणुपुव्विउदयाभावे वि मुक्कमारणंतियजीवाणं वक्कुवलंभादो णाणुपुव्विफलं विग्गहो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स तित्थयरस्सेव पच्चासण्णविवागाणुपुव्वि-फलत्तादो। अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लतिरियपदरम्हि सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्त-ओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए

....

कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। यहांपर कुछ कमका प्रमाण देशोन तीन हजार योजन है।

शंका—तिर्यंच और नारकियोंका सर्व दिशाओंमें गमनागमन सम्भव है, इसलिए पूरे छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग ही स्पर्शन क्षेत्र होना चाहिए, फिर कुछ कम कैसे कहा ?

समाधान—विग्रहगतिमें जीवोंके विग्रह क्या सहेतुक होते हैं, अथवा अहेतुक ? अहेतुक तो माने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि, विना कारणके कार्य पाया नहीं जाता। यदि दूसरा पक्ष ग्रहण किया जाता है, अर्थात् विग्रह सहेतुक होते हैं, तो उसमें कारण कहना चाहिए ? विग्रहका कारण कर्म है, क्योंकि, संसारी जीवोंकी सर्व अवस्थाओंका कर्मको छोड़कर और कोई कारण पाया नहीं जाता है। उसमें भी आनुपूर्वीनामक नामकर्म ही विग्रहका कारण है; क्योंकि, अन्य सभी प्रकृतियोंके पृथक् पृथक् कार्य पाये जाते हैं, तथा पूर्वशरीरको छोड़नेके पश्चात् और उत्तरशरीरको ग्रहण करनेके पूर्व अन्तरालवर्ती क्षेत्रमें आनुपूर्वीनामकर्मका विपाक (उदय) होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

शंका—आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके नहीं होनेपर भी मारणान्तिकसमुद्घात करने-वाले जीवोंके विग्रह पाये जाते हैं, इसलिए विग्रह आनुपूर्वीनामकर्मका फल है, ऐसा नहीं माना जा सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह विग्रह तीर्थंकरप्रकृतिके समान निकट भविष्यमें उदय होनेवाले आनुपूर्वीनामकर्मका फल है।

शंका—सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें अर्थात् राजुके वर्गमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके विकल्पोंसे गुणा करनेपर वहां जो राशि अर्थात् आकाश प्रदेशोंकी संख्या आती है उतने प्रमाण नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीकी प्रकृतियां

पयडीओ। लोगे सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा होंति। पणदालीसजोयणलक्खबाहल्ले तिरियपदरे उड्ढकवाडछेदणयणिप्पण्णे[1] सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा होंति। णवजोयणसदबाहल्लतिरियपदरे सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीए पयडिवियप्पा होंति त्ति वग्गणसुत्तादो आणुपुव्विणामं संठाणविवाई चेवेत्ति णासंकणिज्जं, तिस्से खेत्त-संठाणेसु वावादाए एकत्थेव वावारविरोहादो। ते च आगासपदेसा एत्थ चेव अच्छंति

....

होती हैं। घनलोकमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाके विकल्पोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं। पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें ऊर्ध्वकपाटके छेदनेसे निष्पन्न क्षेत्रको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा करनेपर मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं। नौ सौ योजन बाहल्यवाले तिर्यग्प्रतरमें जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहन-विकल्पोंसे गुणा करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके प्रकृति-विकल्प होते हैं। इन वर्गणाखंडके सूत्रोंके अनुसार आनुपूर्वीनामा नामकर्मकी प्रकृति संस्थान अर्थात् पुद्गल विपाकी ही है।

समाधान—ऐसी भी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, क्षेत्र और संस्थानोंमें व्यापृत अर्थात् क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी होते हुए भी उस आनुपूर्वीप्रकृतिका एक ही अर्थमें व्यापार मान लेनेमें विरोध है। दूसरी बात यह भी है कि वे आकाशके प्रदेशके इसी

....

१ एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि कधमुप्पण्णाणि त्ति भणिदे वुच्चदे– उड्ढकवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि त्ति इदरेसिमाणुपुव्विकम्माणं तिरियपदराणं घणलोगस्स य उप्पत्तिमपरूविय एदेसिं चेव तिरियपदराणमुप्पत्ती किमट्ठं परूविज्जदे ? लोगसंठाणपरूवणट्ठं। उड्ढकवाडमिदि एदेण लोगो णिद्दिट्ठो। कधमेसा लोगस्स सण्णा ? वुच्चदे– ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव लोकः। ऊर्ध्वकपाटं जेण लोगो चोद्दसरज्जुउस्सेहो सत्तरज्जुरुंदो मज्झे उवरिमपेरंतो च एगरज्जुबाहल्लो उवरि बम्हलोगुद्देसे पंचरज्जुबाहल्लो मूले सत्तरज्जुबाहल्लो; अण्णत्थ जहाणुवड्ढी बाहल्लो। तेण उड्ढट्ठियकवाडोवमो। उड्ढकवाडस्स छेदणं उड्ढकवाडछेदणं तेण उड्ढकवाडछेदणेण णिप्पण्णाणि एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणि। संपहि एत्थ उड्ढकवाडछेदणविहाणं वुच्चदे। तं जहा— सत्तरज्जुरुंदत्तम्मि दोसु वि पासेसु तिण्णि-तिण्णिरज्जुआयामेण एगरज्जुविक्खंभेण उड्ढकवाडं छेत्तव्वं। पुणो पणदालीसजोयणलक्खुस्सेहं मोत्तूण हेट्ठा उवरि च मज्झिमपदेसे उड्ढकवाडं छिंदिदव्वं। पुणो मुह १ भूमि ५ विसेसा ४ उच्छेह $\frac{७}{२}$ भजिदो वड्ढिपमाणं होदि $\frac{८}{७}$। एदीए वड्ढीए पणदालीसजोयणलक्खेसु वड्ढिदखेत्तं दोसु वि पासेसु अवणेदव्वं। एवमुड्ढकवाडछेदणेण पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि णिप्फण्णाणि। धवला अ. प्र. पत्र १२०९ (वर्गणाखंड)

त्ति ण णियमो अत्थि, समयाविरोहेण तेसिमवट्ठाणादो । तदो आणुपुव्विविवागपाओग्ग-खेत्ते अवट्ठाणं उप्पण्णपढम-विदिय-तदियवंकेसु णत्थि त्ति देसूणत्तं घडदे । एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ जहावसरं परूवेदव्वो ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ १३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगद्दारे जो वुत्तो, सो वत्तव्वो ।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासण-सम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । तं जधा— णेरइयाणं बिलाणि संखेज्जजोयणवित्थडाणि वि अत्थि, असंखेज्जजोयणवित्थडाणि वि । तत्थ जदि वि चदुरासीदिलक्खणेरइयावासा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति, तो वि सव्व-खेत्तसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव जधा होदि, तधा वत्तइस्सामो—

स्थान विशेषपर ही रहते हैं, ऐसा नियम नहीं है; क्योंकि, उनका अवस्थान परमागमके अविरोधसे माना गया है ।

इसलिए आनुपूर्वीनामकर्मके उदयके अप्रायोग्य क्षेत्रमें अवस्थान उत्पन्न होनेके प्रथम, द्वितीय और तृतीय विग्रहोंमें नहीं है, अतः देशोनता घटित हो जाती है । यह अर्थ ऊपर भी सर्वत्र यथावसर प्ररूपण करना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जो क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है वही यहांपर कहना चाहिए ।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकारसे है— नारकियोंके बिल संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं । उनमें यद्यपि चौरासी लाख नारकियोंके आवास असंख्यात योजन विस्तृत होते हैं, तो भी उन समस्त नारकावासोंका क्षेत्र-समास अर्थात् क्षेत्रोंका जोड़ तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग जिस प्रकारसे होता है, उस प्रकारसे कहते हैं—

णिरयावासा के वि परिमंडलायारा, के वि तंसा, के वि चउरंसा, के वि पंचंसा, के वि छंसा । एदे सव्वे वि समीकरणे कदे चउरंसा असंखेज्जजोयणवित्थडा होंति । सयलणेरइयरासिणा घणंगुलस्स संखेज्जदिभागे गुणिदे वट्टमाणकाले णेरइएहि रुद्धखेत्तं होदि । वट्टमाणे णेरइयरुद्धणिरयबिलभागादो अरुद्धभागो संखेज्जगुणो त्ति संखेज्जरूवेहि गुणिदे णेरइयाणमदीदसत्थाणखेत्तं होदि । तेण तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं ण विरुज्झदे । एवं 'वा' सद्दसूचिदस्स अत्थस्स परूवणा कदा होदि । सासणस्स णिरयगदीए उववादो णत्थि, सुत्तपडिसिद्धत्तादो । मारणंतियसमुग्घादगदेहि पंच चोद्दसभागा पोसिदा । कुदो ? सत्तमपुढवीदो सासणाणं मारणंतियकरणसंभवाभावा । तं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो णव्वदे ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

....

नारकियोंके आवास कितने ही तो गोल आकारवाले होते हैं, कितने ही त्रिकोण, कितने ही चतुष्कोण, कितने ही पंचकोण और कितने ही नारकावास षट्कोण होते हैं । इन सभी आकारोंवाले नारकावासोंके समीकरण करनेपर वे चतुरस्र और असंख्यात योजन विस्तृत हो जाते हैं । सम्पूर्ण नारकराशिसे घनांगुलके संख्यातवें भागको गुणा करनेपर वर्तमानकालमें नारकियोंसे रुद्ध-क्षेत्र होता है । वर्तमानकालमें नारकोंद्वारा रोके हुए नरकोंके बिल-भागसे अरुद्धभाग संख्यातगुणा होता है, इसलिए संख्यात रूपोंसे गुणा करनेपर नारकोंका अतीतकालसम्बन्धी स्वस्थानक्षेत्रका प्रमाण हो जाता है । अतः तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग (जो ऊपर स्पर्शन-क्षेत्र बताया गया है, वह) विरोधको नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार 'वा' शब्दसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा की गई है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका नरकगतिमें उपपाद नहीं होता है, क्योंकि, उसका सूत्रमें प्रतिषेध किया गया है । मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंने पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिकसमुद्घात करना संभव नहीं है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी ही सूत्रसे जाना जाता है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते । (यदि करते होते, तो सूत्रमें छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भागके स्पर्शका उल्लेख होता) ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। कारणं खेत्तसिद्धं। अदीदकाले वि एदेहि दोहि वि गुणट्ठाणेहि एदेहि पदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चेव पोसिदो, 'असंखेज्जजोयणवित्थडा णेरइयसव्वावासा' इदि मणेण संकप्पिय एगावासखेत्तफलं चउरासीदिलक्खरूवेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तफलोवलंभादो। सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादपदा णत्थि। असंजदसम्माइट्ठीहि मारणंतिय-उववादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणकाले पोसिदो। कारणं खेत्तसिद्धं। अदीदकाले मारणंतियसमुग्घादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। कुदो? सव्वजीवाणं अवक्कमछक्कणियमदंसणादो, उड्ढं गच्छमाणजीवाणं पि अप्पणो उप्पत्तिखेत्तमपावेदूण अंतरकाले चेव दिस-विदिसाणं गमणाभावादो। ण च उप्पत्तिखेत्तसमाणखेत्तंतरट्ठियाणं पि जीवाणमणियदगमणमत्थि,

....

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है। अतीतकालमें भी इन दोनों ही गुणस्थानवर्ती नारकी जीवोंने इन्हीं दोनों पदोंकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग ही स्पर्श किया है, क्योंकि, 'असंख्यात योजन विस्तृत नारकियोंके सर्व आवास होते हैं' इस प्रकार मनसे संकल्प करके एक नारकावासका क्षेत्रफल चौरासी लाख रूपोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्रफल पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है। इसका कारण क्षेत्रप्ररूपणासे सिद्ध है।

अतीतकालमें मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, सर्व जीवोंके अपक्रमषट्कका नियम देखा जाता है (देखो प्रथम भा. पृ. १००)। तथा ऊपर जानेवाले जीवोंके भी अपने उत्पत्ति क्षेत्रको नहीं प्राप्त करके अंतरालकालमें ही निश्चित दिशाको छोड़कर अन्य दिशा या विदिशामें गमन करनेका अभाव है। और न उत्पत्तिक्षेत्रके समान अर्थात् समतल अन्य क्षेत्र पर स्थित जीवोंके भी अनियत गमन होता है, क्योंकि,

एगदिसाए णियदगमणादो; तिरिच्छं गच्छमाणाणं पि जीवाणमप्पणो उप्पज्जमाणदिसं मोत्तूण अण्णदिसाणं गमणाभावादो, उप्पज्जमाणदिसं गच्छंताणं पि जीवाणं अप्पणो उप्पज्जमाणखेत्तसमाणट्ठाणमपावेदूण अंतराले सव्वत्थ उजुवलणाभावादो। तदो सव्वणिरयावासेहिंतो माणुसखेत्तमागच्छंताणं सम्मादिट्ठीणं णिरयावासप्पडिट्ठिदपडिणियदवट्टाणं पोसणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो चेव। अधवा णेरइयसम्मादिट्ठीणं तत्थतणमिच्छाइट्ठीणं (व)[1] घणरज्जुपदरसव्वागासपदेसेहिंतो (ण)[2] णिग्गमणमत्थि, मणुसोववादियत्तादो, णेरइयपडिबद्धाणं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीणं व पडिबद्धागासपदेसाणं रज्जुपदरम्हि सव्वत्थाभावादो। किं तदभावलिंगम् ? एदं चेव पोसणसुत्तं। समीकरणे कदे जदि एक्कणेरइयावासविक्खंभो एगसेढिं सेढिविदियवग्गमूलेण खंडियमेत्तो होदि, तो तस्स खेत्तफलं जगपदरं सेढिपढमवग्गमूलेण खंडियमेत्तं होदि। पुणो अदीदकाले तत्थ ट्ठाइदूण उड्ढं मारणंतियं मेल्लंताणं एदं खेत्तफलं मुहं होदि, संखेज्जरज्जु-

उनका गमन एक दिशामें ही, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्रकी ओर ही, नियत हो चुका है। तिरछे गमन करनेवाले भी जीवोंके अपनी उत्पन्न होनेवाली दिशाको छोड़कर अन्य दिशाको गमन नहीं होता है। उत्पन्न होनेकी दिशाको जाते हुए भी जीवोंके अपने उत्पन्न होनेके क्षेत्रके समान अन्य स्थानको नहीं प्राप्त करके अन्तरालमें सर्वत्र ऋजुवलन अर्थात् सरलगतिसे वक्रगति होनेका अभाव है। इसलिए सभी नारकावासोंसे मनुष्यक्षेत्रको आनेवाले और नारकावासमें प्रतिष्ठित होते हुए नियत क्षेत्रकी ओर प्रवर्तमान सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग ही है।

अथवा, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेके कारण नारकी सम्यग्दृष्टियोंका वहांके मिथ्यादृष्टियोंके समान घनराजुप्रतरके सर्व आकाशप्रदेशोंसे निर्गमन नहीं होता है, क्योंकि, नरकगतिसे प्रतिबद्ध मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीवाले जीवोंके समान प्रतिबद्ध आकाश-प्रदेशोंका राजुप्रतरमें सर्वत्र अभाव है।

शंका—इस सर्वत्र अभावका लिंग क्या है, अर्थात् यह किस आधारसे जाना ?

समाधान—उक्त बातका बतानेवाला यही स्पर्शन-सूत्र है।

समीकरण करनेपर यदि एक नारकावासका विष्कम्भ एक जगश्रेणीको जगश्रेणीके द्वितीय वर्गमूलसे खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है, तो उसका क्षेत्रफल जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे जगप्रतरको खंडित करनेपर एक खंड मात्र होता है। पुनः अतीतकालमें वहां रहकर ऊपरकी ओर मारणान्तिकसमुद्घात करनेवालोंका यह क्षेत्रफल मुखरूप हो जाता है और संख्यात राजुप्रमाण आयाम होता है।

१ प्रतिषु 'उड्डवलणा' म. प्रतौ 'उड्डवेलणा' इति पाठः।

२ प्रतिषु कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति।

आयामो होदि । एत्थ उस्सेधेण खेत्तफलं गुणिदे तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं मारणंतियखेत्तं होदि त्ति वुत्ते ण होदि, णिरयावासो ण एक्को वि एरिसविक्खंभसहिओ अत्थि । कधमेदं परिच्छिज्जदे ? 'णेरइया असंजदसम्मादिट्ठी सव्वपदेहि अदीदकाले तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं पुसंति' त्ति सुत्तवयणादो । केत्तिओ पुण णेरइयावासाणं विक्खंभो होदि त्ति वुत्ते असंखेज्जजोयणमेत्तो होदि । तं जहा– सग-सगसत्थाणखेत्तं ठविय सग-सगबिल-संखाए ओवट्टिदे एगबिलेण रुद्धखेत्तमसंखेज्जजोयणविक्खंभायामं होदि । तं संखेज्जरज्जूहि गुणिदे एगबिलमस्सिदूण मारणंतियखेत्तं होदि । एदं बिलसंखाए गुणिदे सयलं मारणंतियखेत्तं होदि । एदं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागं होदि । सव्वणिरयावासाणं खादफलमसंखेज्जजोयणमेत्तं होदूण एगरज्जुपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि । कुदो ? 'असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियपोसणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो' त्ति वयणादो । जदि कहिं पि एक्कस्स बिलस्स खेत्तफलं रज्जुपदरस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि,

---

शंका—यहांपर अर्थात् उक्त क्षेत्रमें उत्सेधसे क्षेत्रफलको गुणा करने पर तो तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है ?

समाधान—नहीं होता है, क्योंकि, इस प्रकारके विष्कम्भसे सहित एक भी नारकावास नहीं है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि सर्वपदोंकी अपेक्षा अतीतकालमें तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रको स्पर्श करते हैं' इस प्रकारके सूत्र-वचनसे उक्त बात जानी जाती है ।

शंका—नारकोंके आवासोंका विष्कम्भ कितना होता है ?

समाधान—असंख्यात योजन प्रमाण होता है । वह इस प्रकारसे है— अपना अपना स्वस्थानक्षेत्र स्थापित करके अपने अपने बिलोंकी संख्याओंसे अपवर्तन करनेपर एक बिलसे रुद्धक्षेत्र असंख्यात योजन विष्कम्भ और आयामवाला हो जाता है । उसे संख्यात राजुओंसे गुणा करनेपर एक बिलका आश्रय करके मारणान्तिकसमुद्घातगत क्षेत्र हो जाता है । इस प्रमाणको बिलोंकी संख्यासे गुणा करनेपर सकल मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । यह मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

सर्व नारकावासोंका घनफल असंख्यात योजनप्रमाण होकर भी एक राजुप्रतरका असंख्यातवां भागमात्र ही होता है, क्योंकि, 'असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शन तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भाग होता है' ऐसा सूत्र-वचन है । यदि कहीं भी एक बिलका क्षेत्रफल राजुप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण होता, तो असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका

तो असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होइ, तिरियपदरबाहल्लादो मारणंतियखेत्तबाहल्लस्स असंखेज्जगुणत्तादो। पढमपुढविसत्थाणखेत्ते सेढीए संखेज्जदिभागेण गुणिदे असंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियपोसणं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं होदि त्ति के वि पच्चवट्ठाणं कुणंति। तण्ण घडदे, सत्थाणखेत्तं विलसलागाहि ओवट्टिय लद्धस्स वग्गमूलविक्खंभेण अद्धरज्जुआयामपोसणखेत्तुवलंभादो। ण उड्ढं गंतूण तिरिच्छं गच्छंताणं बहुपोसणं, तिरिच्छं गंतूण उड्ढं गच्छंताणं व, पुव्वुत्तेणेव विक्खंभेण गमणुवलंभादो। एवमुववादस्स वि वत्तव्वं।

पढमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगद-मिच्छादिट्ठीणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

....

मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता, क्योंकि, तिर्यक्प्रतरके बाहल्यसे मारणान्तिकक्षेत्रका बाहल्य असंख्यातगुणा है।

प्रथम पृथिवीके स्वस्थानक्षेत्रमें जगश्रेणीके संख्यातवें भागसे गुणा करनेपर असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंका मारणान्तिकस्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा होता है, ऐसा कितने ही आचार्य समाधान करते हैं। किन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि, स्वस्थानक्षेत्रको बिलशलाकाओंसे अपवर्तितकर लब्धराशिके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे अर्धराजु आयामप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। तथा, ऊपर जाकर तिरछे गमन करनेवाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है, जैसा कि तिरछे जाकर ऊपर जानेवालोंका स्पर्शनक्षेत्र बहुत नहीं है; क्योंकि, पूर्वोक्त ही विष्कम्भद्वारा गमन पाया जाता है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकोंके उपपादक्षेत्रका भी कथन करना चाहिए।

प्रथम पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय, और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो ? असंखेज्जजोयणविक्खंभणिरयावासखादफलं ठविय तप्पाओग्गसंखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो। मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? वुच्चदे– असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपढमपुढवीबाहल्लम्मि हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सव्वकालं ण छुप्पदि त्ति कट्टु जोयणसहस्समवणिय सेसबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उस्सेधेण एगूणवंचासमेत्तखंडाणि कादूण पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, 'एगरज्जुरुंदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्खबाहल्लो तिरियलोगो' त्ति उवदेसादो। जे पुण जोयणलक्खबाहल्लरज्जुवट्टं तिरियलोगपमाणं भणंति तेसिमुवदेसेण तिरियलोगादो सादिरेयं मारणंतिय-उववादखेत्तं होदि।

....

और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि असंख्यात योजन विष्कम्भवाले नारकावासोंके घनफलको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका— यहांपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान— एक लाख अस्सी हजार योजन प्रथम पृथिवीके बाहल्यमेंसे नीचेका एक हजार योजनप्रमाण क्षेत्र नारकियोंने किसी भी समय नहीं छुआ है, ऐसा करके उक्त प्रमाणमेंसे एक हजार योजन निकालकर शेष एक लाख उन्यासी हजार बाहल्यवाले राजुप्रतरको स्थापित करके उत्सेधके उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है, क्योंकि, 'एक राजु रुंदवाला, सात राजु लम्बा और एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यग्लोक है' ऐसा उपदेश है। किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाहल्यवाला और एक राजु गोलाईवाला तिर्यग्लोकका प्रमाण कहते हैं, उनके उपदेशानुसार तिर्यग्लोकसे साधिक मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र होता है।

विशेषार्थ— यहां पर प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग इस प्रकार सिद्ध किया गया है—यदि हम तिर्यग्लोकके एक राजु लम्बे चौड़े व मोटाईके सप्तमांश प्रमाण मोटे खंड करें तो १४२८५$\frac{5}{7}$ योजन मोटाईवाले ४९ खंड होते हैं। अब यदि एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी और एक राजु लम्बी चौड़ी प्रथम पृथ्वीके प्रमाणमेंसे नारकियोंसे सदैव अस्पृष्ट एक हजार योजन मोटा

ण च एदं घडदे, एदम्हि उवदेसे पडिग्गहिदे लोगम्हि तिण्णिसद-तेदालमेत्तघणरज्जूणमणुप्पत्तीदो, 'रज्जू सत्तगुणिदा जगसेढी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेढीए गुणिदजगपदरं घणलोगो होदि' त्ति परियम्मसुत्तेण सव्वाइरियसम्मदेण विरोहप्पसंगादो च । कदजुम्मेहि

अधस्तन भाग पृथक् करके शेष १७९००० योजनके एक राजु लम्बे चौड़े ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंडकी मोटाई ३६५३ $\frac{३}{४९}$ योजन प्रमाण होगी जो पूर्वोक्त तिर्यग्लोकके खंडोंकी मोटाईसे लगभग चतुर्थांश पड़ती है । इस प्रकार यह समस्त क्षेत्र तिर्यलोकका संख्यातवां भाग सिद्ध हो जाता है। किन्तु लोककी मृदंगाकार मान्यताके अनुसार उक्त क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं, किन्तु तिर्यग्लोकसे भी अधिक पड़ जाता है, क्योंकि, यदि एक राजु व्यासवाले गोल तथा एक लाख योजन मोटाईवाले तिर्यग्लोकके पूर्वप्रकार ४९ खंड करें तो प्रत्येक खंड एक राजु व्यासवाला गोल तथा २०४० $\frac{४०}{४९}$ योजन मोटा होगा। इसी प्रकार वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्रके खंड भी एक राजु व्यासवाले गोल तथा ३६५३ $\frac{३}{४९}$ योजन मोटे होंगे और उनका समस्त घनफल वर्तुलाकार तिर्यग्लोकके घनफलसे हीन न रहकर अधिक हो जायगा ।

उदाहरण—

(१) आयत चतुरस्र तिर्यग्लोक $१ \times ७ \times १००००० \text{ यो.} = १^{२} \times \frac{१०००००}{७} \times \frac{४९}{१}$ (रा. रा.)

(२) उक्त मारणान्तिकक्षेत्र $१ \times १ \times १७९००० = १^{२} \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$

(३) वर्तुलाकार तिर्यग्लोक $१ \times ३ \times \frac{१}{४} \times १००००० = \frac{३}{४} \times \frac{१०००००}{४९} \times \frac{४९}{१}$

(४) वर्तुलाकार लोककी मान्यतासे उक्त मारणान्तिकक्षेत्र—

$$\frac{३}{४} \times १७९००० = \frac{३}{४} \times \frac{१७९०००}{४९} \times \frac{४९}{१}$$

इस प्रकारके उक्त क्षेत्रोंमें प्रथम दूसरेसे $\frac{७००}{१७९} = ३\frac{१६३}{१७९}$ = कुछ कम चौगुना अर्थात् संख्यातगुणा सिद्ध होता है । तथा, चौथा तीसरेसे कुछ कम दुगुणा अर्थात् सातिरेक सिद्ध होता है ।

किन्तु यह घटित नहीं होता है, क्योंकि, इस उपदेशके स्वीकार करनेपर लोकाकाशमें तीनसौ तेतालीस घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं होती है । दूसरे, 'राजुको सातसे गुणा करने पर जगश्रेणी होती है, जगश्रेणीको जगश्रेणीसे गुणा करने पर जगप्रतर होता है, और जगप्रतरको जगश्रेणीसे गुणा करने पर घनलोक होता है' इस सर्व आचार्योंसे सम्मत परिकर्म सूत्रसे विरोध भी प्राप्त होता है । पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त,

पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वेंतरदेव-अवहारकालेहि खुद्दाबंधसुत्तसिद्धेहि[1] अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज ? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा। किं च दव्वाणियोगद्दारवक्खाणम्हि वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावमुव ढुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो। तिण्णिसदतेदालघणरज्जुपमाणो उवमालोओ णाम। एदम्हादो अण्णो पंचदव्वाहारलोगो, तदो सव्वमेदं घडदि त्ति वुत्ते ण, उवमेयाभावे उवमाए अण्णत्थ अणुवलंभादो। तम्हा उवमेयेसु उस्सेह-पमाणंगुलपलिदोवम-सागरोवमसण्णिदेसु खेत्त-कालेसु संतेसु उवमाभूदउस्सेह-पमाणंगुल-पल्ल-सागराणमत्थित्तमुवलब्भदे। तम्हा एत्थ वि उवमेएण लोगेण पमाणदो उवमालोगाणुसारिणा पंचदव्वाहारेण होदव्वं, अण्णहा एदस्स उवमालोगत्ताणुववत्तीदो।

पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती, ज्योतिष्क और व्यन्तरदेवोंके खुद्दाबंधसूत्र-सिद्ध, कृतयुग्मराशिवाले अवहारकालोंसे अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देने पर ये उक्त राशियां सछेद हो जायेंगी, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उन जीवोंके छेदका अभाव है। (कृतयुग्म आदि राशियोंके लिये देखो तीसरा भाग, पृ. २४९)।

दूसरी बात यह है कि द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन और उपरिम विकल्प अभावको प्राप्त होते हैं, क्योंकि, उक्त प्रकारसे लोक वर्गविहीनराशिसे समुत्पन्न होता है।

शंका—तीन सौ तेतालीस घनराजुप्रमाण लोकका नाम उपमालोक है। इससे अन्य पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक भिन्न है। यदि ऐसा माना जाय, तो यह सब उपर्युक्त कथन घटित हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाकी अन्यत्र उपलब्धि नहीं होती है। अर्थात् यदि उपमाके योग्य किसी पदार्थका अस्तित्व न माना जायगा, तो फिर उपमाकी सार्थकता कहां पर होगी ? इसलिए उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल संज्ञिक क्षेत्ररूप उपमेयोंके तथा पल्योपम और सागरोपम संज्ञिक कालरूप उपमेयोंके विद्यमान होने पर उपमारूप उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, पल्य और सागरका अस्तित्व पाया जाता है। अतएव यहां पर भी उपमेयरूप लोकके साथ प्रमाणकी अपेक्षा उपमालोकका अनुसरण करनेवाला पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक होना चाहिए, अन्यथा इसका नाम उपमालोक हो नहीं सकता।

---

१ खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरादि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ खुद्दाबंधसुत्तं, अ. प्र. प. ५१९. एदे अवहारकाले जहाकमेण सलागभूदे ठविय पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिज्जमाणे सलागाओ जगपदरं च जुगवं समप्पंति। धवला. अ. प्र. प. ५१९.

सासणसम्माइट्ठि-सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादगदखेत्तपरूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले[1] चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा मिच्छा-

---

विशेषार्थ — यहां धवलाकारने लोककी वर्तुलाकार मान्यताके विरुद्ध पांच हेतु दिये हैं। जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम पृथिवीके मिथ्यादृष्टि जीवोंका मारणान्तिकक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कहा गया है। किन्तु यदि लोकको आयतचतुरस्र न मानकर वर्तुलाकार माना जावे तो वह क्षेत्र तिर्यग्लोकसे हीन नहीं किन्तु साधिक हो जाता है। (देखो पृ. १८४)

(२) परिकर्ममें राजु, जगश्रेणी, जगप्रतर और लोकका सम्बन्ध बतलाकर घनलोकको ३४३ राजुप्रमाण सिद्ध किया है। यह प्रमाण व व्यवस्था वर्तुलाकार लोकमें नहीं पाई जाती।

(३) खुद्दाबंधमें पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, ज्योतिषी और व्यंतर देवोंके अवहारकालोंको कृतयुग्मराशि अर्थात् चारसे पूर्णतः भाजित होनेवाला कहा है, और इनसे जगप्रतर निरवशेष भाजित हो जाता है, जिससे जगप्रतर भी कृतयुग्मराशि सिद्ध हुआ। किन्तु वर्तुलाकार लोककी मान्यतामें जगप्रतर अकृतयुग्मरूप पड़ेगा जिससे उक्त अवहारकालोंद्वारा वह पूर्णतः भाजित नहीं होनेसे वे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त, योनिमती आदि राशियां सछेद हो जाती हैं।

(४) द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें गुणस्थानों व मार्गणास्थानोंके भीतर जीवोंका प्रमाण उपरिमविकल्प और अधस्तनविकल्पों द्वारा भी समझाया गया है। किन्तु यदि लोकको उक्त प्रकार वर्तुलाकार मान लिया जाय तो उसमें वर्ग व वर्गमूल प्रमाण नहीं प्राप्त होनेसे वे विकल्प बन ही नहीं सकेंगे। (देखो तीसरा भाग, प्रस्तावना पृ. ४८)

(५) यदि यह कहा जाय कि तीन सौ तेतालीस राजुप्रमाणवाले लोकको द्रव्याधार लोक न मानकर केवल कल्पित उपमालोक ही माना जाय, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, उपमेयके अभावमें उपमाका अस्तित्व ही नहीं रहता है। तथा अंगुल, पल्योपम, सागरोपम आदि जो अन्य उपमाप्रमाण माने गये हैं उन सबके आधाररूप उपमेय प्राप्त हैं। अतः प्रमाणलोकको भी काल्पनिक न मानकर सोपमेय ही स्वीकार करना आवश्यक है।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर

---

१ अ-क प्रत्योः 'अदीदकाले' इति पाठो नास्ति।

दिट्ठिसमाणा । मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ कारणं मिच्छाइट्ठीणं व वत्तव्वं ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं अप्पणो सव्वपदाणं वट्टमाणकाले खेत्त-भंगो । एदेहि दोहि गुणट्ठाणेहि अदीदकाले सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो, एगणिरयावासस्स असंखेज्जघणंगुलाणि ठविय तप्पाओग्गाहि संखेज्जबिल-सलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तदंसणादो । मारणंतिय-उववादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । कुदो ? सदुक्खंभदुबाहाणं खादफलस्स तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो । जदि वि उड्ढं गंतूण सगबिलवग्गमूलविक्खंभेण मणुसगई गच्छंति, तो वि तिरियलोगस्सा-संखेज्जदिभागो, तिरिच्छेण लद्धखेत्तस्स बिलखेत्तवग्गमूलगुणिदसेढीए संखेज्जदिभाग-पमाणत्तादो । एदमत्थपदं सव्वत्थ जहासंभवं जाणिऊण जोजेयव्वं ।

पर्यायार्थिकनयसम्बधी स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके समान है। मारणा-न्तिकसमुद्घातगत नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर कारण मिथ्यादृष्टियोंके समान कहना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंके अपने सर्वपदोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत उक्त दोनों ही गुणस्थानवाले जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, एक नारकावासके असंख्यात घनांगुलोंको स्थापन करके तत्प्रा-योग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र देखा जाता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीबद्धादि बिलोंके मारणान्तिक व उपपादगत उक्त नारकियोंका) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका घनफल तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग पाया जाता है।

यद्यपि ऊपर जाकर अपने बिलके वर्गमूलप्रमाण विष्कम्भसे नारकी मनुष्यगतिको आते हैं, तो भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पर्शनक्षेत्र रहता है, क्योंकि, तिरछे-रूपसे लब्ध उस क्षेत्रका प्रमाण, बिलसम्बन्धी क्षेत्रके वर्गमूलसे गुणित जगश्रेणीका संख्या-तवां भाग ही होता है। यह अर्थपद सर्वत्र यथासंभव जान करके जोड़ना चाहिए।

बिदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥१७॥

सत्थाणसत्थाण–विहारवदिसत्थाण–वेदण-कसाय–वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगद-मिच्छादिट्ठीणं उववादविरहिदसेसपदट्ठिदसासणसम्मादिट्ठीणं च परूवणाए खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

एग बे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा[1] ॥ १८ ॥

एत्थ 'वा' सद्दसूचिदत्थं ताव वत्तइस्सामो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि बिदियादि पंचपुढविमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले एगो चोद्दसभागो बिदियाए पुढवीए फोसिदो। तदियाए बे चोद्दसभागा, चउत्थीए तिण्णि चोद्दसभागा,

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादपदको प्राप्त मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंकी तथा उपपादविरहित और शेष पदप्रतिष्ठित सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा वर्तमानकालसे प्रतिबद्ध होनेसे क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

उक्त जीवोंने अतीतकालकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार और पांच भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दसे सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत द्वितीयादि पांच पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है। यहांपर कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। दूसरी पृथिवीमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीतकालमें एक बटे चौदह ($\frac{1}{14}$) भाग स्पर्श किया है। तीसरी पृथिवीके नारकी जीवोंने दो बटे चौदह ($\frac{2}{14}$) भाग, चौथी पृथिवीके नारकियोंने

१ द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिभिः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एको द्वौ त्रयः चत्वारः पंच चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

पंचमाए चत्तारि चोद्दसभागा, छट्ठीए पंच चोद्दसभागा, सव्वत्थ णेरइयाणमगम्मखेत्तेणूणा त्ति वत्तव्वं । एवं सासणसम्मादिट्ठीणं पि वत्तव्वं । णवरि उववादो णत्थि । किमट्ठमेदेसिमदीदकाले एत्तियं खेत्तं होदि ? णिग्गमण-पवेसणं पडि सम्मादिट्ठीणं व णियमाभावा । भोगभूमिसंठाणसंठिदा असंखेज्जदीव-समुद्दा णेरइएहि कधं पुसिज्जंति ? ण, तत्थ वि णेरइयाणं णिग्गमण-पवेसं पडि विरोहाभावादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकाले सत्थाणादिपंचपदट्ठियाणं मारणंतियपदट्ठिय-असंजदसम्मादिट्ठीणं च परूवणाए खेत्तभंगो । एदेहि चेव अदीदकाले सत्थाणादिपंचपद-

....

तीन बटे चौदह ($\frac{3}{14}$) भाग, पांचवीं पृथिवीके नारकियोंने चार बटे चौदह ($\frac{4}{14}$) भाग और छठी पृथिवीके नारकियोंने पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है । इन सभी पृथिवियोंके नारकियोंका देशोन क्षेत्र नारकियोंके अगम्यक्षेत्रसे कम कहना चाहिए। इसी प्रकारसे उक्त पृथिवियोंके सर्व पदगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके उपपादपद नहीं होता है ।

शंका— उक्त नारकियोंका अतीतकालमें इतना (सूत्रोक्त) स्पर्शनक्षेत्र क्यों होता है ?

समाधान— इतना अधिक स्पर्शनक्षेत्र इसलिए होता है कि उक्त पृथिवियोंमें निर्गमन और प्रवेशनके प्रति अर्थात् जाने और आनेकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान मिथ्यादृष्टि जीवोंका नियम नहीं है ।

शंका— भोगभूमिकी रचनासे संस्थित असंख्यात द्वीप-समुद्र नारकियोंने कैसे स्पर्श किये हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहांपर भी नारकियोंका निर्गमन और प्रवेश होनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नारकी जीवोंका उक्त क्षेत्रमें प्रवेश और निर्गमन बन जाता है ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १९ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दोनों गुणस्थानोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंपर स्थित नारकी जीवोंकी तथा मारणान्तिकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी वर्तमानकालमें स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । द्वितीय पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके उक्त गुण-

....

१ सम्यङ्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

ट्ठिदेहि मारणंतियपदट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठीहि य विदियादि-छट्ठिपुढविविसेसिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। विदियादि-छसु पुढवीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमुववादो णत्थि।

सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २० ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणखेत्तपरूवयं[2], उवरिमसुत्तेण अदीदाणागदकालविसिट्ठखेत्तपरूवणादो। एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं। एसो 'वा' सद्दत्थो। मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु छ चोद्दसभागा चित्ताए जोयणसहस्सेणूण-हेट्ठिमचदुहि

....

स्थानवर्ती स्वस्थानादि पांच पदस्थित जीवोंने और मारणान्तिकपदस्थित असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। द्वितीयादि छह पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है।

सातवीं पृथिवीमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २० ॥

यह सूत्र वर्तमानकालिक क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेवाला है, क्योंकि, आगेके सूत्रद्वारा अतीत अनागत कालविशिष्ट क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है। इसकी अर्थात् वर्तमानकालके स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

सातवीं पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर भी कारण पूर्वके समान कहना चाहिए। यही 'वा' शब्दका अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंने अतीत और अनागतकालमें चित्रा पृथिवीके एक

....

१ सप्तम्यां पृथिव्यां मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'परूवेयं' इति पाठः।

सहस्सेहि ऊणा फोसिदा । ण केवलं हेट्ठिल्लजोयणेहि चेव ऊणा, किंतु अण्णो वि देसो लोगणालीए अब्भंतरे णेरइएहि अच्छुत्तो अत्थि । तं कधं णव्वदे ? 'विदियाए पुढवीए एगो चोद्दसभागो देसूणो' इदि सुत्तवयणादो । अण्णहा एदस्स देसूणत्तं पिंडिदूण संपुण्णो एगो चोद्दसभागो होज्ज, चित्ताए जोयणसहस्सपवेसादो[1] । एत्थ पुणो केण खेत्तेणूणो एगो चोद्दसभागो त्ति वुत्ते वुच्चदे–णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-पंचिंदियतिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीहि पडिवद्धखेत्तं मोत्तूण अण्णखेत्तेणूणो । वादरुद्धसव्वखेत्तेणूणत्तं किण्ण वुच्चदे ? ण, तत्थ वि आणुपुव्विविवागपाओग्गखेत्ताणं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ २२ ॥

हजार योजनसे कम और अधस्तन चार पृथिवियोंसम्बन्धी चार हजार योजनोंसे कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर केवल पृथिवियोंके अधस्तन एक एक हजार योजनोंसे ही कम क्षेत्र नहीं समझना, किन्तु अन्य भी देश (क्षेत्र) लोकनालीके भीतर नारकियोंसे अछूता (अस्पृष्ट) है।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—'द्वितीय पृथिवीका स्पर्शन देशोन एक बटे चौदह भाग है' इस सूत्रवचनसे उक्त बात जानी जाती है। यदि ऐसा न माना जाय, तो इस पृथिवीका देशोन क्षेत्र पिंडित अर्थात् एकत्रित होकर सम्पूर्ण एक बटे चौदह ($\frac{1}{14}$) भाग हो जायगा, क्योंकि चित्रा पृथिवीका एक हजार योजन उस एक राजुमें ही प्रविष्ट है।

शंका—यहां पर एक बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम कहा है ?

समाधान—ऐसी आशंका करनेपर उत्तर देते हैं कि नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और पंचेन्द्रियतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दोनोंसे प्रतिबद्ध क्षेत्रको छोड़कर अन्य शेष क्षेत्रसे कम कहा है।

शंका—वायुसे रुके हुए सर्वक्षेत्रसे कम उक्त क्षेत्र क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर भी आनुपूर्वीनामकर्मके विपाकके प्रायोग्यक्षेत्रके संभव होनेमें कोई विरोध नहीं है।

सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२ ॥

१ म प्रतौ ' पवेहदो ' इति पाठः ।

२ शेषैस्त्रिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं सत्तमाए पुढवीए मारणंतिय-उववादपदा णत्थि। सेसपंच-पदट्ठिएहि तिण्णिगुणट्ठाणजीवेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, ओघं[1] ॥ २३ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदेहि मिच्छादिट्ठीहि तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो। विहारवदिसत्थाणपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। असंखेज्जेसु समुद्देसु तसजीवविरहिदेसु कधं विहारवदिसत्थाणपरिणदाणं तिरिक्खाणं संभवो? ण तत्थ पुव्ववेरियदेवाणं पयोगदो विहारविरोहाभावादो। अदीदकाले विहरंततिरिक्खेहि छुत्तखेत्तायणविहाणं वुच्चदे–पुव्ववेरियदेवपयोगादो उवरि जोयणलक्खं-

---

इन तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीवोंके सातवीं पृथिवीमें मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं। शेष स्वस्थानादि पांच पदोंपर विद्यमान उक्त तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? ओघके समान सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ २३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानसे परिणत तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—त्रस जीवोंसे विरहित असंख्यात समुद्रोंमें विहारवत्स्वस्थानसे परिणत हुए तिर्यंचोंका अस्तित्व कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई विरोध नहीं है। और इसलिए वहां पर उनका अस्तित्व भी संभव है।

अब अतीतकालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पर्श किये गए क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे चित्रा पृथिवीसे ऊपर एक लाख योजन

---

१ तिर्यग्गतौ तिरश्चां तिर्यग्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

२ आ प्रतौ 'खुत्त' इति पाठः।

चित्तमेरु-कुलसेल-कुंडल-रुजग-माणुसुत्तर-णगिंदवरपव्वदादिरुद्धखेत्तं मोत्तूण सव्वं फुसंति त्ति लक्खजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उड्ढमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तं होदि । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं वट्टमाणकाले खेत्तभंगो । तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोहि लोगेहिंतो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो । कारणं, वाउकाइयजीवा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता विउव्वण-क्खमा वट्टमाणकाले होंति[1], ते रज्जुपदरं पंचरज्जुबाहल्लं अदीदकाले फुसंति त्ति ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं[2], लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[3] ॥ २४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तम्हि परूविदो ।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५ ॥

एत्थ 'वा' सद्दट्ठो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदसासणसम्मादिट्ठीहिं तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

---

मेरुप्रमाण, तथा कुलाचल, कुंडलगिरि, रुचकगिरि, मानुषोत्तर और नगेन्द्रवर पर्वतादिकोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर सभी तिर्यंच सर्व द्वीप और समुद्रोंका स्पर्श करते हैं । इसलिए एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतरको स्थापन कर ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र हो जाता है । वैक्रियिकसमुद्घातगत तिर्यंचोंका स्पर्शन वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और तिर्यग्लोक तथा मनुष्यलोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वायुकायिक जीव वर्तमानकालमें विक्रिया करनेमें समर्थ होते हैं, और वे पांच राजु बाहल्यवाले एक राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रको अतीतकालमें स्पर्श करते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा जा चुका है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने भूत और भविष्यकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५ ॥

इस सूत्रमें स्थित 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और

---

१ गो. जी. २५८. २ प्रतिपु 'फोसिदं' इति पाठो नास्ति ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ ताव तिरिक्ख-सासणसत्थाणसत्थाणखेत्ताणयणविधाणं वुच्चदे– लवण-कालोदग-संयभुरमणसमुद्दे मोत्तूण सेससमुद्देसु णत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थुप्पण्णतसजीवाणमभावादो। सव्वेसु दीवेसु अत्थि सत्थाणसत्थाणसासणा, तत्थ तसजीवाणमुप्पत्तिदंसणादो। सत्थाणसत्थाणसासणेहि सव्वे दीवा तिण्णि समुद्दा तीदकाले पुसिज्जंति त्ति तेसिमाणयणट्ठमिमा परूवणा कीरदे। जंबूदीवो खेत्तगुणिदेण–

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चदु एक्क पंच सुण्णं च।
जंबूदीवस्सेदं गणिदफलं होइ णायव्वं[1] ॥ ४ ॥

अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अब यहांपर तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं—

लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष समुद्रोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते हैं, क्योंकि, वहांपर उत्पन्न होनेवाले त्रस जीवोंका अभाव है। हां, सर्वद्वीपोंमें स्वस्थानस्वस्थान पदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं, क्योंकि, वहांपर त्रसजीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंने सर्वद्वीप और तीन समुद्र अतीतकालमें स्पर्श किये हैं, इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र लानेकेलिए यह प्ररूपणा की जाती है। जम्बूद्वीपके क्षेत्रका गणित करनेपर—

सात, नौ, शून्य, पांच, छह, नौ, चार, एक, पांच और शून्य अर्थात् ७९०५६९४१५० वर्गयोजन प्रमाण जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ४ ॥

---

१ अंबरपंचेक्कचउणव छ पण सुण्ण णवय सत्तो य। अंककमे जोयणया जंबूदीवस्स खेत्तफलं ॥ ५८ ॥ ७९०५६९४१५०। एक्को कोसो दंडा सहस्समेक्कं हुवेदि पंच सया। तेवण्णाए सहिदा किंकू हत्थे ससुण्णाइं ॥ ५९ ॥ को. १ दंड १५५३।०।० । एक्को होदि विहत्थी सुण्णं पादम्गि अंगुलं एक्कं। जव छ तिय जूवा लिक्खाउ तिण्णि णादव्वा ॥ ६० ॥ १।०।१।६।३। कम्मक्खोणीए दुवे वालग्गा अवरभोगभूमीए। सत्त हुवंते मज्झिमभोगखिदीए वि तिण्णि पुढं ॥ ६१ ॥ २।७।३ सत्त य सण्णासण्णा ओसण्णासण्णया तहा एक्को। परमाणूण अणंताणंता संखा इमा होदि ॥६२॥ ७।१। अडतालसहस्साइं पणवण्णुत्तर चउस्सया अंसा। हारो एक्कं लक्खं पंच सहस्साणि चउ सया णवयं ॥ ६३ ॥ $\frac{४८४५५}{१०५४०९}$ ति. प. १, इति माणुसलोया.। पण्णासमेकदालं णव छप्पणास सुण्ण णव सदरी। साहियकोसं च हवे जंबूदीवस्स सुहुमफलं ॥ ३१३ ॥ त्रि. सा.

एदस्स एया सलागा होदि १ । एदेण पमाणेण लवणसमुद्दे कीरमाणे सो जंबूदीवादो खेत्तगुणिदेण चउवीसगुणो होदि । वुत्तं च–

बाहिरसूईवग्गो अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणो ।
जंबूदीवपमाणा खंडा ते होंति चउवीसा[1] ॥ ५ ॥

एदीए गाहाए सव्वेसिं दीव-समुद्दाणं पुध पुध खेत्तफलसलागाओ आणेदव्वाओ । तत्थ अट्ठण्हं खेत्तफलसलागाओ एदाओ–

१	२४	१४४	६७२	२८८०	११९०४	४८३८४	१९५०७२

लवणसमुद्दखेत्तफलवुप्पण्णो पमाणेण एगं होदि । लवणसमुद्दपमाणेण धादइसंडम्हि कीरमाणे छग्गुणो होदि । कालोदयसमुद्दो अट्ठावीसगुणो होदि । पोक्खरदीवो वीसुत्तरसदगुणो होदि । पोक्खरसमुद्दो चदुसदछण्णउदिगुणो होदि । एवं लवणसमुद्दजंबूदीव-

इसकी अर्थात् जम्बूद्वीपके उक्त क्षेत्रफलकी एक शलाका (१) होती है । इस प्रमाणसे लवणसमुद्रका माप करनेपर वह जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे चौबीस गुणा होता है । कहा भी है–

लवणसमुद्रकी बाह्यसूचीके वर्गको उसीकी आभ्यन्तर सूचीके वर्गके प्रमाणसे कम करनेपर जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलप्रमाण उसके चौबीस खंड होते हैं ॥ ५ ॥

इस गाथाके अनुसार समस्त द्वीप और समुद्रोंकी पृथक् पृथक् क्षेत्रफल शलाकाएं ले आना चाहिए । उनमेंसे आठ द्वीप-समुद्रोंकी क्षेत्रफल शलाकाएं इस प्रकार होती हैं— १, २४, १४४, ६७२, २८८०, ११९०४, ४८३८४, १९५०७२.

उदाहरण—(१) लवणसमुद्र-बाह्यसूची ५ लाख, आभ्यन्तरसूची १ लाख योजन.
$५^२ - १^२ = २५ - १ = २४.$
(२) धातकीखंडद्वीप-बाह्यसूची १३ लाख, आभ्यन्तरसूची ५ लाख योजन.
$१३^२ - ५^२ = १६९ - २५ = १४४.$
(३) कालोदधि-बाह्यसूची २९ लाख, आभ्यन्तरसूची १३ लाख योजन.
$२९^२ - १३^२ = ८४१ - १६९ = ६७२$ । इत्यादि ।

लवणसमुद्रका उत्पन्न हुआ क्षेत्रफल अपने प्रमाणकी अपेक्षा एक होता है । लवणसमुद्रके प्रमाणसे धातकीखंडका प्रमाण करनेपर धातकीखंड छह गुणा होता है । कालोदधिसमुद्र अट्ठाईसगुणा है । पुष्करवरद्वीप एक सौ वीसगुणा है । पुष्करवरसमुद्र चारसौ छ्यानवे गुणा है । इस प्रकारसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाणशलाकाओंसे द्वीप और सागरोंसम्बन्धी

१ बाहिरसूईवग्गो अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणो । लक्खस्स कदिम्मि हिदे इच्छियदीवद्धिखंडपमाणं ॥ ति. प. ५, २६. बाहिरसूईवग्गं अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणं । जंबूवासविभत्ते तत्तियमेत्ताणि खंडाणि । त्रि. सा. ३१६.

सलागाहि दीव-सायरजंबूदीवसलागाओ ओवट्टिय गुणगारा उप्पादेदव्वा । १।६।२८। १२०।४९६।२०१६।८१२८ । एवं ठविदगुणगारसलागाहि लवणसमुद्दजंबूदीवसलागाओ गुणिय जंबूदीवजोयणपदराणि गुणिदे इच्छिददीव-सायराणं खेत्तफलं होदि । संपहि समुद्दाणं चेव खेत्तफलमाणेदुमिच्छामो त्ति अप्पणो इच्छिद-इच्छिदसमुद्दाणं लवणसमुद्दगुणगार-सलागाणयणविधाणं वुच्चदे– लवणोदयसमुद्दादो कालोदयसमुद्दो खेत्तफलेण अट्ठावीसगुणो। तम्हि उप्पाइज्जमाणे दो रूवे ठविय पढमस्स वड्ढी णत्थि त्ति एगरूवमवणिय सेसेगरूवं विरलिय सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे सोलस होंति । ते दुगुणिय चत्तारि अवणिदे कालोदयसमुद्दस्स अट्ठावीस गुणगारसलागा उप्पज्जंति । तेहिं लवणोदयसमुद्दस्स

जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकाएं अपवर्तितकर गुणकार उत्पन्न करना चाहिए जो इस प्रकार आते हैं— १, ६, २८, १२०, ४९६, २०१६, ८१७८ ।

उदाहरण—(१) लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपशलाकाएं २४। ल. स. की द्वीप सा. सम्बन्धी शलाकाएं २४ । $\frac{२४}{२४}$ = १ लवणसमुद्रकी गुणकारशलाका ।

(२) धातकीखंडद्वीपकी प्रमाणशलाका १४४। $\frac{१४४}{२४}$ = ६ गुणकारशलाकाएं।

(३) कालोदकसमुद्रकी प्रमाणशलाका ६७२ । $\frac{६७२}{२४}$ = २८ गुणकारशलाका। इत्यादि ।

इस प्रकार स्थापन की गई गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रकी जम्बूद्वीपप्रमाण शलाकाओंको गुणित करनेपर पुनः उसे जम्बूद्वीपके प्रतरात्मक योजनोंसे गुणा करनेपर इच्छित द्वीप और सागरोंका क्षेत्रफल आता है ।

उदाहरण—(१) धातकीद्वीप-गुणकारशलाका ६।
६ × २४ × ७९०५६९४१५० धातकीद्वीपका क्षेत्रफल।

(२) कालोदधि-गुणकारशलाका २८;
२८ × २४ × ७९०५६९४१५० कालोदधिका क्षेत्रफल ।

(३) पुष्करद्वीप-गुणकारशलाका १२०;
१२० × २४ × ७९०५६९४१५० पुष्करद्वीपका क्षेत्रफल। इत्यादि ।

अब केवल समुद्रोंका ही क्षेत्रफल निकालना चाहते हैं, इसलिए अपने अपने इष्ट समुद्रोंकी लवणसमुद्रप्रमाण गुणकारशलाकाओंके निकालनेका विधान कहते हैं—

लवणोदकसमुद्रसे कालोदकसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा अट्ठाईस गुणा है । उसे उत्पन्न करनेके लिए दो रूपको स्थापनकर प्रथमसमुद्रकी वृद्धि नहीं है, इसलिए एक रूप कमकर शेष एक रूपको विरलन कर उसके ऊपर सोलह देकर परस्परमें गुणित करनेपर सोलह ही होते हैं । उन्हें दूना कर उनमेंसे चार कम कर देने पर कालोदकसमुद्रकी अट्ठाईस गुणकारशलाकाएं उत्पन्न होती हैं ।

खेत्तफले गुणिदे कालोदयसमुद्दस्स खेत्तफलं होदि । लवणसमुद्दादो पोक्खरसमुद्दो खेत्तगुणिदेण चत्तारिसदछण्णउदिमेत्तगुणो होदि । तम्हि गुणगारे आणिज्जमाणे तिण्णि समुद्दा त्ति कट्टु रूवूणं करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे वेसदछप्पण्णा होंति । ते दुगुणिय पुध ट्ठविय पुणो पुव्विल्ल-विरलणमेत्त विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णगुणं करिय उप्पण्णरासिं दुगुण-रासीदो अवणिदे पोक्खरसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति । तेहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे पोक्खरसमुद्दस्स खेत्तफलं होदि । पुणो चउत्थसमुद्दो लवणसमुद्दं दट्ठूणट्ठावीससदाहिय अट्ठसहस्सगुणो होदि । एदस्स गुणगारस्स उप्पत्ती वुच्चदे— चत्तारि रूवूणे करिय विर-लिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णगुणे कदे छण्णउदिरूवाहियचत्तारिसहस्साणि होंति । ते दुगुणिय पुध ट्ठविय पुव्विल्लविरलणरासिं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण-

....

उदाहरण—कालोदधि लवणसमुद्रसे दूसरा समुद्र है, अतः क्रमशलाका २.

　　　　१६
२ − १ = १;　　१ = १६;　१६ × २ − ४ = २८. कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाका.

कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाओं द्वारा लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । लवणसमुद्रकी अपेक्षा पुष्करसमुद्र क्षेत्रफलकी अपेक्षा चारसौ छयानवे गुणा है । उसका गुणकार निकालनेके लिए पुष्करसमुद्र तीसरा है, इसलिए तीनमेंसे एक कम करके शेष बचे दोका विरलनकर एक एक रूपके प्रति सोलह देकर परस्परमें गुणा करने पर दो सौ छप्पन होते हैं । उन्हें दुगुणा करके पृथक् स्थापित कर पुनः पहिलेके विरलनको ही विरलित कर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर और परस्परमें गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे उसीकी दूनी राशिमेंसे घटाने पर पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं होती हैं ।

उदाहरण—पुष्करसमुद्रकी क्रमशलाका ३.

　　　　१६ × १६
३ − १ = २;　　१　१ = २५६;　२५६ × २ = ५१२.
　　　　४ × ४
विरलनराशि २;　१　१ = १६; ५१२ − १६ = ४९६ पुष्करसमुद्रकी गुणकारशलाका.

इन गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करने पर पुष्करसमुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । पुनः चौथा समुद्र लवणसमुद्रको देखते हुए आठ हजार एक सौ अट्ठाईस गुणा है । इस गुणकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

चारमेंसे एक कम करके शेषको विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर परस्पर गुणा करनेपर चार हजार छयानवे होते हैं । उन्हें दुगुणाकर पृथक् स्थापनकर पहलेकी विरलनराशिको विरलित कर रूपके प्रति चार देकर परस्पर गुणा करनेपर

गुणे कदे चउसट्ठी उप्पज्जदि । पुणो पुव्विल्लदुगुणिदरासिम्हि एदमवणिदे चउत्थसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति । एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे चउत्थसमुद्दखेत्तफलं होदि । एवमणेण बीजपदेण सव्वसमुद्दाणं खेत्तफलमाणेदव्वं ।

तत्थ सव्वपच्छिमस्स सयंभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफलाणयणं भण्णदे– दीव-सागररूवाणि अद्धिदे समुद्दसंखा होदि । ताओ समुद्दसलागाओ रूवूणाओ करिय विरलिय रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे जोयणलक्खवग्गेण छत्तीससदरूवाहियतिसहस्सपदुप्पण्णेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो एदं दुगुणिय पुध ट्ठविय पुव्विल्लविरलणं विरलिय रूवं पडि चत्तारि दादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे छप्पण्णजोयणलक्खाए सेढिं खंडेदूण एगखंडमागच्छदि । तं पुव्विल्लदुगुणिदरासिम्हि अवणिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स गुणगारसलागा होंति । एदाहि लवणसमुद्दखेत्तफले गुणिदे

....

चौंसठ संख्या उत्पन्न होती है । पुनः पहलेकी दुगुणित राशिमेंसे इस राशिको कमा देनेपर चौथे समुद्रकी गुणकारशलाकाएं हो जाती हैं ।

उदाहरण—चतुर्थसमुद्रकी क्रमशलाका ४;

$$४ - १ = ३; \quad \frac{१६}{१} \times \frac{१६}{१} \times \frac{१६}{१} = ४०९६; \; ४०९६ \times २ = ८१९२;$$

$$\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४; \quad ८१९२ - ६४ = ८१२८$$ चतुर्थ समुद्रकी गुणकारशलाका.

इन गुणकारशलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणा करनेपर चौथे समुद्रका क्षेत्रफल हो जाता है । इस प्रकार इस उक्त बीजपदसे सभी समुद्रोंका क्षेत्रफल निकालना चाहिए ।

उनमें सबसे अन्तिम जो स्वयम्भूरमणसमुद्र है, उसके क्षेत्रफलको निकालनेका विधान कहते हैं—सर्वद्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है, उसे आधा करने पर सर्व समुद्रोंकी संख्या हो जाती है । उन समुद्रशलाकाओंको एक कम करके विरलनकर और प्रत्येक रूपके प्रति सोलह देकर आपसमें गुणा करने पर तीन हजार एक सौ छत्तीससे गुणित एक लाख योजनके वर्गसे जगप्रतरमें भाग देने पर एक भाग आता है । पुनः इसे दूना करके पृथक् स्थापित कर पहलेके विरलनको विरलितकर प्रत्येक रूपके प्रति चार देकर आपसमें गुणा करने पर छप्पन लाख योजनके प्रमाणसे जगश्रेणीको खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है । उसे पहले दूनी की गई राशिमेंसे घटा देनेपर स्वयंभूरमणसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं हो जाती हैं ।

सयंभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफलं जगपदरस्स बासीदिभागो सादिरेगो होदि[1]। एत्थ करणगाहा—

सोलह सोलसहिं गुणे रूवूणोवहिसलागसंखा त्ति ।
दुगुणम्हि तम्हि सोहे चउक्कपहदं चउक्कं तु ॥ ६ ॥

संपदि सव्वसमुद्दाणं खेत्तफलसंकलणा वुच्चदे—लवणसमुद्दस्स एगा गुणगारसलागा, कालोदयसमुद्दस्स अट्ठावीस। एदेसिं संकलणमाणिज्जमाणे 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण आणेदव्वं। एगमादिं कादूण सोलसगुणकमेण गदा त्ति

इन शलाकाओंसे लवणसमुद्रके क्षेत्रफलको गुणित करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल जगप्रतरका साधिक व्यासीवां भाग आता है। इस विषयमें करणगाथा इसप्रकार है—

विवक्षित समुद्रकी क्रमशलाकाकी संख्यामेंसे एक कम करके शेष संख्याके प्रमाण सोलहको सोलहसे गुणाकर उपलब्ध राशिको दूना कर दे और विरलन राशिप्रमाण चारको चारसे गुणाकर लब्धको उस द्विगुणित राशिमेंसे घटा देनेपर विवक्षित समुद्रकी गुणकारशलाकाएं आ जाती हैं ॥ ६ ॥

उदाहरण—सर्वद्वीप-समुद्रोंकी संख्या = २अ; सर्वसमुद्रोंकी संख्या $\frac{२अ}{२}$ = अ

$$१६^{अ} - १ = \frac{र७^{२}\ (जगप्रतर)}{१००००००^{२} \times ३१३६} = व;\ व \times २ = २\ व;$$

$$४^{अ} - १ = \frac{र७}{५६००००००} = स;$$ २ व − स = स्वयंभूरमणसमुद्रकी गुणकारशलाका

(२व − स) × ल. का क्षेत्रफल = स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = $\frac{र७^{२}}{८२}$

अब सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं—लवणसमुद्रकी गुणकारशलाका एक है, कालोदकसमुद्रकी गुणकारशलाकाएं अट्ठाईस हैं। इनका संकलन लानेके लिए उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे 'एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे और पुनः एक कम गुणकारशलाकाका भाग देनेसे इच्छित राशि उत्पन्न हो जाती है' इस आर्याखंडसे इच्छित संकलन ले आना चाहिए। चूंकि एकको आदि लेकर सोलह गुणितक्रमसे राशि बढ़ी है, इसलिए दो

---

१ सयंभुरमणसमुद्दस्स खेत्तफलं जगसेढीए वग्गं णवरूवेहिं गुणिय सत्तसदचउसीदिरूवेहिं भजिदमेत्तं पुणो एक्कलक्खं बारससहस्सपंचसयजोयणेहिं गुणिदरज्जूए अब्भहियं होदि। ति. प. पत्र १७१.

कट्टु दो रूवे ठविय[1] अद्धिय पुध ठविय उवरि एगरूवं दादव्वं। पुणो तं सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वग्गणं' एदेण अज्जाखंडेण लद्धविसदछप्पण्णेसु रूवूणेसु आदि-संगुणेसु रूवूणगुणगारेण भजिदेसु जं लद्धं तं दुगुणिय पंच अवणिदे पक्खे सलागसंकलणा होदि। कधं पंच समुप्पण्णा ? पुव्वपक्खित्तएगादिचदुगुणकमेण गदरासिं मेलाविदे अवणयणरासी आगच्छदि। एदाहि पुव्वुत्तसंकलणसलागाहि लवणसमुद्दखेत्तफलं गुणिदे लवण-कालोदयसमुद्दाणं खेत्तफलं होदि। तिण्हं समुद्दाणं खेत्तफलसंकलणा वुच्चदे— तिसु रूवेसु एगरूवमवणिय पुध ट्ठविय सेसमद्धिय रूवस्सुवरि वग्गणं ठविय तस्सुवरि रूवं ठविय हेट्ठिम उवरिमरूवाणि सोलसेहि गुणिय 'रूपेषु गुणमर्थेषु वग्गणं' एदेण अज्जा-

रूपोंको स्थापितकर आधा करके पृथक् स्थापितकर ऊपर एक रूप दे देना चाहिए। पुनः उसे सोलहसे गुणितकर 'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' इस आर्याखंडसे प्राप्त दोसौ छप्पन रूपोंमेंसे एक कम कर आदिसे संगुणित करनेपर तथा एक कम गुणकारसे भाग देनेपर जो राशि लब्ध हो उसे दुगुनाकर उसमेंसे पांच घटा देनेपर एक पक्षमें अर्थात् केवल समुद्रोंसम्बन्धी शलाकाओंकी संकलना हो जाती है।

उदाहरण—लवणोदक और कालोदककी गुणकारशलाकाओंका संकलन—

कालोदककी शलाका २; १×१६; १×१६; $१६ \times १६ = २५६$;

$$\left(\frac{२५६ - १}{१६ - १}\right) = \frac{२५५}{१५} = १७;\quad १७ \times २ = ३४;\quad ३४ - ५ = २९$$

शंका—यहांपर पांच कैसे उत्पन्न हुए ?

समाधान—पूर्वोक्त एकको आदि लेकर चतुर्गुणितक्रमसे वृद्धिंगत राशिको मिला देनेपर अपनयनराशि आ जाती है।

उदाहरण-पांचकी उत्पत्ति-$१+४=५$ अपनयनराशि (दो समुद्रोंकी अपनयनशलाका)।

इन पूर्वोक्त संकलनशलाकाओंसे लवणसमुद्रसम्बन्धी क्षेत्रफलको गुणित करने पर लवणसमुद्र और कालोदकसमुद्र, इन दोनोंका क्षेत्रफल हो जाता है।

उदाहरण—लवणसमुद्रका क्षेत्रफल- ७९०५६९४१५०×२४;

लवणोदक और कालोदककी संकलित गुणकारशलाका २९;

$७९०५६९४१५० \times २४ \times २९$ लवणोदक और कालोदकका संकलित क्षेत्रफल.

अब तीन समुद्रोंके क्षेत्रफलका संकलन कहते हैं— तीन रूपोंमेंसे एक रूपको घटाकर उसे पृथक् स्थापित करे। पुनः शेषको आधा कर रूपके ऊपर वर्गणराशिको स्थापित-कर और उसके ऊपर रूपको स्थापितकर अधस्तन और उपरिम रूपोंको सोलहसे गुणाकर

१ प्रतिषु 'विय' इति पाठः। २ प्रतिषु 'सुण्णं' इति पाठः।

खंडेण लद्धा चारि सहस्सा छण्णउदी । 'रूपोनमादिसंगुणमेकोनगुणोन्मथितमिच्छा' एदेण अज्जाखंडेण लद्धाणि बे सदाणि तेहत्तराणि, एदाणि दुगुणिय एक्कावीसमवणिदे गुणगारसलागासंकलणा होदि । कधमेक्कवीसस्स उप्पत्ती ? एगरूवं विरलिय चत्तारि दादूण अण्णोण्णब्भत्थं करिय पंचहि गुणिय एगादिचदुग्गुणसंकलणं पक्खित्ते अवणयणसलागपमाणं एक्कावीसं होदि । एत्थ करणगाहा—

इट्ठसलागाखुत्तो चत्तारि परोप्परेण संगुणिय ।
पंचगुणे खित्तव्वा एगादिचदुगुणा संकलणा ॥ ७ ॥

एत्थ सव्वत्थ दुरूवूणगच्छं विरलेदव्वं ५ । २१ । ८५ । ३४१ । १३६५ । ५४६१ । एदाओ अवणयणधुवरासीओ अणंतरहेट्ठिमं चदुहि गुणिय रूवं पक्खित्ते उप्पज्जंति जाव

'रूपोंमें गुणा और अर्थोंमें वर्गणा' इस आर्याखंडसे चार हजार छ्यानवै (४०९६) संख्या प्राप्त होती है । पुनः उक्त प्रकारसे प्राप्त शलाकाओंमेंसे 'एक कम करके शेषको आदिसे गुणा करे, पुनः एक कम गुणकारशलाकाका भाग दे, तो इष्टराशि उत्पन्न हो जाती है' इस आर्याखंडके अनुसार दो सौ तेहत्तर (२७३) संख्या प्राप्त होती है । इस संख्याको दूनाकर उसमेंसे इक्कीस घटा देनेपर गुणकारशलाकाओंका संकलन हो जाता है ।

उदाहरण—प्रथम तीन समुद्रोंका संकलन— शलाका ३;

१ × १६
१ × १६   १६ × १६ × १६ = ४०९६;
१ × १६;

$\frac{४०९६ - १}{१६ - १} = \frac{४०९५}{१५} = २७३;$ २७३ × २ = ५४६;   ५४६ − २१ = ५२५ तीन समुद्रोंकी संकलित गुणकारशलाका ।

शंका—यहांपर घटाई जानेवाली इक्कीस संख्याकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

समाधान— एकरूपको विरलित कर उसके ऊपर चारको देयरूपसे देकर अन्योन्याभ्यास करके उसे पांचसे गुणाकर एक आदि चतुर्गुणसंकलनको प्रक्षेप करने पर अपनयनशलाकाका प्रमाण इक्कीस हो जाता है ।

उदाहरण—२१ की उत्पत्ति—३ − २ = १; $\overset{४}{१}$ = ४; ४ × ५ = २०; २० + १ = २१ तीन समुद्रोंकी अपनयनशलाका.

इस विषयमें यह करणगाथा है—

इष्ट शलाकाराशिका जो प्रमाण हो उतने वार चारको रखकर परस्परमें गुणा करे, पुनः उसे पांचसे गुणा करे और फिर एक आदि चतुर्गुणसंकलनराशिको प्रक्षेप करना चाहिए । ऐसा करनेपर अपनयनराशिका प्रमाण आ जाता है ॥ ७ ॥

यहांपर सर्वत्र दो रूप कम गच्छराशिका विरलन करना चाहिए । ५, २१, ८५, ३४१, १३६५, ५४६१, ये घटाई जाने वाली ध्रुवराशियां अनन्तर अधस्तन राशिको चारसे गुणाकर

सयंभुरमणसमुद्दो त्ति । संपदि सयंभुरमणसमुद्दविरहिदसव्वसमुद्दखेत्तफलाणयणविधाणं वुच्चदे– दीव-सायररूवाणं अद्धं रूवूणं विरलिय रूवं पडि वेण्णि दादूण अण्णोण्णब्भासे कदे चोद्दसगुणिदजोयणलक्खमूलेण खंडिदसेढीए वग्गमूलस्स अद्धमागच्छदि । अध पुव्वविरलणाए रूवं पडि जदि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णब्भासो कीरदे, तो चोद्दस-गुणजोयणलक्खेण खंडिदे सेढीए चदुभागो आगच्छदि । अध रूवं पडि सोलस दादूण अण्णोण्णब्भासो कीरदि, तो जोयणलक्खवग्गेण तिसहस्सछत्तीससदरूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तं रूवूणं करिय एगेण आदिणा गुणिय पण्णारस-

---

और उनमें एक प्रक्षेप करनेपर उत्पन्न होती हैं, और इसी क्रमसे स्वयम्भूरमणसमुद्र तक उत्पन्न होती हुई चली जाती हैं।

उदाहरण—(१) ४ - २ = २; $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = १६$; $१६ \times ५ + ५ = ८५$ चार स.

(२) ५ - २ = ३; $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = ६४$; $६४ \times ५ + २१ = ३४१$ पांच स.

(३) ६ - २ = ४; $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = २५६$; $२५६ \times ५ + ८५ = १३६५$ छह स.

(४) ७ - २ = ५; $\frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} \times \frac{४}{१} = १०२४$; $१०२४ \times ५ + ३४१ = ५४६१$ सात स. इत्यादि.

अब स्वयम्भूरमणसमुद्रको छोड़कर शेष सर्व समुद्रोंके क्षेत्रफल निकालनेका विधान कहते हैं— द्वीप और समुद्रोंकी जितनी संख्या है उसे आधाकर उसमेंसे एक घटावे। पुनः शेष राशिका विरलनकर प्रत्येक रूपके प्रति देयरूपसे दो को देकर परस्पर गुणा करनेपर चतुर्दश-गुणित लक्ष योजनके वर्गमूलसे खंडित जगश्रेणीके वर्गमूलका आधा प्रमाण आता है। अब यदि पूर्व विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति चार रूपोंको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है, तो चतुर्दश-गुणित लक्ष योजनसे खंडित जगश्रेणीका चौथा भाग आता है। और यदि उसी विरलनराशिमें प्रत्येक रूपके प्रति सोलहको देयरूपसे देकर परस्पर गुणा किया जाता है तो तीन हजार एक सौ छत्तीस (३१३६) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है।

उदाहरण—(१) $\frac{२अ}{२} = अ$; $२^{अ-१} = \dfrac{\frac{\sqrt{र७}}{२}}{\sqrt{१४०००००} \text{ यो.}}$

(२) $४^{अ-१} = \dfrac{\frac{र७}{४}}{१४००००० \text{ यो.}}$

(३) $१६^{अ-१} = \dfrac{र७^{२}}{१०००००^{२} \times ३१३६}$

रूवेहि भागे हिदे जोयणलक्खवग्गेण चालीसाहियसत्तेतालसहस्सरूवगुणिदेण जगपदरम्हि भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । एदं दुगुणिय सेढिअसंखेज्जदिभागमेत्तमवणयणरासिं पुव्विल्लकरणगाहाए आणिदमवणिय लवणसमुद्दखेत्तफलेण गुणिदे सयंभूरमणविरहिद-समुद्दाणं खेत्तफलं होदि । तं केत्तियमिदि भणिदे एगूणचालीसाहियबारससदरूवेहि जग-पदरम्हि भागे हिदे एगभागपमाणं होदि । तत्थ मूलिल्लदोसमुद्दखेत्तफलं संखेज्ज-जोयणपदरमेत्तमवणिय रज्जुपदरम्हि अवणिदे एक्कवंचासरूवेहि सादिरेगेहि जगपदरम्हि खंडिदे एगखंडो आगच्छदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-

---

पुनः उसे, अर्थात् १६ के गुणितक्रमसे उपलब्ध राशिको, एक कम करके आदि स्थानवर्ती एकसे गुणितकर, पन्द्रह रूपोंसे भाग देनेपर चालीस अधिक सैंतालीस हजार अर्थात् सैंतालीस हजार चालीस (४७०४०) रूपोंसे गुणित लक्ष योजनके वर्गसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है।

$$\text{उदाहरण—}\frac{\text{१}\left(\frac{\text{र७}^{\text{१}}}{\text{१००००० }^{\text{१}}\times\text{३१३६}}-\text{१}\right)}{\text{१६}-\text{१}}=\frac{\text{र७}^{\text{१}}}{\text{१०००००}^{\text{१}}\times\text{४७०४०}}$$

इस प्रमाणको दुगुणाकर उसमेंसे पूर्वोक्त करणगाथासे निकाली हुई जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण अपनयनराशिको घटाकर लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे गुणा करनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल हो जाता है। वह क्षेत्रफल कितना होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि वह उनतालीस अधिक बारह सौ अर्थात् बारहसौ उनतालीस (१२३९) रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग प्रमाण होता है।

$$\text{उदाहरण—}\left\{\text{२}\left(\frac{\text{र७}^{\text{२}}}{\text{१०००००}^{\text{२}}\times\text{४७०४०}}\right)-\frac{\text{र७}}{\text{अ}}\right\}\times\text{ल}=\frac{\text{र७}^{\text{१}}}{\text{१२३९}}$$ स्वयम्भूरमणको छोड़ शेष समुद्रोंका क्षेत्रफल.

(इसी प्रमाणको उत्पन्न करनेकी प्रक्रियाके विस्तारके लिये देखो गोम्मटसार जीवकांड सं. टीका व हिन्दी अनुवाद गाथा ५४७, पृ. ९६४ आदि.)

स्वयम्भूरमणसमुद्रसे रहित शेष समुद्रोंके उक्त क्षेत्रफलमेंसे मूल अर्थात् आदिके लवणोदधि और कालोदधि इन दो समुद्रोंके प्रतरात्मक संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रफलको घटाकर पुनः शेष राशिको प्रतरात्मक राजुके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर साधिक इकावन रूपोंसे जगप्रतरके खंडित करनेपर एक खंड आ जाता है।

$$\text{उदाहरण—}\text{र}^{\text{१}}-\left(\frac{\text{र७}^{\text{१}}}{\text{१२३९}}-\text{२९ ल}\right)=\frac{\text{र७}^{\text{२}}}{\text{५१}}\text{ (कुछ अधिक)}$$ तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग तिर्यंच सासादन जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र.

भागमेत्तं तिरिक्खसासणसत्थाणखेत्तं होदि । सेसपदसासणसम्मादिट्ठीहि सव्वे दीव-समुद्दा पुव्ववेरियदेवसंबंधेण पुसिज्जंति त्ति कट्टु जोयणलक्खबाहल्लं तप्पाओग्गबाहल्लं वा रज्जु-पदरमुड्ढमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ट्ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । 'वा' सद्दस्स अत्थो गदो ।

मारणंतियसमुग्घादगदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । तिरिक्खसासणा मेरुमूलादो हेट्ठा किण्ण मारणंतियं करेंति त्ति वुत्ते णेरइएसु किण्ण उप्पज्जंति ? सभावदो । जदि एवं, तो हेट्ठा सभावदो चेव मारणंतियं ण मेलंति त्ति किण्ण घेप्पदे ? जदि सासण-सम्मादिट्ठिणो हेट्ठा ण मारणंतियं मेलंति, तो तेसिं भवणवासियदेवेसु मेरुतलादो हेट्ठा ट्ठिदेसु उप्पत्ती ण पावदि त्ति वुत्ते ण एस दोसो, मेरुतलादो हेट्ठा सासणसम्मादिट्ठीणं मारणंतियं णत्थि त्ति एदं सामण्णवयणं । विसेसदो पुण भण्णमाणे णेरइएसु हेट्ठिम-

....

उक्त एक खंडको तिर्यंचोंके अवगाहनासम्बन्धी संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है । चूंकि, विहारवत्स्वस्थानादि शेष पदस्थित तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा समस्त द्वीप और समुद्र पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे स्पर्श किये गये हैं, इसलिए लक्ष योजन बाहल्यवाले अथवा तत्प्रायोग्य बाहल्यवाले राजुप्रतरके ऊपरकी ओरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है । इसप्रकारसे यह सूत्रपठित 'वा' शब्दका अर्थ हुआ ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे मारणा-न्तिकसमुद्घात क्यों नहीं करते हैं ?

प्रतिशंका—यदि ऐसी शंका करते हैं, तो आप ही बताइए कि तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टि जीव नारकियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—वे नारकियोंमें स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं होते हैं ।

प्रतिसमाधान— यदि ऐसा है तो सुमेरुपर्वतके मूलभागसे नीचे भी वे स्वभावसे मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते हैं ?

शंका—यदि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुतलसे नीचे मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं तो मेरुतलसे नीचे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पत्ति भी नहीं प्राप्त होती है ?

समाधान—उक्त शंकापर धवलाकार उत्तर देते हैं कि, यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मेरुतलसे नीचे सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका मारणान्तिकसमुद्घात नहीं होता है' यह सामान्य अर्थात् द्रव्यार्थिकनयका वचन है । किन्तु विशेष अर्थात् पर्यायार्थिकनयकी

एइंदिएसु वा ण मारणंतियं मेलंति त्ति एस परमत्थो। कधमेत्थ देसूणत्तं? ण ताव हेट्ठिम-जोयणसहस्सेण ऊणा सत्त चोद्दसभागा, तिरिक्खसासणेहि भवणवासिएसु मारणंतियं मेल्लमाणेहि तस्स वि छुवणसंभवोवलंभादो। मेरुमूलादो हेट्ठा देसूणजोयणलक्खं फुसंताणं सासादणाणं सत्त-चोद्दसभागेहि सादिरेगेहि होदव्वमिदि? ण एस दोसो, छमग्गं पयट्टेहि पडिणियदउप्पत्तिट्ठाणेहि तसजीवेहि णिरंतरं ण सत्त रज्जू फुसिज्जंति, तधा संभवासंभवा। सो वि कधं णव्वदे? देसूणवयणण्णहाणुववत्तीदो। उववादस्स एक्कारह चोद्दसभागा पोसिदा त्ति वत्तव्वं। सुत्ते अउत्तं कधमेदं णव्वदे? कम्मइयकायजोगिसासणाणमेक्कारह-चोद्दस-

....

विवक्षासे कथन करने पर तो वे नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रियजीवोंमें मारणान्तिकसमुद्धात नहीं करते हैं, यही परमार्थ है।

शंका—यहांपर अर्थात् मारणान्तिकसमुद्धातगत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रमें देशोनता अर्थात् कुछ कम सात बटे चौदह भागका कथन कैसे किया, क्योंकि, मेरुतलके अधोभागवर्ती एक हजार योजनसे कम सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग तो माने नहीं जा सकते। इसका कारण यह है कि भवनवासियोंमें मारणान्तिकसमुद्धातको करनेवाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा उसके भी छुए जानेकी संभावना पाई जाती है। इसलिए मेरु-तलसे नीचे कुछ कम एक लक्ष योजन प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करनेवाले तिर्यंच सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र साधिक सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग होना चाहिए, न कि देशोन सात बटे चौदह भाग?

समाधान—यह कोई दोष नहीं। इसका कारण यह है कि छहों मार्गोंको प्रवृत्त, अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधोदिशा सम्बन्धी छहों मार्गोंसे जानेवाले, एवं प्रतिनियत उत्पत्ति स्थानवाले त्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु स्पर्श नहीं किये जाते हैं, क्योंकि, उस प्रकारकी संभावनाका अभाव है।

शंका—यह भी कैसे जाना?

समाधान—'देशोन' वचनकी अन्यथा अनुपपत्तिसे। अर्थात् यदि मारणान्तिक-समुद्धात करनेवाले त्रसजीवोंके द्वारा निरन्तर सात राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया जाता, तो सूत्रमें 'देशोन' यह वचन नहीं दिया जाता। इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि मारणान्तिकसमुद्धात करनेवाले त्रसजीवोंके द्वारा सात राजुके स्पर्श किये जानेकी निरन्तर संभावना नहीं है।

उपपादपदको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए।

शंका—सूत्रमें नहीं कही गई यह बात कैसे जानी जाती है?

भागपोसणपरूवयसुत्तादो, खुद्दाबंधम्मि उववादपरिणयसासणाणमेक्कारह-चोद्दसभाग-पोसणपरूवयसुत्तादो च णव्वदे । एत्थ महंते उववादपोसणखेत्ते संते मारणंतियफोसणमेव किमट्ठं परूविदं ? ण[2], एत्थ उववादविवक्खाए अभावादो । तदविवक्खा किण्णिबंधणा[3], सासणाणमेइंदिएसु अणुप्पज्जमाणाणं तत्थ मारणंतियविहाणणिबंधणा । तेण उववादस्स एक्कारह चोद्दसभागा फोसणमुवलब्भदे ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[4] ॥ २६ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणकाले सव्वपदपरूवणाए खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदट्ठिदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं

समाधान—कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक आगे कहे जानेवाले इसी स्पर्शनप्ररूपणाके सूत्रसे, तथा खुद्दाबंधमें कहे गये उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शन करनेकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि उपपादपदको प्राप्त तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंने ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ।

शंका—उक्त प्रकारसे इतना अधिक उपपादपदका स्पर्शनक्षेत्र होते हुए भी यहां पर मारणान्तिक स्पर्शनक्षेत्र ही किसलिये प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है ।

शंका—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका क्या कारण है ?

समाधान—उपपादपदकी विवक्षा न होनेका कारण एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उनमें मारणान्तिकसमुद्घातका विधान है । अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं, फिर भी वे उनमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं । इसलिए यहां पर उपपादकी विवक्षा नहीं की गई, और इसीलिए उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र प्राप्त हो जाता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालमें स्वस्थानादि सर्व पदसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पांच पदोंवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने भूत और भविष्य इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे

---

१ कम्मइयकायजोगीसु ×× सासणसम्मादिट्ठीहि ×× एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा । जी. फो. ९६-९८.

२ म प्रतौ 'ण' इति पाठो नास्ति ।

३ प्रतिषु 'किण्णबंधणा' इति पाठः ।

४ सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो। एत्थ पज्जवट्ठियपरूवणा सासणपरूवणाए तुल्ला।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २७ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु त्ति महाधिकारो अणुवट्टदे। एदं सुत्तं वट्टमाणकाल-विसिट्ठअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदखेत्तं जदो परूवेदि, तदो एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणपदे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो। एदे असंजदसम्मादिट्ठिणो सत्थाणपदे सव्वदीवेसु होंति, लवण-कालोदय-सयंभूरमणसमुद्देसु च। तम्हा सेससमुद्दखेत्तूणरज्जुपदरं एत्थ सत्थाणखेत्तं होदि। एदस्साणयणविधाणं पुव्वं व कादव्वं। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेसु वट्टंता अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

....

असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर पर्यायार्थिकनयकी स्पर्शनप्ररूपणा सासादन-गुणस्थानकी स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य जानना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २७ ॥

'तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें' इस महाधिकारकी यहांपर अनुवृत्ति होती है। चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालविशिष्ट असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके स्पर्शनक्षेत्रका प्ररूपण करता है, इसलिए इसकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान ही है।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २८ ॥

स्वस्थानपदपर वर्तमान असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है। ये असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच स्वस्थानस्वस्थानपदपर सर्व द्वीपोंमें होते हैं, तथा लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयम्भूरमणसमुद्रमें भी होते हैं। इसलिए शेष समुद्रोंके क्षेत्रसे हीन राजुप्रतर यहांपर स्वस्थानक्षेत्र होता है। इसके निकालनेका विधान पूर्वके समान ही करना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन

....

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

भागं, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं फुसंति। कुदो? पुव्व-वेरियदेवपयोगदो जोयणलक्खबाहल्लं संखेज्जजोयणबाहल्लं वा रज्जुपदरं सव्वमदीदकाले फुसंति त्ति। मारणंतियपदे वट्टमाणेहि छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। कुदो? अच्चुद-कप्पादो उवरि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो तत्थ गमणाभावा। ण च उप्पत्तिखेत्तमुल्लंघिय गमणं संभवदि, अइप्पसंगा। उवरि णवगेवज्जेसु मिच्छादिट्ठिणो जदि उप्पज्जंति, तो असंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उप्पत्ती किमिदि ण होज्ज? मिच्छादिट्ठिणो दव्व-लिंगेण उप्पज्जंति चे, एदे वि दव्वलिंगेण चेव उप्पज्जंतु, ण कोवि दोसो। उप्पज्जंतु चे, ण, खेत्तस्स देसूणसत्त-चोद्दसभागत्तप्पसंगादो? ण एस दोसो, जदि वि णवगेवज्जेसु दव्वलिंगिणो असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा च उप्पज्जंति[2], तो वि सत्त चोद्दसभागा ण होंति, माणुसखेत्तादो चेव तत्थुप्पत्तीदो। उववादगदेहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणम-

---

लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके प्रयोगसे एक लाख योजन बाहल्यवाला अथवा संख्यात योजन बाहल्यवाला राजुप्रतररूप सर्वक्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातपद्पर वर्तमान जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग ($\frac{6}{14}$) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर उनकी उत्पत्तिका अभाव होनेसे वहांपर गमनका अभाव है। और, उत्पत्तिक्षेत्रको उल्लंघन करके गमन संभव नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त हो जायगा।

शंका—अच्युतकल्पसे ऊपर यदि नवग्रैवेयकोंमें मिथ्यादृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं, तो असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंकी उत्पत्ति क्यों नहीं होना चाहिए? यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्यलिंगसे उत्पन्न होते हैं, तो ये भी द्रव्यलिंगसे ही उत्पन्न होवें, इसमें कोई दोष नहीं है। यदि कहा जाय कि वे नवग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होवें, सो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, फिर स्पर्शनक्षेत्रके देशोन सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग प्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यद्यपि नवग्रैवेयकोंमें द्रव्यलिंगी मिथ्या-दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव उत्पन्न होते हैं, तो भी सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, उन नवग्रैवेयकोंमें मनुष्यक्षेत्रसे ही उत्पत्ति होती है। अर्थात् उनमें मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच नहीं।

उपपादगत असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यंच जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-

---

१ प्रतिषु 'तस्स' इति पाठः।

२ णरतिरिय देस-अयदा उक्कस्सेणच्चुदो त्ति णिग्गंथा। णर अयद-देस-मिच्छा गेवेज्जंतो त्ति गच्छंति ॥ त्रि. सा. ५४५.

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तं जहा– तिरिक्खेसु तिरिक्ख-देव-णेरइयसम्मादिट्ठिणो ण उप्पज्जंति त्ति। कुदो? सहावादो। मणुसंखइयसम्मादिट्ठिणो चेव उप्पज्जंति, पुव्वं मिच्छत्तसंसिदेहि बद्धतिरिक्खाउअत्तादो। ते वि भोगभूमीसु चेव उप्पज्जंति, दाणादिसयलदसधम्मे विज्जमाणाणुमोदादो। तेण सयंपहपव्वदोवरिमभागो सव्वो चेव उववादपरिणदसम्मादिट्ठीहि पुसज्जदि त्ति तस्साणयण-विधाणं वुच्चदे– सयंपहपव्वदादो परभागो दोहि वि पासेहि रज्जुपंचट्ठभागो रज्जूए तप्पाओग्गा संखेज्जा भागा वा होंति। तेसु रज्जुविक्खंभम्हि फेडिदेसु अवसेसा तिण्णि अट्ठभागा रज्जूए संखेज्जदिभागो वा होदि। एदेण विक्खंभायामेण ट्ठिदसम्मादिट्ठि-उववादखेत्तं—

विक्खंभवग्गदसगुणकरणी वट्टस्स परिट्ठओ होदि।
विक्खंभचउब्भागो परिठ्यगुणिदो हवे गणिदं[1] ॥ ८ ॥

एदीए गाहाए पदरागारेण कदे जगपदरं अट्ठसत्तावण्णभागब्भहियचालीसोत्तर-चदुहि सदेहि खंडिद-एयभागो सादिरेगो आगच्छदि, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि छिण्णेग-

---

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे है— तिर्यंचोंमें तिर्यंच, देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है। केवल क्षायिक-सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, उन्होंने पूर्वमें मिथ्यात्वसे संसिक्त परिणामोंके द्वारा तिर्यंच आयुको बांध लिया है। सो वे भी जीव भोगभूमिके तिर्यंचोंमें ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, सम्यग्दृष्टियोंकी दान आदि समस्त दश धर्मोंमें अनुमोदना विद्यमान रहती ही है। इसलिए स्वयंप्रभ पर्वतका उपरिम सर्व भाग उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीवोंके द्वारा स्पर्श किया गया है, अतः उसके निकालनेके विधानको कहते हैं—

स्वयंप्रभ पर्वतसे परभागवर्ती क्षेत्र दोनों ही पार्श्वोंसे राजुके पांच बटे आठ ($\frac{5}{8}$) भाग अथवा राजुके तत्प्रायोग्य संख्यात बहुभाग प्रमाण होता है। उन भागोंको राजुके विष्कम्भमेंसे घटा देनेपर तीन बटे आठ ($\frac{3}{8}$) भाग अवशेष क्षेत्र अथवा राजुका संख्यातवां भागप्रमाण होता है। इस विष्कम्भ और आयामसे स्थित सम्यग्दृष्टिके उपपादक्षेत्रको—

विष्कम्भका वर्गकर उसे दशसे गुणा करके उसका वर्गमूल निकाले, वही वृत्त अर्थात् गोलाकृति क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण हो जाता है। पुनः विष्कम्भके चतुर्भागसे परिधिको गुणा करनेपर क्षेत्रफल हो जाता है ॥ ८ ॥

इस गाथासूत्रके अनुसार प्रतराकारसे करनेपर आठ बटे सत्तावन भागसे अधिक चार सौ चालीस ($440\frac{57}{8}$) भागोंसे खंडित सातिरेक एक भागप्रमाण जगप्रतर होता है।

---

१ त्रि. सा. ९६.

भागो वा । तं उस्सेधसंखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरिक्खसम्मादिट्ठिउववादखेत्तं होदि । संजदासंजदेहि सत्थाणपदट्ठिएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ सत्थाणखेत्तमाणिज्जमाणे तिरिक्खसम्मादिट्ठि-उववादपदरखेत्तमुस्सेधगुणगारवज्जिदं रज्जुपदरम्हि अवणिदे जगपदरं सादिरेयपंचपंचास-रूवेहि भजिदएगभागो आगच्छदि । तं संखेज्जुस्सेधंगुलेहि गुणिदं संजदासंजदसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिण-देहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइ-

उदाहरण—विष्कम्भ $\frac{३}{८}$, $\sqrt{\frac{३}{८} \times \frac{३}{८} \times \frac{१०}{१} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९}} = \sqrt{\frac{९०}{६४}} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९}$

$= \frac{१९}{१६} \times \frac{३}{३२} \times \frac{१}{४९} = \frac{५७}{२५०८८}$, $\frac{र७^२}{४४० \frac{८}{५७}}$ तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंके उपपादका क्षेत्रफल.

विशेषार्थ—यहां उपलब्ध भागप्रमाणको सातिरेक कहनेका अभिप्राय यह है कि जो $\frac{९०}{६४}$ का वर्गमूल $\frac{१९}{१६}$ ले लिया गया है वह यथार्थ वर्गमूलसे कुछ अधिक हो गया है जिससे भागहार कुछ बढ़ गया है । पहले इसी विष्कम्भको लेकर परिधिके भिन्न प्रमाण द्वारा भिन्न क्षेत्रफल निकाला गया है । (देखो पृ. १६९.)

अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित जगप्रतरका एक भाग आता है । उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादक्षेत्र हो जाता है ।

स्वस्थानस्वस्थानपदस्थित संयतासंयत तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्रको निकालनेपर उत्सेधगुणकारसे रहित तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपाद प्रतरक्षेत्रको राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर साधिक पचपन रूपोंसे भाजित एक भाग जगप्रतर आता है ।

उदाहरण—तिर्यंच सम्यग्दृष्टियोंका उपपादप्रतरक्षेत्र =

$$\frac{र७^२}{४४० \frac{८}{५७}} = \frac{५७ \times ४९}{२५०८८};\quad १ - \frac{५७ \times ४९}{२५०८८} = \frac{४५५}{५१२} = \frac{र७^२}{५५ \frac{९}{६५}}$$

उसे संख्यात उत्सेधांगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यंच संयतासंयतोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है ।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत तिर्यंच संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

ज्जादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले फोसिदो। कुदो? संजदासंजदाणं वेरियदेवसंबंधेण जोयणलक्खबाहल्लं तिरियपदरस्स अदीदकाले पोसो अत्थि त्ति। मारणंतियसमुग्घादगदेहि संजदासंजदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणमच्चुदकप्पो त्ति मारणंतिएण गमणसंभवादो।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २९ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालसंबंधि त्ति एदस्स परूवणाए खेत्तभंगो।

सव्वलोगो वा ॥ ३० ॥

परिसेसादो एदं सुत्तं तीदाणागदकालसंबंधी। एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे- ति-विसेसणविसिट्ठसत्थाणतिरिक्खमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एदं खेत्तमाणेज्जमाणे असंखेज्जेसु समुद्देसु भोगभूमिपडिभागदीवाणमंतरेसु ट्ठिदेसु सत्थाणपदट्ठिदतिविहा तिरिक्खा

....

संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, संयतासंयत तिर्यंचोंका वैरी देवोंके हरणसम्बन्धसे एक लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरका अतीतकालमें स्पर्श किया गया है। मारणान्तिकसमुद्घातगत तिर्यंच संयतासंयतोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच संयतासंयतोंका अच्युतकल्प तक मारणान्तिकसमुद्घातसे गमन संभव है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २९ ॥

यह सूत्र वर्तमानकालसम्बन्धी है, इसलिए इसकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच जीवोंने अतीत और अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३० ॥

पारिशेषन्यायसे यह सूत्र भूत और भविष्यकालसम्बन्धी है। यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं- पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और योनिमती इन तीन विशेषणोंसे विशिष्ट स्वस्थानपदस्थित तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इस क्षेत्रको निकालनेपर असंख्यात समुद्रोंमें और भोगभूमिके प्रतिभागरूप द्वीपोंके अन्तरालोंमें स्थित क्षेत्रोंमें स्वस्थानपदस्थित उक्त तीन प्रकारके तिर्यंच नहीं हैं, इसलिए इस

णत्थि त्ति एदं खेत्तं पुव्वविधाणेणाणिय रज्जुपदरम्हि अवणिय संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठिसत्थाणखेत्तं होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदतिविहमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? मित्तामित्तदेववसेण सव्वदीव-सागरेसु संचरणं पडि विरोहाभावादो। तेणेत्थ संखेज्जंगुलबाहल्लं तिरियपदरमुड्ढमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे पंचिंदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठिविहारवदिसत्थाणादिखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। 'वा' सद्दट्ठो गदो। मारणंतिय-उववादगदपंचिंदियतिरिक्खतिगमिच्छादिट्ठीहि सव्वलोगो फोसिदो। लोगणालीए बाहिं तसकाइयाणमसंभवादो सव्वलोगो त्ति वयणं कधं घडदे? ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादट्ठिदतसजीवे मोत्तूण सेसतसाणं बाहिरे अत्थित्तप्पडिसेहादो[1]।

क्षेत्रको पूर्वविधानसे लाकर और राजुप्रतरमेंसे घटाकर संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और योनिमती इन तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका स्वस्थानक्षेत्र हो जाता है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके मित्र या शत्रुरूप देवोंके वशसे सर्व द्वीप और सर्व समुद्रोंमें संचार (विहार) करनेके प्रति कोई विरोध नहीं है। इसलिए यहांपर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको ऊपरसे उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंसम्बन्धी विहारवत्स्वस्थान आदिका क्षेत्र हो जाता है, जो कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है। इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदि तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

शंका—लोकनालीके बाहिर त्रसकायिक जीवोंके असंभव होनेसे 'सर्वलोक स्पर्श किया है' यह वचन कैसे घटित होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदस्थित त्रसजीवोंको छोड़कर शेष त्रसजीवोंका त्रसनालीके बाहिर अस्तित्वका प्रतिषेध किया गया है।

---

१ उववाद-मारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा। तसणालिबाहिरम्हि य णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ गो. जी. १९९.

सेसाणं तिरिक्खगदीणं भंगो ॥ ३१ ॥

सेसाणमिदि उत्ते सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदा घेत्तव्वा, अण्णेसिमसंभवादो। एक्किस्से तिरिक्खगदीए तिरिक्खगदीणमिदि बहुत्तणिद्देसो कधं घडदे ? ण एस दोसो, एक्किस्से वि तिरिक्खगदीए गुणट्ठाणादिभेएण बहुत्तविरोहाभावादो। एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं परूवणा वट्टमाणकाले खेत्तसमाणा। अदीदकाले एदेसिं तिरिक्खोघपरूवणाए तुल्ला। णवरि जोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि, एत्तिओ चेव विसेसो।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

वट्टमाणकाले सत्थाण-वेदण-कसायपदे वट्टमाणपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो।

....

शेष तिर्यंचगतिके जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ३१ ॥

'शेष' ऐसा पद कहने पर सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, इनके अतिरिक्त अन्य तिर्यंचोंका ग्रहण करना असंभव है।

शंका—एक ही तिर्यंचगतिके होने पर 'तिरिक्खगदीणं' यह बहुवचनका निर्देश कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, एक तिर्यंचगतिसामान्यके होने पर भी गुणस्थान आदिके भेदसे बहुत्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है।

इन उक्त चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा वर्तमानकालमें क्षेत्रके समान है और इन्हीं चार गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंकी अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा तिर्यंचोंकी ओघ स्पर्शनप्ररूपणाके तुल्य है। किन्तु योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, इतनी मात्र ही विशेषता है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३२ ॥

वर्तमानकालमें स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, और कषायसमुद्घात, इन पदोंपर वर्तमान पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदवाले पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

सव्वलोगो वा ॥ ३३ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेत्ति अणुवट्टदे । एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे– सत्थाण-वेदण-कसायपदगदेहि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? अड्डाइज्जदीव-समुद्देसु कम्मभूमिपडिभागे सयंपहपव्वदपरभागे च तेसिं संभवादो । अदीदकाले सयंपहपव्वदपरभागं सव्वं ते पुसंति त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं होदि । तस्साणयणविधाणं वुच्चदे-–सयंपहपव्वदब्भंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागं रज्जुपदरम्हि अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो होदि । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे[1] तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमंगुलासंखेज्जदिभागोगाहणाणं कधं संखेज्जंगुलुस्सेधो लब्भदे ? ण, मुअपंचिंदियादितसकलेवरेसु अंगुलस्स संखेज्जदिभागमादिं कादूण जाव संखेज्जजोयणाणि त्ति कमवड्डीए ट्ठिदेसु उप्पज्जमाणाणमपज्जत्ताणं संखेज्जंगुलुस्सेधं पडि विरोहाभावादो । अधवा सव्वेसु दीव-समुद्देसु पंचिंदियतिरिक्ख-

पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३३ ॥

इस सूत्रमें 'पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । अब यहांपर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रोंमें, तथा कर्मभूमिके प्रतिभागवाले स्वयंप्रभपर्वतके परभागमें पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका होना सम्भव है । अतीतकालमें स्वयंप्रभपर्वतके सम्पूर्ण परभागको वे जीव स्पर्श करते हैं, इसलिए वह क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र होता है । अब इस क्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं— स्वयंप्रभपर्वतका आभ्यन्तर क्षेत्र जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण है। उसे राजुप्रतरमेंसे घटा देनेपर शेष क्षेत्र जगप्रतरका संख्यातवां भाग होता है । उसे संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

शंका— अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मृत पंचेन्द्रियादि त्रसजीवोंके अंगुलके संख्यातवें भागको आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमवृद्धिसे स्थित शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके संख्यात अंगुल उत्सेधके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

अथवा, सभी द्वीप और समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि,

१ प्रतिषु 'गुणिदेहि' इति पाठः ।

अपज्जत्ता अत्थि । कुदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण एगबंधणबद्धछज्जीवणिकाओगाढ-कम्मभूमिपडिभागुप्पण्णओरालियदेहमच्छादीणं सव्वदीव-समुद्देसु संभवोवलंभादो । महा-मच्छोगाहणम्हि एगबंधणबद्धछज्जीवणिकायाणमत्थित्तं कधं णव्वदे ? वग्गणम्हि उत्त-अप्पाबहुगादो । तं जहा- ' सव्वत्थोवा महामच्छसरीरे पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता तसकाइयजीवा । तेउकाइया जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । पुढविकाइया जीवा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगमेत्तो । तेसिं पडि-भागो वि असंखेज्जलोगमेत्तो । एवं आउकाइया विसेसाहिया । वाउकाइया विसेसाहिया । वणप्फइकाइया अणंतगुणा त्ति ' । ण च सव्वे ते पज्जत्ता चेव, तसअपज्जत्ताणं पि[1] तेउ-काइयाणं च संभवादो । ण च मुदसरीरे चेव पंचिंदियअपज्जत्ताणं संभवो त्ति वोत्तुं जुत्तं, तस्स विधाययसुत्ताभावा । महामच्छादिदेहे तेसिमत्थित्तस्स सूचगं पुण इदमप्पाबहुगसुत्तं होदि । तसपज्जत्तरासीदो तसअपज्जत्तरासी असंखेज्जगुणो । तेण जत्थ तसजीवाणं

पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे एक बंधनमें बद्ध षट्कायिक जीवोंके समूहसे व्याप्त और कर्मभूमिके प्रतिभागमें उत्पन्न हुए औदारिकदेहवाले महामच्छादिकोंकी सर्वद्वीप और समुद्रोंमें संभावना पाई जाती है ।

शंका—महामच्छकी अवगाहनामें एक बन्धनसे बद्ध षट्कायिक जीवोंका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—वर्गणाखंडमें कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे जाना जाता है । वह इस प्रकार है— 'महामत्स्यके शरीरमें सबसे कम जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक जीव होते हैं । उन त्रसकायिक जीवोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं । गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । तेजस्कायिक जीवोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं । कितने प्रमाण विशेषसे अधिक होते हैं ? असंख्यात लोकमात्र विशेषसे अधिक होते हैं । उनका प्रतिभाग भी असंख्यात लोकमात्र होता है । इसी प्रकारसे पृथिवीकायिक जीवोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं । अप्कायिक जीवोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं । '

महामच्छके शरीरमें ऊपर कहे गये ये सब जीव केवल पर्याप्त ही नहीं होते हैं, किन्तु उसके शरीरमें त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीव और तेजस्कायिक जीवोंका भी होना संभव है । तथा मृत शरीरमें ही पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीव संभव हैं ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, इस बातके विधायक सूत्रका अभाव है । किन्तु महामच्छादिके देहमें उनके अस्तित्वका सूचक यही उक्त अल्पबहुत्वसूत्र है । त्रसपर्याप्तराशिसे त्रसअपर्याप्तराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहां पर त्रसजीवोंकी

१ प्रतिषु 'वी हि ' इति पाठः ।

संभवो होदि, तत्थ सव्वत्थ वि पज्जत्तेहिंतो अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा होंति। तम्हा संखेज्जंगुलबाहल्लं तिरियपदरमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तसत्थाण-वेदण-कसायखेत्तं होदि। 'वा' सद्दट्ठो गदो। मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणं पडि विरोहाभावा।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो॥ ३४॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्ताणिओगद्दारे परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे।

सव्वलोगो वा॥ ३५॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दट्ठो उच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो, तीदाणागदकालेसु वेरियदेवसंबंधेण वि माणुसोत्तरसेलादो परदो गमणाभावा। माणुसखेत्तस्स पुण संखेज्जदिभागो

संभावना होती है वहां पर सर्वत्र ही पर्याप्त जीवोंसे अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे होते हैं। अतएव संख्यात अंगुल बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरके उनंचास खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान वेदना और कषायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है। इस प्रकारसे 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनके सर्व लोकमें गमनागमनके प्रति विरोधका अभाव है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है॥ ३४॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः प्ररूपण नहीं किया जाता है।

मिथ्यादृष्टि मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है॥ ३५॥

अब यहांपर पहिले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातसे परिणत उपर्युक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीत और अनागतकालमें वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर शैलसे परे मनुष्योंके गमनका अभाव है। किन्तु मनुष्यक्षेत्रका

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्यैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठीणं आगासगमणादिविसत्तिविरहिदाणं जोयणलक्खबाहल्लेण फासाभावादो। अधवा सव्वपदेहि माणुसलोगो देसूणो पोसिदो, पुव्ववेरियदेवसंबंधेण उड्ढं देसूणजोयण-लक्खुप्पायणसंभवादो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। मारणंतिय-उववादगदेहि सव्वलोगो पोसिदो, सव्वलोगे गमणागमणे विरोहाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं परूविदो।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ३७ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि सासण-सम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो। माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो। अधवा विहारादि-उवरिमपदेहि माणुसखेत्तं देसूणं पोसिदं। केण ऊणं ? चित्त-

---

संख्यातवां भाग स्पर्श किया है, क्योंकि, आकाशगमनादि विशिष्ट शक्तिसे विरहित मिथ्यादृष्टि जीवोंके एक लाख योजनके बाहल्यसे सर्वत्र स्पर्शका अभाव है। अथवा, सर्व पदोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने देशोन मनुष्यलोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके सम्बन्धसे ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उनका जाना आना संभव है। इस प्रकार यह 'वा' शब्दका अर्थ समाप्त हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, इन दोनों पदोंकी अपेक्षा सर्वलोकके भीतर जाने आनेमें कोई विरोध नहीं है।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है।

मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ३७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, तथा मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। अथवा, विहारवत्स्वस्थानादि ऊपरके पदोंकी अपेक्षा देशोन मनुष्यक्षेत्रको स्पर्श किया है।

शंका—यहां देशोन पदसे कितना कम क्षेत्र विवक्षित है ?

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः सप्त चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

कुलसेल-मेरुपव्वद-जोइसावासादिणा। माणुसेहि अगम्मपदेसस्स तस्स कधं माणुसखेत्त-ववएसो ? ण, लद्धिसंपण्णमुणीणमगम्मपदेसाभावा। मारणंतियसमुग्घादगदेहि सत्त चोद्दस-भागा देसूणा पोसिदा। किं कारणं ? सासणाणं मारणंतिएण भवणवासियलोगादो हेट्ठा गमणाभावादो, उवरि सव्वत्थ मारणंतिएण गमणसंभवादो। उववादगदेहि तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो पोसिदो; तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो। ण ताव णेरइय-सासणाणं मणुसेसुप्पज्जमाणाणं पोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, दुक्खंभ-दुबाहुखेत्तफलस्स णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिमारणंतियखेत्तफलस्सेव तिरियलोगासंखेज्जदि-भागत्तुवलंभादो। णादीदकाले अट्ठरज्जुमाऊरिय ट्ठिददेवसासणाणं मणुस्सेसुप्पज्जमाणाण-मुववादपोसणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, छक्कावक्कमणियमबलेण पणदालीस-

समाधान—चित्रापृथिवी, कुलाचल, मेरुपर्वत और ज्योतिष्क आवास आदिसे हीन प्रदेश विवक्षित है।

शंका—मनुष्योंसे अगम्य प्रदेशवाले इस कुलाचल आदिके क्षेत्रको 'मनुष्यक्षेत्र' यह संज्ञा कैसे प्राप्त है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, लब्धिसम्पन्न मुनियोंके लिए (मनुष्यलोकके भीतर) अगम्य प्रदेशका अभाव है।

मारणान्तिकसमुद्घातगत सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंका मारणान्तिक-समुद्घातके द्वारा भवनवासियोंके निवासलोकसे नीचे गमन नहीं होता है। किन्तु ऊपर सर्वत्र मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन संभव है। उपपादगत उक्त तीनों प्रकारके सासादन-सम्यग्दृष्टि मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका—मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं होता, क्योंकि, (असंख्यात योजन विस्तृत श्रेणीबद्धादि बिलोंके) अपने दोनों ओरके दंडाकार व भुजाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल[1], नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि-योंके मारणान्तिकक्षेत्रफलके समान, तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। और न अतीतकालमें ही आठ राजुप्रमाण क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित और मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां

१ 'दुक्खंभदुबाहुखेत्तफलस्स' इस पदका अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं हुआ। प्रायः यही पद पहले भी आ चुका है। (देखो पृ. १८७.) इस पदकी यथाशक्य सार्थकता निकालकर अर्थ कर दिया गया है। संभव है ये उक्त नरकके बड़े से बड़े बिलोंके नाम हों। त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें बिलोंके नाम इस प्रकारके मिलते हैं, किन्तु ये नाम हमें अभी तक नहीं मिले।

जोयणलक्खविक्खंभ-अट्ठरज्जुस्सेहचदुपाणालीसु मणुअलोगमागच्छंताणमुववादखेत्तफलस्स तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तुवलंभादो। ण तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेसुप्पज्जमाणसासणाणमुववादखेत्तं पि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि, तत्थ वि चदुहि चेव पंथेहि आगमणदंसणादो त्ति? एत्थ परिहारो उच्चदे– ण ताव णेरइयसासणे अस्सिदूण उत्तदोसो, तण्णिबंधणुववादफोसणबलेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्ताणब्भुवगमादो। ण देवसासणे अस्सिदूण उत्तदोसो वि, अट्ठरज्जुस्सेहलोगणालीए समचउरस्साए अंतोट्ठिददेवसासणाणं हेट्ठिम-उवरिमाणं च कंडुज्जुवाए गईए चढणोयरणवावारेण मणुवलोगपणिधिमागंतूण एग-दोविग्गहं करिय मणुसेसुप्पज्जमाणाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तफोसणस्सुवलंभादो। तिरिच्छं गंतूण विग्गहं करिय देवसासणा मणुसेसु किण्ण उप्पज्जंति? मणुसगइविरहियदिसाए सहावदो चेव तेसिं गमणाभावादो। ण च मणुसगइसंमुहमागंतूण विग्गहं करिय मणुस्सेसुप्पण्णाणं खेत्तं बहुअमुवलब्भइ, तक्खेत्तस्स तिरियलोयस्स संखे-

....

भाग होता है, क्योंकि, भवान्तरमें संक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे, इसप्रकार छह दिशाओंमें गमनागमनरूप षट् अपक्रम-नियमके बलसे पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाले व आठ राजु उत्सेधवाले क्षेत्रमें चारों ओरसे मनुष्यलोकको आनेवाले जीवोंका उपपादसम्बन्धी क्षेत्रफल, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा पाया जाता है। और न तिर्यंचोंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, वहांपर भी चारों ही दिशाओंके मार्गोंसे आगमन देखा जाता है?

समाधान—अब उपर्युक्त आशंकाका परिहार करते हैं— न तो नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियोंको आश्रय करके उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, तन्निमित्तक उपपादसम्बन्धी स्पर्शनके बलसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग नहीं स्वीकार किया गया है। और न देव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका आश्रय करके भी उक्त दोष प्राप्त होता है, क्योंकि, आठ राजु उत्सेधवाली समचतुरस्र लोकनालीके अन्तःस्थित देव सासादनसम्यग्दृष्टियोंका और अधस्तन तथा उपरिम जीवोंका भी बाणकी तरह सीधी गतिसे चढ़ने और उतरनेरूप व्यापारसे मनुष्यलोककी प्रणिधि (तट) को आकर और एक या दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है।

शंका—तिरछे जाकर पुनः विग्रह करके सासादनसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं?

समाधान—मनुष्यगतिसे रहित दिशामें स्वभावसे ही उनका गमन नहीं होता है।

तथा, मनुष्यगतिके सम्मुख आकर और विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका भी क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि, उस क्षेत्रके तिर्यग्लोकके संख्यातवें

ज्जदिभागपहाणत्तादो। तम्हा एवंविहणियमवसेण तलफोसणमेत्तस्सेव संगहो कायव्वो। मणुसोववादिणो देवसासणा मूलसरीरं पविसिय कालं करेंति त्ति भणंताणमभिप्पायेण तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेदं फोसणं समत्थेदव्वं। तिरिक्खसासणेसु मणुस्सेसु-प्पज्जमाणेसु वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसणमुवलब्भइ, तिरिक्खसासणसम्माइट्ठीणं चउग्गईसुप्पज्जमाणाणं तिरिक्खभवाभिमुहसेसगइजीवाणं च तिरिच्छं गंतूण विग्गहं करिय उप्पत्तिदंसणादो। अतएव च 'तिरोऽञ्चन्तीति तिर्यञ्चः'। एदेसिमेवंविहा गई अत्थि त्ति कुदो णव्वदे? देवसासणोववादस्स पंच-चोद्दसभागपोसणपरूवणण्णहाणुववत्तीदो। तदो ण पुव्वुत्तदोसप्पसंगो त्ति सद्दहेयव्वं।

सम्मामिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ३८ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठीणं वट्टमाणकाले सगसव्वपदेहि खेत्तभंगो। सत्थाणपदट्ठिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो। विहारवदि-

---

भागकी ही प्रधानता है। इसलिए इसप्रकारके नियमके वशसे मेरुके तलभागके स्पर्शनमात्रका ही संग्रह करना चाहिए। मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मूलशरीरमें प्रवेश करके मरण करते हैं, ऐसा कहने वाले आचार्योंके अभिप्रायसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र स्पर्शन होता है, ऐसा समर्थन करना चाहिए। तथा तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होने वाले जीवोंमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, क्योंकि, चारों गतियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टियोंके और तिर्यंचभवके अभिमुख शेष गतिके जीवोंके तिरछे जाकर और विग्रह करके उत्पत्ति देखी जाती है। और इसीलिए वे 'तिरछे जाते हैं अतएव तिर्यंच हैं' ऐसी व्युत्पत्ति की गई है।

शंका—इन तिर्यंचोंकी इस प्रकारकी तिरछी गति होती है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—अन्यथा देव सासनसम्यग्दृष्टियोंके उपपादसम्बन्धी पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं हो सकती थी। इसलिए पूर्वोक्त दोष नहीं प्राप्त होता है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ३८ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका वर्तमानकालमें स्पर्शनक्षेत्र अपने सर्व पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान पदस्थित उक्त गुणस्थानवर्ती मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

सत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो[1] पोसिदो। अदीदाणागदवट्टमाणकालेसु मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुससम्मामिच्छादिट्ठिभंगो। णवरि मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो। तं कधं? मणुससम्मादिट्ठिदेवेसु मारणंतियं करेंता संखेज्जपंथ-संखेज्जविमाणेसु चेव मारणंतियं करेंति, वाणवेंतर-जोदिसिएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो। तत्थ एक्केक्किस्से वट्टाए जदि वि असंखेज्जजोयणलक्खबाहल्लं होदि, तो वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव खेत्तं फोसिदं होज्ज। तेणेदमप्पधाणं। मणुमा पुव्वं तिरिक्खेसु बद्धायुगा पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण तिरिक्खेसु उप्पज्जंति, एदं खेत्तं पधाणं। कधमेदमाणिज्जदे? सयंपहपव्वदादो उवरिमखेत्तविक्खंभं ठविय—

व्यासं षोडशगुणितं षोडशसहितं त्रिरूपरूपहृतं।
व्यासत्रिगुणितसहितं सूक्ष्मादपि तद्भवेत्सूक्ष्मम् ॥ ९ ॥

....

किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंकी अपेक्षा मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकको संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके समान है। विशेष बात यह है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे स्पर्श किया?

समाधान—देवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करने वाले सम्यग्दृष्टि मनुष्य संख्यात मार्ग वाले संख्यात विमानोंमें ही मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, उनकी वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती है। उनमें एक एक मारणान्तिकसमुद्घातके मार्गका यद्यपि असंख्यात लाख योजन बाहल्य होता है, तो भी वह क्षेत्र (सब मिलकर) तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमात्र ही स्पर्श किया गया होगा। इसलिए यह क्षेत्र यहां पर अप्रधान है। पहले तिर्यंचोंमें जिन्होंने आयु बांध ली हैं ऐसे मनुष्य पीछे सम्यक्त्वको ग्रहण करके तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं, यह क्षेत्र यहां पर प्रधान है।

शंका—बद्धायुष्क मनुष्योंका यह उपपादक्षेत्र कैसे निकाला जाता है?

समाधान—स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम क्षेत्रके विष्कम्भको स्थापित करके—

व्यासको सोलहसे गुणा करे, पुनः सोलह जोड़े, पुनः तीन, एक और एक अर्थात् एकसौ तेरह (११३) का भाग देवे। पुनः व्यासका तिगुना जोड़ देवे, तो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण आ जाता है ॥ ९ ॥

....

१ आ-क प्रत्योः '-भागो संखेज्जभागो वा ' इति पाठः।

एदीए गाहाए परिधिमाणीय विक्खंभचउब्भागेण गुणिय संखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो मारणंतियखेत्तं होदि । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं । उववादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं जहा- जदि वि अट्ठरज्जुखेत्तं रज्जुविक्खंभमदीदकाले चउव्विहा देवा आऊरिय ट्ठिदा असंजदसम्मादिट्ठिणो मणुसेसु उप्पज्जंति, तो वि तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागो पोसणं, देवसासणाणं व तत्थतणअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसुप्पज्जमाणाणमागमणणियमोवलंभादो । एसो अत्थो अण्णत्थ वि वत्तव्वो । अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । संजदासंजदाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाणेण अदीदकाले संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

---

इस गाथाके अनुसार परिधिको निकालकर और विष्कम्भके चतुर्भागसे गुणाकर पुनः संख्यात अंगुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकक्षेत्र हो जाता है । वह क्षेत्र अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा होता है ।

उदाहरण—स्वयंप्रभ पर्वतसे उपरिम भाग अर्थात् भीतरी क्षेत्रका विष्कम्भ—

$$१ - \frac{५}{८} = \frac{३}{८}; \quad \frac{\frac{३}{८} \times \frac{१६}{१} + \frac{१६}{१}}{११३} + \frac{९}{८} \times \frac{३}{३२} = \frac{३१७९}{२९०१६}$$ राजु प्रतर,

यह मारणान्तिकसमुद्धातगत असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका क्षेत्र है जो राजुप्रतरके अष्टमांशसे कुछ अधिक होनेके कारण तिर्यग्लोक अर्थात् ७ × १ राजुका संख्यातवां भाग तथा पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भ वाले अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा बड़ा है ।

उपपादपदगत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । वह इसप्रकार है—यद्यपि अतीतकालमें आठ राजु आयत और एक राजु विस्तृत क्षेत्रको व्याप्त करके स्थित चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि देव, मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तो भी वह स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके समान वहांके मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंके आगमनका नियम पाया जाता है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिए । उन्हीं जीवोंने अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

संयतासंयत मनुष्योंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा संयतासंयत मनुष्योंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धातगत मनुष्य संयतासंयतोंने सामान्य-

माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा पोसिदा। मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। कारणं चिंतिय वत्तव्वं। पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ॥ ३९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो पुव्वं उत्तो त्ति संपदि ण उच्चदे। एवं पज्जत्तमणुस-मणुसिणीसु। णवरि मणुसिणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि। पमत्ते तेजाहारं णत्थि।

मणुसअपज्जत्तेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ४० ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो। मारणंतिय-उववादगदेहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो।

....

लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातगत संयतासंयत मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण विचार कर कहना चाहिए। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लगाकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती मनुष्योंका स्पर्शनक्षेत्र ओघप्ररूपणाके समान लोकका असंख्यातवां भाग है।

सयोगिकेवली जिनोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कह आये हैं, इसलिए अब नहीं कहते हैं। इसी प्रकारसे पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनियोंका स्पर्शनक्षेत्र जनाना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, और प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें तैजस एवं आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने सामान्य-लोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदगत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्य तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

सव्वलोगो वा ॥ ४१ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा अदीदकाले पोसिदा । मारणंतिय-उववादगदेहिं सव्वलोगो पोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणे विरोहाभावा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ४२ ॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्ठीणं उच्चदे– सत्थाणसत्थाणपरिणदेहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एवं विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं पि वत्तव्वं । मारणंतिय-उववादगदेहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । सासणसम्मादिट्ठिस्स सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं खेत्तोघं । मारणंतिय-

---

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ४१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग अथवा संख्यात बहुभाग अतीतकालमें स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादगत मनुष्योंने सर्वलोक स्पर्श किया है क्योंकि, उनके सर्वत्र गमनागमनमें कोई विरोध नहीं ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४२ ॥

यहांपर पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र कहते हैं– स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदवाले सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघक्षेत्रकी प्ररूपणाके समान है । मारणान्तिक-

---

१ देवगतौ देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

उववादगदाणं पि खेत्तोघमेव होदि। एसा वट्टमाणपमाणपरूवणा। अदीदाणागदपरूवणट्ठमाह—

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४३ ॥

सत्थाणसत्थाणमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एत्थ ओघकारणं वत्तव्वं। सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एत्थ वि ओघकारणं वत्तव्वं। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि दोगुणट्ठाणजीवेहि अदीदकाले अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। केण ऊणा? तदियपुढविहेट्ठिमतलसहस्सजोयणेहि अण्णेहि वि देवाणमगम्मपदेसेहि। मारणंतियसमुग्घादगदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि णव चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा, हेट्ठा दो रज्जू, उवरि सत्त रज्जु त्ति। उववादगदेहि

समुद्घात और उपपादपदवाले जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र ओघ क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही होता है। इसप्रकार यह वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा समाप्त हुई। अब अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान पदवाले मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर कारण ओघके समान कहना चाहिए। स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहांपर भी कारण ओघके समान ही कहना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतकालमें कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—यहां आठ बटे चौदह भाग किस क्षेत्रसे कम हैं?

समाधान—तृतीय पृथिवीके अधस्तन तलसम्बन्धी एक हजार योजनोंसे, तथा अन्य भी देवोंके अगम्य प्रदेशोंसे, कम हैं।

मारणान्तिकसमुद्घातगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने मंदराचलसे नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु, इस प्रकार कुछ कम नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श

मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि पंच चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा, सहस्सारकप्पादो उवरिमेदेसिमुववादाभावा। छक्कावक्कमणियमे संते पंचचोद्दसभागफोसणं ण जुज्जदि त्ति णासंकणिज्जं, चदुण्हं दिसाणं हेट्ठुवरिमदिसाणं च गच्छंतेहि तदा मारणं पडि विरोहाभावादो।

का दिसा णाम ? सगट्ठाणादो कंडुज्जुवा दिसा णाम। ताओ छच्चेव, अण्णेसिमसंभवादो। का विदिसा णाम ? सगट्ठाणादो कण्णायारेण ट्ठिदखेत्तं विदिसा। जेण सव्वे जीवा कण्णायारेण ण जांति तेण छक्कावक्कमणियमो जुज्जदे। ण च एगदंडेणेव उप्पत्तिट्ठाणेण उवरि सरिसा होंति त्ति णियमो, एगंगुलादिवियप्पेहि तिरिक्खेण आयदं पढमदंडं काऊण तिरिक्ख-मणुसाणं विदियदंडेण सगुप्पत्तिट्ठाणपावणे विरोहाभावादो। भवणवासिएसु उप्पज्जमाणतिरिक्खुववादखेत्ते गहिदे पंच रज्जू सादिरेया किण्ण होंति त्ति उत्ते ण होंति,

---

किये हैं। उपपादपदगत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सहस्रारकल्पसे ऊपर इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका उपपाद नहीं होता है।

शंका—छहों दिशाओंमें जाने आनेका नियम होनेपर सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र पांच बटे चौदह भागप्रमाण नहीं बनता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, चारों दिशाओंको और ऊपर तथा नीचेकी दिशाओंको गमन करनेवाले जीवोंके मारणान्तिकसमुद्धातके प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका—दिशा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे वाणकी तरह सीधे क्षेत्रको दिशा कहते हैं। वे दिशाएं छह ही होती हैं, क्योंकि, अन्य दिशाओंका होना असंभव है।

शंका—विदिशा किसे कहते हैं ?

समाधान—अपने स्थानसे कर्णरेखाके आकारसे स्थित क्षेत्रको विदिशा कहते हैं।

चूंकि मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद पदगत सभी जीव कर्णरेखाके आकारसे अर्थात् तिरछे मार्गसे नहीं जाते हैं, इसलिए छह दिशाओंके अपक्रम अर्थात् गमनागमनका नियम बन जाता है। तथा, एक दंडके द्वारा ही सब जीव ऊपर उत्पत्तिस्थानकी अपेक्षा समतलस्थ हो जाते हैं, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, एक अंगुल आदिके विकल्पसे तिरछे रूपसे आयत प्रथम दंडको करके तिर्यंच और मनुष्योंका द्वितीय दंडके द्वारा अपने उत्पत्तिस्थानको पानेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—भवनवासियोंमें उत्पन्न होने वाले तिर्यंचोंके उपपादक्षेत्रको ग्रहण करने पर साधिक पांच राजु स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है ?

अहियखेत्तादो ऊणखेत्तस्स बहुत्तुवदेसा। तं कधं णव्वदे? हेट्ठा दंडायारेण ओयरिय विग्गहं काऊण भवणवासिएसुप्पण्णाणं पढम-विदियदंडेहि अदीदकाले रुद्धखेत्तादो सहस्सारुववादसेज्जाए उवरिमभागस्स संखेज्जगुणत्ता। विमाणसिहरमुस्सेहजोयणपमाणं त्ति ण थोवो उवरिमभागो, सहस्सारुवरिमपज्जवसाणस्स लक्खपमाणजोयणेहिंतो बहुअत्तादो। तं कुदो णव्वदे? देसूणपंच-चोद्दसभागफोसणण्णहाणुववत्तीदो।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो खेत्तपरूवणाए उत्तो त्ति इह ण उच्चदे।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४५ ॥

....

समाधान—ऐसी शंका करने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा कम क्षेत्रकी अधिकताका उपदेश पाया जाता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—नीचे दंडाकार आत्मप्रदेशोंसे उतरकर और विग्रह करके भवनवासियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रथम और द्वितीय दंडोंके द्वारा अतीतकालमें रुद्धक्षेत्रसे सहस्रार कल्पकी उपपादशय्याका उपरिम भाग संख्यातगुणा है, इसलिए जाना जाता है कि नीचेके अधिक क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरका हीन क्षेत्र प्रधानतया विवक्षित है। देवोंके विमानोंका माप उत्सेधयोजनके प्रमाणसे है, इसलिए उपपादशय्यासे ऊपरी भाग अर्थात् विमानशिखरसे लेकर उसी कल्पके अन्त तकका क्षेत्र स्तोक अर्थात् अल्प नहीं है, क्योंकि, मेरुतलसे नीचेके एक लाख प्रमाणयोजनोंकी अपेक्षा सहस्रारकल्पके विमानशिखरसे ऊपरी पर्यन्तभागका प्रमाण बहुत है।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—अन्यथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका देशोन पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्शनक्षेत्र बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि भवनवासी देवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा ऊपरके विमानवासी देवोंका क्षेत्र यहां पर प्रधानतासे ग्रहण किया गया है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ क्षेत्रप्ररूपणामें कहा गया है, इसलिए यहां पर नहीं कहा जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने अतीत और अनागतकालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४५ ॥

....

१ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादगदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। उववादगदेहि छ चोद्दसभागा पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि मणुसवदिरित्ताणमुववादाभावा। एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं पि। णवरि मारणंतिय-उववादगदा णत्थि।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४६ ॥

वाणवेंतर-जोदिसियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं खेत्तभंगो। भवणवासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो। अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। उववादपरिणदाणं पि एवं चेव वत्तव्वं। जदि वि एदं वट्टमसंखेज्जसेढीमेत्तं, तो वि तिरिय-

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदगत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर मनुष्योंको छोड़कर अन्य जीवोंके उत्पन्न होनेका अभाव है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका भी स्पर्शन जानना चाहिए, विशेष बात यह है कि इनके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४६ ॥

वानव्यन्तर और ज्योतिष्क मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातगत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। उपपादपदपरिणत उक्त देवोंका भी इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। यद्यपि यह उपपादक्षेत्रसम्बन्धी मार्ग असंख्यात श्रेणीप्रमाण होता है, तथापि तिर्यग्लोकके असंख्या-

१ प्रतिषु 'दव्व-' इति पाठः।

लोगस्स असंखेज्जदिभागं चेव उववादेण वट्टमाणकाले फुसदि, तिरियलोगमज्झम्मि तद्-संखेज्जदिभागे चेव भवणावासाणमवट्ठाणादो, तदवट्ठिददिसं मोत्तूणण्णदिसाए गमणाभावादो, हेट्ठा ओयरिय उप्पज्जमाणाणं सुट्ठु थोवत्तादो। मारणंतियसमुग्घादगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो। भवणवासियसासणसम्मादिट्ठीणं खेत्तभंगो।

अद्धुट्ठा वा, अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४७ ॥

भवणवासियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अद्धुट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। अद्धुट्ठरज्जू सयमेव विहरंति। कधमद्धुट्ठरज्जू जादा? मंदरतलादो हेट्ठा दोण्णि, उवरि जाव सोधम्मविमाणसिहरधजदंडो त्ति दिवड्ढरज्जू। उवरिमदेवपयोगेण अट्ठ रज्जू। मारणंतियसमुग्घादगदेहि णव चोद्दसभागा

....

तवें भागप्रमाण क्षेत्र ही उपपादके द्वारा वर्तमानकालमें स्पर्श किया जाता है, क्योंकि, तिर्यग्लोकके मध्य भागमें और उसके भी असंख्यातवें भागमें ही भवनवासी देवोंके आवासोंका अवस्थान है। तथा, जिस दिशामें विमान अवस्थित हैं उस दिशाको छोड़कर अन्यदिशामें गमन करनेका अभाव है, तथा, नीचे उतरकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण बहुत कम है। मारणान्तिकसमुद्धातगत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका स्पर्शनक्षेत्र क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा लोकनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, आठ भाग और नौ भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४७ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धातपदवाले उक्त देवोंने चौदह भागोंमेंसे देशोन साढ़े तीन भाग, ($\frac{3\frac{1}{2}}{14}$) अथवा आठ भाग ($\frac{8}{14}$) प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है। भवनवासी देव साढ़े तीन राजु स्वयं ही विहार करते हैं।

शंका—साढ़े तीन राजु कैसे हुए?

समाधान—मंदराचलके तलभागसे नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु और ऊपर सौधर्मकल्पके विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादंड तक डेढ़ राजु, इस प्रकार मिलाकर साढ़े तीन राजु हुए।

उपरिम अर्थात् ऊपरके आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंके प्रयोगसे आठ राजुप्रमाण

देसूणा पोसिदा। उवरि सत्त, हेट्ठा दोण्णि, एवं णव रज्जू । उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो। जोयणलक्खबाहल्लं तिरियपदरमदीदकाले किण्ण पुसिज्जदि ? ण, तिरिच्छेण भवणट्ठिदपदेसं गंतूण हेट्ठा मुक्कमारणंतियाणमुववादेण हेट्ठुवरिमासेसखेत्तफुसणाभावादो। पुणो कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं जुज्जदे ? सगावट्ठिदपदेसादो हेट्ठा गंतूण तिरिच्छेण पल्लट्टिय सगभवणेसुप्पण्णाणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो उववादफोसणं होदि। अण्णहा किण्ण होदि ? भवणवासियपाओग्गाणुपुव्विपडिबद्धागासपदेसाणमवट्ठाणवसेण मारणंतियसंभवादो। भवणवासियसासणसम्मादिट्ठिसव्वपदाणं भवणवासियमिच्छादिट्ठिभंगो। वाणवेंतरमिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स

विहार करते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत उन्हीं भवनवासी देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। मंदराचलसे ऊपर लोकके अन्त तक सात राजु और नीचे तीसरी पृथिवी तक दो राजु, इस प्रकार नौ राजु होते हैं। उपपादपरिणत उक्त देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंने अतीतकालमें एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यक्प्रतरप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं स्पर्श किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यग्रूपसे भवनस्थित प्रदेशको जाकर नीचे मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले जीवोंके उपपादपदकी अपेक्षा नीचे और ऊपरके समस्त क्षेत्रको स्पर्शन करनेका अभाव है।

शंका—तो फिर भवनवासी देवोंके उपपादपदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्शनक्षेत्र कैसे बन सकता है ?

समाधान—अपने रहनेके स्थानसे नीचे आकर पुनः तिरछे रूपसे पलट करके अपने भवनोंमें उत्पन्न होने वाले जीवोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्र हो जाता है।

शंका—यह स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, भवनवासी देवोंके योग्य आनुपूर्वीनामकर्मसे प्रतिबद्ध आकाशप्रदेशोंके अवस्थानके वशसे मारणान्तिकसमुद्घात होता है, इसलिए उक्त स्पर्शनक्षेत्र अन्य प्रकारसे नहीं बन सकता है।

भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंके स्वस्थानादि सभी पदोंका स्पर्शनक्षेत्र भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंके समान है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि वानव्यन्तर देवोंने स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य-

संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो। तं जहा– एगं जगपदरं ठविय तप्पाओग्ग-संखेज्जपदरंगुलेहि भागे हिदे वेंतरावासाण पमाणं होदि। तमेगावासोगाहणाए संखेज्जघणंगुलपमाणाए गुणिदे संखेज्जंगुलाणि बाहल्लं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं जगपदरं होदि। असंखेज्जजोयणवित्थडा वेंतरावासा अप्पधाणा त्ति कट्टु इदं भणिदं। अह जइ ते चेय पहाणा, जगपदरस्स असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि भागहारं ठविय असंखेज्जघणंगुलेहि एगावासुप्पण्णेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सगपच्चएण अद्धुट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। परपच्चएण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। मारणंतिय-समुग्घादगदेहि णव चोद्दसभागा पोसिदा। उववादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। उववादेण तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं खेत्तं वट्टमाणकाले अवरुंभिय ट्ठिदवेंतरा अदीदकाले कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागं पुसंति त्ति उत्ते ण एस दोसो, खेत्तं णाम सव्वजीवाण-

....

ग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वह इस प्रकार है— एक जगप्रतरको स्थापित करके तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरांगुलोंसे भाग देनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण व्यन्तर देवोंके आवासोंका प्रमाण हो जाता है। उसे संख्यात अंगुलप्रमाण एक आवासकी अवगाहनासे गुणा करनेपर संख्यात घनांगुल बाहल्य-वाला और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण जगप्रतर होता है। यद्यपि असंख्यात योजन विस्तारवाले भी व्यन्तरोंके आवास होते हैं, किन्तु वे यहांपर प्रधानरूपसे विवक्षित नहीं हैं, इस अपेक्षासे यह उक्त स्पर्शनक्षेत्र कहा है। और यदि वे ही अर्थात् असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानोंको ही प्रधान माना जाय, तो जगप्रतरका असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण भागहार स्थापित करके एक आवासके क्षेत्रफलकी अपेक्षा उत्पन्न होने वाले असंख्यात घनांगुलोंसे गुणा करने पर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग हो जाता है।

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भवनवासी देवोंने स्वप्रत्ययसे अर्थात् अपने आप कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह ($\frac{3\frac{1}{2}}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। किन्तु परप्रत्ययसे अर्थात् अन्य देवोंके प्रयोगसे कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्घातगत उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती व्यन्तर देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका— उपपादकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें व्याप्त करके स्थित व्यन्तर देव अतीतकालमें कैसे तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको स्पर्श करते हैं?

मोगाहणाओ उववादविसिट्ठाओ एगट्ठं करिय गहिदे होदि। तेण तिरियलोगादो वेंतर-मिच्छादिट्ठि-उववादखेत्तमसंखेज्जगुणं जादं। पोसणम्हि पुण जीवप्पडिट्ठिदओगाहणाओ ण घेप्पंति, किंतु तीदकाले उववादपरिणदमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिवेंतरेहि च्छित्त-खेत्तमेव घेप्पदि, वेंतरेसु वि ण देवा णेरइया वा उप्पज्जंति, ण च एइंदिया विग-लिंदिया, किंतु सण्णि-असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसा चेव। ण च वेंतराणमावासा सोधम्मादिसु तिरियलोगबाहिरेसु कप्पेसु अत्थि, तधोवदेसाभावा। ण च लक्खजोयण-बाहल्लतिरियपदरम्हि सव्वत्थ वेंतरावासा चेव, जोदिसियवासाणं वेलंधरपण्णगादिआवासाणं च अभावप्पसंगा। ण च भूमीए चेव वेंतरावासा होंति त्ति णियमो अत्थि, आगासपदि-ट्ठियाणं पि वेंतरावासाणं संभवादो। ण च तिरियलोगे चेव वेंतरावासाणमत्थित्तणियमो, हेट्ठा पंकबहुलपुढवीए वि भूत-रक्खसावासाणमुवलंभादो। तम्हा किंचूणमजोएदूण वेलक्ख-बाहल्लतिरियपदरं ठविय सत्तकदीए ओवट्टिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागबाहल्लं जगपदरं होदि[1]। एवं चेव जोदिसियाणं पि वत्तव्वं, णवरि उववादखेत्ते

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्व जीवोंकी उपपादविशिष्ट अवगाहनाओंको एकट्ठा करके ग्रहण करने पर 'क्षेत्र' यह नाम होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टि व्यन्तर-देवोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा हो जाता है। पर स्पर्शनमें जीवोंसे प्रतिष्ठित अवगाहनाएं नहीं ग्रहण की जाती हैं, किन्तु अतीतकालमें उपपादपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि व्यन्तर देवोंसे स्पर्शित क्षेत्र ही ग्रहण किया जाता है। व्यन्तरोंमें भी न तो देव अथवा नारकी जीव उत्पन्न होते हैं और न एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीव ही, वहां केवल संज्ञी व असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंच और मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। तथा तिर्यग्लोकसे बाहिर स्थित सौधर्मादि कल्पोंमें भी व्यन्तर देवोंके आवास नहीं होते हैं, क्योंकि, उस प्रकारके उपदेशका अभाव है। और न लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरमें ही सर्वत्र व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, अन्यथा चन्द्र, सूर्यादि ज्योतिष्क देवोंके आवासोंका और वेलंधर, पन्नग आदि भवनवासी देवोंके आवासोंके अभावका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। तथा भूमिमें ही व्यन्तर देवोंके आवास होते हैं, ऐसा भी नियम नहीं है, क्योंकि, आकाशमें प्रतिष्ठित व्यन्तरोंके आवास सम्भव हैं। और न तिर्यग्लोकमें ही व्यन्तर देवोंके आवासोंके अस्तित्वका नियम है, क्योंकि, नीचे रत्नप्रभा पृथिवीके पंकबहुल भागमें भी भूत और राक्षस नामके व्यन्तर देवोंके आवास पाये जाते हैं। इसलिए कुछ कम क्षेत्रको नहीं जोड़कर दो लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको स्थापित करके सातकी कृति अर्थात् वर्गसे अपवर्तितकर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगप्रतर हो जाता है।

इसी प्रकारसे ही ज्योतिष्क देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह

१ रज्जुकदी गुणिदव्वा णवणउदिसहस्सा अधियलक्खेण। तम्मज्झे तिवियप्पा वेंतरदेवाण होंति पुरा॥ भवणं भवणपुराणि आवासा इय भवंति तिवियप्पा। जिणमुहकमलविणिग्गदवेंतरपण्णत्तिणामाए॥ रयणप्पहपुढवीए भवणाणि दीव-उवहिउवरिम्मि। भवणपुराणि दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा॥ ति. प. पत्र १९६.

आणिज्जमाणे णवजोयणसदबाहल्लं तिरियपदरं सत्तकदीए खंडिदे पदरागारेण ट्ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागबाहल्लं जगपदरं होदि[१]।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि भवणवासिय-वेंतर-जोदिसिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो।

अद्धुट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४९ ॥

सत्थाणसत्थाणभवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सम्मामिच्छादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। णवरि भवणवासिएसु चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो पोसिदो त्ति वत्तव्वं। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदपरिणदेहि सम्मा-

---

है कि उनके उपपादक्षेत्रको लाते समय नौ सौ योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरको सातके वर्गद्वारा खंडितकर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यवाला जगप्रतर होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ४८ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ४९ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विशेष बात यह है कि भवनवासियोंमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है, ऐसा कहना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणा-

---

१ रज्जुकदी गुणिदव्वं एक्कसयदसुत्तरेहिं जोयणए। तस्सिं अगम्मदेसं सोधिय सेसम्मि जोदिसिया ॥ ति. प. ७, ५.

मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि अद्धुट्ठा चोद्दसभागा देसूणा सगपच्चएण; परपच्चएण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठीणं मारणंतियपदं णत्थि ।

सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति देवोघं ॥ ५० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । सेसगुणट्ठाणजीवेहि अप्पप्पणो पदेसु वट्टमाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तीदे काले सोधम्मीसाणकप्पवासियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तं जहा— सव्वे इंदया संखेज्जजोयणवित्थडा, सेढीबद्धा असंखेज्जजोयणवित्थडा, पइण्णयवा मिस्सा[1] । एत्थ जदि वि सव्व-

---

न्तिकसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रिक देवोंने स्वप्रत्ययसे कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह ($\frac{3\frac{1}{2}}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; तथा परप्रत्ययसे कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकपद नहीं होता है ।

सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंका स्पर्शनक्षेत्र देवोंके ओघस्पर्शनके समान है ॥ ५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत मिथ्यादृष्टि देवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदसे परिणत सौधर्म-ऐशान देवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तथा नरलोक और तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान आदि अपने अपने पदोंमें वर्तमान सासादनादि शेष गुणस्थानवर्ती देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालमें सौधर्म और ईशान कल्पवासी स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वह इस प्रकार है— सभी इन्द्रकविमान संख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं, श्रेणीबद्धविमान असंख्यात योजन विस्तृत और

---

१ इंदयसेढीबद्धप्पइण्णयाणं कमेण वित्थारा । संखेज्जमसंखेज्जं उभयं च य जोयणाण हवे । त्रि. सा. १६८.

विमाणाणि असंखेज्जजोयणवित्थडाणि त्ति घेप्पंति, तो वि सव्वविमाणखेत्तफलसमासो तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो चेव होदि । तं जहा– एगविमाणायामो असंखेज्जजोयणमेत्तो त्ति कट्टु असंखेज्जजोयणविक्खंभेणायामं गुणिय विमाणुस्सेहसंखेज्जंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि, एक्केक्कविमाणायाम-विक्खंभाणं सेढिपढमवग्गमूलादो असंखेज्जगुणपमाणत्तादो[1] । तं सोधम्मीसाणविमाणसंखाए गुणिदे वि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो होदि त्ति । एत्थ सव्वकप्पाणं कमेण विमाणसंखापरूवयगाहाओ—

बत्तीसं सोहम्मे अट्ठावीसं तहेव ईसाणे ।
बारह सणक्कुमारे अट्ठेव य होंति माहिंदे ॥ १० ॥
बम्हे कप्पे बम्होत्तरे य चत्तारि सयसहस्साइं ।
छसु कप्पेसु य एयं चउरासीदी सयसहस्सा ॥ ११ ॥
पण्णासं तु सहस्सा लंतय-काविट्ठएसु कप्पेसु ।
सुक्क-महासुक्केसु य चत्तालीसं सहस्साइं ॥ १२ ॥

प्रकीर्णकविमान मिश्र अर्थात् संख्यात और असंख्यात योजन विस्तारवाले होते हैं । यहांपर यदि सभी विमान असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं, ऐसा समझकर ग्रहण करते हैं तो भी सभी विमानोंके क्षेत्रफलका जोड़ तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है । वह इस प्रकारसे है— एक विमानका आयाम असंख्यात योजनप्रमाण होता है । इसलिए असंख्यात योजन विष्कम्भसे आयामको गुणा करके विमानके उत्सेधसम्बन्धी संख्यात अंगुलोंसे गुणा करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही होता है, क्योंकि, एक एक विमानका आयाम और विष्कम्भ जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणित (हीन) प्रमाण होता है । उसे सौधर्म ईशानकल्पकी विमानसंख्यासे गुणा करनेपर भी तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही रहता है । यहांपर सभी कल्पोंके विमानोंकी क्रमसे संख्याओंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथाएं इस प्रकार हैं—

सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं, उसी प्रकारसे ईशानकल्पमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारकल्पमें बारह लाख तथा माहेन्द्रकल्पमें आठ लाख विमान होते हैं ॥ १० ॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पमें दोनों कल्पोंके मिलाकर चार लाख विमान हैं । इस प्रकार इन ऊपर बताए गये छह कल्पोंमें विमानोंकी संख्या चौरासी लाख होती है ॥ ११ ॥

जैसे— ३२००००० + २८००००० + १२००००० + ८००००० + ४००००० = ८४००००० सौधर्मादि छह स्वर्गोंकी विमानसंख्या.

लान्तव और कापिष्ठ इन दोनों कल्पोंमें पचास हजार विमान होते हैं । शुक्र और महाशुक्र कल्पमें चालीस हजार विमान हैं ॥ १२ ॥

---

१ ' असंखेज्जगुणहीणपमाणत्तादो ' इति पाठः प्रतिभाति ।

छच्चेव सहस्साइं सयारकप्पे तहा सहस्सारे ।
सत्तेव विमाणसया आरणकप्पच्चुदे चेय ॥ १३ ॥
एक्कारसयं तिसु हेट्ठिमेसु तिसु मज्झमेसु सत्तहियं ।
एक्काणउदिविमाणा तिसु गेवज्जेसुवरिमेसु ॥ १४ ॥
गेवज्जाणुवरिमया णव चेव अणुद्दिसा विमाणा ते ।
तह य अणुत्तरणामा पंचेव हवंति संखाए ॥ १५ ॥

विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । मारणंतियपरिणदेहि मिच्छादिट्ठि-सासणेहि णव चोद्दसभागा पोसिदा । उववादपरिणदेहि दिवड्ढ-चोद्दसभागा पोसिदा । सोधम्मकप्पो धरणीतलादो दिवड्ढरज्जुमोस्सरिय ट्ठिदो त्ति सम्मामिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । एवं असंजदसम्मादिट्ठीणं पि । णवरि मारणंतिएण अट्ठ चोद्दसभागा, उववादेण दिवड्ढ-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । जेणेवं देवोघादो सोधम्मकप्पे ण

शतार और सहस्रार कल्पमें छह हजार विमान होते हैं । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन चार कल्पोंमें मिलाकर सातसौ विमान होते हैं ॥ १३ ॥

अधस्तन तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ ग्यारह विमान, मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ सात विमान और उपरिम तीन ग्रैवेयकोंमें इक्यानवें विमान होते हैं ॥ १४ ॥

नव ग्रैवेयकोंके ऊपर अनुदिश संज्ञावाले नौ विमान होते हैं । उनके ऊपर अनुत्तर संज्ञावाले पांच विमान होते हैं ॥ १५ ॥

विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंको प्राप्त सौधर्म-ईशान कल्पके मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह ($\frac{3}{28}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, सौधर्मकल्प धरणीतलसे डेढ़ राजु ऊपर जाकर स्थित है । स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग और उपपादकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह ($\frac{3}{28}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

विसेसो अत्थि तेण देवोघमिदि सुत्तवयणं सुट्ठु सुघडमिदि ।

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

एदेसिं पंचण्हं कप्पाणं चदुगुणट्ठाणजीवेहि जहासंभवं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एसा वट्टमाणपरूवणा ।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५२ ॥

पंचकप्पवासियचदुगुणट्ठाणजीवेहि सत्थाणसत्थाणपदपरिणदेहि अदीदकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय- मारणंतिय-पदपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । उववादपरिणदेहि सणक्कुमार-माहिंददेवेहिं तिण्णि चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । बम्ह-बम्हुत्तर-

....

चूंकि देवोंके ओघस्पर्शनसे सौधर्मकल्पमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए 'देवोघ' यह सूत्र-वचन भले प्रकार सुघटित होता है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे यथासंभव परिणत उक्त पांचों कल्पोंके चारों गुणस्थानोंमें रहनेवाले देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह वर्तमानकालिक स्पर्शनके क्षेत्रकी प्ररूपणा है ।

सनत्कुमारकल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि आदि चारों गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीत और अनागत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५२ ॥

सनत्कुमारादि पांच कल्पोंके चारों गुणस्थानवर्ती स्वस्थानस्वस्थान पदपरिणत देवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त देवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपरिणत सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम तीन बटे चौदह ($\frac{3}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े

कप्पवासियदेवेहि आहुट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। लंतय-काविट्ठदेवेहि चत्तारि चोद्दस-भागा देसूणा पोसिदा। सुक्क महासुक्कदेवेहि अद्धपंचम-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेहि पंच चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। णवरि सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादा णत्थि।

आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ५३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणखेत्तपरूवयस्स अत्थो पुव्वं परूविदो त्ति पुणो ण उच्चदे।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा पोसिदा ॥ ५४ ॥

मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाण-सत्थाणपदपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दस-

---

तीन बटे चौदह ($\frac{७}{२८}$) भाग स्पर्श किये हैं। लान्तव और कापिष्ठ कल्पवासी देवोंने कुछ कम चार बटे चौदह ($\frac{४}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढ़े चार बटे चौदह ($\frac{९}{२८}$) भाग स्पर्श किये हैं। शतार और सहस्रार कल्पवासी देवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

आनतकल्पसे लेकर आरण-अच्युत तक कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५३ ॥

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपक इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनः नहीं कहा जाता है।

चारों गुणस्थानवर्ती आनतादि चार कल्पवासी देवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ५४ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ हुआ। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम

भागा देसूणा पोसिदा, चित्ताए उवरिमतलादो हेट्ठा एदेसिं गमणाभावादो । मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं उववादो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्ज-गुणो । कुदो ? एगपणदालीसजोयणलक्खविक्खंभ संखेज्जरज्जुआयदमुववादखेत्तं तिरिय-लोगस्स असंखेज्जदिभागं ण पावेदि त्ति । सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतिय-उववादपदं णत्थि । असंजदसम्माइट्ठीहि उववादपरिणदेहि अद्धछक्क-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । आरणच्चुद-कप्पे छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा । किं कारणं ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठि-संजदा-संजदाणं वेरियदेवसंबंधेण सव्वदीव-सायरेसु ट्ठिदाणं तत्थुववादोवलंभादो ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजद-सम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । अदीदपरूवणा वि खेत्तभंगो चेय । कुदो ? चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च समाणत्तु-वलंभादो ।

छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नीचे इनके गमनका अभाव है । उक्त मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवोंका उपपादकी अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भवाला और संख्यात राजुप्रमाण आयत उक्त देवोंका उपपादक्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको नहीं प्राप्त होता है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद नहीं होते हैं । आनत-प्राणत कल्पके उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने कुछ कम साढ़े पांच बटे चौदह ($\frac{11}{28}$) भाग स्पर्श किये हैं । आरण और अच्युतकल्पमें उक्त पदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । इसका कारण यह है कि वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीप और सागरोंमें विद्यमान तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है ।

नवग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक विमानके गुणस्थानवर्ती देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए । तथा अतीतकालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी क्षेत्रप्ररूपणाके समान ही है, क्योंकि, सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणित क्षेत्रकी अपेक्षा समानता पाई जाती है ।

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

एदेसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो, णवगेवज्जादिउवरिमदेवाणं तिरिक्खेसु चयणोववादाभावादो। णवरि पंचपदपरिणदेहि सव्वट्ठसिद्धिदेवेहि माणुसलोगस्स संखेज्जदिभागो पोसिदो।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ ५७ ॥

एइंदिएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वट्टमाणकालेसु सव्वलोगो फोसिदो। वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

नव अनुदिश विमानोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५६ ॥

इन नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानोंमें रहने वाले स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, नवग्रैवेयकादि उपरिम कल्पवासी देवोंका च्यवन होकर तिर्यंचोंमें उपपाद होनेका अभाव है। विशेष बात यह है कि स्वस्थानादि पांच पदोंसे परिणत सर्वार्थसिद्धिके देवोंने मनुष्यलोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियपर्याप्त, एकेन्द्रियअपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सर्वलोक स्पर्श किया है। वैक्रियिकपदपरिणत एकेन्द्रिय जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियैः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

भागो पोसिदो । माणुसखेत्तं ण णव्वदे । अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । अदीदकाले पंचरज्जुबाहल्लं तिरियपदरं विउव्व-माणा वाउकाइया फुसंति त्ति । बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसाय-परिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । किं कारणं? जेण पंचरज्जुबाहल्लं रज्जुपदरं वाउकाइयजीवावूरिदं बादरएइंदियजीवावूरिद-अट्ठपुढवीओ च, तेसिं पुढवीणं हेट्ठा ट्ठिदवीसावीसजोयणसहस्सबाहल्लं तिण्णि तिण्णि वादवलए लोगंतट्ठिदवाउकाइयखेत्तं च एगट्ठ कदे लोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति । एदेहि अदीदकाले वि एत्तियं चेव खेत्तं पोसिदं, विवक्खिदपदपरिणदाणमेदेसिं सव्वद्ध-भणणत्थच्छणाभावादो । वेउव्वियपदपरिणदेहि वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो अमुणिदविसेसो फोसिदो । तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीद-वट्टमाणकालेसु

....

भाग स्पर्श किया है । इस विषयमें मनुष्यक्षेत्रका प्रमाण ज्ञात नहीं है । उन्हीं जीवोंने अतीत-कालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालमें पांच राजु बाहल्यप्रमाण तिर्यक्प्रतरको विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव निरन्तर स्पर्श करते हैं । स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके संख्यातवें भाग स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि पांच राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्र वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण हैं और बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे आठों पृथिवियां व्याप्त हैं । उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस हजार योजन बाहल्यवाले तीन तीन वातवलयोंको और लोकान्तमें स्थित वायुकायिक जीवोंके क्षेत्रको एकत्रित करनेपर सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग हो जाता है ।

इन्हीं उक्त जीवोंने अतीतकालमें भी इतना ही क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, विवक्षित पदपरिणत इन उक्त जीवोंके सभी कालोंमें अन्यत्र रहनेका अभाव है । वैक्रियिकसमुद्धातसे परिणत बादरएकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे अज्ञातविशेष प्रमाणक्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालमें उन्हीं जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें

सव्वलोगो पोसिदो । एवं बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि वेउव्वियं णत्थि । सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तएहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववाद-परिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो, 'सुहुमा जल-थलागासे सव्वत्थ होंति' त्ति वयणादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ५८ ॥

एदस्सत्थो— वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो । तेसिं चेव अपज्जत्तेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो

सर्वलोक स्पर्श किया है । इसी प्रकारसे बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उनके वैक्रियिकसमुद्घात नहीं होता है । स्वस्थान स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, 'सूक्ष्मकायिकजीव जल, स्थल और आकाशमें सर्वत्र होते हैं' ऐसा आगमका वचन है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियपर्याप्त, द्वीन्द्रियअपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रियपर्याप्त, त्रीन्द्रियअपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपर्याप्त और चतुरिन्द्रियअपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ५८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषाय-समुद्घातसे परिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात-परिणत उन्हीं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह

---

१ विकलेन्द्रियैर्लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसा वट्टमाणपरूवणा पुव्वुत्तरसंभालणणिमित्तं कदा।

सव्वलोगो वा ॥ ५९ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दो उच्चदे- बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएहि तेसिं चेव पज्जत्तेहि य सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीदकाले पोसिदो। विगलिंदियसत्थाणत्था सयंपहपव्वदस्स परभागे चेव होंति त्ति तदो परभागे पुव्वं व पदरागारेण ठइदे विगलिंदियसत्थाणसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। सेसपदेहि वइरिसंबंधेण विगलिंदिया सव्वत्थ तिरियपदरब्भंतरे होंति त्ति पदरागारेण ठइदे एदं वि खेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो। तेसिं चेव अपज्जत्तेहि सत्थाण-वेदण-कसाय-परिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहिं सव्वलोगो पोसिदो। पंचिंदिय-

वर्तमानकालिक स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा पूर्व और उत्तर अर्थके अर्थात् अतीत और अनागत कालसम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रके संभालनेके लिए की गई है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ५९ ॥

यहांपर पहले 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है।

स्वस्थानस्वस्थानस्थ विकलेन्द्रिय जीव स्वयम्प्रभपर्वतके परभागमें ही होते हैं, इसलिए परभागवर्ती क्षेत्रको पूर्वके समान प्रतराकारसे स्थापित करनेपर विकलेन्द्रिय जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है। शेष पदोंकी अपेक्षा वैरी जीवोंके सम्बन्धसे विकलेन्द्रिय जीव सर्वत्र तिर्यक्प्रतरके भीतर ही होते हैं, इसलिए प्रतराकारसे स्थापित करनेपर यह क्षेत्र भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र ही होता है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। उन्हीं जीवोंमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत अपर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपादपरिणत विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र

तिरिक्खअपज्जत्ताणं जधा कारणं उत्तं, तधा एत्थ वि पुध पुध विगलिंदियअपज्जत्ताणं वत्तव्वं ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६० ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तपंचिंदियदुगपरूवणाए तुल्ला, उभयत्थ वट्टमाणकालावलंबणं पडि साधम्मादो ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ ६१ ॥

दुविधपंचिंदियमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ पुव्वं व जोदिसिय-वेंतरावासरुद्धखेत्तं अदीदकाले पंचिंदियतिरिक्खेहि सत्थाणीकयखेत्तं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दरिसेदव्वो । एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा पोसिदा, मेरुमूलादो उवरि छ, हेट्ठा दो रज्जु-

बतलाते समय जिस प्रकार (उक्त क्षेत्र होनेका जो) कारण कहा है, उसी प्रकारसे यहांपर भी पृथक् पृथक् द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र बतलाते हुए उसी कारणको कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६० ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनोंकी क्षेत्रप्ररूपणाके समान है, क्योंकि, दोनों ही स्थानोंपर वर्तमानकालके अवलम्बनके प्रति समानता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त, इन दोनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहांपर पूर्वके समान ही ज्योतिष्क और व्यन्तर देवोंके आवासोंसे रुद्ध क्षेत्रको तथा अतीतकालमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके द्वारा स्वस्थानीकृत अर्थात् स्वस्थानस्वस्थानरूपसे परिणत क्षेत्रको लेकर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दिखाना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, मेरुपर्वतके मूलभागसे ऊपर छह राजु और नीचे दो राजु, इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रके भीतर सर्वत्र पूर्वपदपरिणत

१ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

खेत्तब्भंतरे सव्वत्थ पुव्वपदपरिणददुविहपंचिंदियाणमुवलंभा। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो, विवक्खिदादीदकालत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥६२॥

एदेसिं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणकालविसिट्ठखेत्तपरूवणा एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारोघम्हि उत्तपरूवणाए तुल्ला। कुदो? सासणप्पहुडि जाव संजदासंजदो त्ति सव्वपदाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणत्तेण च एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारउत्तपदेहि साधम्मुवलंभादो। सेसगुणट्ठाणाणं पि सव्वपदेहि सरिसत्तदंसणादो च। अदीदकालमस्सिदूण परूवणं कीरमाणे वि णत्थि भेदो, पंचिंदियवदिरित्तगुणपडिवण्णाणमभावा।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ६३ ॥

एत्थ वि तिविधं कालमस्सिदूण ओघपरूवणा चेव कादव्वा, उभयत्थ पंचिंदियत्तं पडि भेदाभावा।

दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्धात और उपपादपदपरिणत उक्त दोनों प्रकारके जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी यहां पर विवक्षा की गई है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है॥ ६२॥

इन गुणस्थानोंकी वर्तमानकालविशिष्ट स्पर्शनकी प्ररूपणा, इन्हीं जीवोंके क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें कही गई क्षेत्रप्ररूपणाके तुल्य है; क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक सर्व पदोंका स्पर्शन सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रसे इन्हीं पूर्वोक्त जीवोंके क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये पदोंके साथ साधर्म्य पाया जाता है; तथा प्रमत्तसंयतादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी सर्वपदोंके साथ सदृशता देखी जाती है। अतीतकालका आश्रय लेकरके स्पर्शनप्ररूपणाके करने पर भी कोई भेद नहीं है, क्योंकि, पंचेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका अभाव है।

सयोगिकेवली जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है॥ ६३॥

यहां पर भी तीनों कालोंको आश्रय लेकर ओघ स्पर्शनप्ररूपणा ही करना चाहिए, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर पंचेन्द्रियताके प्रति भेदका अभाव है।

---

१ शेषाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

पंचिंदियअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा। उत्तमेव किमिदि पुणो वि उच्चदे, फलाभावा ? ण, मंदबुद्धिभवियजणसंभालणदुवारेण फलोवलंभादो।

सव्वलोगो वा ॥ ६५ ॥

सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। एत्थ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं दरिसेदव्वं। एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वलोगम्हि एदेहि पदेहि सह सव्वअपज्जत्ताणं गमणागमणपडिसेहाभावा।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

शंका—कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है, क्योंकि, कहे हुएके पुनः कहनेमें कोई फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि भव्यजनोंके संभालनेकी अपेक्षा पुनः कथन करनेका फल पाया जाता है।

लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत उक्त लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंके समान ही तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दिखाना चाहिए। यह सूत्रोक्त 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपरिणत लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, सम्पूर्ण लोकमें इन दोनों पदोंके साथ सभी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके गमन और आगमनके प्रतिषेधका अभाव है।

इसप्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय--बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-तस्सेवअपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-तस्सेवपज्जत्त--अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ ६६ ॥

पुढविकाइय-आउकाइय-तेसिं चेव सव्वसुहुमेहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो। बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-तेसिं चेव अपज्जत्त बादरतेउकाइय-तस्सेव अपज्जत्तवणप्फदिकाइयपत्तेय-सरीरबादरणिगोदपदिट्ठिद-तेसिं चेव अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तिरियलोगादो संखेज्जगुणत्तं कधं णव्वदे ?

....

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीव तथा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायु-कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव तथा इन्हीं पांचोंके बादर काय-सम्बन्धी अपर्याप्त जीव; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं सूक्ष्म जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव और उन्हींके सर्व सूक्ष्मकायिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषायपदपरिणत बादर पृथिवी-कायिक, बादर जलकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, बादर अग्निकायिक और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने, वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर बादरनिगोदप्रतिष्ठित और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा तथा मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका — उक्त जीवोंने तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, यह कैसे जाना ?

....

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकैः सर्वलोकः स्पृष्टः। स. सि. १, ८.

उच्चदे– एदे पुढवीओ चेव अस्सिदूण अच्छंति । सव्वपुढवीओ च सत्तरज्जुआयदाओ, पढमपुढवी सादिरेगएगरज्जुरुंदा [१] । विदियपुढवी छहि सत्तभागेहि समहियएगरज्जुरुंदा [$1\frac{6}{7}$] । तदियपुढवी पंच-सत्तभागाहिय वे रज्जुरुंदा [$2\frac{5}{7}$] । चउत्थपुढवी चत्तारि-सत्तभागाहिय-तिण्णिरज्जुरुंदा [$3\frac{4}{7}$] । पंचमपुढवी तिण्णिसत्तभागाहिय-चत्तारिरज्जुरुंदा [$4\frac{3}{7}$] । छट्ठपुढवी वे-सत्तभागाहियपंचरज्जुरुंदा [$5\frac{2}{7}$] । सत्तमपुढवी एग-सत्तभागाहिय-छरज्जुरुंदा [$6\frac{1}{7}$] । अट्ठमपुढवी सादिरेयएगरज्जुरुंदा । पढमपुढविबाहल्लं असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपमाणं होदि १८०००० । विदियपुढवी बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला ३२००० । तदियपुढवी अट्ठावीसजोयणसहस्सबाहल्ला २८००० । चउत्थपुढवी चउवीसजोयणसहस्सबाहल्ला २४००० । पंचमपुढवी वीसजोयणसहस्सबाहल्ला २०००० । छट्ठपुढवी सोलसजोयणसहस्सबाहल्ला १६००० । सत्तमपुढवी अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला ८००० । अट्ठमपुढवी अट्ठजोयणबाहल्ला ८ । एदाओ अट्ठपुढवीओ पदरागारेण ठइदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि । मारणंतिय-उववादपरिणदेहिं

....

समाधान – ये बादर पृथिवीकायिक आदि जीव पृथिवियोंका ही आश्रय लेकरके रहते हैं। और सभी पृथिवियां सात राजुप्रमाण आयत हैं। प्रथम पृथिवी साधिक एक राजु चौड़ी है (१)। द्वितीय पृथिवी छह बटे सात भागोंसे अधिक एक राजु चौड़ी है ($1\frac{6}{7}$)। तृतीय पृथिवी पांच बटे सात भागोंसे अधिक दो राजु चौड़ी है ($2\frac{5}{7}$)। चौथी पृथिवी चार बटे सात भागोंसे अधिक तीन राजु चौड़ी है ($3\frac{4}{7}$)। पांचवी पृथिवी तीन बटे सात भागोंसे अधिक चार राजु चौड़ी है ($4\frac{3}{7}$)। छठी पृथिवी दो बटे सात भागोंसे अधिक पांच राजु चौड़ी है ($5\frac{2}{7}$)। सातवीं पृथिवी एक बटे सात भागसे अधिक छह राजु चौड़ी है ($6\frac{1}{7}$)। आठवीं पृथिवी कुछ अधिक एक राजु चौड़ी है (१)। प्रथम पृथिवीकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है (१८००००)। द्वितीय पृथिवी बत्तीस हजार योजन मोटी है (३२०००)। तृतीय पृथिवी अट्ठाईस हजार योजन मोटी है (२८०००)। चौथी पृथिवी चौबीस हजार योजन मोटी है (२४०००)। पांचवीं पृथिवी वीस हजार योजन मोटी है (२००००)। छठीं पृथिवी सोलह हजार योजन मोटी है (१६०००)। सातवीं पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है (८०००)। आठवीं पृथिवी आठ योजन मोटी है (८)। इन आठों पृथिवियोंको प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातगुणा बाहल्यप्रमाण जगप्रतर होता है (देखो पृ. ९१)। इसलिए उक्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा है, यह जाना जाता है।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने भूत, भविष्य और वर्तमान

तीदाणागदवट्टमाणकालेसु सव्वलोगो पोसिदो। कुदो? तस्सहावत्तादो। तेऊणं पुढविभंगो णवरि वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। तं जधा- तेउक्काइया पज्जत्ता चेव वेउव्वियसरीरं उट्ठावेंति, अपज्जत्तेसु तदभावा। ते च पज्जत्ता कम्मभूमीसु चेव होंति त्ति सयंपहपव्वदपरभागखेत्तं जगपदरे वद्धे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि त्ति। अधवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता कम्मभूमीए उप्पण्णा वाउसंबंधेण संखेज्जजोयणबाहल्लं तिरियपदरं अदीदकाले सव्वमावूरिय विउव्वंति त्ति गहिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि। बादरतेउकाइया बादरपुढविभंगो, बादरपुढविकाइया इव बादरतेउकाइया वि सव्वपुढवीसु अच्छंति त्ति। णवरि वेउव्वियपदस्स तेउकाइयवेउव्वियपदभंगो। वाउकाइयाणं तीदाणागदकालेसु तेउकाइयाणं भंगो। णवरि वेउव्वियस्स वट्टमाणकाले माणुसखेत्तगदविसेसो ण जाणिज्जदि। अदीदकाले वेउव्वियपरिणदेहिं वाउकाइएहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो। सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहिं बादरवाउकाइएहि

....

इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, उनका यह स्पर्शनक्षेत्र स्वभावसे ही है। अग्निकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पृथिवीकायिक जीवोंके समान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत अग्निकायिक जीवोंने वर्तमानकालमें पांचों प्रकारके लोकोंका असंख्यातवां भाग तथा भूतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। वह इस प्रकारसे है—

तेजस्कायिक पर्याप्त जीव ही वैक्रियिकशरीरको उत्पन्न करते हैं, क्योंकि, अपर्याप्त जीवोंमें वैक्रियिकशरीरके उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव है। और वे पर्याप्त जीव कर्मभूमिमें ही होते हैं, इसलिए स्वयम्प्रभपर्वतके परभागवर्ती क्षेत्रको जगप्रतररूपसे करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है। अथवा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव वायुके सम्बन्धसे अतीतकालमें संख्यात योजन बाहल्यवाले सर्व तिर्यक्-प्रतरको व्याप्त करके विक्रिया करते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है। बादर तेजस्कायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बादर पृथिवीकायिक जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके समान है, क्योंकि, बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान बादर तेजस्कायिक जीव भी सभी पृथिवियोंमें रहते हैं। विशेष बात यह है कि वैक्रियिकपदका स्पर्शन तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके समान जानना चाहिए। वायुकायिक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अतीत और अनागतकालमें तेजस्कायिक जीवोंके समान है। विशेष बात यह है कि वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदकी मनुष्यक्षेत्रगत विशेषता नहीं जानी जाती है। अतीतकालमें वैक्रियिकपद-परिणत वायुकायिक जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने अतीत, अनागत और

तीदाणागदवट्टमाणकालेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो। वेउव्वियपदस्स वट्टमाणकाले खेत्तभंगो। तीदे काले वेउव्वियपदस्स वाउकाइय-वेउव्वियभंगो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि बादरवाउकाइएहि सव्वलोगो पोसिदो। एवं बादरवाउकाइयअपज्जत्ताणं। णवरि वेउव्वियपदं णत्थि। सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तीदाणागदवट्टमाणकालेसु सव्वलोगो पोसिदो।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा खेत्ताणिओगद्दारे उत्तो तधा वत्तव्वो।

सव्वलोगो वा ॥ ६८ ॥

एत्थ ताव 'वा' सद्दत्थो वुच्चदे— बादरपुढविकाइयपज्जत्त-बादरआउकाइयपज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखे-

---

वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वर्तमानकालमें क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीतकालमें वैक्रियिकसमुद्घातपदका स्पर्शनक्षेत्र वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपदके स्पर्शनके समान है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत बादरवायुकायिक जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। इसी प्रकारसे बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि इनके वैक्रियिकसमुद्घातपद नहीं होता है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६७ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा गया है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ६८ ॥

यहांपर 'वा' शब्दका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादरनिगोदप्रतिष्ठित

ज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो। बादरवणप्फइकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि य सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। किं कारणं? सव्वपुढवीसु बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता णत्थि, 'चित्ताए उवरिमभागे चेव अत्थि' त्ति आइरियवयणादो। अधवा, पत्तेयसरीरपज्जत्ता तिरियलोगादो संखेज्जगुणं खेत्तं पुसंति। कुदो? बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं तिरियलोगादो संखेज्जगुणपोसणखेत्त-ब्भुवगमादो। ण च पत्तेयसरीरपज्जत्तवदिरित्तबादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता अत्थि। बादरणिगोदपदिट्ठिदा सव्वे पत्तेयसरीरा चेवेत्ति कधं णव्वदे?

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए॥ १६॥

इदि सुत्तवयणादो णव्वदे।

....

पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यात-गुणा और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना और कषाय-समुद्घातपदपरिणत बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

शंका—बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र स्पर्शनक्षेत्र होनेका क्या कारण है?

समाधान—सर्व पृथिवियोंमें बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव नहीं होते हैं, क्योंकि, 'चित्रापृथिवीके उपरिम भागमें ही बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर प्रर्याप्त जीव होते हैं' इस प्रकार आचार्योंका वचन है।

अथवा, प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रको स्पर्श करते हैं, क्योंकि, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा स्पर्शनक्षेत्र स्वीकार किया गया है। तथा प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंको छोड़कर बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त नामके कोई अन्य जीव नहीं होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा बन जाता है।

शंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—'योनीभूत बीजमें वही पूर्व पर्यायवाला जीव अथवा अन्य दूसरा भी जीव चंक्रमण करता है। और जो बीज मूलादिक बादरनिगोदप्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक जीव हैं वे सब प्रथम अवस्थामें प्रत्येकशरीर ही होते हैं॥ १६॥

इस सूत्रवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित जीव सभी प्रत्येक शरीरी ही होते हैं।

बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु अत्थि त्ति कधं णव्वदे ? सव्वपुढवीसु विज्जमाणपुढविकाइयपज्जत्तपोसणेण सह एगत्तेणुवदिट्ठअसंखेज्जाणि तिरियपदराणि त्ति वक्खाणवयणादो णव्वदे। तम्हा पत्तेयसरीरपज्जत्तेहि पोसिदखेत्तेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणेण होदव्वमिदि। जधा पत्तेयसरीरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता सव्वासु पुढवीसु होंति, तधा बादरआउकाइयपज्जत्तेहि वि सव्वासु पुढवीसु होदव्वं। अधवा बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्तपत्तेगसरीरा चेव सव्वपुढवीसु होंति। बादरणिगोदाणमजोणीभूदपत्तेयसरीरपज्जत्ता चित्ताए उवरिमभागे चेव होंति त्ति कट्टु बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ते बादरणिगोदाणमजोणीभूदे चेव घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति घेत्तव्वं। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो। एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं। णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो वत्तव्वो।

बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ६९ ॥

शंका—बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—'सर्व पृथिवियोंमें विद्यमान पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके स्पर्शनके साथ एकत्वसे उपदिष्ट असंख्यात तिर्यक् प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र होता है' इस प्रकारके व्याख्यानवचनसे जाना जाता है कि बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं।

इसलिए प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंसे स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा होना चाहिए। जिस प्रकारसे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव सभी पृथिवियोंमें होते हैं, उसी प्रकारसे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव भी सभी पृथिवियोंमें होना चाहिए। अथवा, बादरनिगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येकशरीरवाले जीव ही सर्व पृथिवियोंमें होते हैं। बादरनिगोदके अयोनीभूत प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव चित्रा पृथिवीके उपरिम भागमें ही होते हैं, इसलिए बादर निगोदोंके अयोनीभूत बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव ही ग्रहण करके अर्थात् उनकी अपेक्षा 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है' ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है। इसी प्रकारसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि तेजस्कायिक जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घात पदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, ऐसा कहना चाहिए।

बादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ६९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा खेत्ताणिओगद्दारे उत्तो तधा वत्तव्वो, वट्टमाणकालमस्सिदूण ट्ठिदत्तादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७० ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादपदपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादरसुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवसुहुमपज्जत्त-अपज्जत्तएहि सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । बादरवणप्फदिकाइय-बादरणिगोद-तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तएहिं सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि तिसु वि कालेसु

इस सूत्रका अर्थ जैसा क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर कहना चाहिए, क्योंकि, वर्तमानकालको आश्रय करके यह सूत्र स्थित है अर्थात् कहा गया है।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-परिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७१ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत वनस्पतिकायिक निगोद जीव और उनके सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपदपरिणत बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्य-

तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ७२ ॥

वट्टमाणकालमदीदकालं च अस्सिदूण जधा ओघम्हि सासणादिगुणाणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा। णवरि मिच्छाइट्ठीणं पंचिंदियमिच्छादिट्ठिभंगो, मारणंतिय-उववादपदं मोत्तूण अण्णत्थ सव्वलोगत्ताभावा।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ ७३ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा पंचिंदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि वट्टमाणकालमस्सिदूण परूवणा कादव्वा। जधा अदीदकालमस्सिदूण सत्थाण-वेदण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो

लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७२ ॥

वर्तमानकाल और अतीतकालको आश्रय करके जैसी ओघ स्पर्शनप्ररूपणामें सासादन आदि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी करना चाहिए। विशेष बात यह है कि त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा पंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टि जीवोंके समान जानना चाहिए, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदको छोड़कर अन्यत्र अर्थात् शेष पदोंमें सर्वलोकप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रका अभाव है।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्त जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७३ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जिस प्रकारसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी वर्तमानकालका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए। तथा जैसे अतीतकालका आश्रय करके स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां

---

१ त्रसकायिकानां पंचेन्द्रियवत्स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

असंखेज्जगुणो, मारणंतिय-उववादपदेहि सव्वलोगो पोसिदो त्ति पंचिंदियअपज्जत्ताणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कायव्वा ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ७४ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदूण ट्ठिदमिदि एदस्स परूवणं कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे पंचमण-वचिजोगिमिच्छादिट्ठीणं परूवणा कदा, तधा एत्थ वि मंदबुद्धिसिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ ७५ ॥

पंचमण-पंचवचिजोगिमिच्छादिट्ठीहि सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ सत्थाणखेत्ताणयणविधाणं जाणिय कादव्वं । एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो । विहार-

भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, इसप्रकारसे जैसी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहांपर भी स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए ।

इसप्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥७४॥

यह सूत्र वर्तमानकालका आश्रय करके स्थित है, इसलिए इसकी प्ररूपणा करनेपर जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारमें पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपण करना चाहिए ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ ७५ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर स्वस्थानस्वस्थान क्षेत्रके निकालनेका विधान जान करके करना चाहिए । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । विहार-

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिभिर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा । स. सि. १, ८.

वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। घणलोगमट्ठभागूण-तेदालीसरूवेहि छिण्णेगभागो, अधोलोगं साद्धचउव्वीसरूवेहि छिण्णेगभागो, उड्ढलोगमट्ठ-भागूणसाद्धट्ठारस रूवेहि छिण्णेगभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो पोसिदो त्ति जं उत्तं होदि। मारणंतियपदेण सव्वलोगो पोसिदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं[1] ॥ ७९ ॥

वट्टमाणकालमस्सिदूण जधा खेत्ताणिओगद्दारस्स ओघम्हि एदेसिं चदुण्हं गुण-ट्ठाणाणं खेत्तपरूवणा कदा, तधा एत्थ वि सिस्ससंभालणट्ठं परूवणा कादव्वा; णत्थि कोइ विसेसो। अदीदकालमस्सिदूण जधा पोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि तीदाणागदकालेसु

वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि घनाकार लोकको आठवें भागसे कम तेतालीस ($४२\frac{७}{८}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा अधोलोकको साढ़े चौवीस ($२४\frac{१}{२}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग, अथवा ऊर्ध्वलोकको आठवें भागसे कम साढ़े अठारह ($१८\frac{३}{८}$) रूपोंसे विभक्त करने पर एक भाग प्रमाण होता है। अर्थात् उक्त तीनों ही पद्धतियोंसे क्षेत्र निकालने पर वही देशोन आठ राजु प्रमाण आ जाता है।

उदाहरण—(१) घनलोक- $३४३ \div \frac{३४३}{८} = ८$ राजु.

(२) अधोलोक- $१९६ \div \frac{४९}{२} = ८$ राजु.

(३) ऊर्ध्वलोक- $१४७ \div \frac{१४७}{८} = ८$ राजु.

इसप्रकार सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और नरलोक तथा तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुण-स्थानवर्ती पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

वर्तमानकालका आश्रय करके जैसी क्षेत्रानुयोगद्वारके ओघमें इन चारों गुणस्थानोंकी क्षेत्रप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी शिष्योंके संभालनेके लिए स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता नहीं है। अतीतकालका आश्रय करके जैसी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें अतीत और अनागत कालोंकी अपेक्षा इन चार गुणस्थान-

---

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षणिकषायान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८

एदेहि चदुगुणट्ठाणजीवेहि छुत्तखेत्तपरूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा, विसेसाभावा। णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उववादो णत्थि, उववादेण पंचमण-वचि-जोगाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ७७ ॥

एदेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं जधा पोसणाणिओगद्दारस्स ओघम्हि तिण्णि काले अस्सिदूण परूवणा कदा, तधा एत्थ वि कादव्वा। जदि एवं, तो सुत्ते ओघमिदि किण्ण परूविदं ? ण, तधा परूवणाए कायजोगाविणाभाविसजोगिचउव्विहसमुग्घादखेत्तपडिसेहफलत्तादो।

वर्ती जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है। विशेष बात यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें उपपादपद नहीं होता है, क्योंकि, उपपादके साथ पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है, अर्थात् उपपादमें उक्त योग संभव नहीं हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ७७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें तीनों कालोंका आश्रय करके जैसी स्पर्शनप्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी प्ररूपणा काययोगके अविनाभावी सयोगिकेवलीके चारों प्रकारके समुद्घातक्षेत्रके प्रतिषेध करनेके लिए है।

विशेषार्थ—यदि सूत्रमें 'असंखेज्जदिभागो' पदके स्थान पर 'ओघं' ऐसा पद दिया जाता तो केवल मनोयोगी और वचनयोगियोंका स्पर्शनक्षेत्र बताते समय, जो केवल काययोगके निमित्तसे ही केवलीके समुद्घात होता है जिसका कि स्पर्शनक्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है, उसका प्रतिषेध नहीं हो पाता; अर्थात् अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जाता। उसी अनिष्टापत्तिके प्रतिषेधके लिए सूत्रमें 'ओघं' पद न देकर 'असंखेज्जदिभागो' पद दिया है।

---

१ सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं' ॥ ७८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदकायजोगिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेसु सव्वलोगत्तुवलंभादो, विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, माणुसखेत्तादो असंखेज्जदिगुणत्तेण; अदीदकाले अट्ठ-चोद्दसभागत्तेण च तुल्लत्तुवलंभादो, सुत्तेण ओघमिदि उत्तं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ७९ ॥

एदेसिमेक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं तिविहं कालमस्सिदूण सत्थाणादिपदाणं परूवणा कीरमाणे पोसणाणिओगद्दारोघम्हि जधा तिविहकालमस्सिदूण एक्कारसण्हं गुणट्ठाणाणं सत्थाणादिपरूवणा कदा, तधा कादव्वा; णत्थि एत्थ कोवि विसेसो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ८० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥७८॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तीनों ही कालोंमें सर्वलोक पाया जाता है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रकी अपेक्षा, तथा अतीतकालमें आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनसे तुल्यता पाई जाती है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ७९ ॥

इन ग्यारह गुणस्थानोंकी तीनों कालोंको आश्रय करके स्वस्थानादि पदोंकी प्ररूपणा करने पर स्पर्शनानुयोगद्वारके ओघमें जिस प्रकारसे तीनों कालोंका आश्रय लेकर ग्यारह गुणस्थानोंकी स्वस्थानादि पदसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

काययोगी सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक है ॥ ८० ॥

---

१ काययोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स पुधारंभो किंफलो ? ण, सजोगिकेवलि-चत्तारिसमुग्घादा कायजोगाविणाभाविणो त्ति मंदमेहाविजणाववोहणफलत्तादो। एगजोगं कादूण ओघमिदि उत्ते वि ओघत्तण्णहाणुववत्तीदो कायजोगी वि चदुण्हं समुग्घादाणमत्थित्तं परिच्छिज्जदे चे, ण एस दोसो, ओघमिदि उत्ते इमाणि पदाणि अत्थि, इमाणि च णत्थि त्ति (ण) णव्वदे। जाणि संभवंति पदाणि तेसिं परूवणाओ ओघपरूवणाए तुल्ला त्ति एत्तियमेत्तं चेव णव्वदे। तेण पुध सुत्तारंभो कायजोगिम्हि चउव्विहसमुग्घादाणमत्थित्तपदुप्पायणफलो त्ति।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८१ ॥

दव्वट्ठियपरूवणाए ओघत्तं जुज्जदे। पज्जवट्ठियपरूवणाए पुण ओघत्तं णत्थि, ओरालियजोगे णिरुद्धे विहार-वेउव्वियपदाणमट्ठ-चोद्दसभागत्ताणुवलंभादो। तदो एत्थ भेदपरूवणा कीरदे- सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतियपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो। उववादो णत्थि, दोण्हं सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहा। वट्टमाणकाले

शंका — इस सूत्रके पृथक् आरम्भ करनेका क्या फल है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें दंड, कपाटादि चारों समुद्घात काययोगके अविनाभावी होते हैं, इस बातका मंदमेधावी जनोंको ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रका पृथक् निर्माण किया गया है, और यही सूत्रके पृथक् निर्माणका फल है।

शंका — पूर्वसूत्र और इस सूत्रका एक योग अर्थात् एक समास करके 'ओघ' ऐसा कहने पर भी ओघत्व-अन्यथानुपपत्तिसे काययोगी सयोगिकेवलीमें दंड-कपाटादि चारों समुद्घातोंका अस्तित्व जाना जाता है, फिर पृथक् सूत्र-निर्माणकी क्या उपयोगिता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'ओघ' ऐसा कहनेपर भी ये अमुक विवक्षित पद होते हैं, और ये अमुक पद नहीं होते हैं, ऐसा, विशेष नहीं जाना जाता है। किन्तु जो पद संभव हैं उनकी प्ररूपणाएं ओघप्ररूपणाके साथ समान होती हैं, इतनामात्र ही जाना जाता है। इसलिए पृथक् सूत्रका आरंभ काययोगी सयोगिकेवलीमें चारों प्रकारके समुद्घातोंका अस्तित्व प्रतिपादन करनेरूप फलके लिए है।

औदारिककाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८१ ॥

द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणामें तो ओघपना घटित होता है, किन्तु पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणामें ओघपना घटित नहीं होता है, क्योंकि, औदारिककाययोगके निरुद्ध करनेपर विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक पदोंके स्पर्शनका क्षेत्र आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग नहीं पाया जाता है। इससे यहांपर भेदप्ररूपणा की जाती है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और मारणान्तिकपदपरिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है। यहांपर उपपादपद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोग और उपपादपद, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है। वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत

वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तीदाणागदेसु तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो, वाउकाइय-वेउव्वियफोसणस्स पाधण्णविवक्खाए। विहारपरिणदेहि ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो ॥ ८२ ॥

एदस्स वट्टमाणकालसंबंधिसुत्तस्स खेत्ताणिओगद्दारे ओरालियकायजोगिसासण-सुत्तस्सेव परूवणा कादव्वा।

सत्त चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि सासणसम्मा-

---

उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। अतीत और अनागत, इन दोनों कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका संख्यातवां भाग, और नरलोक तथा तिर्यग्लोक, इन दोनों लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहां पर वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिकपद-सम्बन्धी स्पर्शनक्षेत्रकी प्रधानतासे विवक्षा की गई है। विहारवत्स्वस्थानपदसे परिणत औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। उन्हीं जीवोंने अतीतकाल और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८२ ॥

इस वर्तमानकालसम्बन्धी सूत्रकी क्षेत्रानुयोगद्वारमें कहे गये औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा करनेवाले सूत्रके समान स्पर्शनप्ररूपणा करना चाहिए।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम सात बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत

दिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। उववादो णत्थि। मारणंतियपरिणदेहि सत्त चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। केण ऊणा ? इसिपब्भारपुढवीए उवरिमबाहल्लेण।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्ताणिओगद्दारोरालियकायजोगसम्मामिच्छादिट्ठिसुत्तपरूवणाए तुल्ला। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि ओरालियसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतिय-उववादा णत्थि।

असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

....

सासादनसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है। मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—यहांपर कुछ कमसे कितना कम क्षेत्र समझना चाहिए ?

समाधान—ईषत्प्राग्भार पृथिवीके उपरिम भागके बाहल्यप्रमाणसे कुछ कम क्षेत्र समझना चाहिए।

औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८४ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रानुयोगद्वारमें वर्णित औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके क्षेत्रका वर्णन करनेवाले सूत्रकी प्ररूपणाके तुल्य है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

औदारिककाययोगी, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणद्धाए फोसिदो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ८६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सद्दसूचिदत्थो । मारणंतिय (-उववाद-) परिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदाणमुववादाभावादो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८७ ॥

एदेसिमट्ठण्हं गुणट्ठाणाणं तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूवणं कीरमाणे खेत्त-

....

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है ।

औदारिककाययोगी उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ८६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८७ ॥

इन आठों गुणस्थानोंकी तीनों ही कालोंका आश्रय करके स्पर्शनप्ररूपणा करनेपर

पोसणाणं मूलोघपमत्तादिपरूवणाए समाणा परूवणा कादव्वा । णवरि सजोगिकेवलिम्हि कवाड-पदर-लोगपूरणाणि णत्थि[1] । तं कधं णव्वदे ? सजोगिकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा फोसिदो त्ति सुत्तेण अणिद्दिट्ठत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि ओरालियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण ओघत्तमेदेसिं ण विरुज्झदे । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदाणमेत्थाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? होदु णाम

क्षेत्र और स्पर्शन अनुयोगद्वारके मूलोघ प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी प्ररूपणाके समान प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि सयोगिकेवली गुणस्थानमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, (क्योंकि, औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्घात ही होता है।)

शंका—यह कैसे जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिकेवलीके कपाट आदि तीन समुद्घात नहीं होते हैं ?

समाधान—'यह बात सयोगिकेवलियोंने लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है' इस सूत्रसे निर्दिष्ट नहीं की गई है। (अतः हम जानते हैं कि औदारिककाययोगी सयोगिजिनमें कपाटादि तीन समुद्घात नहीं होते हैं।)

विशेषार्थ—औदारिककाययोगकी अवस्थामें केवल एक दंडसमुद्घात ही होता है' कपाटसमुद्घात आदि नहीं। इसका कारण यह है कि कपाटसमुद्घातमें औदारिकमिश्रकाययोग, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्घातमें कार्मणकाययोग होता है, ऐसा नियम है। इसलिए यहां, औदारिककाययोगकी प्ररूपणा करते समय सयोगिकेवलीमें कपाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात नहीं होते हैं, ऐसा कहा है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ ८८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए ओघपना इन पदोंवाले जीवोंसे विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात, इन दो पदोंका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' पद नहीं देना चाहिए ?

समाधान—औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमु-

---

१ ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मिस्सं तु । पदरे य लोगपूरे कम्मेव य होदि णायव्वो ॥ गो. क. ५८७.

एदेसिं दोण्हं पि पदाणमभावो, तथावि पदसंखाविवक्खाभावा विज्जमाणपदाणं फोसणस्स ओघपदफोसणेण तुल्लत्तमत्थि त्ति ओघत्तं ण विरुज्झदे।

सासणसम्माइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८९ ॥

एदेसिं तिण्हं गुणट्ठाणाणं वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदओरालियमिस्ससासणसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? देव-णेरइयमणुस्स-तिरिक्खसासणसम्मादिट्ठीहि तिरिक्खमणुस्सेसुप्पज्जिय सरीरं घेत्तूण ओरालियमिस्सकायजोगेण सह सासणगुणमुव्वहंतेहि अदीदकाले संखेज्जंगुल-बाहल्लरज्जुपदरं मज्झिल्लसमुद्दवज्जं सव्वं जेण फुसिज्जदि तेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो त्ति वयणं जुज्जदे। एत्थ विहार-वेउव्विय-मारणंतिय-पदाणि णत्थि, एदेसिमोरालियमिस्सकायजोगेण सहअवट्ठाणविरोहा। उववादो पुण अत्थि, सासणगुणेण सह अक्कमेण

....

द्धात, इन दो पदोंका अभाव भले ही रहा आवे, तथापि पदोंकी संख्याकी विवक्षा न करनेसे उनमें विद्यमान पदोंके स्पर्शनकी ओघपदके स्पर्शनके साथ तुल्यता है ही, इसलिए ओघपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ८९ ॥

इन तीनों ही गुणस्थानोंके स्पर्शनकी वर्तमानकालिक प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्धात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा?

समाधान—चूंकि देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने (यथासंभव) तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शरीरको ग्रहण करके औदारिकमिश्रकाययोगके साथ सासादनगुणस्थानको धारण करते हुए अतीतकालमें बीचके समुद्रको छोड़कर संख्यात अंगुल बाहल्यवाले सम्पूर्ण राजुप्रतररूप क्षेत्रका स्पर्श किया है, इसलिए 'तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग' यह वचन युक्तियुक्त है।

यहां पर विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिक पद नहीं होते हैं, क्योंकि, इन पदोंका औदारिकमिश्रकाययोगके साथ अवस्थानका विरोध है। किन्तु उपपादपद होता है, क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ अक्रमसे (युगपत्) उपात्त भवशरीरके प्रथम समयमें

उववासभवसरीरपढमसमए उववादोवलंभा । मिच्छादिट्ठीणं पुण मारणंतिय-उववादपदाणि लब्भंति, अणंतो ओरालियमिस्सेइंदियअपज्जत्तरासी सट्ठाणे परट्ठाणे च वक्कमणोवक्कमणं करेमाणो लब्भदि त्ति । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि असंजदसम्मादिट्ठीहि ओरालियमिस्सकायजोगीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? ण, पुव्वं तिरिक्ख-मणुस्सेसु आउअं बंधिय पच्छा सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय बद्धाउवसेण भोगभूमिसंठाणअसंखेज्जदीवेसु उप्पण्णेहि भवसरीरग्गहणपढमसमए वट्टमाणेहि ओरालियमिस्सकायजोगअसंजदसम्मादिट्ठीहि अदीदकाले पोसिदतिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभा । कवाडगदेहि सजोगिकेवलीहि ओरालियमिस्सकायजोगे वट्टमाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदेण तिरियलोगादो संखेज्जगुणो पोसिदो । एत्थ कवाडखेत्तादो जगपदरुप्पायणविधाणं जाणिय वत्तव्वं ।

उपपाद पाया जाता है । मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी मारणान्तिक और उपपादपद पाये जाते हैं, क्योंकि, अनन्तसंख्यक औदारिकमिश्रकाययोगी एकेन्द्रिय अपर्याप्त राशि, स्वस्थान और परस्थानमें अपक्रमण और उपक्रमण करती हुई, अर्थात् जाती आती, पाई जाती है । स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषायसमुद्घात और उपपादपदपरिणत औदारिकमिश्रकाययोगी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंके उपपादक्षेत्रको तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पूर्वमें तिर्यंच और मनुष्योंमें आयुको बांधकर पीछे सम्यक्त्वको ग्रहण कर, और दर्शनमोहनीयका क्षय करके बांधी हुई आयुके वशसे भोगभूमिकी रचनावाले असंख्यात द्वीपोंमें उत्पन्न हुए, तथा, भव-शरीरके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान, ऐसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा अतीतकालमें स्पर्श किया गया क्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है ।

कपाटसमुद्घातको प्राप्त, औदारिकमिश्रकाययोगमें वर्तमान सयोगिकेवलियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकालकी अपेक्षासे तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर कपाटसमुद्घातगत क्षेत्रकी अपेक्षासे स्पर्शन-क्षेत्रसम्बन्धी जगप्रतरके उत्पादनका विधान जान करके कहना चाहिए । (इसके लिए देखो क्षेत्रप्ररूपणा पृ. ४९ आदि)।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं सुत्तं जेण वट्टमाणकाले पडिबद्धं तेणेदस्स वक्खाणे कीरमाणे जधा खेत्ताणिओगद्दारे वेउव्वियकायजोगिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि-बद्धसुत्तस्स वक्खाणं कदं, तधा एत्थ वि कायव्वं ।

अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ९१ ॥

सत्थाणसत्थाणपरिणद-वेउव्वियमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा । उववादो णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा, हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू । घणलोगमेगरूवस्स अट्ठ-तेरसभागूण-सत्तावीसरूवेहि खंडिदएगखंडं फोसंति त्ति वुत्तं होइ ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९० ॥

चूंकि यह सूत्र वर्तमानकालसे सम्बद्ध है, इसलिए इसका व्याख्यान करने पर जिस प्रकारसे क्षेत्रानुयोगद्वारमें वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिक जीवोंसे प्रतिबद्ध सूत्रका व्याख्यान किया है, उसी प्रकारसे यहां पर भी करना चाहिए।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह, और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श किये है ॥ ९१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिक-समुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पर्श किये हैं। यहां पर उपपादपद नहीं होता है, (क्योंकि, मिश्रयोग और कार्मणकाययोगके सिवाय अन्य योगोंके साथ उपपादपदका सहानवस्थानलक्षण विरोध है)। मारणान्तिकसमुद्घातपद-परिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) तेरह बटे चौदह (१३/१४) भाग स्पर्श किये हैं, जो कि मेरु-तलसे नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु जानना चाहिए। घनाकारलोकको एक रूपके आठ बटे तेरह (८/१३) भागसे कम सत्ताइस (२६ ५/१३) रूपोंसे खंडित (विभक्त) करने पर एक खंड प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श करते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाणपरिणदवेउव्वियकायजोगि-सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एत्थ तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागपरूवणं पुव्वं व वत्तव्वं । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा । उववादो णत्थि । मारणंतियपरिणदेहि बारह चोद्दसभागा फोसिदा । तेणोघमिदि जुज्जदे ।

सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ९३ ॥

जेणेदेसिं वट्टमाणपरूवणा खेत्तोघपरूवणाए तुल्ला, तेणोघं होदि । अदीदपरूवणा वि फोसणोघेण तुल्ला । तं जहा— सत्थाणसत्थाणपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । असंजद-

---

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघस्पर्शनके समान है ॥ ९२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान-पदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यहां पर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागकी प्ररूपणा पूर्वके समान ही करना चाहिए । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंसे परिणत वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । इनके उपपादपद नहीं होता है । मारणान्तिकसमुद्धातपदसे परिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । इसलिए सूत्रमें दिया गया ' ओघ ' यह पद युक्तिसंगत है ।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है ॥ ९३ ॥

चूंकि इन दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रसम्बन्धी ओघप्ररूपणाके तुल्य है, इसलिए उनकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके तुल्य होती है । अतीत-कालिक स्पर्शनप्ररूपणा भी ओघस्पर्शनप्ररूपणाके समान है । वह इस प्रकारसे है— स्वस्थान-स्वस्थानपदपरिणत वैक्रियिककाययोगी सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

सम्मादिट्ठिस्स उववादो णत्थि । सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादो णत्थि । तेणेत्थ वि ओघत्तमेदेसिं जुज्जदे ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदवेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि । सासणसम्मादिट्ठिस्स वि एवं चेव वत्तव्वं, वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणमसंखेज्जावासेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोट्ठहिय ट्ठिदे सासणाणमुप्पत्तिदंसणादो । असंजदसम्माइट्ठीहि सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, वाणवेंतर-जोदिसिय-

---

वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है । वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं । इसलिए यहां पर भी ओघपना बन जाता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, ये पद नहीं होते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी भी स्पर्शनप्ररूपणा इसी प्रकारसे कहना चाहिए । तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको व्याप्त करके स्थित वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके असंख्यात आवासोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि,

भवणवासिएसु एदेसिमुववादाभावा; सम्मादिट्ठिउववादपाओग्गसोधम्मादिउवरिमविमाणाणं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे चेव अवट्ठाणादो।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि आहारकायजोगिपमत्तसंजदेहि तीदे काले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। उववाद वेउव्वियं णत्थि। मारणंतिय-परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। आहारमिस्स-कायजोगिपमत्तसंजदेहि सत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९६ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-उववादपरिणदेहि मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु

वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और भवनवासी देवोंमें इनका, अर्थात् वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका, उपपाद नहीं होता है; सम्यग्दृष्टि जीवोंके उपपादके प्रायोग्य सौधर्मादि उपरिम विमानोंका तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें ही अवस्थान देखा जाता है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातपरिणत आहारककाययोगी प्रमत्त-संयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्य क्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है। आहारककाययोगियोंके उपपाद और वैक्रियिकपद नहीं होते हैं। मारणान्तिकपदपरिणत आहारककाययोगी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्तसंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है।

कार्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ९६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और उपपादपदपरिणत कार्मणकाययोगी मिथ्या-दृष्टि जीवोंने तीनोंही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' ऐसा

जेण सव्वलोगो फोसिदो, तेण सुत्ते ओघमिदि वुत्तं । एत्थ विहारवदिसत्थाण-वेउव्विय-मारणंतियपदाणि णत्थि ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा ॥ ९८ ॥

एत्थ उववादवदिरित्तसेसपदाणि णत्थि, कम्मइयकायजोगविवक्खादो । उववादे वट्टमाणा सासणा हेट्ठा पंच, उवरि छ रज्जूओ फुसंति त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसिदखेत्तं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९९ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०० ॥

पद कहा है । यहां, अर्थात् कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके, विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात, इतने पद नहीं होते हैं ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ९८ ॥

यहांपर उपपादपदको छोड़कर शेष पद नहीं हैं, क्योंकि, कार्मणकाययोगकी विवक्षा की गई है । उपपादपदमें वर्तमान सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मेरुके मूलभागसे नीचे पांच राजु और ऊपर अच्युतकल्पतक छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है ।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ९९ ॥

वर्तमानकालसे प्रतिसंबद्ध होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने तीनों कालोंकी अपेक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०० ॥

एत्थ वि उववादपदमेक्कं चेव। तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठिणो जेणुवरि छ रज्जूओ गंतूणुप्पज्जंति, तेण फोसणखेत्तपरूवणं छ-चोद्दसभागमेत्तं होदि। हेट्ठा फोसणं पंचरज्जु-पमाणं ण लब्भदे, णेरइयासंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसुववादाभावा।

सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा ॥ १०१ ॥

पदरगदकेवलीहि लोगस्स असंखेज्जा भागा फोसिदा, लोगपेरंतट्ठिदवादवलएसु अपविट्ठजीवपदेसत्तादो। लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलएसु वि पविट्ठजीव-पदेसत्तादो।

एवं जोगमग्गणा समत्ता।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०२ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

यहां पर भी केवल उपपादपदही होता है। तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चूंकि मेरुतलसे ऊपर छह राजु जाकरके उत्पन्न होते हैं, इसलिए स्पर्शनक्षेत्रकी प्ररूपणा छह बटे चौदह $\frac{6}{14}$ भाग प्रमाण होती है। मेरुतलसे नीचे पांच राजु प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र नहीं पाया जाता है, क्योंकि, नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०१ ॥

प्रतरसमुद्घातको प्राप्त केवलियोंने लोकके असंख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, लोकपर्यंत स्थित वातवलयोंमें केवली भगवान्‌के आत्मप्रदेश प्रतरसमुद्घातमें प्रवेश नहीं करते हैं। लोकपूरणसमुद्घातमें सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, लोकके चारों ओर व्याप्त वातवलयोंमें भी केवली भगवान्‌के आत्मप्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं।

इसप्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०२ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

---

१ वेदानुवादेन-स्त्रीपुंवेदैर्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १०३ ॥

सत्थाणत्थेहि मिच्छादिट्ठीहि अदीदकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एत्थ वाणवेंतर-जोदिसियावासे संखेज्जजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं च घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो साहेदव्वो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्ल-रज्जुपदरपरिब्भमणसत्तिजुत्तदेवित्थि-पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणमुवलंभादो। मारणंतिय-उववाद-परिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो, दुपदपरिणदमिच्छादिट्ठीणमगम्मपदेसाभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०४ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालपडिबद्धत्तादो।

अट्ठ णव चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०५ ॥

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १०३ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यहां पर वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके आवासोंको, तथा संख्यात योजन प्रमाण बाहल्यवाले राजुप्रतरको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग साधलेना चाहिए। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरप्रमाण क्षेत्रमें परिभ्रमणकी शक्तिसे युक्त देव स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि, मारणान्तिक और उपपाद, इन दोनों पदोंसे परिणत स्त्री और पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके अगम्यप्रदेशका अभाव है।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेके कारण इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टियोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह तथा नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०५ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणत्थेहि सासणसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, अदीदकालविवक्खादो । एत्थ वि पुव्वं व तिण्णि खेत्ताणि घेत्तूण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो दरिसेदव्वो । एसो 'वा' सद्दट्ठो । विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अट्ठ-रज्जुबाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे देवित्थि-पुरिससासणाणं गमणागमणं पडि पडिसेहाभावा । मारणंतियपरिणदेहि णव चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । हेट्ठा पंच रज्जू फोसणं किण्ण लब्भदे ? ण, णेरइएहिंतो इत्थि-पुरिसवेदे सासणाणं तिरिक्ख-मणुस्सेसु मारणंतियमेल्ल-माणाणमभावादो, तिरिक्खित्थि-पुरिसवेदसासणाणं णिरयगदिं मारणंतियं मेल्लमाणाणम-भावादो च । उववादपरिणदेहि एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । सुत्ते उववाद-फोसणं किण्ण वुत्तं ? ण, फोसणसुत्ते उववादविवक्खाभावा । णिरयादो आगच्छंतेहि पंच

उक्त दोनों वेदवाले स्वस्थानस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा है। यहांपर भी पूर्वके समान तीनों क्षेत्रोंको ग्रहण करके तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग दर्शाना चाहिए। यही सूत्रपठित 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घात-परिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाले राजुप्रतरके भीतर देव स्त्री और पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—मेरुतलसे नीचे पांच राजुप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नारकियोंसे स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यंचों और मनुष्योंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अभाव है; तथा नरकगतिके प्रति मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले स्त्री और पुरुषवेदी तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका भी अभाव है।

उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं।

शंका—सूत्रमें उपपादपदसम्बन्धी स्पर्शनका प्रमाण क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्पर्शनानुगमसम्बन्धी सूत्रमें उपपादपदकी विवक्षाका अभाव है।

नरकगतिसे आनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पांच राजु, और देवगतिसे आनेवाले जीवोंकी

रज्जू, देवेहिंतो आगच्छंतेहि छ रज्जू फोसिदा त्ति एक्कारह चोद्दसभागा फोसणखेत्तं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०६ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, वट्टमाणकालविवक्खादो।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ १०७ ॥

सत्थाणत्थेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, तीदकालविवक्खादो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि सम्मामिच्छाइट्ठीणं मारणंतियं णत्थि। उववादपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठीणं उववादो णत्थि। इत्थिवेदेसु असंजदसम्मादिट्ठीणं उववादो णत्थि।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १०८ ॥

अपेक्षा छह राजु स्पर्श किये गये हैं। इस प्रकार ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग उपपादका स्पर्शनक्षेत्र है।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०६ ॥

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०७ ॥

स्वस्थानस्थ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहां पर अतीतकालकी विवक्षा की गई है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घातपद नहीं होता है। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{६}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके उपपादपद नहीं होता है। स्त्रीवेदी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपपाद नहीं होता है।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १०८ ॥

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टिभिः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि, १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, विवक्खिदवट्टमाणकालत्तादो ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, विवक्खिदातीदकालत्तादो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खसंजदासंजदाणमुववादाभावा ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ११० ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । अदीदकाले एदेहि सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। पमत्तसंजदे तेजाहारपदाणं वि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि इत्थिवेदे तेजाहारं

वर्तमानकालकी विवक्षा होनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिए ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागतकालकी विवक्षासे कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर अतीतकालकी विवक्षा की गई है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर तिर्यंच संयतासंयत जीवोंका उपपाद नहीं होता है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११० ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्घातपरिणत इन्हीं उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है । प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, इन दोनों ही पदोंमें इसी प्रकारसे स्पर्शनक्षेत्र कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि स्त्रीवेदमें

---

१ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

णत्थि । मारणंतिय-परिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १११ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदणउंसयवेदमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु जेण सव्वलोगो फोसिदो; विहारपरिणदेहि तिसु वि कालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो त्ति; तेण ओघत्तं जुज्जदे । किंतु वेउव्वियपदस्स ओघभंगो ण होदि, तत्थ वेउव्वियपदं वट्टमाणकाले तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमदीदकाले उभयत्थ वि अट्ठ पंच चोद्दसभागा त्ति ? ण, पदविसेसविवक्खाभावेण ओघणिद्देसस्स विरोहाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११२ ॥

तैजस और आहारकसमुद्घात, ये दोनों पद नहीं होते हैं । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

नपुंसकवेदी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान सर्वलोक है ॥ १११ ॥

शंका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद, इन पदोंसे परिणत नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें चूंकि सर्वलोक स्पर्श किया है; तथा विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने तीनों ही कालोंमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; इसलिए सूत्रमें कहा गया ओघपना घटित हो जाता है । किन्तु वैक्रियिकपदका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, वहां पर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें (देखो पृ. १४८), वैक्रियिकपदका वर्तमानकालमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र, और अतीतकालमें दोनों ही स्थलोंपर, अर्थात् ओघप्ररूपणामें और आदेशप्ररूपणाके अन्तर्गत, वेदप्ररूपणामें आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) तथा पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पदविशेषकी विवक्षाका अभाव होनेसे सूत्रमें ओघपदका निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११२ ॥

---

१ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो ।

बारह चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ११३ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयसासणेहि तीदाणागदकालेसु तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, पहाणीकदतिरिक्खसासणरासित्तादो । उववादपरिणदेहि एक्कारह चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, णवुंसगवेदतिरिक्खसासणेसुप्पज्जमाणदेव-णेरइयाणं छ-पंचरज्जुबाहल्लतिरियपदरफोसणोवलंभादो । मारणंतिय-परिणदेहि बारह चोद्दसभागा फोसिदा, णेरइय-तिरिक्खाणं पंच-सत्तरज्जुबाहल्लरज्जुपदरफोसणोवलंभादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११४ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसयवेदसम्मामिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणम-

---

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११३ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहांपर तिर्यंच सासादन जीवराशिकी प्रधानता है । उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह ($\frac{११}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नपुंसकवेदी तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंकी अपेक्षा छह राजु, और नारकियोंकी अपेक्षा पांच राजु, इसप्रकार मिलकर ग्यारह राजु बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने बारह बटे चौदह ($\frac{१२}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, नारकियोंके पांच राजु और तिर्यंचोंके सात राजु, इसप्रकार बारह राजु बाहल्यवाला राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११४ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियरासिस्स पाधण्णादो । मारणंतिय-उववादा णत्थि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा ।

छ चोद्दसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि णवुंसगवेद-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो । एसो 'वा' सद्दट्ठो । मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अच्चुदकप्पादो उवरि तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणं गमणाभावा । उववादपदं णत्थि । णवरि असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ११७ ॥

....

संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, यहांपर तिर्यंचराशिकी प्रधानता है । यहांपर मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं ।

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ ११५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागतकालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ ११६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । यह 'वा' शब्दका अर्थ है । मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं; क्योंकि, अच्युतकल्पसे ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है । यहांपर उपपादपद नहीं होता है । विशेष बात यह है कि उपपादपदपरिणत असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

उक्त नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ११७ ॥

पमत्ते तेजाहाराभावादो ओघत्तं ण जुज्जदे ? ण, सुत्ते पदविवक्खाए विणा सामण्णणिद्देसादो । सेसं चिंतिय वत्तव्वं ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ११८ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणादीदकालपरूवणा ओघादो ण भिज्जदि त्ति सुत्ते ओघमिदि भणिदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ११९ ॥

एगजोगो किण्ण कदो ? ण, पुव्वखेत्तेण सजोगिखेत्तस्स अदीद-वट्टमाणकालेसु तुल्लत्ताभावादो एगजोगत्ताणुववत्तीए । एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो सुगमो त्ति ण किंचि वुच्चदे ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

शंका — प्रमत्त गुणस्थानमें नपुंसकवेदी जीवोंके तैजस और आहारकसमुद्घातका अभाव होनेसे सूत्रोक्त ओघपना नहीं घटित होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, सूत्रमें उक्त दोनों पदविशेषोंकी विवक्षाके विना सामान्य निर्देश किया गया है ।

शेष पदोंका स्पर्शनक्षेत्र विचार करके कहना चाहिए ।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमान और अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा ओघस्पर्शनप्ररूपणासे भिन्न नहीं है, इसलिए सूत्रमें 'ओघ' यह पद कहा है ।

अपगतवेदी सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ ११९ ॥

शंका — ऊपरके सूत्रका और इस सूत्रका, अर्थात् दोनों सूत्रोंका, एक योग (समास) क्यों नहीं किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, प्रमत्तसंयतादिके क्षेत्रसे सयोगिकेवलीके क्षेत्रके अतीत और वर्तमानकालमें समानताका अभाव होनेसे एकयोगपना नहीं बन सकता है ।

इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, इसलिए विशेष कुछ भी नहीं कहा जाता है ।

इसप्रकारसे वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ अपगतवेदानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ १२० ॥

एदस्स सुत्तस्स अदीद-वट्टमाणकाले अस्सिदूण परूवणे कीरमाणे फोसणमूलोघादो ण केण वि अंसेण भिज्जदि त्ति ओघमिदि सुत्तवयणं सुट्ठु संबद्धं। तदो मूलोघपरूवणं सुट्ठु संभालिय एत्थ सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो।

लोहगयविसेसावबोहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदे—

णवरि लोभकसाईसु सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥१२१॥

कुदो? ओघसुहुमसांपराइयउवसम-खवगेहिंतो एदेसिं विसेसाभावा। सो च विसेसाभावो सिस्साणं सण्णिदरिसेयव्वो।

अकसाईसु चदुट्ठाणमोघं ॥ १२२ ॥

....

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२० ॥

इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालको आश्रय करके प्ररूपणा करनेपर स्पर्शनानुयोगद्वारकी मूल ओघप्ररूपणासे किसी भी अंशसे भेद नहीं है, इसलिए 'ओघ' ऐसा सूत्रवचन सुसम्बद्ध है। अतएव मूल ओघप्ररूपणाको भलेप्रकार संभाल करके यहांपर शिष्योंको प्रतिबोधित करना चाहिए।

अब लोभकषायगत विशेषताके अवबोधनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ॥ १२१ ॥

क्योंकि, ओघनिरूपित सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपकोंसे कषायमार्गणाकी दृष्टिसे प्ररूपित इन जीवोंके कोई विशेषता नहीं है। वह विशेषताका अभाव शिष्योंके लिए भलीभांति दिखाना चाहिए।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवालोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२२ ॥

....

१ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८

२ अकषायाणां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

णामेगदेसग्गहणे वि णामिल्लसंपच्चओ होदि त्ति चदुट्ठाणसद्देण वीदरागाणं चदुण्हं गुणट्ठाणाणं गहणं होदि। तेसिं परूवणा सुगमा, ओघसमाणत्तादो।

एवं कसायमग्गणा समत्ता।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १२३ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदमदि-सुदअण्णाणिमिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहार-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा, तेण ओघमिदि जुज्जदे।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १२४ ॥

ओघो जेण अणेयपयारो मिच्छादिट्ठिओघादिभेदेण, तेण कस्सोघस्स एत्थ गहणं होदि त्ति ण णव्वदे ? जेणोघेण सासणसम्मादिट्ठीणं पगरिसेण पच्चासत्ती अत्थि, तस्सेव

'किसी भी नामके एक देशके ग्रहण करनेपर भी नामवालोंका सम्प्रत्यय हो जाता है' इस न्यायके अनुसार 'चतुःस्थान' शब्दसे उपशान्तकषाय आदि वीतरागी चारों गुणस्थानोंका ग्रहण हो जाता है। उनके स्पर्शनकी प्ररूपणा ओघके समान होनेसे सुगम है।

इसप्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२३ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद-परिणत मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है, तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातपदपरिणत जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, इसलिए सूत्रोक्त 'ओघ' यह वचन घटित हो जाता है।

उक्त दोनों प्रकारके अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२४ ॥

शंका—चूंकि, मिथ्यादृष्टि-ओघ, सासादनसम्यग्दृष्टि-ओघ, आदिके भेदसे ओघ अनेक प्रकारका है, इसलिए यहांपर किस ओघका ग्रहण किया जा रहा है, यह नहीं जाना जाता है ?

समाधान—जिस ओघके साथ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, उसका ही ग्रहण यहांपर किया जा रहा है।

---

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

गहणं। केण सह एत्थ पुण पगरिसेण पच्चासत्ती विज्जदे ? सासणसम्मादिट्ठिस्स ओघेण। वट्टमाणकाले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो सगसव्वपद-खेत्तुवलंभादो। तीदे काले वि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागस्स, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागस्स, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणस्स; विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्विय-पदेसु अट्ठ चोद्दसभागमेत्तस्स, मारणंतिय-उववादपदेसु बारमेक्कारस-चोद्दसभागखेत्तस्सुवलंभादो। एदमत्थपदं सव्वत्थ वत्तव्वं।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १२५ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधित्तादो।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १२६ ॥

सत्थाणपरिणदेहि विभंगणाणमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो 'वा'

शंका—तो यहांपर किस ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है ?

समाधान—सासादनगुणस्थानके ओघके साथ प्रकर्षतासे प्रत्यासत्ति है, क्योंकि, वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा अपने सर्वपदोंका स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। अतीतकालमें भी स्वस्थानपदकी अपेक्षा सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा; तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक-पदोंमें आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भागमात्र; तथा मारणान्तिक और उपपाद, इन दो पदोंमें क्रमशः बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) और ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनका क्षेत्र पाया जाता है। यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिए।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १२५ ॥

वर्तमानकालसे सम्बन्ध होनेके कारण इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

विभंगज्ञानी जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १२६ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदसे परिणत विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना,

---

१ विभंगज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः, सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

सहट्ठो। विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहिं अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा; मारणंतियपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। सेसं सुगमं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[१] ॥ १२७ ॥

कुदो? वट्टमाणकाले सगसव्वपदाणं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; तीदे काले सत्थाणस्स तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तेण, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तेण; विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं देसूण-अट्ठ-चोद्दसभागत्तेण मारणंतियस्स देसूण-बारह-चोद्दसभागत्तेण, ओघसासणसम्मादिट्ठिखेत्तेण सरिसत्तुवलंभादो। कधं सारिच्छे एगत्तं? ण, दव्वट्ठियणयणिबंधणववहाराणं सरिसे वि एगत्तालंबणाणमुवलंभा।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[२] ॥ १२८ ॥

कषाय, और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्धातपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। शेष अर्थ सुगम है।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२७ ॥

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान होनेका कारण यह है कि वर्तमानकालमें स्वकीय सर्वपदोंके स्पर्शनक्षेत्रकी सामान्यलोक आदि चार लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणितक्षेत्रसे; अतीतकालमें स्वस्थानस्वस्थानपदका सामान्यलोक आदि तीन लोकोंके असंख्यातवें भागसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागसे, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणित क्षेत्रसे, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकसमुद्धात, इन पदोंका कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भागसे, और मारणान्तिकसमुद्धातका कुछ कम बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भागकी अपेक्षा, ओघप्ररूपित सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके स्पर्शनक्षेत्रके साथ सदृशता पाई जाती है।

शंका—सादृश्यमात्र होनेपर सूत्रमें 'ओघ' पद द्वारा एकत्व कैसे कहा जा रहा है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयनिबन्धनक व्यवहारोंकी सदृशता होनेपर भी एकत्वावलम्बी व्यवहार पाये जाते हैं।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२८ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, मूलोघम्हि वित्थरेण परूविदत्तादो। तत्थ णाण-विसेसणेण विणा सामण्णेण परूविदमिदि चे ण, सामण्णेण परूविदे वि सा मदि-सुदणाण-परूवणा चेय, मदि-सुदणाणवदिरित्तछदुमत्थसम्मादिट्ठीणमणुवलंभा। ओधिणाणविरहिद-सम्मादिट्ठीणमुवलंभा ओधिणाणस्स ओघत्तं ण जुज्जदे चे ण, एत्थ दव्वपमाणेण अहियारा-भावा। ओघअसंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणेहि ओधिणाणअसंजदसम्मादिट्ठिआदिफोसणाणं सरिसत्तुवलंभादो ओधिणाणस्स ओघत्तं जुज्जदे चेय।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ १२९ ॥

अदीद-वट्टमाणकाले सव्वपदाणमोघसव्वपदेहि सरिसत्तुवलंभादो एत्थ वि ओघत्तं जुज्जदे।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ १३० ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, मूलोघमें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है।

शंका—उस मूलोघ स्पर्शनप्ररूपणामें तो ज्ञानमार्गणारूप विशेषणके विना सामा-न्यसे ही कथन किया गया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सामान्यसे प्ररूपित होनेपर भी वह मतिज्ञान और श्रुत-ज्ञानकी ही प्ररूपणा है, क्योंकि, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानसे रहित छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं।

शंका—अवधिज्ञानसे रहित सम्यग्दृष्टि जीव तो पाये जाते हैं; इसलिए अवधिज्ञानके ओघपना नहीं घटित होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर द्रव्यप्रमाणके अधिकार या प्रकरणका अभाव है। ओघ असंयतसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंके स्पर्शनक्षेत्रके साथ अवधिज्ञानी असंयतसम्य-ग्दृष्टि आदिकोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंकी सदृशता पाये जानेसे अवधिज्ञानके ओघपना घटित हो ही जाता है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुण-स्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १२९ ॥

अतीत और वर्तमानकालमें मनःपर्ययज्ञानियोंमें संभवित सर्वपदोंके स्पर्शनकी ओघ-वर्णित सर्वपदोंके स्पर्शनके साथ सदृशता पाई जानेसे यहां पर भी ओघपना युक्तिसंगत है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३० ॥

एदस्स अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो, केवलणाणवदिरित्तसजोगिकेवलीणमभावा ओघसजोगिपरूवणाणं पडि सामण्णा ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ १३१ ॥

एदस्स वि अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो । पुध सुत्तारंभो किमट्ठो ? ण, सजोगि-अजोगिकेवलीणं वट्टमाणादीदकालेण पच्चासत्तीए अभावादो एगजोगत्ताणुववत्तीए ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १३२ ॥

एत्थ ओघपरूवणादो ण को वि[2] भेदो अत्थि, विवक्खिदसंजमसामण्णादो । ण च संजमसामण्णविरहिदा संजदा अत्थि, तेसिमसंजदत्तप्पसंगादो ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १३३ ॥

....

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है । दूसरी बात यह भी है कि केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवलियोंके अभाव होनेसे ओघवर्णित सयोगिजिनोंकी प्ररूपणाओंके प्रति समानता है ।

केवलज्ञानियोंमें अयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३१ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है ।

शंका—तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सयोगी और अयोगिकेवलियोंके वर्तमान और अतीतकालके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे एक योगपना बन नहीं सकता था, अतः पृथक् सूत्रारंभ किया गया है ।

इसप्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥१३२॥

यहांपर ओघप्ररूपणासे कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि, संयमसामान्यकी विवक्षा है । और संयमसामान्यसे रहित संयत होते नहीं हैं । यदि संयमके विना भी संयमी होने लगें, तो फिर असंयतपनेका प्रसंग प्राप्त हो जायगा ।

संयतोंमें सयोगिकेवलीका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३३ ॥

....

१ संयमानुवादेन संयतानां सर्वेषां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' को थि ' म प्रतौ ' को छि ' इति पाठः ।

पुध सुत्तारंभो किमट्ठो ? ण, पुव्विल्लेहि सह फोसणेण पच्चासत्तिअभावप्पदंसण-फलत्तादो । सेसं सुगमं ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ १३४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगममिदि ण एत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३५ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो; मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो तीदे काले फोसिदो । पमत्ते तेजाहारं णत्थि, लद्धीए उवरि लद्धीणमभावा ।

शंका— तो फिर पृथक् सूत्रका आरंभ किसलिए किया गया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंके स्पर्शनके साथ सयोगिकेवलीके स्पर्शनसे प्रत्यासत्तिके अभावका प्रदर्शन करना ही पृथक् सूत्रका फल है ।

शेष अर्थ सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, इसलिए यहांपर कुछ भी वक्तव्य नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद परिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग; तथा मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है । विशेष बात यह है कि प्रमत्तगुणस्थानमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं, क्योंकि, लब्धिके ऊपर दूसरी लब्धियां नहीं होती हैं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइय-उवसमा खवा ओघं ॥ १३६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, ओघम्हि परूविदत्तादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ १३७ ॥

चदुण्हं ट्ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी; सा ओघं भवदि, जहाक्खादसंजदचदुगुणट्ठाणाणं परूवणा ओघसरिसा त्ति जं वुत्तं होदि ।

संजदासंजदा ओघं[1] ॥ १३८ ॥

संजमाणुवादेण संजमासंजम-असंजमाणं कधं गहणं होदि ? एसो संजमाणुवादो ण संजममेव परूवेदि, किंतु संजमं संजमासंजममसंजमं च । तेणेदेसिं पि गहणं होदि । जदि एवं, तो एदिस्से मग्गणाए संजमाणुवादववदेसो ण, जुज्जदे ? ण, अंब-णिंबवणं व पाधण्णपदमासेज्ज संजमाणुवादववदेसजुत्तीए । सेसं सुगमं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

यथाख्यातविहारविशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३७ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतुःस्थानी कहते हैं । उन चारों गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणा ओघके समान होती है । अर्थात्, यथाख्यातसंयमवाले अन्तिम चार गुणस्थानोंकी प्ररूपणा ओघके सदृश होती है, ऐसा कहा गया समझना चाहिए ।

संयतासंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३८ ॥

शंका—संयममार्गणाके अनुवादसे संयमासंयम और असंयम, इन दोनोंका ग्रहण कैसे होता है ?

समाधान—संयममार्गणाके अनुवादसे न केवल संयमका ही ग्रहण होता है, किन्तु संयम, संयमासंयम और असंयमका भी ग्रहण होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो इस मार्गणाको संयमानुवादका नाम देना युक्त नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'आम्रवन' वा 'निम्बवन' के समान प्राधान्यपदका आश्रय लेकर 'संयमानुवादसे' यह व्यपदेश करना युक्तियुक्त हो जाता है ।

शेष सूत्रका अर्थ सुगम ही है ।

---

१ × × संयतासंयतानां × × सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[1] ॥ १३९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघम्हि मिच्छादिट्ठिआदिचदुगुणट्ठाणपरूवणाण परूविदत्तादो।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १४० ॥

एदं सुत्तं सुगमं खेत्ताणिओगद्दारे उत्तट्ठादो ।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १४१ ॥

सत्थाणत्थेहि चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि देसूणट्ठ चोद्दसभागा; मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो ।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती असंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघमें मिथ्यादृष्टि आदि चारगुणस्थानोंकी प्ररूपणाओंका निरूपण किया गया है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है ।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १४१ ॥

स्वस्थानस्थ चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

---

१ × × असंयतानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायान्तानां पंचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ १४२ ॥

ओघसासणसम्मादिट्ठिआदिसयलगुणट्ठाणेहिंतो चक्खुदंसणिसासणसम्मादिट्ठिआदिगुणट्ठाणाणं ण कोत्ति[1] भेदो, चक्खुदंसणवदिरित्तसासणादिगुणट्ठाणाणमभावादो। तेण ओघमिदि सुट्ठु जुज्जदे।

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ १४३ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, ओघम्हि वित्थरेण परूविदत्तादो। ण च ओघपरूविदमिच्छादिट्ठिआदिखीणकसायपज्जंतगुणट्ठाणाणि अचक्खुदंसणविरहिदाणि अत्थि, तधाणुवलंभादो। तेणेदेसिं सव्वेसिं पि ओघत्तं जुज्जदे।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[3] ॥ १४४ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४२ ॥

ओघ सासादनसम्यग्दृष्टि आदि सकल गुणस्थानोंसे चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि आदि समस्त गुणस्थानोंके स्पर्शनसम्बन्धी क्षेत्रोंका कोई भेद नहीं है; क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है। इसलिए 'ओघ' यह पद भली भांति घटित हो जाता है।

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती अचक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्ररूपणामें विस्तारसे प्ररूपण किया जा चुका है। और ओघप्ररूपित मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थान अचक्षुदर्शनसे विरहित हैं नहीं; क्योंकि, ऐसा देखनेमें नहीं आता। इसलिए इन सभी गुणस्थानोंके ओघपना युक्तिसंगत है।

अवधिदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ प्रतिषु 'कोत्थि' इति पाठः।

२ अचक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां ×× सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

३ अवधि-केवलदर्शनिनां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १,

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठी ओघं[१] ॥ १४६ ॥

जेण सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सिय-मिच्छादिट्ठीहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो, विहारपरिणदेहि अदीद-वट्टमाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; वट्टमाणकाले वेउव्वियपरिणदेहि (तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,) तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; अदीदे पंच चोद्दसभागा पोसिदा; तेण ओघत्तं जुज्जदे । विहार-वेउव्वियपदेसु देसूणट्ठ-चोद्दसभागपोसणखेत्ताभावा ओघत्तं ण घडदे इदि पच्चवट्ठाणं ण कायव्वं, सुत्ते पदविसेसाभावा । सव्वलोगत्तमेत्तेण सरिसत्तमालोविय ओघत्तुववत्तीए ।

केवलदर्शनी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १४६ ॥

चूंकि स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्व लोक स्पर्श किया है; विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत उक्त जीवोंने अतीत और वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, तथा वर्तमानकालमें वैक्रियिकपदपरिणत उक्त जीवोंने (सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,) तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; तथा अतीतकालमें उक्त जीवोंने पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं; इसलिए ओघपना बन जाता है ।

शंका—विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात, इन दो पदोंमें देशोन आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके अभाव होनेसे ओघपना घटित नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि, सूत्रमें पदविशेषकी विवक्षाका अभाव है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रकी सदृशताको देखते हुए ओघपना बन जाता है ।

---

१ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८. फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं । गो. जी. ५४५.

सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १४७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगो, अल्लीणवट्टमाणत्तादो ।

पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १४८ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । देवे मोत्तूण णेरइय-अपज्जत्तभवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-तिरियतिरिक्खेसु[2] चेव एदस्स खेत्तस्सुवलंभादो तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तमुववण्णं । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणेहि जहाकमेण देसूणा पंच चत्तारि वे चोद्दसभागा पोसिदा । णेरइएहिंतो तिरिक्खेसु उप्पज्जमाणसासणे पेक्खिदूण एसा फोसणपरूवणा कदा । देवेहिंतो एइंदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणसासणखेत्ते गहिदे

उक्त तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४७ ॥

वर्तमानकालको व्याप्त करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है ।

तीनों अशुभलेश्याओंवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह, चार बटे चौदह और दो बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । कल्पवासी देवोंको छोड़कर नारकी, अपर्याप्त भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिष्कदेव तथा तिर्यग्लोकवर्ती तिर्यंचोंमें ही यह उक्त क्षेत्र पाया जानेसे तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका कथन युक्तिसंगत है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत छठी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्यावाले जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{५}{१४}$) भाग, नीललेश्यावाले पांचवीं पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम चार बटे चौदह ($\frac{४}{१४}$) भाग, और कापोतलेश्यावाले तीसरी पृथिवीके नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम दो बटे चौदह ($\frac{२}{१४}$) भाग स्पर्श किये हैं । नारकियोंसे तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे यह स्पर्शनप्ररूपणा की गई है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि., १, ८.

२ क प्रतौ ' तिरिय ' इति पाठो नास्ति ।

पुव्विल्लखेत्तेण सह जहाकमेण वारस-एक्कारस-णव-चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, देवाणमप्पणो आउवचरिमसमओ त्ति पुव्विल्लतेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं विणासाभावा। किण्ह-णील-काउलेस्सियतिरिक्ख-मणुससासणाणमेइंदिएसु मारणंतियं मेल्लमाणाणं सत्त चोद्दसभागा उवरि लब्भंति त्ति हेट्ठिल्लखेत्तेहि सह बारसेक्कारस-णव-चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, तिरिक्ख-मणुसउवसमसम्माइट्ठीणं उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे सुट्ठु संकिलिट्ठाणं पि संजदासंजदाणं व किण्ह-णील-काउलेस्साओ ण होंति त्ति गुरूवदेसंतरजाणावणट्ठं तहाणुवदेसादो। देवेसु तिरिक्खगईए उववण्णेसु उववादस्स एक्कारस-दस-अट्ठ-चोद्दसभागमेत्तखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, किण्ह-णील-काउलेस्साहि सह अच्छिऊण पच्छा ताहि सह उववादाभावादो। ण च लेस्सा उववादसमाणकालभाविणी मग्गणा होइ,

....

शंका—देवोंसे एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले जीवोंके सासादन गुणस्थानसम्बन्धी क्षेत्रके ग्रहण करनेपर पूर्वोक्त क्षेत्रके साथ यथाक्रमसे बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग, और नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—ऐसी शंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं पाया जाता है, क्योंकि, देवोंके अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त अपनी पूर्ववर्ती तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंका विनाश नहीं होता है, इसलिए उक्त प्रकारका क्षेत्र नहीं कहा गया।

शंका—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंके सात बटे चौदह ($\frac{7}{14}$) भाग तो ऊपर स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है, इसलिए उसे अधस्तन उक्त क्षेत्रोंके साथ ग्रहण करने पर बारह बटे चौदह ($\frac{12}{14}$) भाग, ग्यारह बटे चौदह ($\frac{11}{14}$) भाग और नौ बटे चौदह ($\frac{9}{14}$) भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अत्यन्त संक्लेशको प्राप्त हुए भी तिर्यंच और मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके संयतासंयतोंके समान कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं नहीं होती हैं, इस प्रकारका एक दूसरा गुरुका उपदेश है, यह बात बतलानेके लिए वैसा उपदेश नहीं दिया है।

शंका—तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें उपपादपदका ग्यारह बटे चौदह, दश बटे चौदह और आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उन्हींके साथ उपपाद नहीं पाया जाता है।

विशेषार्थ—देवोंमें तीनों अशुभलेश्याएं अपर्याप्तकालमें ही होती हैं। पीछे नियमसे

आधेयपुव्वुत्तरकालेसु असंतीए आहारत्तविरोहादो। तम्हा सुत्तुत्तमेव होदु, णिरवज्जत्तादो।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १४९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण कसाय-

शुभलेश्या हो जाती है। अतएव कृष्ण, नील और कापोतलेश्याके साथ रहनेवाले देवोंके उपपादका अभाव बतलाया, क्योंकि, देवोंका मरण न तो अपर्याप्तकालमें ही होता है और न पूरी आयुके समाप्त हुए विना ही। अतः यह कहना युक्तिसंगत ही है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ रहकर पीछे उपपाद नहीं होता है।

दूसरी बात यह है कि लेश्यामार्गणा उपपाद-समान-कालभाविनी नहीं है, क्योंकि, आधेयरूप पूर्व और उत्तर कालोंमें अविद्यमान लेश्याके आधारपनेका विरोध है। इसलिए सूत्रोक्त ही स्पर्शनक्षेत्रका प्रमाण होना चाहिए, क्योंकि, वही प्रमाण निर्दोष पाया जाता है।

विशेषार्थ— यहांपर लेश्यामार्गणा उपपाद-समानकाल-भाविनी नहीं है, ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकारसे विवक्षित जीवके पूर्व भवको छोड़नेके पश्चात् उत्तर भवको ग्रहण करनेके साथ ही गति, योग, आहार आदि यथासंभव कितनी ही मार्गणाएं परिवर्तित हो जाती हैं, उस प्रकार लेश्यामार्गणा परिवर्तित नहीं होती है। इसका कारण यह है कि जीव जिस लेश्यासे मरण करता है उसी लेश्यासे ही उत्पन्न होता है, ऐसा एकान्त नियम है। और इसी नियमके कारण भवनत्रिक देवोंके अपर्याप्तकालमें तीन अशुभ लेश्याओंका अस्तित्व माना गया है। इसी बातको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया गया है, उसका भी अभिप्राय यही है कि यदि उपपाद होनेके साथ ही लेश्याके परिवर्तनका नियम अवश्यंभावी होता, तो मरण करनेके पूर्वकालमें और उत्तरकालमें विवक्षित लेश्याके परिवर्तित हो जानेसे आधार-आधेयपना बन जाता, अर्थात्, मरणकाल और उपपादकालरूप पूर्वोत्तरकाल आधेय बन जाते और उनमें होनेवाली लेश्या आधार बन जाती। किन्तु भव-परिवर्तनके हो जाने पर भी लेश्यापरिवर्तन होता नहीं है; इसलिए कहा गया है कि आधेय-रूप पूर्व और उत्तर कालोंमें विवक्षित लेश्याका परिवर्तन न होनेसे आधारपना नहीं बन सकता है।

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तीनों अशुभलेश्यावाले

१ सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

वेउव्वियपरिणदेहि तिलेस्सियसम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,) अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो । कुदो ? पहाणीकयतिरिक्खरासित्तादो । मारणंतिय-उववादपरिणदेहि किण्ह-णीललेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठीहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, छट्ठ-पंचमपुढवीहिंतो माणुसेसु आगच्छमाणअसंजदसम्मादिट्ठीणं पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभपंच-चत्तारिरज्जुआयदखेत्तुवलंभादो । मारणंतिय-उववादपरिणदकाउलेस्सियअसंजदसम्मादिट्ठीहिं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, काउलेस्साए सह असंखेज्जेसु दीवेसु पढमपुढवीए च उप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिछुत्तखेत्तग्गहणादो ।

तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[२] ॥ १५० ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा, अदीणवट्टमाणत्तादो ।

....

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, (तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग,) और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, यहांपर तिर्यंच राशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कृष्ण और नीललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, छठी और पांचवीं पृथिवीसे मनुष्योंमें आनेवाले क्रमशः कृष्ण और नील लेश्याके धारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पैंतालीस लाख योजनप्रमाण विष्कम्भवाला, छठी पृथिवीकी अपेक्षा पांच राजु और पांचवीं पृथिवीकी अपेक्षा चार राजु आयत (लम्बा) स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । इसका कारण यह है कि यहांपर कापोतलेश्याके साथ असंख्यात द्वीपोंमें और प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंसे स्पर्शित क्षेत्रका ग्रहण किया गया है ।

तेजोलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

वर्तमानकालको ग्रहण करनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

....

१ म प्रतौ ' णील-काउ ' इति पाठः ।

२ तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । स. सि. १, ८.

अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५१ ॥

सत्थाणपदपरिणदेहि तेउलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो[1]। एसो 'वा' सद्दट्ठो। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ-चोद्दस-भागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि णव-दिवड्ढ-चोद्दसभागा पोसिदा[2]।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[3] ॥ १५२ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५३ ॥

सत्थाणपरिणदेहि दोगुणट्ठाणजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

....

तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५१ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपदपरिणत तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। यह 'वा' शब्दका अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदसे परिणत जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{८}{१४}$) भाग, मारणान्तिकसमुद्घातपरिणत उक्त जीवोंने नौ बटे चौदह ($\frac{९}{१४}$) भाग और उपपाद-पदपरिणत उन्हीं जीवोंने डेढ़ बटे चौदह ($\frac{३}{२८}$) भाग स्पर्श किये हैं।

तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनों गुणस्थानवर्ती तेजोलेश्यावाले जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

....

१ तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु। अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो. जी. ५४६.

२ एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूणं। उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥ गो. जी. ५४७.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो। विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देसूण-अट्ठचोद्दसभागा। उववादपरिणदेहि दिवड्ढ-चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि। सणक्कुमार-माहिंदे तेउलेस्सा अत्थि त्ति उववादस्स देसूण-तिण्णि-चोद्दसभागा किण्ण होंति? ण, सोधम्मीसाणादो संखेज्जाणि चेव जोयणाणि गंतूण सणक्कुमार-माहिंदकप्पपारंभो होदूण दिवड्ढ-रज्जुम्हि परिसमत्तीदो। तस्सुवरिमपेरंते तेउलेस्सिया किण्ण होंति? ण, तस्स हेट्ठिम-विमाणे चेव तेउलेस्सासंभवोवदेसा।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदि-भागो[1] ॥ १५४ ॥

एदस्स परूवणा खेत्तभंगा, वट्टमाणकालसंबंधादो।

दिवड्ढ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५५ ॥

संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह ($\frac{3}{28}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

शंका—सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें तेजोलेश्या होती है, इसलिए उपपादका देशोन तीन बटे चौदह ($\frac{3}{14}$) भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म और ईशानकल्पसे संख्यात योजन ही ऊपर जाकर सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्प प्रारम्भ होकर डेढ़ राजुपर समाप्त हो जाता है।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्रकल्पके उपरिम विमानके अन्ततक तेजोलेश्यावाले जीव क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस कल्पके अधस्तन विमानोंमें ही तेजोलेश्याके होनेका उपदेश पाया जाता है।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५४ ॥

वर्तमानकालसे सम्बद्ध होनेसे इस सूत्रकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है।

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५५ ॥

---

१ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदतेउलेस्सियसंजदा-संजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि दिवड्ढ-चोद्दसभागा पोसिदा। उववादो णत्थि।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं[1] ॥ १५६ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि परूविदत्तादो।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, खेत्तम्हि उत्तत्थादो।

अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १५८ ॥

सत्थाणपरिणदपम्मलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असं-

---

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने (कुछ कम) डेढ़ बटे चौदह ($\frac{3}{28}$) भाग स्पर्श किये हैं। इन जीवोंके उपपादपद नहीं होता है।

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १५६ ॥

ओघमें प्ररूपित होनेसे यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

क्षेत्रप्ररूपणामें कहे जानेके कारण यह सूत्र सुगम है।

पद्मलेश्यावाले उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५८ ॥

स्वस्थानपदपरिणत पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

---

१ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

२ पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः स. सि. १, ८.

खेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि देसूणट्ठ चोद्दसभागा पोसिदा[1]। उववादपरिणदेहि देसूणपंच चोद्दसभागा पोसिदा[2]। णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि।

संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[3] ॥ १५९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगद्दारे उत्तत्थादो। उत्तमेव किमिदि पुणो उच्चदे? ण, मंदबुद्धिसिस्सस्स संभालणट्ठं तप्परूवणादो।

पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६० ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि पम्मलेस्सिय-संजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि देसूणा पंच चोद्दसभागा पोसिदा।

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत पद्मलेश्यावाले उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। विशेष बात यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कहा जा चुका है।

शंका—पहले कही गई बात ही पुनः क्यों कही जाती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि शिष्योंके संभालनेके लिए पुनः उसका प्ररूपण किया गया है।

पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत पद्मलेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने कुछ कम पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं।

---

१ पम्मस्स य सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं। अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ गो. जी. ५४८.

२ उववादे पढमपदं पण चोद्दस भागयं च देसूणं। गो. जी. ५४९.

३ संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पंच चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं[1] ॥ १६१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १६२ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, खेत्ताणिओगद्दारे उत्तत्थादो ।

छ चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १६३ ॥

सत्थाणपरिणदसुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा[3] । उववादपरिणदसुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठीहि सासणसम्मादिट्ठीहि य चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो; तिरिक्खमिच्छादिट्ठि-सासण-

पद्मलेश्यावाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्लेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, क्षेत्रानुयोगद्वारमें इसका अर्थ कह दिया गया है।

शुक्लेश्यावाले उक्त जीवोंने अतीत और अनागत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६३ ॥

स्वस्थानपदपरिणत शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं। उपपादपदपरिणत शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि तिर्यंच मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्लेश्याके साथ देवोंमें उपपाद नहीं होता है। पैंतालीस

१ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

२ शुक्लेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः। स. सि. १, ८.

३ सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोदसा हीणा ॥ गो. जी. ५४९.

सम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेसु उववादभावा। पणदालीसलक्खजोयणविक्खंभेण पंच-रज्जुआयामेण ट्ठिदखेत्तमाऊरिय सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिमणुसाणं चेव सुक्कलेस्सियदेवेसुववादुवलंभा। ते तत्थ ण उप्पज्जंति त्ति कधं णव्वदे? पंच चोद्दसभागु-वदेसाभावादो। उववादपरिणदअसंजदसम्मादिट्ठीहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्ख-असंजदसम्मादिट्ठीणं सुक्कलेस्साए सह देवेसुववादुवलंभा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदसुक्कलेस्सियसंजदासंजदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; मारणंतियपरिणदेहि छ चोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्खसंजदासंजदाणं सुक्कलेस्साए सह अच्चुदकप्पे उववादुवलंभा। सम्मामिच्छा-दिट्ठिस्स मारणंतिय-उववादा णत्थि।[1]

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥ १६४ ॥

लाख योजन विष्कम्भसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रको व्याप्त करके शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ही शुक्लेश्यावाले देवोंमें उपपाद पाया जाता है।

शंका—शुक्लेश्यावाले तिर्यंच, शुक्लेश्यावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं, यह कैसे जाना?

समाधान—चूंकि, पांच बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्रके उपदेशका अभाव है, इससे जाना जाता है कि शुक्लेश्यावाले तिर्यंच जीव मरकर शुक्लेश्यावाले देवोंमें नहीं उत्पन्न होते हैं।

उपपादपदपरिणत शुक्लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग ($\frac{6}{14}$) स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका शुक्लेश्याके साथ देवोंमें उपपाद पाया जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत शुक्लेश्यावाले संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने छह बटे चौदह ($\frac{6}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, तिर्यंच संयतासंयतोंका शुक्लेश्याके साथ अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि शुक्लेश्यावालोंके मारणान्तिक और उपपाद, ये दो पद नहीं होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६४ ॥

१ णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा। सव्वो वा खलु लोगो फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ॥ गो. जी. ५५० ॥

२ प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्तं स्पर्शनम्। स. सि. १, ८.

एदं सुत्तं सुगमं, तदो ण किंचि वत्तव्वमत्थि ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ १६५ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, वट्टमाणादीदकाले अस्सिदूण ओघम्हि परूविदत्तादो ।

अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ॥ १६६ ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि तिसु वि कालेसु सव्वलोगो पोसिदो । विहार-वेउव्वियपरिणदेहि वट्टमाणकाले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; असंखेज्जरासीसु तेसिमसंखेज्जदिभागमेत्तो तत्थ तत्थ अभव्वरासि त्ति उवदेसादो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा पोसिदा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

यह सूत्र सुगम है, इसलिए कुछ भी अन्य वक्तव्य नहीं है ।

इसप्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान और अतीतकालको आश्रय करके ओघमें इसका प्ररूपण हो चुका है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकपदपरिणत अभव्यसिद्धिक जीवोंने वर्तमानकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है; क्योंकि, असंख्यात प्रमाणवाली पंचेन्द्रियादि राशिओंमें उन उनके असंख्यातवें भागप्रमाण वहां वहां पर अर्थात् उन उन विवक्षित राशिओंमें अभव्यराशि होती है, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है । उक्त जीवोंने अतीतकालमें आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं ।

इसप्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ भव्यानुवादेन भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तं स्पर्शनम् । स. सि. १, ८.

२ अभव्यैः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ १६७ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि तिण्णि वि काले अस्सिदूण परूविदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १६८ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । सत्थाणपरिणदेहि खइयअसंजदसम्मादिट्ठीहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोयस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो; विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा फोसिदा । उववाद-परिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तं कधं लब्भदे ? बद्धाउअमणुसखइयसम्मादिट्ठीसु तिरिक्खेसुप्पज्ज-माणेसु असंखेज्जदीवेसु अच्छिय सोधम्मीसाणकप्पेसु उप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिउत्तखेत्तं

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, तीनों ही कालोंका आश्रय करके ओघमें प्ररूपण किया जा चुका है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १६८ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । स्वस्थानस्वस्थानपद-परिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहार-वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकपदपरिणत उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । उपपादपदपरिणत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंने सामान्य-लोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श किया है ।

शंका—उपपादगत असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कैसे पाया जाता है ?

समाधान—तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले बद्धायुष्क क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके असंख्यात द्वीपोंमें रह करके पुनः मरणकर सौधर्म और ईशानकल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् । किन्तु संयता-संयतानां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १. ८.

मणुस्सेसुप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठिपोसिदखेत्तं च घेत्तूण लब्भदे। एदम्मि खेत्ते आणिज्ज-माणे देसूणजोयणलक्खबाहल्लं रज्जुपदरं उड्ढं सत्तवग्गेण छिंदिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स बाहल्लादो संखेज्जदिभागबाहल्लं जगपदरं होदि। एवं संजादे ओघत्तं कधं जुज्जदे? ण, उववादविरहिदसेसपदखेत्तेहि तुल्लत्तमावेक्खिय ओघत्तुववत्तीए।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६९ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, संखेज्जा भागा वा, पोसिदा; खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं तिरिक्खेसु असंभवादो। मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो तीदे काले पोसिदो, पणदालीसजोयणलक्खविक्खंभेण संखेज्जरज्जुआयदपोसणखेत्तुवलंभादो।

....

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे स्पर्शित क्षेत्रको, तथा वहांसे चयकर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे स्पर्शित क्षेत्रको ग्रहण करके तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है।

इस उक्त क्षेत्रके निकालनेपर कुछ कम एक लाख योजन बाहल्यवाले राजुप्रतरको ऊपरसे सातके वर्ग (४९) द्वारा छेदकर प्रतराकारसे स्थापित करने पर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यातवें भाग बाहल्यवाला जगप्रतर होता है।

शंका—ऐसा होने पर सूत्रोक्त ओघपना कैसे घटित होगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपपादपदको छोड़ शेष पदोंके क्षेत्रोंके साथ समानता देखकर ओघपना बन जाता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रका संख्यातवां भाग, अथवा संख्यात बहुभाग स्पर्श किये हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका तिर्यंचोंमें होना असंभव है। मारणान्तिकपदपरिणत क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीतकालमें स्पर्श किया है, क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन विष्कम्भके साथ संख्यात राजुप्रमाण आयत स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। प्रमत्तादि गुणस्थानोंकी स्पर्शन-

पमत्तादिगुणट्ठाणाणं ओघभंगो, विसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १७० ॥

एदं सुत्तं सुगमं, ओघम्हि परूविदत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं[1] ॥ १७१ ॥

एदस्स सुत्तस्स जेण अदीद-वट्टमाणपरूवणा मूलोघम्हि उत्तचदुगुणट्ठाण-अदीद-वट्टमाणपरूवणाए तुल्ला, तेण ओघत्तं जुज्जदे ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं[2] ॥ १७२ ॥

वट्टमाणपरूवणाए सव्वपदाणं ओघत्तं होदु णाम, विसेसाभावा । अदीद-परूवणाए वि सत्थाणस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तखेत्तुवलंभादो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्विय-पदाणं य देसूणट्ठ-चोद्दसभागमेत्तखेत्तुवलंभादो ओघत्तं जुज्जदे । किंतु मारणंतिय-उववाद-

---

प्ररूपणा ओघके समान है, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

सयोगिकेवली जिनोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें इसका प्ररूपण किया जा चुका है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७१ ॥

चूंकि, इस सूत्रकी अतीत और वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा मूलोघमें कही गई उक्त चारों गुणस्थानोंकी अतीत और वर्तमानकालिक प्ररूपणाके समान है, इसलिए ओघपना बन जाता है ।

औपशमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७२ ॥

शंका—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणामें सर्व पदोंके ओघपना भले ही रहा आवे; क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है । अतीतकालिक प्ररूपणामें भी सर्व पदोंके ओघपना रहा आवे; क्योंकि, अतीतप्ररूपणामें भी स्वस्थानपदका स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र पाया जाता है । तथा, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिकपदोंका स्पर्शनक्षेत्र कुछ कम आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भागप्रमाण पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

परिणदाणमोघत्तं णत्थि, ओघम्हि उत्तं अट्ठ-चोद्दसभागखेत्तं मोत्तूण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणमेत्तपोसणखेत्तुवलंभा। कुदो? मणुसगदिं मोत्तूण अण्णत्थ उवसमसम्मत्तेण सह मरणाणुवलंभा? ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादे मोत्तूण सेसपदेहि सरिसत्तमत्थि त्ति ओघत्तुववत्तीदो।

संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १७३ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा। सत्थाण-विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदउवसमसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो। मारणंतियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो, मणुसगदीए चेव मारणंतियदंसणादो। सेससव्वगुणट्ठाणाणमोघभंगो।

किन्तु मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत जीवोंके ओघपना नहीं बनता है, क्योंकि, ओघमें कहा गया आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भागप्रमाण क्षेत्र छोड़कर सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणे प्रमाणवाला स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है। और इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण नहीं पाया जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन दोनों पदोंको छोड़कर शेष पदोंके साथ सदृशता है, इसलिए ओघपना बन जाता है।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७३ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिकसमुद्घातपदपरिणत उक्त जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्यगतिमें ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात देखा जाता है। शेष सर्व गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है।

---

१ शेषाणां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ १७४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७५ ॥

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १७६ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि अवगदत्थाणि, ओघम्हि परूविदत्तादो। तदो एदेसिं परूवणा ण कीरदे।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १७७ ॥

एदस्स सुत्तस्स परूवणा खेत्तभंगा, समल्लीणवट्टमाणकालत्तादो।

अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ॥ १७८ ॥

सत्थाणपरिणदेहि सण्णिमिच्छादिट्ठीहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,

---

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७६ ॥

ये उक्त तीनों ही सूत्र ओघमें प्ररूपित होनेसे अवगतार्थ हैं, अर्थात् इनका अर्थ जाना हुआ है। इसलिए इनकी प्ररूपणा नहीं की जाती है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७७ ॥

वर्तमानकालको आश्रय करनेसे इस सूत्रकी स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है।

संज्ञी जीवोंने अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्वलोक स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

स्वस्थानस्वस्थानपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने अतीतकालमें सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात-

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम्। स. सि. १, ८.

२ संज्ञानुवादेन संज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्। स. सि. १, ८.

तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो । विहार-वेदण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठ चोद्दसभागा, मारणंतिय-उववादपरिणदेहि सव्वलोगो पोसिदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ १७९ ॥

एदेसिमोघादो ण को वि[1] भेदो अत्थि, सण्णिरहिदसासणादीणमभावा ।

असण्णीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो[1] ॥ १८० ॥

सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि असण्णीहि तिसु वि अद्धासु सव्वलोगो पोसिदो । विहारपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो तिसु वि कालेसु पोसिदो । वेउव्वियपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणे पोसिदो । तीदे पंच चोद्दसभागा त्ति वत्तव्वं ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

....

गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और वैक्रियिकपदपरिणत संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंने आठ बटे चौदह ($\frac{8}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपदपरिणत संज्ञी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है ।

संज्ञी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १७९ ॥

इन गुणस्थानोंकी स्पर्शनप्ररूपणाका ओघस्पर्शनप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है, क्योंकि, संज्ञित्वसे रहित सासादनादि गुणस्थानोंका अभाव है ।

असंज्ञी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है ॥१८०॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपादपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने तीनों ही कालोंमें सर्वलोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानपदपरिणत जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र तीनों ही कालोंमें स्पर्श किया है । वैक्रियिकपदपरिणत असंज्ञी जीवोंने सामान्यलोक आदि चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र वर्तमानकालमें स्पर्श किया है । अतीतकालमें पांच बटे चौदह ($\frac{5}{14}$) भाग स्पर्श किये हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

....

१ प्रतिषु 'कोत्थि' इति पाठः, म प्रतौ 'को छि' इति पाठः ।

१ असंज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ १८१ ॥

उववादस्स रज्जुआयामो आहारणिरुद्धे ण लब्भदि, तेण सव्वलोगो पोसणाभावा णोघत्तं जुज्जदे ? ण, सरीरगहिदपढमसमए वट्टमाणजीवेहि आऊरिदसव्वलोगुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ॥ १८२ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणा खेत्तभंगा । तीदकालपरूवणं भण्णमाणे पोसणोघम्हि चदुण्हं गुणट्ठाणाणं जहा उत्तं तधा वत्तव्वं । णवरि सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि उववादपरिणदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो पोसिदो ।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १८३ ॥

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८१ ॥

शंका—आहारमार्गणाकी अपेक्षा कथन करनेपर उपपादपदका राजुप्रमाण आयाम नहीं पाया जाता है, इसलिए सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रके स्पर्शनका अभाव होनेसे ओघपना नहीं बनता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वर्तमान जीवोंसे व्याप्त सर्वलोकके पाये जानेसे ओघपना बन जाता है ।

शेष अर्थ सुगम ही है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र ओघके समान है ॥ १८२ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीतकालकी प्ररूपणा कहनेपर स्पर्शनके ओघमें जैसा कि इन चारों गुणस्थानोंका स्पर्शनक्षेत्र कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि उपपादपरिणत सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने सामान्यलोक आदि तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आहारक जीवोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८३ ॥

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

२ सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

एदस्स सुत्तस्स परूवणा अदीद-वट्टमाणेहि ओघतुल्ला। णवरि सजोगकेवली पदर-लोगपूरणपदा णत्थि।

आहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो[1] ॥ १८४ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगीसु सव्वेसु अणाहारित्तुवलंभादो।

अजोगिअणाहारिपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरिविसेसा, अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १८५ ॥

एदं सुत्तं सुगमं।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं फोसणाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

इस सूत्रकी प्ररूपणा अतीत और वर्तमान इन, दोनों कालोंकी अपेक्षा ओघप्ररूपणाके समान है। विशेष बात यह है कि सयोगिकेवलीके प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात, ये दो पद नहीं होते हैं।

अनाहारक जीवोंमें संभवित गुणस्थानवर्ती जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र कार्मणकाययोगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ १८४ ॥

इसका कारण यह है कि सभी कार्मणकाययोगियोंके अनाहारकपना पाया जाता है।

अनाहारी अयोगिजिनके स्पर्शनक्षेत्रके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि अयोगिकेवलियोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १८५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार स्पर्शनानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सयोगिकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। स. सि. १, ८.

२ अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

कालाणुगमो



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

कालाणुगमो

कम्मकलंकुत्तिण्णं[1] विबुद्धसव्वत्थमुत्तंवत्थमणं[2] ।
णमिऊण उसहसेणं कालणिओगं भणिस्सामो ॥

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[3] ॥ १ ॥

णामकालो ठवणकालो दव्वकालो भावकालो चेदि कालो चउव्विहो । तत्थ णामकालो णाम कालसद्दो । कधं सद्दो अप्पाणं पडिवज्जादि चे, ण एस दोसो; स[4]-परप्पयासमयपमाण-

---

कर्मरूप कलंकसे उत्तीर्ण, सर्व अर्थोंके जाननेवाले, और अस्त रहित अर्थात् सदा उदित, ऐसे वृषभसेन गणधरको नमस्कार करके अब कालानुयोगद्वारको कहते हैं ॥

कालानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल, और भावकाल, इस प्रकारसे काल चार प्रकारका है । उनमेंसे 'काल' इस प्रकारका शब्द नामकाल कहलाता है ।

शंका— शब्द कैसे अपने आपको प्रतिपादित करता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शब्दके स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाणके

---

१ अ-आ-क-प्रतिषु ' तम्मकुलंकुछेण्णं ' इति पाठः ।

२ म-स प्रत्योः ' मुत्थ '; अ-आप्रत्योः ' मुद्ध '; क प्रतौ ' मद्ध ' इति पाठः।

३ कालः प्रस्तूयते । स द्विविधः सामान्येन विशेषेण च । स. सि. १, ८.

४ प्रतिषु ' सद्दस्स स-पर ' इति पाठः । म प्रतौ तु ' सद्दस्स ' इति पाठो नोपलभ्यते

पडिवादीणमुवलंभा[1]। सो एसो इदि अण्णम्हि बुद्धीए अण्णारोवणं ठवणा णाम । सा दुविहा, सब्भावासब्भावभेदेण । अणुहरंतए अणुहरंतस्स अण्णस्स बुद्धीए समारोवा सब्भावट्ठवणा । तव्वदिरित्ता असब्भावट्ठवणा । तत्थ सब्भावट्ठवणा कालो णाम[2] पल्लवियं-कुरिय-कुलिद-करलिद-फुलिद-मवुलिद-कलकोइलपुण्णालाववणसंडुज्जोइयचित्तालिहियवसंतो। असब्भावट्ठवणकालो णाम मणिभेद[3]-गेरुअ-मट्टी-ठिक्करादिसु वसंतो त्ति बुद्धिबलेण ठविदो । दव्वकालो दुविहो, आगमदो णोआगमदो य । आगमदो कालपाहुडजाणगो अणुवजुत्तो । णोआगमदो दव्वकालो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदेण तिविहो । तत्थ जाणुगसरीर-णोआगमदव्वकालो भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेदेण तिविहो । सो वि बहुसो पुव्वं परूविदो त्ति णेह वुच्चदे । भवियणोआगमदव्वकालो भविस्सकाले कालपाहुडजाणओ जीवो । ववगददोगंध-पंचरसट्ठपास-पंचवण्णो कुंभारचक्केहेट्ठिमसिलव्व वत्तणालक्खणो लोगागासपमाणो

प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं । 'वह यही है' इसप्रकारसे अन्य वस्तुमें बुद्धिके द्वारा अन्यका आरोपण करना स्थापना है । वह स्थापना सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी है । अनुकरण करनेवाली वस्तुमें अनुकरण करनेवाले अन्य पदार्थका बुद्धिके द्वारा समारोप करना सद्भावस्थापना है । उससे भिन्न या विपरीत असद्भावस्थापना होती है । उनमेंसे पल्लवित, अंकुरित, कुलित, करलित, पुष्पित, मुकुलित, तथा कोयलके कलकल आलापसे परिपूर्ण वनखंडसे उद्योतित, चित्रलिखित वसन्तकालको सद्भावस्थापनाकालनिक्षेप कहते हैं । मणिविशेष, गैरुक, मट्टी, ठीकरा इत्यादिकमें 'यह वसंत है' इसप्रकार बुद्धिके बलसे स्थापना करनेको असद्भावस्थापनाकाल कहते हैं ।

आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यकाल दो प्रकारका है । कालविषयक प्राभृतका ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यकाल है । ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यकाल तीन प्रकार है । उनमें ज्ञायकशरीर नोआगम-द्रव्यकाल भावी, वर्तमान और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । वह भी पहले बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहांपर पुनः नहीं कहते हैं । भविष्यकालमें जो जीव कालप्राभृतका ज्ञायक होगा, उसे भावीनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं ।

जो दो प्रकारके गंध, पांच प्रकारके रस, आठ प्रकारके स्पर्श और पांच प्रकारके वर्णसे रहित है, कुम्भकारके चक्रकी अधस्तन शिला या कीलके समान है, वर्तना ही जिसका

---

१ आ प्रतौ 'पईडिवादीण-'; क प्रतौ 'पवादीण' इति पाठः ।

२ अ-क प्रत्योः 'सब्भावट्ठवणा वर्णसंस्थानादिनानुकुर्वतः चित्रादावारोपितं कालो णाम' इति पाठः । अत्र संस्कृतवाक्यांशः केवलं सद्भावस्थापनायाः स्वरूपबोधकं टिप्पणकं प्रतिभाति, न तु मूलग्रंथांशः । क प्रतौ सब्भाव-शब्दे टिप्पणसूचकं = इति चिन्हमुपलभ्यते । तेन अस्यैवानुमानस्य पुष्टिर्जायते । आ प्रतौ स संस्कृतवाक्यांशो नोपलभ्यते ।

३ प्रतिषु 'मणिभेदः गेरुअ-' इति पाठः । म प्रतौ 'मणिभेदः' इति पाठो नोपलभ्यते ।

अत्थो तव्वदिरित्तणोआगमदव्वकालो[1] णाम । वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे—

कालो त्ति य ववएसो सब्भावपरूवओ हवइ णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई[2] ॥ १ ॥

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूओ ।
दोण्हं एस सहाओ कालो खणभंगुरो णियदो[3] ॥ २ ॥

ण य परिणमइ सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवइ सुहेऊ सयं कालो ॥ ३ ॥

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया दु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा[4] ॥ ४ ॥

जीवसमासाए वि उत्तं—

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं[5] ॥ ५ ॥

लक्षण है, और जो लोकाकाशप्रमाण है, ऐसे पदार्थको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल कहते हैं । पंचास्तिकायप्राभृतमें कहा भी है—

'काल' इस प्रकारका यह नाम सत्तारूप निश्चयकालका प्ररूपक है, और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है । दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रध्वंस होनेवाला है, तथा आवली, पल्य, सागर आदिके रूपसे दीर्घकाल तक स्थायी है ॥ १ ॥

व्यवहारकाल पुद्गलोंके परिणमनसे उत्पन्न होता है, और पुद्गलादिका परिणमन द्रव्यकालके द्वारा होता है, दोनोंका ऐसा स्वभाव है । यह व्यवहारकाल क्षणभंगुर है, परन्तु निश्चयकाल नियत अर्थात् अविनाशी है ॥ २ ॥

वह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है, और न अन्यको अन्यरूपसे परिणमाता है । किन्तु स्वतः नाना प्रकारके परिणामोंको प्राप्त होनेवाले पदार्थोंका काल स्वयं सुहेतु होता है ॥ ३ ॥

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक रूपसे स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिए ॥ ४ ॥

जीवसमासमें भी कहा है—

जिनवरके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पंच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थोंका आज्ञासे और अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥ ५ ॥

---

१ ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंध अट्ठफासो य । अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालो त्ति ॥ पंचास्ति. गा. २४. २ पंचास्ति. गा. १०८. ३ पंचास्ति. गा. १०७.

४ गो. जी. ५८८. ५ गो. जी. ५६०.

तह आयारंगे वि वुत्तं—

पंचत्थिया य छज्जीवणिकायकालदव्वमण्णे य ।
आणागेज्झे भावे आणाविचएण विचिणादि[1] ॥ ६ ॥

तह गिद्धपिंछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि 'वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य[2]' इदि दव्वकालो परूविदो । जीवट्ठाणादिसु दव्वकालो ण वुत्तो त्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जदे, एत्थ छद्दव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा । तम्हा दव्वकालो अत्थि त्ति घेत्तव्वो । जीवाजीवादिअट्ठभंगदव्वं वा णोआगमदव्वकालो । भावकालो दुविहो, आगम-णोआगमभेदा । कालपाहुडजाणओ उवजुत्तो जीवो आगमभावकालो । दव्वकालजणिद-परिणामो णोआगमभावकालो भण्णदि । पोग्गलादिपरिणामस्स कधं कालववएसो ? ण एस

उसी प्रकारसे आचारांगमें भी कहा है—

पंच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्रके उपदेशसे ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्मध्यानसे संचय करता है, अर्थात् श्रद्धान करता है ॥ ६ ॥

तथा गृद्धपिच्छाचार्यद्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्रमें भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये कालद्रव्यके उपकार हैं' इस प्रकारसे द्रव्यकाल प्ररूपित है । जीवस्थान आदि ग्रंथोंमें द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं, क्योंकि, यहां जीवस्थानमें छह द्रव्योंके प्रतिपादनका अधिकार नहीं है । इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

अथवा, जीव और अजीव आदिके योगसे बने हुए आठ भंगरूप द्रव्यको नोआगम-द्रव्यकाल कहते हैं ।

विशेषार्थ—जीव और अजीवद्रव्यके संयोगसे कालके आठ भंग इस प्रकार होते हैं—१ एक जीवकाल, २ एक अजीवकाल, ३ अनेक जीवकाल, ४ अनेक अजीवकाल, ५ एक जीव एक अजीवकाल, ६ अनेक जीव एक अजीवकाल, ७ एक जीव अनेक अजीवकाल ८ और अनेक जीव अनेक अजीवकाल । (देखो मंगलसम्बन्धी आठ आधार, सत्प्र. १, पृ. १९) कालके निमित्तसे होनेवाले एक जीवसम्बन्धी परिवर्तनको एक जीवकाल कहते हैं । कालके निमित्तसे होनेवाले एक अजीवसम्बन्धी कालको एक अजीवकाल कहते हैं । इस प्रकारसे आठों भंगोंका स्वरूप जान लेना चाहिए ।

आगम और नोआगमके भेदसे भावकाल दो प्रकारका है । काल-विषयक प्राभृतका ज्ञायक और वर्तमानमें उपयुक्त जीव आगम भावकाल है । द्रव्यकालसे जनित परिणाम या परिणमन नोआगमभावकाल कहा जाता है ।

---

१ मूलाचा. ३९९. २ तत्त्वा. सू. ५, २२.

दोसो, कज्जे कारणोवयारणिबंधणत्तादो। वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं। तं जहा —

सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूओ कालो णियमेण पण्णत्तो[1] ॥ ७ ॥
समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मास उडु अयण संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो[2] ॥ ८ ॥
णत्थि चिरं वा खिप्पं वुत्तारहिदं तु सा वि खलु वुत्ता[3]।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्च भवो[4] ॥ ९ ॥ इदि।

एत्थ केण कालेण पयदं ? णोआगमदो भावकालेण। तस्स समय-आवलिय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोवमादि-रूवत्तादो। कधमेदस्स कालववएसो ? ण, कल्यन्ते संख्यायन्ते कर्म-भव-कायायुस्थितयोऽ-

---

शंका—पुद्गल आदि द्रव्योंके परिणामके 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कार्यमें कारणके उपचारके निबंधनसे पुद्गलादि द्रव्योंके परिणामके भी 'काल' संज्ञाका व्यवहार हो सकता है।

पंचास्तिकायप्राभृतमें व्यवहारकालका अस्तित्व कहा भी गया है—

सत्तास्वरूप स्वभाववाले जीवोंके, तथैव पुद्गलोंके और 'च' शब्दसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्यके परिवर्तनमें जो निमित्तकारण हो, वह नियमसे कालद्रव्य कहा गया है ॥ ७ ॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली, तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर, इत्यादि काल परायत्त है; अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्योंके परिवर्तनाधीन है ॥ ८ ॥

वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्रकी, अर्थात् परत्व और अपरत्वकी, कोई सत्ता नहीं है। वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्यके विना नहीं होती है, इसलिए कालद्रव्य पुद्गलके निमित्तसे हुआ कहा जाता है ॥ ९ ॥

शंका—ऊपर वर्णित अनेक प्रकारके कालोंमेंसे यहांपर किस कालसे प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगमभावकालसे प्रयोजन है।

यह काल-समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदि रूप है।

शंका—तो फिर इसके 'काल' ऐसा व्यपदेश कैसे हुआ ?

---

१ पंचास्ति. गा. २३. २ पंचास्ति. गा. २५.
३ प्रतिषु 'उत्ता' इति पाठः। ४ पंचास्ति० गा. २६.

नेनेति कालशब्दव्युत्पत्तेः । कालः समय अद्धा इत्येकोऽर्थः । समयादीणमत्थो वुच्चदे– अणोरण्वंतरव्यतिक्रमकालः समयः । चोद्दसरज्जुआगासपदेसक्कमणमेत्तकालेण जो चोद्दसरज्जुकमणक्खमो परमाणू तस्स एगपरमाणुक्कमणकालो समओ णाम । असंखेज्ज-समए घेत्तूण एया आवलिया होदि । तप्पाओग्गसंखेज्जावलियाहि एगो उस्सासणिस्सासो होदि । सत्तहि उस्सासेहि एगो थोवसण्णिदो कालो होदि । सत्तहि थोवेहि लवो णाम कालो होदि । साद्ध-अट्ठत्तीसलवेहि णाली णाम कालो होदि । वेहि णालियाहि मुहुत्तो होदि ।

उच्छ्वासानां सहस्राणि त्रीणि सप्त शतानि च ।
त्रिसप्ततिः पुनस्तेषां मुहूर्तो ह्येक इष्यते (३७७३) ॥ १० ॥
निमेषाणां सहस्राणि पंच भूयः शतं तथा ।
दश चैव निमेषाः स्युर्मुहूर्ते गणिताः बुधैः (५११०) ॥ ११ ॥

त्रिंशन्मुहूर्तो दिवसः । मुहूर्तानां नामानि–

रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च ।
दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैश्वदेवोऽभिजित्तथा ॥ १२ ॥
रोहणो वलनामा च विजयो नैर्ऋतोऽपि च ।
वारुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पंचदशो दिने (१५) ॥ १३ ॥

....

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयुकी स्थितियां कल्पित या संख्यात की जाती हैं, अर्थात् कही जाती हैं, उसे काल कहते हैं' इस प्रकारकी काल शब्दकी व्युत्पत्ति है । काल, समय और अद्धा, ये सब एकार्थवाची नाम हैं ।

समय आदिका अर्थ कहते हैं । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके व्यतिक्रम करनेमें जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं । अर्थात्, चौदह राजु आकाशप्रदेशोंके अतिक्रमण-मात्र कालसे जो चौदह राजु अतिक्रमण करनेमें समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अति-क्रमण करनेके कालका नाम समय है । असंख्यात समयोंको ग्रहण करके एक आवली होती है । तत्प्रायोग्य संख्यात आवलियोंसे एक उच्छ्वास-निःश्वास निष्पन्न होता है । सात उच्छ्वासोंसे एक स्तोकसंज्ञिक काल निष्पन्न होता है । सात स्तोकोंसे एक लव नामका काल निष्पन्न होता है । साढ़े अड़तीस लवोंसे एक नाली नामका काल निष्पन्न होता है । दो नालिकाओंसे एक मुहूर्त होता है ।

उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त कहा जाता है ॥ १० ॥

विद्वानोंने एक मुहूर्तमें पांच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं ॥ ११ ॥ तीस मुहूर्तोंका एक दिन अर्थात् अहोरात्र होता है । मुहूर्तोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभट, ५ दैत्य, ६ वैरोचन, ७ वैश्वदेव, ८ अभिजित्,

सावित्रो धुर्यसंज्ञश्च दात्रको यम एव च ।
वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निशि ॥ १४ ॥
सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च ।
पुष्पदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्तोऽन्योऽरुणो मतः (१५) ॥ १५ ॥
समयो रात्रिदिनयोर्मुहूर्त्ताश्च समा स्मृताः ।
षण्मुहूर्त्ता दिनं यान्ति कदाचिच्च पुनर्निशा ॥ १६ ॥

पंचदश दिवसाः पक्षः । दिवसानां नामानि–

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।
देवताश्चन्द्रसूर्येन्द्रा आकाशो धर्म एव च ॥ १७ ॥

....

९ रोहण, १० बल, ११ विजय, १२ नैऋत्य, १३ वारुण, १४ अर्यमन् और १५ भाग्य । ये पंद्रह मुहूर्त दिनमें होते हैं ॥ १२–१३ ॥

१ सावित्र, २ धुर्य, ३ दात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६ हुताशन, ७ भानु, ८ वैजयन्त, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विक्षोभ, १२ योग्य, १३ पुष्पदन्त, १४ सुगन्धर्व और १५ अरुण । ये पन्द्रह मुहूर्त रात्रिमें होते हैं, ऐसा माना गया है ॥ १४–१५ ॥

रात्रि और दिनका समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं । हां, कभी दिनको छह मुहूर्त जाते हैं, और कभी रात्रिको छह मुहूर्त जाते हैं ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—समान दिन और रात्रिकी अपेक्षा तो पन्द्रह मुहूर्तका दिन और इतने ही मुहूर्तोंकी एक रात्रि होती है । किन्तु सूर्यके उत्तरायणकालमें अठारह मुहूर्तका दिन और बारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । तथा सूर्यके दक्षिणायनकालमें बारह मुहूर्तका दिन और अठारह मुहूर्तकी रात्रि हो जाती है । इसलिए श्लोकमें कहा है कि छह मुहूर्त कभी दिनको और कभी रात्रिको प्राप्त होते हैं । अर्थात् दिनके तीन और रात्रिके तीन, इस प्रकार छह मुहूर्त कभी दिनसे रात्रिमें और कभी रात्रिसे दिनकी गिनतीमें आते जाते रहते हैं ।

पन्द्रह दिनोंका एक पक्ष होता है । दिनोंके नाम इस प्रकार हैं—

नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इस प्रकार क्रमसे पांच तिथियां होती हैं । इनके देवता क्रमसे चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं ॥ १७ ॥

विशेषार्थ—नन्दा आदि तिथियोंके नाम प्रतिपदासे प्रारंभ करना चाहिए, अर्थात् प्रतिपदाका नाम नन्दातिथि है । द्वितीयाका नाम भद्रातिथि है । तृतीयाका नाम जयातिथि है । चतुर्थीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमीका नाम पूर्णातिथि है । पुनः षष्ठीका नाम नन्दातिथि है, इत्यादि । इस प्रकारसे प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशीका नाम नन्दातिथि है । द्वितीया सप्तमी और द्वादशीका नाम भद्रातिथि है । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीका नाम जयातिथि है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीका नाम रिक्तातिथि है । पंचमी, दशमी तथा पूर्णिमाका नाम पूर्णातिथि है । इसी क्रमसे इनके देवता भी समझ लेना चाहिए ।

द्वौ पक्षौ मासः। ते च श्रावणादयः प्रसिद्धाः। द्वादशमासं वर्षम्। पंचभिर्वर्षैर्युगः। एवमुवरि वि वत्तव्वं जाव कप्पो त्ति। एसो कालो णाम। कस्स इमो कालो? जीव-पोग्गलाणं। कुदो? तप्परिणामत्तादो। अधवा इमो सुज्जमंडलस्स परियट्टणलक्खणस्स, तदुदयत्थमणेहिंतो दिवसादीणमुप्पत्तीए। केण कालो कीरदि? परमट्ठकालेण। कत्थ कालो? माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडले तियालगोयराणंतपज्जाएहि आवूरिदे[1]। जदि माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडले कालो ट्ठिदो होदि, कधं तेण सव्वपोग्गलाणमणंतगुणेण पदीवो व्व सपरप्पयासकारणेण जवरासि व्व समयभावेणावट्ठिदेण छद्दव्वपरिणामा पयासिज्जंते? ण एस दोसो, मिणिज्जमाणदव्वेहिंतो पुधभूदेण मागहपत्थेणेव मवणविरोहाभावा। ण चाणवत्था, पईवेण विउच्चारा। देवलोगे कालाभावे तत्थ कधं कालववहारो? ण, इहत्थेणेव

दो पक्षोंका एक मास होता है। वे मास श्रावण आदिकके नामसे प्रसिद्ध हैं। बारह मास का एक वर्ष होता है। पांच वर्षोंका एक युग होता है। इस प्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प उत्पन्न होने तक कहते जाना चाहिए। यह सब काल कहलाता है।

शंका—यह काल किसका है, अर्थात् कालका स्वामी कौन है?

समाधान—जीव और पुद्गलोंका, अर्थात् ये दोनों कालके स्वामी हैं; क्योंकि, काल तत्परिणामात्मक है।

अथवा, परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षणवाले इस सूर्यमंडलके उदय और अस्त होनेसे दिन और रात्रि आदिकी उत्पत्ति होती है।

शंका—काल किससे किया जाता है, अर्थात् कालका साधन क्या है?

समाधान—परमार्थकालसे काल, अर्थात् व्यवहारकाल, निष्पन्न होता है।

शंका—काल कहांपर है, अर्थात् कालका अधिकरण क्या है?

समाधान—त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे परिपूरित एकमात्र मानुपक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडलमें ही काल है; अर्थात् कालका आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमंडल है।

शंका—यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्रके सूर्यमंडलमें ही काल अवस्थित है, तो सर्व पुद्गलोंसे अनन्तगुणे तथा प्रदीपके समान स्व-परप्रकाशनके कारणरूप, और यवराशिके समान समयरूपसे अवस्थित उस कालके द्वारा छह द्रव्योंके परिणाम कैसे प्रकाशित किये जाते हैं?

समाधान—यह कोई दोप नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले द्रव्योंसे पृथग्भूत मागध (देशीय) प्रस्थके समान मापनेमें कोई विरोध नहीं है। न इसमें कोई अनवस्था दोप ही आता है, क्योंकि, प्रदीपके साथ व्यभिचार आता है। अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि अन्य पदार्थोंका प्रकाशक होनेपर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित

१ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके। तत्कृतः कालविभागः। तत्त्वा. सू. ४, १३-१४.

कालेण तेसिं ववहारादो। जदि जीव-पोग्गलपरिणामो कालो होदि, तो सव्वेसु जीव-पोग्गलेसु संठिएण कालेण होदव्वं; तदो माणुसखेत्तेक्कसुज्जमंडलट्ठिदो कालो त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, णिरवज्जत्तादो। किंतु ण तहा लोगे समए वा संववहारो अत्थि; अणाइणिहणरूवेण सुज्जमंडलकिरियापरिणामेसु चेव कालसंववहारो पयट्टो। तम्हा एदस्सेव गहणं कायव्वं। केवचिरं कालो ? अणादिओ अपज्जवसिदो। कालस्स कालो किं तत्तो पुधभूदो अणण्णो वा ? ण ताव पुधभूदो अत्थि, अणवट्ठाणप्पसंगा। णाणण्णो वि, कालस्स कालाभावप्पसंगा। तदो कालस्स कालेण णिद्देसो ण घडदे ? ण, एस दोसो, ण ताव पुध-

....

करनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं हुआ करती है, इसी प्रकारसे कालद्रव्य भी अन्य जीव पुद्गल, आदि द्रव्योंके परिवर्तनका निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्यकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है।

शंका—देवलोकमें तो दिन-रात्रिरूप कालका अभाव है, फिर वहां पर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहांके कालसे ही देवलोकमें कालका व्यवहार होता है।

शंका—यदि जीव और पुद्गलोंका परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलोंमें कालको संस्थित होना चाहिए। तब ऐसी दशामें 'मनुष्यक्षेत्रके एक सूर्यमंडलमें ही काल स्थित है' यह बात घटित नहीं होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है। किन्तु लोकमें या शास्त्रमें उस प्रकारसे संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिधनस्वरूपसे सूर्यमंडलकी क्रिया-परिणामोंमें ही कालका संव्यवहार प्रवृत्त है। इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए।

शंका—काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान—काल अनादि और अपर्यवसित है। अर्थात् कालका न आदि है, न अन्त है।

शंका—कालका परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत) ? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोषका प्रसंग प्राप्त होगा। और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही, क्योंकि, कालके कालका अभाव-प्रसंग आता है। इसलिए कालका कालसे निर्देश घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं। इसका कारण यह है कि पृथक् पक्षमें कहा गया

पक्खुत्तदोसो संभवदि, अणब्भुवगमा । णाणण्णपक्खदोसो वि, इट्ठत्तादो । ण च कालस्स कालेण णिद्देसो णत्थि, सुज्जमंडलंतरट्ठियकालेण तत्तो पुधभूदसुज्जमंडलट्ठियकालणिद्देसादो । अथवा, जधा घडस्स भावो, सिलापुत्तयस्स सरीरमिच्चादिसु एकम्हि वि भेदववहारो, तहा एत्थ वि एक्कम्हि काले भेदेण[1] ववहारो जुज्जदे । कदिविधो कालो ? सामण्णेण एयविहो । तीदो अणागदो वट्टमाणो त्ति तिविहो[2] । अधवा गुणट्ठिदिकालो भवट्ठिदिकालो कम्मट्ठिदिकालो कायट्ठिदिकालो उववादकालो भावट्ठिदिकालो त्ति छव्विहो । अहवा अणेयविहो परिणामेहिंतो पुधभूदकालाभावा, परिणामाणं च आणंतिओवलंभा । जहत्थमवबोहो अणुगमो । कालस्स अणुगमो कालाणुगमो, तेण कालाणुगमेण । णिद्देसो कहणं पयासणं अहिव्वत्तिजणणमिदि एयट्ठो । सो च दुविहो, ओघेण आदेसेण चेदि । तत्थ ओघणिद्देसो दव्वट्ठियणयपदुप्पायणो, संगहिदत्थादो । आदेसणिद्देसो पज्जवट्ठियणयपदुप्पायणो, अत्थभेदा-

दोष तो संभव है नहीं, क्योंकि, हम कालके कालको कालसे भिन्न मानते ही नहीं है । और न अनन्य या अभिन्न पक्षमें दिया गया दोष ही प्राप्त होता है, क्योंकि, वह तो हमें इष्ट ही है, (और इष्ट वस्तु उसीके लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है)। तथा, कालका कालसे निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि, अन्य सूर्यमंडलमें स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमंडलमें स्थित कालका निर्देश पाया जाता है । अथवा, जैसे घटका भाव, शिलापुत्रकका (पाषाणमूर्तिका) शरीर; इत्यादि लोकोक्तियोंमें एक या अभिन्नमें भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकारसे यहां पर भी एक या अभिन्न कालमें भी भेदरूपसे व्यवहार बन जाता है ।

शंका—काल कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—सामान्यसे एक प्रकारका काल होता है । अतीत, अनागत और वर्तमानकी अपेक्षा तीन प्रकारका होता है। अथवा, गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कायस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल, इस प्रकार कालके छह भेद हैं। अथवा काल अनेक प्रकारका है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत कालका अभाव है, तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं ।

यथार्थ अवबोधको अनुगम कहते हैं, कालके अनुगमको कालानुगम कहते हैं । उस कालानुगमसे । निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम है । वह निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उक्त दोनों प्रकारके निर्देशोंमेंसे ओघनिर्देश द्रव्यार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें समस्त अर्थ संगृहीत हैं। आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनयका प्रतिपादन करनेवाला है, क्योंकि, उसमें अर्थभेदका

१ अ प्रतौ ' कालभेदेण ' इति पाठः ।   २ गो. जी. ५५७.

वलंबणादो। किमट्ठं दुविहो णिद्देसो उसहसेणादिगणहरदेवेहि कीरदे ? ण एस दोसो, उहय-णयमवलंबिय ट्ठिदसत्ताणुग्गहट्ठं तधोवदेसादो।

ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो होदि' त्ति जाणावणट्ठं ओघणिद्देसो कदो। सेसगुणट्ठाण-पडिसेहफलो मिच्छाइट्ठिणिद्देसो। कालादो कालेण णिहालिज्जमाणे केवचिरं होंति त्ति पुच्छा जिणपण्णत्तत्थमिदं सुत्तमिदि पदुप्पायणफला। बहुसु णाणाजीवमिदि एगवयण-णिद्देसो जादिणिबंधणो त्ति ण दोसयरो। सव्वद्धा इदि कालविसिट्ठबहुजीवणिद्देसो। कुदो ? सव्वा अद्धा कालो जेसिं जीवाणमिदि व-समासवसेण बज्झट्ठप्पवुत्तीए। अधवा, सव्वद्धा इदि कालणिद्देसो। कधं ? मिच्छादिट्ठीणं कालत्तणण्णपरिणामिणो परिणामेहिंतो कधंचि अभेदमासेज्ज मिच्छादिट्ठीणं कालत्ताविरोहा। सव्वकालं णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीणं वोच्छेदो णत्थि त्ति भणिदं होदि।

....

अवलंबन किया गया है।

शंका — वृषभसेनादि गणधरदेवोंने दो प्रकारका निर्देश किसलिए किया है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयोंको अवलम्बन करके स्थित प्राणियोंके अनुग्रहके लिए दो प्रकारके निर्देशका उपदेश किया है।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व-काल होते हैं ॥ २ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश किया जाता है' यह बात जतलानेके लिए सूत्रमें 'ओघ' पदका निर्देश किया। 'मिथ्यादृष्टि' पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है। 'कालसे' अर्थात् कालकी अपेक्षा जीवोंके संभालने पर 'कितने काल तक होते हैं' इस प्रकारकी यह पृच्छा 'यह सूत्र जिनप्रज्ञप्त है' इस बातके बतानेके लिए है। जीवोंके बहुत होनेपर भी 'नाना जीव' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश जातिनिबंधनक है, इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है। 'सर्वाद्धा' यह पद कालविशिष्ट बहुतसे जीवोंका निर्देश करनेवाला है, क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवोंके होता है, इस प्रकारसे 'व' समास अर्थात् बहुव्रीहिसमासके वशसे बाह्य अर्थकी प्रवृत्ति होती है। अथवा 'सर्वाद्धा' इस पदसे कालका निर्देश जानना चाहिए, क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वसे अभिन्न परिणामीके परिणामोंसे कथंचित् अभेदका आश्रय करके मिथ्यादृष्टियोंके कालत्वका कोई भेद नहीं है। अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सर्वकाल व्युच्छेद नहीं होता है, यह कहा गया है।

....

१ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो। जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो। जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३ ॥

अभवसिद्धियजीवमिच्छत्तं पडुच्च अणादिअपज्जवसिदमिदि भणिदं, अभव्वमिच्छत्तस्स आदिमज्झंताभावादो। भवसिद्धियमिच्छत्तकालो अणादिओ सपज्जवसिदो। जहा वद्धणकुमारस्स मिच्छत्तकालो। अण्णेगो भवसिद्धियमिच्छत्तकालो सादिओ सपज्जवसिदो। जहा कण्हादिमिच्छत्तकालो। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छत्तकालो, तस्स इमो णिद्देसो। सो दुविहो, जहण्णो उक्कस्सो चेदि। तत्थ जहण्णकालपरूवणाजाणावणट्ठं जहण्णेणेत्ति वुत्तं। मुहुत्तस्संतो अंतोमुहुत्तं, एसो मिच्छत्तजहण्णकालणिद्देसो। तं जधा- सम्मामिच्छादिट्ठी वा असंजदसम्मादिट्ठी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं अच्छिय पुणरवि सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णस्स

एक जीवकी अपेक्षा काल तीन प्रकार है, अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इस प्रकार है— एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका सादि-सान्तकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

अभव्यसिद्धिक जीवोंके मिथ्यात्वकी अपेक्षा 'काल अनादि-अनन्त है' ऐसा कहा गया है, क्योंकि, अभव्यके मिथ्यात्वका आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है। भव्यसिद्धिक जीवके मिथ्यात्वका काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि वर्द्धनकुमारका मिथ्यात्वकाल। तथा एक और प्रकारका भव्यसिद्धिक जीवोंका मिथ्यात्वकाल है, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे कृष्ण आदिका मिथ्यात्वकाल। उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है। वह दो प्रकारका है, जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल। उनमेंसे जघन्यकालकी प्ररूपणा की जाती है, यह बतलानेके लिए 'जघन्यसे' ऐसा पद कहा। मुहूर्तके भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुहूर्तकाल कहते हैं। इस पदसे मिथ्यात्वके जघन्यकालका निर्देश कहा गया है, जो कि इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके, फिर भी सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे प्राप्त होनेवाले जीवके

१ एकजीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः-अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

सव्वजहण्णो मिच्छत्तकालो होदि। सासणसम्मादिट्ठी मिच्छत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो? ण, सासणसम्मत्तपच्छायदमिच्छादिट्ठिस्स अइतिव्वसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ततम्हा विणडिअस्स[1] सव्वजहण्णकालेण गुणंतरसंकमणाभावा। उक्कस्सकालपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[2] ॥ ४ ॥

अद्धपोग्गलपरियट्टं णाम किं? वुच्चदे– अणाइसंसारे हिंडंताणं जीवाणं दव्वपरियट्टणं खेत्तपरियट्टणं कालपरियट्टणं भवपरियट्टणं भावपरियट्टणमिदि पंच परियट्टणाणि होंति। जं तं दव्वपरियट्टणं तं दुविहं, णोकम्मपोग्गलपरियट्टणं कम्मपोग्गलपरियट्टणं चेदि। तत्थ णोकम्मपोग्गलपरियट्टं[3] वत्तइस्सामो। तं जहा– जदि वि पोग्गलाणं गमणागमणं पडि

मिथ्यात्वका सर्वजघन्य काल होता है।

शंका— सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टिको भी मिथ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं वतलाया?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वसे पीछे आनेवाले, अतितीव्र संक्लेशवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीवके सर्व जघन्यकालसे गुणान्तर-संक्रमणका अभाव है, अर्थात् गुणस्थान-परिवर्तन नहीं हो सकता है।

अब मिथ्यात्वके उत्कृष्टकालके वतलानेके लिए उत्तरसूत्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४ ॥

शंका— अर्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं?

समाधान— इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन, इस प्रकार पांच परिवर्तन होते रहते हैं। इसमेंसे जो द्रव्यपरिवर्तन हैं, वह दो प्रकारका है— नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन और कर्मपुद्गलपरिवर्तन। उनमेंसे पहले नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनको कहते हैं। वह इस प्रकार है—

यद्यपि पुद्गलोंके गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धिसे (किसी

१ प्रतिषु 'विणदिअस्स' इति पाठः। २ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। स. सि. १, ८.

३ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्चानन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्। स. सि. २, १०. गो. जी. जी. प्र. ५६०.

विरोहो णत्थि, तो वि बुद्धीए आदिं कादूण णोकम्मपोग्गलपरियट्टे भण्णमाणे अप्पिद-पोग्गलपरियट्टब्भंतरे सव्वपोग्गलरासिम्हि एक्को वि परमाणू ण भुत्तो त्ति सव्वपोग्गलाणम-गहिदसण्णा पोग्गलपरियट्टपढमसमए कादव्वा । अदीदकाले वि सव्वजीवेहि सव्व-पोग्गलाणमणंतिमभागो सव्वजीवरासीदो अणंतगुणो, सव्वजीवरासिउवरिमवग्गादो अणंत-गुणहीणो पोग्गलपुंजो भुत्तुज्झिदो । कुदो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेण सिद्धाणमणंतिम-भागेण गुणिदादीदकालमेत्तसव्वजीवरासिसमाणभुत्तुज्झिदपोग्गलपरिमाणोवलंभा ।

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे[1] भुत्तुज्झिदा दु जीवेण ।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे[2] ॥ १८ ॥

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो किण्ण होदि त्ति भणिदे ण होदि, सव्वेगदेसम्हि गाहत्थसव्वसद्दप्पवुत्तीदो । ण च सव्वम्हि पयट्टमाणस्स सद्दस्स एगदेसपउत्ती असिद्धा, गामो दड्ढो, पदो दड्ढो, इच्चादिसु गाम-पदाणमेगदेसपयट्टसद्दुवलंभादो । तेण पोग्गल-

---

विवक्षित पुद्गलपरमाणुपुंजको) आदि करके नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके कहनेपर विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर सर्वपुद्गलराशिमेंसे एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सर्व पुद्गलोंकी अगृहीतसंज्ञा करना चाहिए। अतीतकालमें भी सर्व जीवोंके द्वारा सर्वपुद्गलोंका अनन्तवां भाग, सर्वजीवराशिसे अनन्तगुणा, और सर्व-जीवराशिके उपरिम वर्गसे अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है। इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्ध जीवोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागसे गुणित अतीतकालप्रमाण सर्वजीवराशिके समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलोंका परिमाण पाया जाता है।

शंका—यदि जीवने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो—

इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें समस्त पुद्गल इस जीवने एक एक करके पुनः पुनः अनन्तवार भोग करके छोड़े हैं ॥ १८ ॥

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—उक्त सूत्रगाथाके साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, गाथामें स्थित सर्व शब्दकी प्रवृत्ति सर्वके एक भागमें की गई है। तथा, सर्वके अर्थमें प्रवर्तित होनेवाले शब्दकी एकदेशमें प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ग्राम जल गया, पद (जनपद) जल गया, इत्यादिक वाक्योंमें उक्त शब्द ग्राम और पदोंके एक देशमें प्रवृत्त हुए भी पाये जाते हैं।

---

१ प्रतिषु ' एगो ' इति पाठः ।

२ स. सि. २, १०, गो. जी., जी. प्र. ५६०.

परियट्टादिसमए अगहिदसण्णिदे चेव पोग्गले तिण्हमेक्कदरसरीरणिप्पायणट्ठमभवसिद्धिएहि अणंतगुणे[1] सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ते गेण्हदि । ते च गेण्हंतो अप्पणो ओगाढखेत्तट्ठिदे चेय गेण्हदि, णो पुध खेत्तट्ठिदे । वुत्तं च–

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहि कम्मणो जोग्गं ।
बंधइ जहुत्तहेदू सादियमध णादियं चावि[2] ॥ १९ ॥

बिदियसमए वि अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे अगहिदे चेव गेण्हदि । एवमुक्कस्सेण अणंतकालमगहिदे चेव गेण्हदि । जहण्णेण दो-समएसु चेव अगहिदे गेण्हदि, पढमसमयगहिदपोग्गलाणं बिदियसमए णिज्जरिय अकम्मभावं गदाणं पुणो तदियसमए तम्हि चेव जीवे णोकम्मपज्जाएण परिदाणमुवलंभादो । तं कधं णव्वदे ? णोकम्मस्स आबाधाए विणा उदयादिणिसेगुवदेसा । एसो पोग्गलपरियट्टकालो तिविहो होदि, अगहिदगहणद्धा

अतएव पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें औदारिक आदि तीन शरीरोंमेंसे किसी एक शरीरके निष्पादन करनेके लिए जीव अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र अगृहीत संज्ञावाले पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । उन पुद्गलोंको ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है, किन्तु पृथक् क्षेत्रमें स्थित पुद्गलोंको नहीं ग्रहण करता है । कहा भी है—

यह जीव एक क्षेत्रमें अवगाढरूपसे स्थित, और कर्मरूप परिणमनके योग्य पुद्गल-परमाणुओंको यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओंसे सर्व प्रदेशोंके द्वारा बांधता है । वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं, और उभयरूप भी होते हैं ॥ १९ ॥

द्वितीय समयमें भी विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । इस प्रकार उत्कृष्टकालकी अपेक्षा अनन्तकाल तक अगृहीत पुद्गलोंको ही ग्रहण करता है । किन्तु जघन्यकालकी अपेक्षा दो समयोंमें ही अगृहीत पुद्गलोंको ग्रहण करता है, क्योंकि, प्रथम समयमें ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी द्वितीय समयमें निर्जरा करके अकर्मभाव (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्म पर्यायसे परिणत हुए पाये जाते हैं ।

शंका—प्रथम समयमें गृहीत पुद्गलपुंज द्वितीय समयमें निर्जीर्ण हो, अकर्मरूप अवस्थाको धारण कर, पुनः तृतीय समयमें उसी ही जीवमें नोकर्मपर्यायसे परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, आबाधाकालके विना ही नोकर्मके उदय आदिके निषेकोंका उपदेश पाया जाता है ।

यह पुद्गलपरिवर्तनकाल तीन प्रकारका होता है—अगृहीतग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल

---

१ प्रतिषु 'गुणो' इति पाठः । २ गो. क. १८५. परं तत्र 'जहुत्तहेदू' इति स्थाने 'सगहेदूहिं य' इति पाठः ।

गहिदगहणद्धा मिस्सयगहणद्धा चेदि। अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे जं अगहिदपोग्गलगहणकालो अगहिदगहणद्धा णाम। अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे गहिदपोग्गलाणं चेय गहणकालो गहिदगहणद्धा णाम। अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे गहिदागहिदपोग्गलाणमक्कमेण गहणकालो मिस्सयगहणद्धा णाम। एवं तीहि पयारेहि पोग्गलपरियट्टकालो जीवस्स गच्छदि। एत्थ तिण्हमद्धाणं परियट्टणकमो वुच्चदे। तं जहा–पोग्गलपरियट्टादिसमयप्पहुडि अणंतकालो अगहिदगहणद्धा भवदि, तत्थ सेसदोपयाराभावा। पुणो अगहिदगहणद्धावसाणे सइं मिस्सयगहणद्धा होदि। पुणो वि विदियवारे अगहिदगहणद्धाए अणंतकालं गंतूण सइं मिस्सयद्धा होदि। एवं तदियवारे वि अगहिदगहणद्धाए अणंतकालं गमिय सइं मिस्सयद्धाए परिणमदि। एदेण पयारेण मिस्सयद्धाओ वि अणंताओ जादाओ। पुणो णंतकालं अगहिदगहणद्धाए गमिय सइं गहिदगहणद्धाए परिणमदि। एदेण कमेण अणंतो कालो गच्छदि जाव गहिदगहणद्धसलागाओ वि अणंतत्तं पत्ताओ त्ति। पुणो उवरि

और मिश्रग्रहणकाल। विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर जो अगृहीत पुद्गलोंके ग्रहण करनेका काल है उसे अगृहीतग्रहणकाल कहते हैं। विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर गृहीत पुद्गलोंके ही ग्रहण करनेके कालको गृहीतग्रहणकाल कहते हैं। तथा विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर गृहीत और अगृहीत, इन दोनों प्रकारके पुद्गलोंके अक्रमसे अर्थात् एक साथ ग्रहण करनेके कालको मिश्रग्रहणकाल कहते हैं। इस तरह उक्त तीनों प्रकारोंसे जीवका पुद्गलपरिवर्तनकाल व्यतीत होता है।

विशेषार्थ— जिन पुद्गलपरमाणुओंके समुदायरूप समयप्रबद्धमें केवल पहले ग्रहण किये हुए परमाणु ही हों, उस पुद्गलपुंजको गृहीत कहते हैं। जिस समयप्रबद्धमें ऐसे परमाणु हों कि जिनका जीवने पहिले कभी ग्रहण नहीं किया हो उस पुद्गलपुंजको अगृहीत कहते हैं। जिस समयप्रबद्धमें दोनों प्रकारके परमाणु हों उस पुद्गलपुंजको मिश्र कहते हैं।

अब यहांपर उक्त तीनों प्रकारके कालोंके परिवर्तनका क्रम कहते हैं। वह इस प्रकार है— पुद्गलपरिवर्तनके आदि समयसे लेकर अनन्तकाल तक अगृहीतग्रहणका काल होता है, क्योंकि, उसमें शेष दो प्रकारके कालोंका अभाव है। पुनः अगृहीतग्रहणकालके अन्तमें एक वार मिश्रपुद्गलपुंजके ग्रहण करनेका काल आता है। फिर भी द्वितीयवार अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल जाकर एकवार मिश्रपुद्गलपुंजके ग्रहण करनेका काल आता है। इसी प्रकार तृतीयवार भी अगृहीतग्रहणकालके द्वारा अनन्तकाल जाकर एक वार मिश्रग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है। इस प्रकारसे मिश्रग्रहणकालकी भी शलाकाएं अनन्त हो जाती हैं। पुनः अनन्तकाल अगृहीतग्रहणकालके द्वारा बिता कर एकवार गृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है। इस क्रमसे अनन्तकाल व्यतीत होता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं भी

१ प्रतिषु 'जं गहिद-' इति पाठः।

अणंतं कालं मिस्सयगहणद्धाए गमेदूण[1] सइं अगहिदगहणद्धा परिणमदि । एवमेदाहि देहि अद्धाहि अणंतकालं गमिय सइं गहिदगहणद्धा भवदि । एवमेदेण पयारेण जीवस्स कालो गच्छदि जाव एत्थतणगहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । एवं दो परियट्टणवारा गदा । पुणो णंतं कालं मिस्सयद्धाए गमिय सइं गहिदगहणद्धाए परिणमदि । एदेण पयारेण गहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ । तदो सइमगहिदगहणद्धाए परिणमदि । एदेण वि पयारेण अणंतो कालो गच्छदि जाव एत्थतणअगहिदगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । एसो तदियो परियट्टो । संपदि चउत्थपरियट्टं भणिस्सामो । तं जधा– अणंतकालं गहिदगहणद्धाए गमेदूण सइं मिस्सयगहणद्धाए परिणमदि । एवमेदाहि देहि अद्धाहि अणंतकालं गमेदि जाव एत्थतणमिस्सयगहणद्धासलागाओ अणंतत्तं पत्ताओ त्ति । तदो सइमगहिदगहणद्धाए परिणमदि । पुणो उवरि एदेण चेव कमेण कालो गच्छदि जाव पोग्गलपरियट्टचरिमसमओ त्ति[2] । पोग्गलपरियट्टआदिमसमए जे

अनन्तत्वको प्राप्त हो जाती है (इस प्रकार प्रथम परिवर्तनवार व्यतीत हुआ)। पुनः इसके ऊपर अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालकी अपेक्षा विताकर एकवार अगृहीतग्रहणकाल परिणत होता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंसे अनन्तकाल विताकर एकवार गृहीतग्रहणकाल होता है। इस तरह उक्त प्रकारसे जीवका काल तब तक व्यतीत होता हुआ चला जाता है जब तक कि यहांकी गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं भी अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार दो परिवर्तनवार व्यतीत हुए। पुनः अनन्तकाल मिश्रग्रहणकालके द्वारा विताकर एकवार गृहीतग्रहणकालका परिणमन होता है। इस प्रकारसे गृहीतग्रहणकालकी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त हो जाती हैं। तत्पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमन होता है। पुनः इस प्रकारसे भी अनन्तकाल तब तक व्यतीत होता है जब तक कि यहां पर भी अगृहीतग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं। यह तीसरा परिवर्तन है। अब चतुर्थ परिवर्तनको कहते हैं। वह इस प्रकार है—अनन्तकाल गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी विताकर एकवार मिश्रग्रहणकालका परिवर्तन होता है। इस प्रकार इन दोनों प्रकारके कालोंद्वारा अनन्तकाल विताता है जब तक कि यहांकी मिश्रग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएं अनन्तताको प्राप्त होती हैं। इसके पश्चात् एकवार अगृहीतग्रहणकालरूपसे परिणमित होता है। इसके पश्चात् फिर भी इसके आगे इस ही क्रमसे पुद्गलपरिवर्तनके अन्तिम समय तक काल व्यतीत होता जाता है। (इस चतुर्थ परिवर्तनके समाप्त हो जानेपर) नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनके

---

१ प्रतिषु 'गमेदूण ण सइं' इति पाठः ।

२ अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च । मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं च अगहिदं च ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

जीवेण णोकम्मसरूवेण गहिदा पोग्गला ते विदियादिसमएसु अकम्मभावं गंतूण जम्हि काले ते चेव सुद्धा आगच्छंति सो कालो पोग्गलपरियट्टेत्ति भण्णदि ।[1]

०	+	+	१
+	०	१	+
१	१	०	०

आदिम समयमें जीवके द्वारा नोकर्मस्वरूपसे जो पुद्गल ग्रहण किये थे वे ही पुद्गल द्वितीयादि समयोंमें अकर्मभावको प्राप्त होकरके जिस कालमें वे ही शुद्ध पुद्गल आने लगते हैं, वह काल 'पुद्गलपरिवर्तन' इस नामसे कहा जाता है ।

विशेषार्थ— परिवर्तन पांच प्रकारका है-द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन। इनमें से द्रव्यपरिवर्तनके दो भेद हैं-नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन। यहां नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप वतलाया गया है। उसी स्वरूपके समझानेके लिए मूलमें संदृष्टि दी गई है। जिसमें अगृहीतसूचक शून्य (०) पुनः मिश्रसूचक हंसपद (+) और गृहीतसूचक एकका अंक (१) दिया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि अनन्तवार अगृहीत परमाणुपुंजके ग्रहण करनेके बाद एक वार मिश्र परमाणुपुंजका ग्रहण होता है । पुनः अनन्तवार उक्त क्रमसे मिश्रग्रहण करनेके वाद एक वार गृहीत परमाणुपुंजका ग्रहण होता है। इस प्रकार अनन्तवार गृहीतग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका प्रथम भेद समाप्त होता है। यह संदृष्टिकी प्रथम कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है। तत्पश्चात् अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है। और अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका ग्रहण होता है। इस प्रकारसे अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका दूसरा भेद समाप्त होता है। यही दूसरी कोष्ठक-पंक्तिका अभिप्राय है। पुनः अनन्तवार मिश्रका ग्रहण हो जाने पर एकवार गृहीतका, और अनन्तवार गृहीतका ग्रहण हो जाने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है। इस प्रकार अनन्तवार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गलका तीसरा भेद समाप्त होता है। यही तीसरी कोष्ठक-पंक्तिका अर्थ है। पुनः अनन्तवार गृहीतका ग्रहण होनेके पश्चात् एकवार मिश्रका और अनन्तवार मिश्रका ग्रहण होने पर एकवार अगृहीतका ग्रहण होता है। इस प्रकारसे अनन्तवार अगृहीतका ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनका चौथा भेद समाप्त होता है। इस सबके समुदायको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं। तथा इसमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका काल कहते हैं।

१ प्रतिषु

०	०	१	१
+	१	०	+
१	+	+	०

इति पाठः ।

एत्थ अप्पाबहुगं । सव्वत्थोवा अगहिदगहणद्धा । मिस्सयगहणद्धा अणंतगुणाओ । जहण्णिया गहिदगहणद्धा अणंतगुणा । जहण्णओ पोग्गलपरियट्टो विसेसाहिओ । उक्कस्सिया गहिदगहणद्धा अणंतगुणा । उक्कस्सओ पोग्गलपरियट्टो विसेसाहिओ । किं कारणमगहिदगहणद्धा थोवा जादा ? वुच्चदे- जे णोकम्मपज्जाएण परिणमिय अकम्मभावं गंतूण तेण अकम्मभावेण जे थोवकालमच्छिया ते बहुवारमागच्छंति, अविणट्ठचउव्विहपाओग्गादो[1] । जे पुण अप्पिदपोग्गलपरियट्टब्भंतरे ण गहिदा ते चिरेण आगच्छंति, अकम्मभावं गंतूण तत्थ चिरकालावट्ठाणेण विणट्ठचउव्विहपाओग्गत्तादो । भणिदं च—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं[2] ॥ २० ॥

अब उक्त अगृहीत, मिश्र और गृहीतसंबन्धी तीनों प्रकारके कालोंका अल्पबहुत्व कहते हैं—सबसे कम अगृहीतग्रहणका काल है । अगृहीतग्रहणके कालसे मिश्रग्रहणका काल अनन्तगुणा है । मिश्रग्रहणके कालसे जघन्य गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । जघन्य गृहीतग्रहणके कालसे जघन्य पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है । जघन्य पुद्गलपरिवर्तनके कालसे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा है । और उत्कृष्ट गृहीतग्रहणके कालसे उत्कृष्ट पुद्गलपरिवर्तनका काल विशेष अधिक है ।

शंका—अगृहीतग्रहणकालके सबसे कम होनेका कारण क्या है ?

समाधान—जो पुद्गल नोकर्मपर्यायसे परिणमित होकर पुनः अकर्मभावको प्राप्त हो, उस अकर्मभावसे अल्पकाल तक रहते हैं वे पुद्गल तो बहुतवार आते हैं; क्योंकि, उनकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार प्रकारकी योग्यता नष्ट नहीं होती है । किन्तु जो पुद्गल विवक्षित पुद्गलपरिवर्तनके भीतर नहीं ग्रहण किये गये हैं, वे चिरकालके बाद आते हैं, क्योंकि, अकर्मभावको प्राप्त होकर उस अवस्थामें चिरकाल तक रहनेसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संस्कारका विनाश हो जाता है । कहा भी है—

जो कर्मपुद्गल पहले बद्धावस्थामें सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थितिसे संयुक्त थे, अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्थासे मुक्त अर्थात् रहित हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीवके प्रदेशोंके साथ जिनका एकक्षेत्रावगाह है, तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकारका पुद्गल द्रव्य बहुलतासे ग्रहणको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

१ अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वतः स्तोकः । कुतः, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुवारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये बहुवारग्रहणं संभवतीत्युक्तं भवति । गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहितं जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपन्नत्वात् । गो. जी. जी. प्र. ५६०.

एदेण कारणेण अगहिदगहणद्धा थोवा जादा। एसो णोकम्मपोग्गलपरियट्टो णाम। जधा णोकम्मपोग्गलपरियट्टो वुत्तो, तधा चेव कम्मपोग्गलपरियट्टो[1] वत्तव्वो। णवरि विसेसो णोकम्मपोग्गला आहारवग्गणादो आगच्छंति। कम्मपोग्गला पुण कम्मइयवग्गणादो। णोकम्मपोग्गलाणं तदियसमए चेव मिस्सयगहणद्धा होदि। कम्मपोग्गलाणं पुण तिसमयाहियावलियाए। कुदो? बंधावलियादीदाणं समयाहियावलियाए ओकड्डणवसेण पत्तोदयाणं दुसमयाहियावलियाए अकम्मभावं गदाणं कम्मपोग्गलाणं तिसमयाहियावलियाए कम्मपज्जाएण परिणमिय अण्णपोग्गलेहि सह जीवे बंधं गदाणमुवलंभा। णवरि दोसु वि पोग्गलपरियट्टेसु[2] सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तएण पढमसमयतब्भवत्थेण पढमसमयआहारएण जहण्णुववादजोगेण गहिदकम्म-णोकम्मदव्वं घेत्तूण आदी कायव्वा। एत्थ उवउज्जंती गाहा—

गहणसमयम्हि जीवो उप्पादेदि दु गुणं सपच्चयदो।
जीवेहि अणंतगुणं कम्म पदेसेसु सव्वेसु ॥ २१ ॥

इस सूत्रोक्त कारणसे अगृहीतग्रहणका काल अल्प होता है।

इस प्रकार इस नयका नाम नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन है।

जिस प्रकारसे नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन कहा है, उसी प्रकारसे कर्मपुद्गलपरिवर्तन भी कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि नोकर्मपुद्गल आहारवर्गणासे आते हैं। किन्तु कर्मपुद्गल कार्मणवर्गणासे आते हैं। नोकर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तृतीय समयमें ही होता है। किन्तु कर्मपुद्गलोंके मिश्रग्रहणका काल तीन समय अधिक आवली-प्रमाण कालके व्यतीत होने पर होता है; क्योंकि, जो बन्धावलीसे अतीत हैं, एक समय अधिक आवलीके द्वारा अपकर्षणके वशसे जो उदयको प्राप्त हुए हैं, और दो समय अधिक आवलीके रहनेपर जो अकर्मभावको प्राप्त हुए हैं, ऐसे कर्मपुद्गलोंका तीन समय अधिक आवलीके द्वारा कर्मपर्यायसे परिणमन होकर अन्य पुद्गलोंके साथ जीवमें बंधको प्राप्त होना पाया जाता है। विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंमें प्रथम समयमें तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए, तथा प्रथम समयमें ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीवके द्वारा जघन्य उपपादयोगसे गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्यको ग्रहण करके आदि अर्थात् परिवर्तनका प्रारंभ करना चाहिए। यहां पर उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

कर्मग्रहणके समयमें जीव अपने गुणांश प्रत्ययोंसे, अर्थात् स्वयोग्य बंधकारणोंसे, जीवोंसे अनन्तगुणे कर्मोंको अपने सर्व प्रदेशोंमें उत्पादन करता है ॥ २१ ॥

१ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम्। स. सि. २, १०.

२ प्रतिषु 'परियट्टे' इति पाठः।

एवं दव्वपोग्गलपरियट्टणं गदं। खेत्त-काल-भव-भावपोग्गलपरियट्टा भाणिदूण गेण्हिदव्वा। तेसिं गाहाओ—

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिदा दु जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पोग्गलपरियट्टसंसारे[1] ॥ २२ ॥
सव्वम्हि लोगखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण ओच्छुण्णं।
ओगाहणओ बहुसो हिंडंते खेत्तसंसारे[2] ॥ २३ ॥
ओसप्पिण्णि-उस्सप्पिणि-समयावलिया णिरंतरा सव्वा।
जादो मुदो य बहुसो हिंडंतो कालसंसारे[3] ॥ २४ ॥
[4]णिरआउआ जहण्णा जाव दु उवरिल्लओ दु गेवज्जो।
जीवो मिच्छत्तवसा भवट्ठिदिं हिंडिदो बहुसो[5] ॥ २५ ॥

....

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ। क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गलपरिवर्तनोंको कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए। उन परिवर्तनोंकी (संक्षेपसे अर्थ-प्रतिपादक) गाथाएं इस प्रकार हैं—

इस जीवने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक एक करके पुनः पुनः अनन्तवार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं ॥ २२ ॥

इस समस्त लोकरूप क्षेत्रमें एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप संसारमें क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुतवार नाना अवगाहनाओंसे इस जीवने न छुआ हो ॥ २३ ॥

कालपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्व समयोंकी आवलियोंमें निरंतर बहुतवार उत्पन्न हुआ और मरा है ॥ २४ ॥

भवपरिवर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव मिथ्यात्वके वशसे जघन्य नारकायुसे लगाकर (तिर्यंच, मनुष्य और) उपरिम ग्रैवेयक तककी भवस्थितिको बहुतवार प्राप्त हो चुका है ॥ २५ ॥

....

१ स. सि. २, १०. परं तत्र 'एगे' इति स्थाने 'कमसो' इति पाठः। सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेनाप्तोज्झिताश्च जीवेन। ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ स. सि. २, १०. परं तत्र 'ओच्छुण्णं' इति स्थाने 'उप्पण्णं' इति पाठः। सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः। अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

३ स. सि २, १०. परं तत्र द्वितीयचरणे 'समयावलियासु णिरवसेसासु' इति पाठः। उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु। जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

४ प्रतिषु गाथेयं २६ तमांकितगाथायाः पश्चादुपलभ्यते।

५ णिरयादिजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवेज्जा। मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा ॥ स. सि. २, १०. नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु। मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

सव्वासिं पगदीणं अणुभाग-पदेसबंधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा परिभमिदो भावसंसारे[1] ॥ २६ ॥
परियट्टिदाणि बहुसो पंच वि परियट्टणाणि जीवेण ।
जिणवयणमलभमाणेण दीदकाले अणंताणि[2] ॥ २७ ॥
जह गेण्हइ परियट्टं पुरिसो अच्छादणस्स विविहस्स ।
तह पोग्गलपरियट्टे गेण्हइ जीवो सरीराणि ॥ २८ ॥

अदीदकाले एगस्स जीवस्स सव्वत्थोवा भावपरियट्टवारा । भवपरियट्टवारा अणंतगुणा । कालपरियट्टवारा अणंतगुणा । खेत्तपरियट्टवारा अणंतगुणा । पोग्गलपरियट्टवारा अणंतगुणा । सव्वत्थोवो पोग्गलपरियट्टकालो । खेत्तपरियट्टकालो अणंतगुणो । कालपरियट्टकालो अणंतगुणो । भवपरियट्टकालो अणंतगुणो । भावपरियट्टकालो अणंतगुणो[3] ।

यह जीव मिथ्यात्वके वशीभूत होकर भावपरिवर्तनरूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधस्थानोंको अनेकवार प्राप्त हुआ है ॥ २६ ॥

जिन-वचनोंको नहीं पा करके इस जीवने अतीतकालमें पांचों ही परिवर्तन पुनः पुनः करके अनन्तवार परिवर्तित किये हैं ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष नाना प्रकारके वस्त्रोंके परिवर्तनको ग्रहण करता है, अर्थात् उतारता है और पहनता है, उसी प्रकारसे यह जीव भी पुद्गलपरिवर्तनकालमें नाना शरीरोंको छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ २८ ॥

अतीतकालमें एक जीवके सबसे कम भावपरिवर्तनके वार हैं । भवपरिवर्तनके वार भावपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । कालपरिवर्तनके वार भवपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । क्षेत्रपरिवर्तनके वार कालपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं । पुद्गलपरिवर्तनके वार क्षेत्रपरिवर्तनके वारोंसे अनन्तगुणे हैं ।

पुद्गलपरिवर्तनका काल सबसे कम है । क्षेत्रपरिवर्तनका काल पुद्गलपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । कालपरिवर्तनका काल क्षेत्रपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भवपरिवर्तनका काल कालपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । भावपरिवर्तनका काल भवपरिवर्तनके कालसे अनन्तगुणा है । (इन परिवर्तनोंकी विशेष जानकारीके लिये देखो सर्वार्थसिद्धि २, १०; व गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५६० टीका) ।

---

१ सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि । मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे । स. सि. २, १०. सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि । स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

२ पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः । मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति । गो. जी. जी. प्र. ५६०.

३ गो. जी. जी. प्र. ५६०.

एदेसु परियट्टेसु पोग्गलपरियट्टेण पयदं। कम्म-णोकम्मभेदेण दुविहो पोग्गलपरियट्टो, तत्थ केण पयदं? दोहि वि पयदं, दोण्हं कालभेदाभावा। सो वि कुदो अवगम्मदे? पोग्गलपरियट्टप्पाबहुगे दो वि पोग्गलपरियट्टे एक्कट्ठं कादूण कालप्पाबहुगविधाणादो। एदस्स पोग्गलपरियट्टकालस्स अद्धं देसूणं सादि-सणिहणमिच्छत्तस्स कालो होदि। तं कधं? एगो अणादियमिच्छादिट्ठी अपरित्तसंसारो अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं अणियट्टिकरणमिदि एदाणि तिण्णि करणाणि कादूण सम्मत्तं गहिदपढमसमए चेव सम्मत्तगुणेण पुव्विल्लो अपरित्तो संसारो ओहट्टिदूण परित्तो पोग्गलपरियट्टस्स अद्धमेत्तो होदूण उक्कस्सेण चिट्ठदि। जहण्णेण अंतोमुहुत्तमेत्तो। एत्थ पुण जहण्णकालेण णत्थि कज्जं, उक्कस्सेण अधियारादो। सम्मत्तं गहिदपढमसमए णट्ठो मिच्छत्तपज्जाओ। कधमुप्पत्ति-विणासाणमेक्को समओ?

इन ऊपर बतलाये गये पांचों परिवर्तनोंमेंसे यहां पर पुद्गलपरिवर्तनसे प्रयोजन है।

शंका—कर्म और नोकर्मके भेदसे पुद्गलपरिवर्तन दो प्रकारका है, उनमेंसे यहांपर किससे प्रयोजन है?

समाधान—यहां दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, दोनोंके कालमें भेद नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान—पुद्गलपरिवर्तनकालके अल्पबहुत्व बताते समय दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनोंको इकट्ठा करके कालका अल्पबहुत्वविधान किया गया है। इससे जाना जाता है कि दोनों पुद्गलपरिवर्तनोंके कालमें भेद नहीं है।

इस पुद्गलपरिवर्तनकालका कुछ कम अर्धभाग सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल होता है।

शंका—सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कैसे होता है?

समाधान—एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीतसंसारी (जिसका संसार बहुत शेष है ऐसा) जीव, अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण, इस प्रकार इन तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्व ग्रहणके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्वगुणके द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत संसारीपना हटाकर व परीतसंसारी हो करके अधिकसे अधिक पुद्गलपरिवर्तनके आधे काल प्रमाण ही संसारमें ठहरता है। तथा, सादि-सान्त मिथ्यात्वका काल कम से कम अन्तर्मुहूर्तमात्र है। किन्तु यहां पर जघन्यकालसे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट कालका अधिकार है। सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्व पर्याय नष्ट हो जाती है।

शंका—सम्यक्त्वकी उत्पत्ति और मिथ्यात्वका विनाश इन दोनों विभिन्न कार्योंका एक समय कैसे हो सकता है?

ण, एक्कम्हि समए पिंडागारेण विणट्ठ-घडाकारेणुप्पण्ण-मट्टियदव्वस्सुवलंभा । सव्व-जहण्णमंतोमुहुत्तमुवसमसम्मत्तद्धाए अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो । तदो मिच्छत्तेण सादिओ जादो, विणट्ठो सम्मत्तपज्जाएण । तदो मिच्छत्तपज्जाएण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं[१] परियट्टिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे मणुस्सेसु उववण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे तिण्णि वि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (२) । तदो वेदगसम्मादिट्ठी जादो (३) । अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिं विसंजोएदूण (४) तदो दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) पुणो अप्पमत्तो जादो (६) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेढिमारुहमाणो अप्पमत्तसंजदट्ठाणे अधापवत्तविसोहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वकरणखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगी (१३) अजोगी होदूण सिद्धो जादो (१४) । एवमेदेहि चोद्दसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सादिसपज्जवसिदमिच्छत्तकालो होदि ।

मिच्छत्तं णाम पज्जाओ । सो च उप्पाद-विणासलक्खणो, ट्ठिदीए अभावादो । अह जइ तस्स ट्ठिदी वि इच्छिज्जदि, तो मिच्छत्तस्स दव्वत्तं पसज्जदे; 'उप्पाद-ट्ठिदि-भंगा हंदि

समाधान— नहीं, क्योंकि, जैसे एक ही समयमें पिण्डरूप आकारसे विनष्ट हुआ और घटरूप आकारसे उत्पन्न हुआ मृत्तिकारूप द्रव्य पाया जाता है; उसी प्रकार कोई जीव सबसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपशमसम्यक्त्वके कालमें रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इसलिए मिथ्यात्वसे वह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्यायसे विनष्ट हुआ । तत्पश्चात् मिथ्यात्वपर्यायसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसारमें परिभ्रमण कर, अन्तिम भवके ग्रहण करने पर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ (३) । पुनः अन्तर्मुहूर्तकालद्वारा अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन करके (४), उसके बाद दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५), पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । फिर प्रमत्त और अप्रमत्त, इन दोनों गुणस्थानोंसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (७), क्षपकश्रेणीपर चढ़ता हुआ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिसे शुद्ध होकर (८), अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११), क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३), और अयोगिकेवली होता हुआ सिद्ध हो गया (१४) । इस प्रकार इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण सादि और सान्त मिथ्यात्वका काल होता है ।

शंका— मिथ्यात्व नाम पर्यायका है । वह पर्याय उत्पाद और विनाश लक्षणवाला है, क्योंकि, उसमें स्थितिका अभाव है । और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं, तो मिथ्यात्वके द्रव्यपना प्राप्त होता है, क्योंकि, 'उत्पाद, स्थिति और भंग, अर्थात् व्यय, ही द्रव्यका लक्षण है'

---

१ देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टमुवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि भण्णदे । जयध.

दवियलक्खणं[1] इच्चारिसादो त्ति ? ण एस दोसो, अमकमेण तिलक्खणं तं दव्वं; जं पुण कमेण उप्पाद-ट्ठिदि-भंगिल्लं सो पज्जाओ त्ति जिणोवदेसादो[2]। जदि एवं, तो पुढवि-आउ-तेउ-वाऊणं पि पज्जायत्तं पसज्जदि त्ति वुत्ते, होदु तेसिं पज्जायत्तं, इट्ठत्तादो। तेसु दव्व-ववहारो वि लोए दिस्सदीदि चे ण, तस्स दुणयणिबंधणणेगमणयणिबंधणत्तादो। सुद्धे दव्वट्ठियणए अवलंबिदे छच्चेय दव्वाणि; असुद्धे दव्वट्ठियणए अवलंबिदे पुढविआदीणि अणेयाणि दव्वाणि होंति त्ति वंजणपज्जायस्स दव्वत्तब्भुवगमादो। सुद्धे पज्जायणए अप्पिदे पज्जायस्स उप्पाद-विणासा दो चेव लक्खणाणि। असुद्धे अस्सिदे कमेण तिण्णि वि लक्खणाणि, उप्पण्णपज्जयस्स वज्जसिलाथंभादिसु वंजणसण्णिदस्स अवट्ठाणुवलंभादो। मिच्छत्तं पि वंजणपज्जाओ, तम्हा एदस्स उप्पाद-ट्ठिदि-भंगा कमेण तिण्णि वि अविरुद्धा त्ति घेत्तव्वं।

उप्पज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जवणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं[3] ॥ २९ ॥

इस प्रकार आर्ष वचन है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जो अक्रमसे (युगपत्) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है। और जो क्रमसे उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है। इस प्रकारसे जिनेन्द्रका उपदेश है।

शंका—यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायुके पर्यायपना प्रसक्त होता है?

समाधान—भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे, क्योंकि, वह हमें इष्ट है।

शंका—किन्तु उन पृथिवी आदिकोंमें तो द्रव्यका व्यवहार लोकमें दिखाई देता है?

समाधान—नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय-निबंधनक नैगमनयके निमित्तसे होता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं। और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं, क्योंकि, व्यंजनपर्यायके द्रव्यपना माना गया है। किन्तु शुद्ध पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा करने पर पर्यायके उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं। अशुद्ध पर्यायार्थिकनयके आश्रय करने पर क्रमसे तीनों ही पर्यायके लक्षण होते हैं, क्योंकि, वज्रशिला, स्तम्भादिमें व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्यायका अवस्थान पाया जाता है। मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रमसे अविरुद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पर्यायनयके नियमसे पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्ययको भी प्राप्त होते हैं। किन्तु द्रव्यार्थिकनयके नियमसे सर्व-वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् ध्रौव्यात्मक है ॥२९॥

---

१ दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि। उप्पाय-ट्ठिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं ॥ स. त. १, १२.

२ उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया। दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥ प्रव. सा. २, ९.

३ स. त. १, ११.

इदि एसा वि गाहा ण विरुज्झदे, सुद्धदव्व-पज्जवट्ठियणए अवलंबिय ट्ठिदत्तादो। 'भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा' इदि वयणादो सव्वेसिं भव्वजीवाणं वोच्छेदेण होदव्वं, अण्णहा तल्लक्खणविरोहादो। ण च सव्वओ ण णिट्ठादि, अण्णत्थ तहाणुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, तस्साणंतियादो। सो अणंतो वुच्चदि, जो संखेज्जा-संखेज्जरासिव्वए संते अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठदि। वुत्तं च—

> संते वए ण णिट्ठादि कालेणाणंतएण वि।
> जो रासी सो अणंतो त्ति विणिद्दिट्ठो महेसिणा ॥ ३० ॥

जदि एवं, तो अद्धपोग्गलपरियट्टादिरासीणं सव्वयाणमणंतत्तं फिट्टदि त्ति वुत्ते फिट्टदु णाम, को दोसो ? तेसु अणंतववहारो सुत्ताइरियवक्खाणपसिद्धो उवलब्भदे चे ण, तस्स उवयारणिबंधणत्तादो। तं जहा– पच्चक्खेण पमाणेण उवलद्धो जो थंभो सो जहा

यह उक्त गाथा भी विरोधको नहीं प्राप्त होती है, क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनयको अवलम्बन करके स्थित है।

शंका—'जिन जीवोंकी सिद्धि भविष्यकालमें होनेवाली है, वे जीव भव्यसिद्ध कहलाते हैं', इस वचनके अनुसार सर्व भव्य जीवोंका व्युच्छेद होना चाहिए, अन्यथा भव्यसिद्धोंके लक्षणमें विरोध आता है। तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कभी नष्ट नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता; अर्थात् सव्यय राशिका अवस्थान देखा नहीं जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, भव्यसिद्ध जीवोंका प्रमाण अनन्त है। और अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या असंख्यातप्रमाण राशिके व्यय होने पर भी अनन्तकालसे भी नहीं समाप्त होता है। कहा भी है:—

व्ययके होते रहने पर भी अनन्तकालके द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियोंने 'अनन्त' इस नामसे विनिर्दिष्ट किया है ॥ ३० ॥

शंका—यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियोंका अनन्तत्व नष्ट हो जाता है ?

समाधान—उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है ?

शंका—किन्तु उन अर्धपुद्गलपरिवर्तन आदिकोंमें अनन्तका व्यवहार सूत्र तथा आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उन पुद्गलपरिवर्तन आदिमें अनन्तत्वका व्यवहार उपचार-निबन्धनक है। अब इसी उपचारनिबन्धनताको स्पष्ट करते हैं— जो पाषाणादिका स्तम्भ

---

१ गो. जी. ५५७.

उवयारेण पच्चक्खो त्ति लोए वुच्चदे, तहा ओहिणाणविसयमुल्लंघिय ट्ठिदरासीओ केवलस्स अणंतस्स विसओ त्ति उवयारेण ताओ अणंताओ त्ति वुच्चंति । तम्हा तेसु सुत्ताइरियवक्खाणपसिद्धेण अणंतववहारेण णेदं वक्खाणं विरुज्झदे। अहवा वए संते वि अक्खयो को वि रासी अत्थि, सव्वस्स सपडिवक्खस्सेवुवलंभादो। एसो वि भव्वरासी अणंतो, तम्हा संते वि वए अणंतेण वि कालेण ण णिट्ठिस्सइ त्ति सिद्धं ।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1] ॥ ५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अवयवत्थो पुव्वं परूविदो त्ति णेह वुच्चदे, पुणरुत्तभया । एत्थ एगसमयनिरूवणा कीरदे । तं जधा– दो वा तिण्णि वा एगुत्तरवड्ढीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा एगसमयं दिट्ठा । विदियसमये सव्वे वि मिच्छत्तं गदा, तिसु वि लोएसु सासणाणमभावो जादो त्ति लद्धो एगसमओ ।

प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध है, वह जिस प्रकार उपचारसे 'प्रत्यक्ष है' ऐसा लोकमें कहा जाता है, उसी प्रकारसे अवधिज्ञानके विषयका उल्लंघन करके जो राशियां स्थित हैं, वे सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञानके विषय हैं, इसलिए उपचारसे 'अनन्त हैं' इस प्रकारसे कही जाती हैं । अतएव सूत्र और आचार्योंके व्याख्यानसे प्रसिद्ध अनन्तके व्यवहारसे यह व्याख्यान विरोधको प्राप्त नहीं होता है। अथवा, व्ययके होते रहने पर भी सदा अक्षय रहनेवाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियोंके प्रतिपक्षके समान पाई जाती है।

इसी प्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, इसलिए व्ययके होते रहनेपर भी अनन्तकालद्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रका अवयवार्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोषके भयसे यहां पर नहीं कहते हैं । अब यहां पर एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकारसे है:– दो अथवा तीन, इस प्रकार एक अधिक वृद्धिसे बढ़ते हुए पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयमात्र काल अवशिष्ट रह जाने पर एक साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए एक समयमें दिखाई दिये । दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हो गये । उस समय तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अभाव हो गया । इस प्रकार एक समयप्रमाण सासादनगुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा काल प्राप्त हुआ ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ६ ॥

दोण्णि वा तिण्णि वा एवं एगुत्तरवड्डीए जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा उवसमसम्मादिट्ठिणो एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण छ आवलियाओ उवसमसम्मत्तद्धाए अत्थि त्ति सासणत्तं पडिवण्णा। जाव ते मिच्छत्तं ण गच्छंति ताव अण्णे वि अण्णे वि उवसमसम्मादिट्ठिणो सासणत्तं पडिवज्जंति। एवं गिम्हकालरुक्खछाहीव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं कालं जीवेहि असुण्णं होदूण सासणगुणट्ठाणं लब्भदि। केवडिओ सो पुण कालो? सगरासीदो असंखेज्जगुणो। तं जहा– सासणगुणस्स णिरंतरुवक्कमणकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो। सांतरुवक्कमणवारा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता। एवं होंति त्ति कट्टु सासणुक्कस्सकालुप्पत्तिविहाणं वुच्चदे। तं जधा– एगस्स सासणगुणट्ठाणुवक्कमणवारस्स जदि मज्झिमपडिवत्तीए आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो सासणगुणकालो लब्भदि, संखेज्जावलियमेत्तो वा, आवलियाए संखेज्जदिभागमेत्तो वा, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणवाराणं

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६ ॥

दो, अथवा तीन, अथवा चार, इस प्रकार एक एक अधिक वृद्धिद्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छह आवलियां उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते हैं, तबतक अन्य अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं। इस प्रकारसे ग्रीष्मकालके वृक्षकी छायाके समान उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालतक जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर, सासादनगुणस्थान पाया जाता है।

शंका—सो वह काल कितना है?

समाधान—अपनी, अर्थात् सासादनगुणस्थानवर्ती, राशिसे असंख्यातगुणा है। वह इस प्रकार है— सासादनगुणस्थानके निरन्तर उपक्रमणका काल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र है। किन्तु सान्तर उपक्रमणके वार तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं। ये वार इस प्रकार होते हैं, ऐसा मानकर सासादनगुणस्थानके उत्कृष्टकालकी उत्पत्तिका विधान कहते हैं। वह इस प्रकार है—

एक जीवके सासादनगुणस्थानके उपक्रमणवारका यदि मध्यम प्रतिपत्तिसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र सासादनगुणस्थानका काल पाया जाता है, अथवा, संख्यात आवली मात्र, अथवा आवलीके संख्यातवें भागमात्र काल पाया जाता है; तो पल्योपमके असंख्यातवें

१ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

केत्तियं कालं लभामो त्ति इच्छागुणिदफलम्हि पमाणेणोवट्टिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो सासणकालो होदि त्ति घेत्तव्वं। जदि वि एत्थ सुत्तं णत्थि, तो वि एदं वक्खाणं सुत्तं व सद्दहेदव्वं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1] ॥ ७ ॥

एदस्सत्थो- एक्को उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं गदो। जदि उवसमसम्मत्तद्धा महंती होदि, तो को दोसो ? ण, सासणगुणद्धाए बहुत्तप्पसंगा। जेत्तियाए उवसमसम्मत्तद्धाए सेसाए जीवो सासणं पडिवज्जदि, तेत्तिओ चेव सासणगुणकालो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा। वुत्तं च-

उवसमसम्मत्तद्धा जत्तियमेत्ता हु होइ अवसिट्ठा।
पडिवज्जंता साणं तत्तियमेत्ता य तस्सद्धा ॥ ३१ ॥

भागमात्र उपक्रमण वारोंका कितना काल प्राप्त होगा? इस प्रकार इच्छाराशिसे गुणित फलराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि इस विषयमें कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्रके समान श्रद्धान करने योग्य है।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्यकाल एक समय है ॥ ७ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशिष्ट रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ।

शंका—यदि उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक हो, तो क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक माननेपर सासादनगुणस्थानकालके भी बहुत्वका प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थानका काल बहुत मानना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकालके शेष रहनेपर जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है, उतना ही सासादनगुणस्थानका काल होता है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेश है। कहा भी है—

जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्वका काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादनगुण-स्थानका, काल होता है ॥ ३१ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

एगसमयं सासाणगुणेण सह ट्ठिदो, विदियसमए मिच्छत्तं गदो। एवं सासणगुणस्स लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलिआओ[1] ॥ ८ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे– एक्को उवसमसम्माइट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। तत्थ सासणगुणम्हि छ आवलियाओ अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो। कुदो? साहियासु छसु आवलियासु सेसासु सासणगुणपडिवज्जणाभावा। वुत्तं च—

उवसमसम्मत्तद्धा जइ छावलिया हवेज्ज अवसिट्ठा।
तो सासणं पवज्जइ णो हेट्ठुक्कट्ठकालेसु[2]॥ ३२ ॥

सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ९ ॥

इस ऊपर बतलाए हुए प्रकारसे उक्त जीव एक समय मात्र सासादनगुणस्थानके साथ, अर्थात् उस गुणस्थानमें, दिखाई दिया, और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकार सासादनगुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है ॥८॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानमें गया। उस सासादनगुणस्थानमें छह आवली रह करके मिथ्यात्वमें गया, क्योंकि, साधिक छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेका अभाव है। कहा भी है—

यदि उपशमसम्यक्त्वका काल छह आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है। यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

(इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा छह आवलीप्रमाण ही सासादनगुणस्थानका उत्कृष्टकाल है।)

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ९ ॥

---

१ उत्कर्षेण षडावलिकाः। स. सि. १, ८.

२ उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्तो दु समयमेत्तो त्ति। अवसिट्ठे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि॥ लब्धि. १००.

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

एदस्स अत्थो– अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी वेदगसम्मत्तसहिदअसंजद-संजदासंजद-पमत्तसंजदा सत्तट्ठ जणा वा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता वा, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदा। तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण मिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा पडिवण्णा। णट्ठं सम्मामिच्छत्तं। एवं सम्मामिच्छत्तस्स अंतोमुहुत्तकालो सिद्धो। अप्पमत्तसंजदो किमिदि सम्मामिच्छत्तं ण णीदो? ण, तस्स संकिलेस-विसोहीहि सह पमत्तापुव्वगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा। मदस्स वि असंजदसम्मादिट्ठिवदिरित्तगुणंतरगमणाभावा। पच्छा सम्मामिच्छादिट्ठी संजमं संजमासंजमं वा किण्ण णीदो? ण, तस्स मिच्छत्त-सम्मत्तसहिदासंजदगुणे मोत्तूण गुणंतरगमणाभावा। किं कारणं? सहावदो चेय। ण हि सहाओ परपज्जणिओगारुहो, विरोहा।

....

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले सात आठ जन, अथवा आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव, परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए। वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुए। तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ।

शंका— यहां पर अप्रमत्तसंयत जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान— नहीं, क्योंकि, यदि अप्रमत्तसंयत जीवके संक्लेशकी वृद्धि हो, तो प्रमत्तसंयतगुणस्थानको, और यदि विशुद्धिकी वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है। यदि अप्रमत्तसंयत जीवका मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमन नहीं होता है।

शंका— सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयमको अथवा संयमासंयमको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वसहित मिथ्यादृष्टिगुणस्थानको, अथवा सम्यक्त्वसहित असंयतगुणस्थानको छोड़कर दूसरे गुणस्थानोंमें गमनका अभाव है।

शंका—अन्य गुणस्थानोंमें नहीं जानेका क्या कारण है?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभाव दूसरेके प्रश्नके योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि, उसमें विरोध आता है।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १० ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे- पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थंतोमुहुत्तमच्छिय जाव ते मिच्छत्तं वा सासंजमसम्मत्तं वा ण पडिवज्जंति, ताव अण्णे वि अण्णे वि पुव्वुत्तजीवा सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेदव्वा जाव सव्वुक्कस्सो णाणाजीवावेक्खो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालो जादो त्ति । सो पुण सगरासीदो असंखेज्जगुणो । एदस्स वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । तदो णियमेण अंतरं होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ११ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे-एक्को मिच्छादिट्ठी विसुज्झमाणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण विसुज्झमाणो चेव सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णो । संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं किण्ण गदो ? ण, विसोधिअद्धं संपुण्णमच्छिय संकिलेसं पूरिय मिच्छत्तं गच्छमाणसम्मामिच्छत्तकालस्स बहुत्तप्पसंगा । एक्किस्से विसोहीए कालादो संकिलेस-

---

नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर जबतक वे मिथ्यात्वको अथवा असंयमसहित सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होते हैं, तबतक अन्य अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराते जाना चाहिए, जबतक कि सर्वोत्कृष्ट नाना जीवोंकी अपेक्षा रखनेवाला पल्योपमका असंख्यातवां भागमात्र काल पूरा हो। वह काल अपने गुणस्थानवर्ती जीवराशिसे असंख्यातगुणा होता है। इसका भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। उसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥११॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर विशुद्ध होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ।

शंका—संक्लेशको पूरित करके, अर्थात् संक्लेशपरिणामी होकर, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको क्यों नहीं प्राप्त हुआ ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विशुद्धिके संपूर्ण काल तक अपने गुणस्थानमें रह करके और संक्लेशको धारण करके मिथ्यात्वको जानेवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वसंबंधी कालके बहुत्वका प्रसंग हो जायगा। इसका कारण यह है कि एक भी विशुद्धिके कालसे संक्लेश

---

१ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यः उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

विसोहीणं दोण्हं पि कालो दोण्हं विच्चाले ट्ठिदपडिभग्गकालसहिदो णिच्छएण संखेज्जगुणो त्ति अहिप्पाएण मिच्छत्तं ण णीदो । अधवा वेदगसम्मादिट्ठी संकिलिस्समाणगो सम्मामिच्छत्तं गदो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण अविणट्ठसंकिलेसो मिच्छत्तं गदो। एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । एवं दोहि पयारेहि सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणा गदा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

तं कधं ? एक्को विसुज्झमाणो मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं गदो, सव्वुक्कस्सअंतोमुहुत्तमच्छिदूण संकिलिट्ठो होदूण मिच्छत्तं गदो । पुव्विल्लजहण्णकालादो एसो उक्कस्सकालो संखेज्जगुणो, सव्वुक्कस्सतिकालसमूहत्तादो । अधवा वेदगसम्मादिट्ठी संकिलिस्समाणगो सम्मामिच्छत्तं गदो । सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तकालमच्छिदूण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १३ ॥

और विशुद्धि, इन दोनोंका ही काल, दोनोंके अन्तरालमें स्थित प्रतिभाग कालसहित निश्चयसे संख्यातगुणा होता है, इस प्रकारके अभिप्रायसे वह वर्धमान विशुद्धिवाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त कराया गया। अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ, और वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्लेशी हुआ ही मिथ्यात्वको चला गया। यहां पर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए। इस तरह दो प्रकारोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्यकालकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१२॥

वह इस प्रकार है— एक विशुद्धिको प्राप्त होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहकर और संक्लेशयुक्त हो करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पहले बतलाये गए इसी गुणस्थानके जघन्य कालसे यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है, क्योंकि, वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकालके समूहात्मक है। अथवा, संक्लेशको प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। यहांपर भी कारण पूर्वके समान ही कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १. ८.

अदीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिवोच्छेदो णत्थि। कुदो? सहावदो। एसो सहाओ असंजदसम्मादिट्ठिरासिस्सत्थि त्ति कधं णव्वदे? सव्वद्धा-वयणादो। कधं पक्खो चेव साहणत्तं पडिवज्जदे? ण, उभयपक्खत्तिसइजुत्तस्स जिणवयणस्स एक्कस्स वि पक्खसाहणत्ते विरोहाभावा। दिवायरो सुओ उदेदि त्ति वयणस्सेव किरियाविसेसणत्तादो सव्वद्धमिदि पावेदि? ण, तहा विवक्खाभावा। पुणो कधमेत्थतणविवक्खा? वुच्चदे- सव्वा अद्धा जेसिं ते सव्वद्धा, सव्वकालसंबंधिणो त्ति वुत्तं होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १४ ॥

तं कधं? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा पमत्तसंजदो वा पुव्वं सासंजमसम्मत्ते बहुवारं परियट्टंतो अच्छिदो असंजदो जादो।

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका व्युच्छेद नहीं है।

शंका—त्रिकालमें भी असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका व्युच्छेद क्यों नहीं होता?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना?

समाधान—सूत्र-पठित 'सर्वाद्धा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचनसे जाना।

शंका—विवादस्थ पक्ष ही हेतुपनेको कैसे प्राप्त हो जायगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उभय पक्षके अतिशय युक्त अर्थात्, उभयपक्षातीत, एक भी जिनवचनके पक्ष और साधनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—'दिवाकर स्वतः उदित होता है' इस वचनके समान क्रियाविशेषण होनेसे 'सव्वद्धं' ऐसा पाठ होना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है।

शंका—तो यहां पर किस प्रकारकी विवक्षा है?

समाधान—वह विवक्षा इस प्रकारकी है— सर्व काल जिन जीवोंके होता है, वे सर्वाद्धा कहलाते हैं, अर्थात् 'सर्वकालसम्बन्धी जीव' यह 'सर्वाद्धा' पदका अर्थ है।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

शंका—यह काल कैसे संभव है?

समाधान—जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्वमें बहुतवार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा संजमासंजमं वा अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो। उवरिमगुणट्ठाणेहिंतो संकिलेसेण जे असंजदसम्मत्तं पडिवण्णा, ते अविणट्ठेण तेण संकिलेसेण सह मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा णेदव्वा। जे हेट्ठिमगुणट्ठाणेहिंतो विसोहीए सासंजमं सम्मत्तं पडिवण्णा, ते ताए चेव विसोहीए अविणट्ठाए सह संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा णेदव्वा, अण्णहा जहण्णकालाणुववत्तीदो।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ १५ ॥

तं कधं? एक्को पमत्तो अप्पमत्तो वा चदुण्हमुवसामगाणमेक्कदरो वा समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु अणुत्तरविमाणवासियदेवेसु उववण्णो। सासंजमसम्मत्तस्स आदी जादो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ असंजदसम्मादिट्ठी होदूण ताव ट्ठिदो जाव अंतोमुहुत्तमेत्ताउअं सेसं ति। तदो अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१)। तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) खवगसेढिपाओग्गविसोहीए विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (३)। अपुव्वखवगो (४) अणियट्टिखवगो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) सजोगी (८) अजोगी (९) होदूण सिद्धो जादो।

फिर वह सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। ऊपरके गुणस्थानोंसे संक्लेशके साथ जो असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं वे जीव उसी अविनष्टसंक्लेशके साथ मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराना चाहिए। जो अधस्तन गुणस्थानोंसे विशुद्धिके साथ असंयमसहित सम्यक्त्वको प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टविशुद्धिके साथ संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको ले जाना चाहिए; अन्यथा असंयतसम्यक्त्वका जघन्य काल नहीं बन सकता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥ १५ ॥

शंका—यह सातिरेक तेतीस सागरोपमकाल कैसे संभव है?

समाधान—एक प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत, अथवा चारों उपशामकोंमेंसे कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकर्मकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्वकी आदि हुई। इसके पश्चात् वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिवर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर वह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुके शेष रह जानेतक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा। तत्पश्चात् अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानमें सहस्रों परिवर्तन करके (२), क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो, अप्रमत्तसंयत हुआ (३)। पुनः अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिवृत्तिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्परायक्षपक (६), क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (७), सयोगिकेवली (८), और अयोगिकेवली (९) होकरके सिद्ध हो गया।

---

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

एदेहि णवहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए अदिरित्ताणि समऊणतेत्तीससागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो होदि। किमट्ठं समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो ? ण, अण्णहा असंजदद्धाए दीहत्ताणुवलंभा। कुदो ? जदि तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उप्पादिज्जदि, तो वासपुधत्तावसेसे आउए णिच्छएण संजमं पडिवज्जदि। जो पुण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय मणुसेसु उववण्णो, सो अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिमसंजमेण सह अच्छिय पुणो णिच्छएण संजदो होदि, तेण समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पादिदो।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १६ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, असंजदसम्मादिट्ठिम्हि परूविदत्तादो।

इन नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालसे अतिरिक्त तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है।

शंका — ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उक्त जीवको एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है ?

समाधान — नहीं, अन्यथा, अर्थात् एक समय कम तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानके कालमें दीर्घता नहीं पाई जा सकती है, क्योंकि, यदि पूरे तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराया जायगा तो, वर्षपृथक्त्वप्रमाण आयुके अवशेष रहने पर निश्चयसे वह संयमको प्राप्त हो जायगा। किन्तु जो एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाणकाल असंयमके साथ रह कर पुनः निश्चयसे संयत होगा। इसलिए, अर्थात्, असंयतसम्यक्त्वके कालकी दीर्घता बतानेके लिए, एक समय कम तेतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न कराया गया है।

संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके कालमें उसका प्ररूपण किया जा चुका है।

---

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेणंतोमुहुत्तं[1] ॥ १७ ॥

तं कधं ? एक्को अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पमत्तसंजदो वा पुव्वं पि बहुसो संजमासंजमगुणट्ठाणे परियट्टिदो परिणामपच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तद्धमच्छिदूण पमत्तसंजदचरो मिच्छत्तं वा सम्मामिच्छत्तं वा असंजदसम्मत्तं वा पडिवण्णो । पच्छाकदमिच्छत्ता सासंजमसम्मत्ता च अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णा । कुदो ? अण्णहा संजदासंजदद्धाए जहण्णत्ताणुववत्तीए । किमट्ठं सम्मामिच्छादिट्ठी संजमासंजमं गुणं ण, णीदो ? ण, तस्स देसविरदिपज्जाएण परिणमणसत्तीए असंभवा । वुत्तं च—

ण य मरइ णेव संजममुवेइ तह देससंजमं वावि ।
सम्मामिच्छादिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ[2] ॥ ३३ ॥

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है— जिसने पहले भी बहुतवार संयमासंयम गुणस्थानमें परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा प्रमत्तसंयत जीव पुनः परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त हुआ । वहांपर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है, अर्थात् प्रमत्तसंयतगुणस्थानसे संयतासंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ है, तो मिथ्यात्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । अथवा, यदि वे पश्चात्कृत मिथ्यात्व या पश्चात्कृत असंयमसम्यक्त्ववाले हैं, अर्थात् संयतासंयत होनेके पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुए; क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो संयतासंयत गुणस्थानका जघन्य काल नहीं बन सकता ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थानको किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके देशविरतिरूप पर्यायसे परिणमनकी शक्तिका होना असंभव है । कहा भी है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता है, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है । तथा उसके मारणान्तिकसमुद्घात भी नहीं होता है ॥ ३३ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं । सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं । तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥ गो. जी. २३-२४

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा[1] ॥ १८ ॥

तं कधं ? एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिगो मिच्छाइट्ठी सण्णि-पंचिंदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तएसु मच्छ-कच्छव-मंडूकादिसु उववण्णो । सव्वलहुएण अंतोमुहुत्तकालेण सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो जादो (१) । विस्संतो (२) विसुद्धो (३) होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो । पुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो सोधम्मादि-आरणच्चुदंतेसु देवेसु उववण्णो । णट्ठो संजमासंजमो । एवमादिल्लेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो होदि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १९ ॥

जेण तिसु वि कालेसु पमत्तापमत्तसंजदेहि विरहिदो एगो वि समओ णत्थि, तेण सव्वद्धं हवंति ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[3] ॥ २० ॥

संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ १८ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है—मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक, ऐसे संमूर्च्छन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मेंडकादिकोंमें उत्पन्न हुआ, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियोंसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ (१) । पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहां पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयमको पालन करके मरा और सौधर्मकल्पको आदि लेकर आरण अच्युतान्त कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न हुआ । तब संयमासंयम नष्ट हो गया । इस प्रकार आदिके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयमका काल होता है ।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९ ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंसे विरहित एक भी समय नहीं है, इसलिए वे सर्वकाल होते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका जघन्य काल एक समय है ॥ २० ॥

---

१ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

तं जधा– पमत्तस्स ताव एगसमओ वुच्चदे। एक्को अप्पमत्तो अप्पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति पमत्तो जादो। पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो। णट्ठो पमादविसिट्ठसंजमो। एवं पमत्तस्स एगसमयपरूवणा गदा। अप्पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को पमत्तो पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीवियमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो। अप्पमत्तगुणेण एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो देवो जादो। णट्ठमप्पमत्तगुणट्ठाणं। अधवा उवसमसेढीदो ओदरमाणो अपुव्वकरणो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो, विदियसमए मदो देवेसुववण्णो। एवं दोहि पयारेहि अप्पमत्तस्स एगसमयपरूवणा कदा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २१ ॥

पमत्तस्स ताव वुच्चदे– एक्को अप्पमत्तो पमत्तपज्जाएण परिणमिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गदो। एवं पमत्तस्स उक्कस्सकालपरूवणा गदा। अप्पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पमत्तो जादो। एसा अप्पमत्तस्स वुक्कस्सकालपरूवणा।

वह इस प्रकार है— पहले प्रमत्तसंयतका एक समय कहते हैं। एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित शेष रहनेपर प्रमत्तसंयत हो गया। प्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव उत्पन्न हो गया। तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया। इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा हुई। अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयमात्र जीवनके शेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। तब अप्रमत्तगुणस्थानके साथ एक समय दिखा, और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया। पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया। अथवा, उपशमश्रेणीसे उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अप्रमत्त हुआ, और द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हो गया। इस तरह दोनों प्रकारोंसे अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा की गई।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१ ॥

पहले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयतपर्यायसे परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा हुई। अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक प्रमत्तसंयतजीव, अप्रमत्तसंयत होकर, वहांपर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयत हो गया। यह अप्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा है।

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २२ ॥

तं कधं ? दो वा तिण्णि वा अणियट्टिउवसामगा सेढीदो ओदरमाणा एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्वकरणउवसामगा जादा। एगसमयमपुव्वकरणेण सह दिट्ठा विदियसमए मदा देवा जादा। एवमपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा कदा। अप्पमत्तमपुव्वकरणं करिय विदियसमए कालं कराविय अपुव्वकरणस्स एगसमयपरूवणा किण्ण कदेत्ति वुत्ते ण, अपुव्वकरणपढमसमयादो जाव णिद्दा-पयलाणं बंधो ण वोच्छिज्जदि ताव अपुव्वकरणाणं मरणाभावा। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूवणा णाणाजीवे अस्सिदूण कायव्वा। णवरि अणियट्टि-सुहुमउवसामगाणं चढंत-ओदरंतजीवे अस्सिदूण दोहि पयारेहि एगसमयपरूवणा कादव्वा। उवसंतकसायस्स चढंतजीवे चेय अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २३ ॥

चारों उपशामक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२ ॥

वह इस प्रकार है— उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवनके शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। तब एक समयमात्र अपूर्वकरणगुणस्थानके साथ दिखे। पुनः द्वितीय समयमें मरे, और देव हो गये। इस प्रकार अपूर्वकरण उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा की।

शंका— अप्रमत्तसंयतको अपूर्वकरणगुणस्थानमें ले जा करके और द्वितीय समयमें मरण कराके अपूर्वकरणगुणस्थानके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान— इसलिए नहीं की, कि अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंका बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतोंका मरण नहीं होता है।

इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा नाना जीवोंका आश्रय करके करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोंके एक समयकी प्ररूपणा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवोंको आश्रय करके दोनों प्रकारोंसे करना चाहिए। किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकके एक समयकी प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवोंको ही आश्रय करके करना चाहिए।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३ ॥

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १. ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १. ८.

तं कधं ? सत्तट्ठ वा चउवण्णा वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जादा जाव ते अणियट्टिट्ठाणं ण पावेंति ताव अण्णे वि अण्णे वि अप्पमत्ता अपुव्वकरणगुणट्ठाणं पडिवज्जावेदव्वा। ओयरमाणअणियट्टिणो वि अपुव्वकरणं पडिवज्जावेदव्वा। एवं चढंत-ओयरंतजीवेहि असुण्णं होदूण अपुव्वकरणगुणट्ठाणं अच्छदि जाव तप्पाओग्गउक्कस्संतोमुहुत्तं ति। तदो णिच्छएण विरहो। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणमुक्कस्सकालपरूवणा कादव्वा। णवरि उवसंतकसायस्स उक्कस्सकाले भण्णमाणे एगो उवसंतकसाओ चडिय जाव णोअरदि ताव अण्णे सुहुमसांपराइया उवसंतकसायगुणट्ठाणं चडावेदव्वा। एवं पुणो संखेज्जवारं चडाविय उवसंतकालो वड्ढावेदव्वो जाव तप्पाओग्गुक्कस्सअंतोमुहुत्तं पत्तो त्ति।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २४ ॥

तं कधं? एक्को अणियट्टिउवसामगो एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अपुव्वउवसामगो जादो एगसमयं दिट्ठो विदियसमए मदो लयसत्तमो देवो जादो। एवं तिण्हमुवसामगाणमेगसमयपरूवणा वत्तव्वा। णवरि अणियट्टि-सुहुमउवसामगाणं चढणोयरणविहाणेण वेहि

वह इस प्रकार है— सात आठसे लेकर चौपन तक अप्रमत्तसंयत जीव एकसाथ अपूर्वकरणगुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानको नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त करना चाहिए। इसी प्रकारसे उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरणगुणस्थानी उपशामक भी अपूर्वकरणगुणस्थानको प्राप्त कराना चाहिए। इस प्रकार चढ़ते और उतरते हुए जीवोंसे अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरणगुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल पूरा होने तक रहता है। इसके पश्चात् निश्चयसे विरह (अन्तराल) हो जाता है। इसी प्रकारसे तीनों ही उपशामकोंके उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामकके उत्कृष्ट कालको कहनेपर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत उपशान्तकषायगुणस्थानको चढ़ाना चाहिए। इस प्रकारसे पुनः संख्यातवार जीवोंको चढ़ाकर उपशान्तकाल उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २४ ॥

वह इस प्रकार है— एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिखा, और द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जातिका अनुत्तरविमानवासी देव हो गया। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण

---

१ एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

पयारेहि, चढणमस्सिदूण उवसंतकसायस्स एगपयारेण एगसमयपरूवणा कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २५ ॥

तं जहा– एक्को अप्पमत्तो अपुव्वउवसामगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिट्ठाणं पडिवण्णो । एवं तिण्हमुवसामगाणं वत्तव्वं ।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २६ ॥

तं कधं ? सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अप्पमत्तद्धाए खीणाए अपुव्वकरणखवगा जादा । अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिट्ठाणं गदा । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण भाणिदव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा वा बहुगा वा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वखवगा जादा । ते तत्थ

और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकोंके चढ़ने और उतरनेके विधानकी अपेक्षा दोनों प्रकारोंसे तथा आरोहणका आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामककी एक प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५ ॥

वह इस प्रकार है— एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंके एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २६ ॥

वह इस प्रकार है— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए । वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुए । इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और अयोगिकेवली, इन चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा जान करके कहलाना चाहिए ।

चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७ ॥

वह इस प्रकार है — सात आठ जन अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

अंतोमुहुत्तमच्छिय अणियट्टिणो जादा । तम्हि चेव समए अण्णे अप्पमत्ता अपुव्वखवगा जादा । एवं पुणो पुणो संखेज्जवारं चढणकिरियाए कदाए णाणाजीवे अस्सिदूण अपुव्वकरणुक्कस्सकालो होदि । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८ ॥

तं जहा– एक्को अप्पमत्तो अपुव्वकरणो जादो अंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिखवगो जादो । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जहण्णकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

एक्को अप्पमत्तो अपुव्वखवगो जादो । तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण अणियट्टिगुणट्ठाणं पडिवण्णो । एगजीवमस्सिदूण अपुव्वकरणुक्कस्सकालो जादो । एवं चेव चदुण्हं खवगाणं जाणिदूण वत्तव्वं । एत्थ जहण्णुक्कस्सकाला वे वि सरिसा, अपुव्वादिपरिणामाणमणुकट्टीए[1] अभावादो ।

गुणस्थानी क्षपक हुए । वे वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये । उसी ही समयमें अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकार पुनः पुनः संख्यातवार आरोहणक्रियाके करने पर नाना जीवोंका आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपकका उत्कृष्ट काल होता है । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८ ॥

वह इस प्रकार है — एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंके जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा चारों क्षपकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ । वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त हुआ । यह एक जीवको आश्रय करके अपूर्वकरणका उत्कृष्ट काल हुआ । इसी प्रकारसे चारों क्षपकोंका काल जान करके कहना चाहिए । यहां पर जघन्य और उत्कृष्ट, ये दोनों ही काल सदृश हैं, क्योंकि, अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिका अभाव होता है ।

विशेषार्थ— यहां पर अपूर्वकरण आदिके परिणामोंकी अनुकृष्टिके अभाव कहनेका

---

१ अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा । कमउड्ढापुव्वगुणे अणुकट्टी णत्थि णियमेण ॥ गो. जी. ५३, जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा णत्थि । तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणं ति णिद्दिट्ठं ॥ लब्धि. ५१. तत्र... अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडैः सादृश्यं भवति । गो. जी, जी. प्र. ४९. अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवश्यंभावेन अनुकृष्टिर्नास्ति, तत एव प्रतिसमयपरिणामानां बहुखंडविधानाभावः । गो. जी. मं. प्र. ५३.

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३० ॥

तिसु वि कालेसु जेण एक्को वि समओ सजोगिविरहिदो णत्थि तेण सव्वद्धत्तणं जुज्जदे ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३१ ॥

तं कधं ? एक्को खीणकसाओ सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय समुग्घादं करिय पच्छा जोगणिरोहं किच्चा अजोगी जादो । एवं सजोगिस्स जहण्णकालपरूवणा एगजीवमल्लीणा गदा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा[3] ॥ ३२ ॥

अभिप्राय इस प्रकार है— विवक्षित समयमें विद्यमान जीवके अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता होनेको अनुकृष्टि कहते हैं । अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें सदृशता पाई जाती है, इसलिए वहां पर अनुकृष्टि रचना बतलाई गई है । किन्तु अपूर्वकरण आदिमें उपरितन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंकी अधस्तन समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता नहीं पाई जाती है, इसलिए अपूर्वकरण आदिमें अनुकृष्टि रचनाका अभाव होता है । इसी कारण अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंके जघन्य काल और उत्कृष्ट काल, सदृश बतलाये गये हैं ।

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३० ॥

चूंकि, तीनों ही कालोंमें एक भी समय सयोगिकेवली भगवान्‌से विरहित नहीं है, इसलिए सर्व कालपना बन जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१ ॥

वह इस प्रकार है -- एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संयत जीव सयोगकेवली हो, अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ । इस प्रकार सयोगिजिनके जघन्य कालकी प्ररूपणा एक जीवका आश्रय करके कही गई ।

एक जीवकी अपेक्षा सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटी है ॥३२॥

१ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

तं जधा– एक्को खइयसम्मादिट्ठी देवो वा णेरइओ वा पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। सत्त मासे गब्भे अच्छिदूण गब्भपवेसणजम्मेण अट्ठवस्सिओ जादो (८)। अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो (१)। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (२) अप्पमत्तट्ठाणे अधापमत्तकरणं कादूण (३) अपुव्वकरणो (४) अणियट्टिकरणो (५) सुहुमखवगो (६) खीणकसाओ (७) होदूण सजोगी जादो। अट्ठहि वस्सेहि सत्तहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडिकालं विहरित्ता अजोगी जादो (८)। एवं अट्ठहि वस्सेहि अट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणपुव्वकोडी सजोगिकेवलिकालो होदि।

(ओघपरूवणा समत्ता)।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३ ॥

कुदो? णिरयगदिम्हि सव्वकालं मिच्छादिट्ठिवोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ३४ ॥

वह इस प्रकार है — एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। सात मास गर्भमें रह करके गर्भमें प्रवेश करनेवाले जन्म-दिनसे आठ वर्षका हुआ (८)। आठ वर्षका होने पर अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) अप्रमत्त-संयत गुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणको करके (३) क्रमशः अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ होकर (७), सयोगि-केवली हुआ। पुनः वहां पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८)। इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयोगिकेवलीका काल होता है।

(इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई)।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें सर्वकाल मिथ्यादृष्टियोंके व्युच्छेदका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४ ॥

---

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

तं जधा– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा पुव्वं पि बहुवारपरिणमिदमिच्छत्तो संकिलेसं पूरेदूण मिच्छादिट्ठी जादो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो । एवं मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३५ ॥

तं जहा– एक्को तिरिक्खो मणुसो वा सत्तमाए पुढवीए उववण्णो । तत्थ मिच्छत्तेण सह तेत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिय उवट्टिदो । लद्धाणि णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ३६ ॥

कुदो ? णिरयगदिम्हि एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाणं एदेसिं चेव ओघणाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाहिंतो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ ३७ ॥

वह इस प्रकार है — एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, जो कि पहले भी बहुत बार मिथ्यात्वको परिणत हो चुका है, संक्लेशको पूरित करके मिथ्यादृष्टि हो गया । वहां पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ३५ ॥

वह इस प्रकार है — एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । वहां पर मिथ्यात्वके साथ तेतीस सागरोपम काल रह कर बाहर निकला । इस प्रकार नारकी मिथ्यादृष्टिके तेतीस सागरोपम उपलब्ध हुए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी जीवोंका एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, नरकगतिमें इन दोनों गुणस्थानोंके नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य काल और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंका इन्हीं दोनों गुणस्थानोंकी ओघगत नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंसे भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३७ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? णिरयगदिम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८ ॥

तं जहा– एगो मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्ते बहुवारं पुव्वं परियट्टिदूण अच्छिदो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो । तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मामिच्छत्तं मिच्छत्तं वा गदो । एवं णिरयगदिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३९ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो अंतोमुहुत्तावसेसआउट्ठिदीए मिच्छत्तं गदो (४) । आउगं बंधिदूण (५) अंतोमुहुत्तं विस्समिय (६) उवट्टिदो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो ।

क्योंकि, नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि सम्यक्त्वमें पहले बहुतबार परिवर्तन कर चुका है, पुनः विशुद्ध हो करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे नरकगतिमें असंयतसम्यग्दृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ ३९ ॥

वह इस प्रकार है — मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । पुनः छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण आयुकर्मकी स्थितिके अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । वहां आगामी भवकी आयुको बांधकर (५), अन्तर्मुहूर्त काल विश्राम लेकर (६), निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम प्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिविरहिदसत्तण्हं पुढवीणं सव्वद्धा अभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४१ ॥

तं जहा– अप्पप्पणो पुढवीसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा बहुसो मिच्छत्तचरो परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्विल्लगुणेसु अण्णदरगुणं गदो । एवं सत्तण्हं पुढवीणं मिच्छादिट्ठिपादेक्कमंतोमुहुत्तपरूवणा कदा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि[१] ॥ ४२ ॥

पढमाए पुढवीए एक्कं सागरोवमं, विदियाए पुढवीए तिण्णि सागरोवमं, तदियाए पुढवीए सत्त सागरोवमाणि, चउत्थीए पुढवीए दस सागरोवमाणि, पंचमीए पुढवीए सत्तारस सागरोवमाणि, छट्ठीए पुढवीए बावीस सागरोवमाणि, सत्तमीए पुढवीए तेत्तीस

प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित सातों पृथिवियोंके नारकियोंका सर्वकाल अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त पृथिवियोंके नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४१ ॥

वह इस प्रकार है — अपनी अपनी पृथिवियोंमें स्थित, तथा जिसने पहले भी बहुतवार मिथ्यात्वको प्राप्त किया है ऐसा कोई असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे सातों पृथिवियोंके प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की गई ।

उक्त सातों पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक सागरोपम, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपमप्रमाण है ॥ ४२ ॥

प्रथम पृथिवीमें एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें तीन सागरोपम, तृतीय पृथिवीमें सात सागरोपम, चौथी पृथिवीमें दश सागरोपम, पांचवीं पृथिवीमें सत्तरह सागरोपम, छठी पृथिवीमें बाईस सागरोपम, और सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपम मिथ्यादृष्टि नारकोंका

---

१ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः । तत्त्वार्थसू. ३, ६. उत्कर्षेण यथासंख्यं एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश- द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

सागरोवमाणि मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो । कुदो ? एदेहिंतो अधिगबंधाभावा । तं पि कुदो णव्वदे ?

एक्कं तिय[1] सत्त दस तह सत्तारह दु-तिहदेक्कअधिय दस ।
उवही उक्कस्सट्ठिदी सत्तण्हं होइ पुढवीणं ॥ ३४ ॥

इदि णिरयाउवंधसुत्तादो ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ४३ ॥

कुदो ? दोण्हं गुणट्ठाणाणं णाणाजीवे पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण दोण्हं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छ आवलियाओ अंतोमुहुत्तमेवमादिणा भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ४४ ॥

तं जहा– सत्तण्हं पुढवीणं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणं सव्वद्धाणुवलंभादो ।

उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, इनसे अधिक आयुबंधका अभाव है ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ?

समाधान— एक, तीन, सात, दश, तथा सत्तरह सागरोपम, तथा दोसे गुणित एक अधिक दश (२×११=२२) अर्थात् बाईस सागरोपम, तथा तीनसे गुणित ग्यारह (३×११=३३) अर्थात् तेतीस सागरोपम, इस प्रकार सातों पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥ ३४ ॥

इस नारकायुके बंधप्रदर्शक सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रोक्त कालसे अधिक नारकायुके बंधका अभाव है ।

सातों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना और एक जीव सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों गुणस्थानोंका पल्योपमके असंख्यातवें भाग है । एक जीवकी अपेक्षा दोनों गुणस्थानोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है । इत्यादि रूपसे कोई भेद नहीं है

सातों पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ४४ ॥

वह काल इस प्रकार संभव है — कि सातों पृथिवियां किसी भी कालमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित नहीं पाई जाती हैं ।

---

१ आ-क प्रत्योः ' एक्कट्ठिदा ' अप्रतौ ' एक्कट्ठिय ' इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४५ ॥

तं जहा—सत्तसु पुढवीसु ट्ठिदबहुसो सम्मत्तचरअट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी वा सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो। एसो सत्तसु पुढवीसु असंजदसम्मादिट्ठिजहण्णकालो परूविदो।

उक्कस्सं सागरोपमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४६ ॥

तं जधा—एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी पढमाए पुढवीए वा एवं जाव सत्तमीए वा उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। सम्मत्तेण अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदिमच्छिय णिप्फिडिदूण मणुसेसु उववण्णो। एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठिउक्कस्सकालो होदि। णवरि सत्तमाए छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा उक्कस्सट्ठिदि त्ति वत्तव्वं, तत्थ मिच्छत्तगुणेण विणा णिग्गमाभावा।

एक जीवकी अपेक्षा सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४५ ॥

वह इस प्रकार है— सातों ही पृथिवियोंमें स्थित पूर्वमें अनेकवार सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हो कर और अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। यह सातों ही पृथिवियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका जघन्य काल प्ररूपण किया गया।

सातों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ कम एक सागरोपम, तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम है ॥ ४६ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखने वाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव पहली पृथिवीमें, अथवा दूसरी पृथिवीमें, इस प्रकारसे लगा कर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१), विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध होकर (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४), सम्यक्त्वके साथ अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिप्रमाण रह करके वहांसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकारसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुस्थिति ही उस उस पृथिवीके असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल होता है। विशेष बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम उत्कृष्ट स्थिति होती है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, वहांसे मिथ्यात्वगुणस्थानके विना निर्गमनका अभाव है, अर्थात् मिथ्यात्वके अतिरिक्त अन्य गुणस्था-

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि आउअं बंधिय विस्संतो होदूण मिच्छत्तं गंतूण सत्तमपुढवीदो णिस्सरिदे सम्मत्तकालो बहुगो लब्भदि त्ति वुत्ते ण, सत्तमपुढविणेरइयाणं मणुसेसुववादाभावा। असंजदसम्मादिट्ठीणं पि णिरयतिरिक्खाउबंधाभावा। जेण गुणेण आउअबंधस्स संभवो अत्थि, तेणेव गुणेण णिग्गमादो च।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ४७ ॥

कुदो? मिच्छादिट्ठीहि विणा सव्वद्धा तिरिक्खगदीए अणुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ४८ ॥

तं जहा– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा बहुसो मिच्छत्तचरो मिच्छत्तं पडिवण्णो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्तगुणेसु अण्णदरगुणं

नोंसे निकलना नहीं हो सकता है।

शंका— असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें आगामी भवकी आयुको बांधकर विश्रान्त होता हुआ मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सातवीं पृथिवीसे निकलने पर सम्यक्त्वका काल बहुत प्राप्त होता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सातवीं पृथिवीके नारकोंका मनुष्योंमें उपपाद नहीं होता है। तथा, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके भी नारक और तिर्यंच आयुके बंधका अभाव है। दूसरी बात यह भी है कि जिस गुणस्थानसे आयुका बंध संभव है, उस ही गुणस्थानसे उसका निर्गमन भी होता है।

तिर्यंचगतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके विना किसी भी कालमें तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४८ ॥

वह इस प्रकार है— पहले बहुतवार मिथ्यात्वमें भ्रमण किया हुआ एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। वहां पर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुण-

---

१ तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

गदो । एवं जहण्णकालपरूवणा गदा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ॥ ४९ ॥

एक्को मणुसो देवो णेरइओ वा अणादियछव्वीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी तिरिक्खेसु उववण्णो । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि पोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदूण अण्णगदिं गदो । असंखेज्जपोग्गलपरियट्टाणि त्ति वयणादो अणंतोवलद्धी होदि त्ति अणंतग्गहणं किण्णावणिज्जदे ? ण, अणंतग्गहणमंतरेण पोग्गलपरियट्टस्स अणंतत्तुवलद्धीए उवायाभावादो । पोग्गलपरियट्टाणि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि चेवत्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदवक्खाणा तदवगदीए ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ५० ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सपरूवणाहि विसेसाभावा ।

स्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई ।

एक जीवकी अपेक्षा तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट काल अनन्त कालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ४९ ॥

मोहकर्मकी छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, देव अथवा नारकी अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंको परिवर्तित करके अन्य गतिको चला गया ।

शंका— ' असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन ' इस प्रकारसे वचनसे अनन्तताकी उपलब्धि होती है, इसलिये सूत्रमेंसे ' अनन्त ' पदका ग्रहण क्यों नहीं निकाल दिया जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, अनन्तपदके ग्रहण किए विना पुद्गलपरिवर्तनके अनन्तताकी उपलब्धिका और कोई उपाय नहीं है ।

शंका— तिर्यंच मिथ्यादृष्टिके वताये गये उक्त पुद्गलपरिवर्तन, ' आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही होते हैं, ' यह कैसे जाना ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आचार्य-परम्परागत व्याख्यानसे उक्त वातका ज्ञान होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ५० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणाओंके साथ इन दोनोंकी कालप्ररूपणाओंमें कोई विशेषता नहीं है ।

---

१ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ५१ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतिरिक्खगदीए अभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ५२ ॥

तं जधा—एक्को मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा संजदासंजदो वा परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो। सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहीए वड्ढिऊण संजमासंजमं गदो, संकिलेसेण वड्ढिऊण मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गदो। एवं जहण्णकालपरूवणा गदा।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि[3] ॥ ५३ ॥

तं जधा— एक्को मणुस्सो बद्धतिरिक्खाउओ सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुरुतिरिक्खेसु उववण्णो। तिण्णि पलिदोवमाणि तत्थ सम्मत्तेण सह अच्छिय मदो

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, अतीत, अनागत और वर्तमान, इन तीनों ही कालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित तिर्यंचगति नहीं पाई जाती है।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५२ ॥

वह इस प्रकार है— एक मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यंच जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहां सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धिसे बढ़ता हुआ संयमासंयमको प्राप्त हो गया। पुनः संक्लेशसे बढ़ता हुआ मिथ्यात्वको अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्य कालकी प्ररूपणा हुई।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचका उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम है ॥ ५३ ॥

वह इस प्रकार है— बद्धतिर्यगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्वको ग्रहण करके, और दर्शनमोहनीयका क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर तीन पल्योपम कालप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रह कर मरा, और देव हो गया। इस प्रकारसे

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमाणि। स. सि. १, ८.

देवो जादो । एवं तिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो परूविदो ।

संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५४ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु संजदासंजदविरहिदतिरिक्खाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

तं जहा– अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा परिणामपच्चएण संजमासंजमं गदो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमेक्कदरं गदो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ ५६ ॥

एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसंमुच्छिमपज्जत्तमंडूक-कच्छ-मच्छत्रादीसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) संजमासंजमं पडिवण्णो । एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो ।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कहा ।

संयतासंयत तिर्यंच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें संयतासंयतोंसे रहित तिर्यंचोंका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५५ ॥

वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हो गया । (इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल सिद्ध हुआ ।)

एक जीवकी अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंचका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥ ५६ ॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मंडूक, कच्छप आदि तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विश्राम लेकर (२), और विशुद्ध होकर (३), संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटि कालप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया । (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ ।)

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ५७ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु पंचिंदियतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठिविरहिदपंचिंदियतिरिक्ख-तियाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५८ ॥

एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो वा दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं पडिवण्णो । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गुणं गदो । तेण अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते वुत्तं ।

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भ-हियाणि ॥ ५९ ॥

तं जधा— एक्को देवो णेरइओ मणुस्सो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खवदिरित्त-तिरिक्खो वा अप्पिदपंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो । सण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसगवेदेसु

....

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंसे रहित उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच नहीं पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

जिसने मिथ्यात्वका मार्ग पहले कई वार देखा है ऐसा एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यंच मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह कर पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस लिए सूत्रमें ‘ अन्तर्मुहूर्तकाल ’ ऐसा कहा है ।

उक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

जैसे, एक देव, नारकी, मनुष्य, अथवा विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य तिर्यंच जीव, विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर संज्ञी स्त्री, पुरुष और

कमेण अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ हिंडिदूण असण्णि-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु वि एवं चेव अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय तदो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो पंचिंदियतिरिक्खअसण्णिपज्जत्तएसु उववज्जिय तत्थतणइत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदएसु पुणो वि अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय पच्छा सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्तइत्थि-णवुंसगवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिदूण तदो देव-उत्तरकुरुतिरिक्खेसु पुव्विल्लाउवसेण इत्थिवेदेसु वा पुरिसवेदेसु वा उववण्णो । तत्थ तिण्णि पलिदोवमाणि जीविदूण मदो देवो जादो । एदाओ पंचाणउदि पुव्वकोडीओ पुव्वकोडिवारसपुधत्तसण्णिदाओ त्ति एदासिं पुव्वकोडिपुधत्तववदेसो सुत्तणिद्दिट्ठो ण जुज्जदे ? ण एस दोसो, तस्स वइउल्लवाइत्तादो । वारसण्हं पुव्वकोडिपुधत्ताणं कध-मेगत्तं ? ण, जाइमुहेण सहस्साण वि एगत्तविरोहाभावा । णवरि पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-एसु सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ हिंडाविय पच्छा तिपलिदोवमिएसु तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो ।

नपुंसक वेदोंमें क्रमसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण भ्रमण करके, असंज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदोंमें भी इसी प्रकारसे आठ आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अन्तर्मुहूर्त रह कर, पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, उनमेंके स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदी जीवोंमें फिर भी आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटियां, तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्व-कोटियां भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें पूर्वली आयुके वशसे स्त्रीवेदियोंमें अथवा पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर तीन पल्योपम तक जीवित रह कर मरा और देव हो गया।

शंका—ये ऊपर कही गई पंचानवे पूर्वकोटियां पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व संज्ञारूप हैं; इसलिए, इनकी सूत्रनिर्दिष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी संज्ञा नहीं बनती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाची है, (इस-लिए कोटिपृथक्त्वसे यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियां ग्रहण की जा सकती हैं।)

शंका—बारह पूर्वकोटिपृथक्त्वोंमें एकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जातिके मुखसे, अर्थात् जातिकी अपेक्षा, सहस्रोंके भी एकत्व होनेमें विरोधका अभाव है।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंमें सैंतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपमवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिए; क्योंकि, अपर्याप्तकताके

---

१ प्रतिषु 'दसपुधत्त' इति पाठः ।

कुदो ? अपज्जत्तत्तेण एदेसिमपरिणदाणं पच्छा सेसपुव्वकोडीओ परिब्भमणे संभवाभावा। अपज्जत्तएसु कधमित्थिवेदस्स संभवो ? ण, अपज्जत्तित्थिवेदाणमण्णोण्णविरोहाभावा। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु पण्णारस पुव्वकोडीओ भमाविय पच्छा देवुत्तरकुरवेसु उप्पादेदव्वो। कुदो ? वेदंतरसंकंतीए अभावादो। णत्थि अण्णो कोइ विसेसो।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु ट्ठिददोगुणट्ठाणाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण छावलियाओ अंतोमुहुत्तमिदि एदेहि विसेसाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा।

....

साथ अपरिणत हुए, अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक हुए विना, उक्त जीवोंके पश्चात् शेष पूर्वकोटियों परिभ्रमण करना संभव नहीं है।

शंका— लब्ध्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद कैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्त और स्त्रीवेद, इन दोनों अवस्थाओंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुरु और उत्तरकुरुमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, भोगभूमिमें वेद-परिवर्तनका अभाव है। इसके सिवाय अन्य कोई विशेपता नहीं है।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें स्थित उक्त दोनों गुणस्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल छह आवलियां और अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार इन दोनों गुणस्थानोंसे उक्त तीनों पंचेन्द्रिय जीवोंके कालोंमें कोई विशेपता नहीं है।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो वा विसोहि-संकिलेसवसेण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अविणट्ठसंकिलेस-विसोहीहि पडिवण्णगुणंतरस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ६३ ॥

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं संपुण्णाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । कुदो ? मणुस्सस्स बद्धतिरिक्खाउअस्स सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय देवुत्तरकुरु-पंचिंदियतिरिक्खेसुववज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसुप्पण्णस्स संपुण्णतिण्णि-पलिदोवममेत्तसासंजमसम्मत्तकालुवलंभादो । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु देसूणतिण्णिपलि-दोवमाणि । कुदो ? तिरिक्खस्स मणुस्सस्स वा अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स देवुत्तरकुरुपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय बे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्स मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-बे-मासूणतिण्णि

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

क्योंकि, कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत तिर्यंच यथाक्रमसे विशुद्धि, अथवा संक्लेशके वशसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, अविनष्ट संक्लेश और विशुद्धिके साथ यथाक्रमसे दूसरे गुणस्थानको प्राप्त हुआ, ऐसे जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे तीन पल्योपम, तीन पल्योपम और कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ६३ ॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका सम्पूर्ण तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, बद्धतिर्यगायुष्क मनुष्यके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षपण कर, देवकुरु या उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके तो सम्पूर्ण तीन पल्योपममात्र असंयमसहित सम्यक्त्वका काल पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें कुछ कम तीन पल्योपम काल है । क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवके देवकुरु अथवा उत्तरकुरुके पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रहकर, जन्म लेनेवाले, और मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको

पलिदोवमाणि सम्मत्तमणुपालिय देवेसुववण्णस्स देसूणतिण्णिपलिदोवममेत्तसम्मत्त-कालुवलंभादो ।

संजदासंजदा ओघं ॥ ६४ ॥

कुदो ? तिसु वि पंचिंदियतिरिक्खेसु णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा, इच्चाइणा भेदाभावा । णवरि जोणिणीसु बे मासे अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्ति वत्तव्वं ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा॥ ६५ ॥

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६६ ॥

कुदो ? एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियपज्जत्त-अपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त मणुसपज्जत्तापज्जत्तएसु अण्णदरस्स खुद्दाभवग्गहणाउट्ठिदपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु

प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मास कम तीन पल्योपम तक सम्यक्त्वको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न होने वाले जीवके कुछ कम तीन पल्योपमप्रमाण सम्यक्त्वका काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय संयतासंयत तिर्यंचोंका काल ओघके समान है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण होता है, इत्यादि रूपसे भेदका अभाव है । विशेष बात यह है कि योनिमतियोंमें दो मास और कुछ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम, अर्थात् जन्मसे लेकर शीघ्रातिशीघ्र संयमासंयमको ग्रहण करने तकके कालसे हीन, ऐसा काल कहना चाहिए ।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६५ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच जीवोंसे रहित कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचोंका जघन्य काल क्षुद्रभव-ग्रहणप्रमाण है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक, तथा मनुष्य पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमेंसे किसी एक जीवके क्षुद्रभवग्रहणकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर,

उववज्जिय सव्वजहण्णकालमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तअपज्जत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

कुदो ? पुव्वुत्ताणमण्णदरस्स पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववज्जिय सण्णि-असण्णि-अपज्जत्तएसु अट्ठट्ठवारमुप्पज्जिय णिस्सरिदूण पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कस्सकालुवलंभा ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ६८ ॥

कुदो ? तिविधेसु वि मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठि-विरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६९ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा संकिलेस-

---

और वहां पर सर्व जघन्य काल रह कर, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अपर्याप्तकाल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६७ ॥

क्योंकि, पूर्वमें कहे गये एकेन्द्रियादिकोंमेंसे किसी एकके पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, संज्ञी और असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आठ आठ वार उत्पन्न होकर, और उनमेंसे निकलकर, पूर्वोक्त जीवोंमेंसे किसी एक जीवकी पर्यायको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिके, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा संयतासंयतके

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

वसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुव्वुत्ताणमण्णदरं गदस्स तिसु वि मणुस्सेसु अंतोमुहुत्तमेत्तमिच्छत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[1] ॥ ७० ॥

कुदो ? अणप्पिदजीवस्स अप्पिदमणुसेसुववज्जिय इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ परिभमिय अपज्जत्तएसुववज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो इत्थि-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ, पुरिसवेदेसु सत्त पुव्वकोडीओ हिंडिय देवुत्तरकुरवेसु तिण्णि पलिदोवमाणि अच्छिय देवेसुववण्णस्स पुव्वकोडिपुधत्तब्भहियतिण्णिपलिदोवम-मुवलंभा । णवरि मणुसमिच्छादिट्ठिस्स चेय सत्तेत्तालीसपुव्वकोडीओ अहिया होंति, ण सेसाणं । पज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं तेवीसपुव्वकोडीओ, मणुसअपज्जत्तएसु तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । मणुसिणीमिच्छादिट्ठिसु सत्तपुव्वकोडीओ अहियाओ, वेदंतरसंकंतीए अभावादो ।

संक्लेशके वशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, पूर्वोक्त गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें अन्तर्मुहूर्तमात्र मिथ्यात्वका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्षसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण है ॥ ७० ॥

क्योंकि, अविवक्षित जीवके विवक्षित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, पुनः स्त्री और नपुंसक वेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटियां तथा पुरुषवेदियोंमें सात पूर्वकोटियां भ्रमण करके, देवकुरु अथवा उत्तरकुरुमें तीन तीन पल्योपमों तक रह करके, देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम पाये जाते हैं । विशेष बात यह है कि मनुष्य मिथ्यादृष्टिके ही तीन पल्योपमोंसे अधिक सैंतालीस पूर्वकोटियां होती हैं; शेष मनुष्योंके नहीं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि मनुष्योंके तेईस पूर्वकोटियां अधिक होती हैं; क्योंकि, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें उनकी उत्पत्ति नहीं होती है । मनुष्यनी मिथ्यादृष्टियोंमें सात पूर्तकोटियां अधिक होती है; क्योंकि, उनके वेदपरिवर्तन नहीं होता ।

---

१ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ७१ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठीणं सत्तट्ठजणाणं उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणगुणं[2] गदाणं तत्थेगसमयमच्छिय मिच्छत्तं पडिवण्णाणमेगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ७२ ॥

कुदो ? संखेज्जाणं उवसमसम्मादिट्ठीणमुवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवण्णाणं संखेज्जवाराणुसंचिदसासणद्धाणमंतोमुहुत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[4] ॥ ७३ ॥

कुदो ? उवसमसम्माइट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय विदियसमए चेव मिच्छत्तं पडिवण्णसासणस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि सात आठ जनोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए, तथा वहां पर एक समय रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके उत्कर्षसे छ आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवोंके संख्यात वारोंसे अनुसंचित सासादनगुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर, दूसरे समयमें ही मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके एक समयप्रमाण काल देखा जाता है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' सासणाणं ' इति पाठः ।

३ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सं छ आवलियाओ[1] ॥ ७४ ॥

कुदो ? उवसमसम्मादिट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं पडिवज्जिय छ आवलियाओ तत्थ गमिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स छ-आवलिओवलंभा ।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ७५ ॥

पमत्तसंजद-संजदासंजद-अट्ठावीसमोहसंतकम्मियमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-पच्छायदाणं संखेज्जसम्मामिच्छादिट्ठीणं सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय विसोहि-संकिलेस-वसेण सम्मत्त-मिच्छत्ताणि उवगदाणं सव्वजहण्णंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७६ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठीणं सव्वुक्कस्ससम्मामिच्छत्तद्धाणं मिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-

---

उक्त तीनों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलीप्रमाण काल वहां पर बिताकर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके छह आवलीप्रमाण काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत, अथवा संयतासंयत, अथवा मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे पीछे आये हुए संख्यात सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके विशुद्धि और संक्लेशके वशसे यथाक्रमसे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवोंके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७६ ॥

मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंसे संख्यात वारमें

---

१ उत्कर्षेण षडावलिकाः । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्तसंजदेहि संखेज्जवारमणुसंचिदद्धाणमंतोमुहुत्तुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स पुव्वुत्तचदुगुणट्ठाणेसु एगजीवण्णदरगुणपच्छायदस्स सव्वजहण्णद्धमच्छिदूण संकिलेस-विसोहिवसेण मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणे पडिवण्णस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७८ ॥

पुव्वुत्तचदुगुणट्ठाणेसु अदिट्ठमग्गेगजीवण्णदरगुणपच्छायदसम्मामिच्छादिट्ठिस्स दीहद्धमच्छिय देस-सयलसंजमविरहिददोगुणट्ठाणे गदस्स सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ७९ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदमणुस्साणं सव्वकालमणुवलंभा ।

संचित हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सर्वोत्कृष्ट सम्यग्मिथ्यात्वका काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, जिसने पूर्वमें मार्ग देखा है, ऐसे पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व जघन्य काल रह कर संक्लेश और विशुद्धिके वशसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है

उक्त तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे नहीं देखा है मार्ग को जिसने, ऐसे जीवके किसी एक गुणस्थानसे पीछे आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके दीर्घ काल तक रह करके देशसंयम और सकलसंयमसे रहित दो गुणस्थानोंमें, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें गये हुए जीवके सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित मनुष्योंका कोई भी काल नहीं पाया जाता ।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ८० ॥

दिट्ठमग्गमिच्छादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदगुणट्ठाणेहिंतो आगदस्स सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण गुणंतरं गदस्स जहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ ८१ ॥

एत्थ सादिरेयसद्दो दोसु वि तिपलिदोवमेसु संबंधणिज्जो, दोण्हं पच्चासत्तिवसेण एगत्तमुवगयाणं विसेसणरूवेण पयट्टत्तादो । तम्हा मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णत्थ देसूणाणि । कुदो ? 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो । कधं सादिरेयत्तं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स पुव्वकोडितिभाए सेसे बद्धमणुसाउअस्स तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय सम्मत्तेण

एक जीवकी अपेक्षा तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८० ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने ऐसे, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानोंसे आये हुए, तथा सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे गुणस्थानान्तरको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है।

तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका यथाक्रमसे उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम, तीन पल्योपम सातिरेक, और देशोन तीन पल्योपम है ॥ ८१ ॥

यहां पर सातिरेक शब्द दोनों ही त्रिपल्योपमों पर संबद्ध करना चाहिए, क्योंकि प्रत्यासत्तिके वशसे एकत्वको प्राप्त हुए दोनों पदोंके विशेषणरूपसे यह शब्द प्रवृत्त हुआ है, इसलिये मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तकोंमें तो साधिक तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है। और अन्यत्र अर्थात् मनुष्यनियोंमें, देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है। क्योंकि, 'जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' ऐसा न्याय है।

शंका— तीन पल्योपमसे सातिरेक अर्थात् अधिक काल कैसे संभव है ?

समाधान— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तथा पूर्वकोटीके त्रिभाग शेष रहने पर बांधी है मनुष्य आयुको जिसने ऐसे मिथ्यादृष्टि मनुष्यके तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करके दर्शनमोहनीयका क्षपण कर सम्यक्त्वके साथ देशोन

१ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

सह देसूणपुव्वकोडितिभागं गमिय तिपलिदोवमाउट्ठिदिदेउत्तरकुरवेसुप्पज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय देवेसुप्पण्णस्स तिण्णिपलिदोवमाणमुवरि देसूणपुव्वकोडितिभागुवलंभा । मणुसिणीसु देसूणतिण्णि पलिदोवमाणि, अण्णदरअट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिस्स तिपलिदोवमिएसु मणुसेसुववज्जिय णव मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतस्स उत्ताणसेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त दिवसे, रंगंतो सत्त दिवसे, अथिरगमणेण सत्त दिवसे, थिरगमणेण सत्त दिवसे, कलासु सत्त दिवसे, गुणेसु सत्त दिवसे, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अप्पणो आउट्ठिदिं जीविदूण देवेसु उववण्णस्स एगूणवंण्णदिवसेहि अहियणवमासूणतिण्णिपलिदोवममुवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[१] ॥ ८२ ॥

कुदो ? ओघादो भेदाभावा । णवरि संजदासंजदाणं सव्वलहुं जोणिणिक्खमणजम्मणुब्भवट्ठवस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी संजमासंजमकालो वत्तव्वो, तिरिक्खाणं व मणुस्साणं अंतोमुहुत्तकालेण अणुव्वयगहणाभावा ।

पूर्वकोटीका त्रिभाग बिताकर तीन पल्योपमप्रमाण आयुकर्मकी स्थितिवाले देवकुरु और उत्तरकुरुओंमें उत्पन्न होकर, अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके तीन पल्योपमोंके ऊपर देशोन पूर्वकोटीका त्रिभाग अधिक पाया जाता है ।

मनुष्यनियोंमें देशोन तीन पल्योपम उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकारसे है–मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले भोगभूमियां मनुष्योंमें उत्पन्न होकर और नौ मास गर्भमें रह कर निकलता हुआ उत्तानशय्या पर अंगुष्ठ चूसनेरूप आहारसे सात दिन, रेंगते हुए सात दिन, अस्थिर गमनसे सात दिन, स्थिर गमनसे सात दिन, कलाओंमें सात दिन, गुणोंमें सात दिन, तथा अन्य भी सात दिन बिताकर, विशुद्ध होकरके सम्यक्त्वको प्राप्त हो, अपनी आयुस्थिति प्रमाण जीवित रह कर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उनंचास दिवसोंसे अधिक नव मासोंसे कम तीन पल्योपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका उत्कृष्ट या जघन्य काल ओघके समान है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, ओघवर्णित कालसे इनमें कोई भेद नहीं है । विशेष बात यह है कि संयतासंयतोंके सर्वलघु योनि-निष्क्रमणरूप जन्मसे उत्पन्न हुए जीवके आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयमका काल कहना चाहिए, क्योंकि, तिर्यंचोंके समान मनुष्योंके जन्म लेनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालसे ही अणुव्रतोंके ग्रहण करनेका अभाव है ।

---

१ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८३ ॥

एइंदियबादर-सुहुम-बि-ति-चउरिंदिय-सण्णि-असण्णिपंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मणुसपज्जत्ताणं वा मणुसअपज्जत्तएसु उववज्जिय खुद्दाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिं गमिय पुव्वुत्तजीवेसुप्पण्णाणं तक्कालुवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८४ ॥

पुव्वुप्पण्णमणुसअपज्जत्तएसु गदेसु तक्काले चेव अण्णण्णे जीवे मणुसअपज्जत्तेसुप्पादिय उप्पादिय अणुसंधिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तअणुसंधाणवारसलागुवलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८५ ॥

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उववण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णाउट्ठिदिकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८६ ॥

....

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रिय, बादर और सूक्ष्म, तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके, अथवा मनुष्यपर्याप्तक जीवोंके, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिको बिताकर पूर्वोक्त जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके उक्त काल, अर्थात् क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल पाया जाता है ।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पूर्वोत्पन्न लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें चले जाने पर उसी कालमें ही अन्य अन्य जीवोंको लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न करा कराके अनुसंधान करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अनुसंधानवारोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं ।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोंसे आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य आयुस्थितिकाल देखा जाता है ।

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८६ ॥

पुव्वुत्तजीवेहिंतो आगंतूण मणुसअपज्जत्तएसु उप्पण्णस्स अंतोमुहुत्तादो उवरिम-कालवियप्पाणमुक्कस्साउट्ठिदिअपज्जत्तस्स वि अणुवलंभा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ८७ ॥

देवमिच्छादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ८८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा संकिलेसेण मिच्छत्तं गंतूण सव्व-जहण्णकालमच्छिय पुव्वुत्तदोगुणट्ठाणाणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि[3] ॥ ८९ ॥

मणुसमिच्छादिट्ठिस्स दव्वसंजमबलेण एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसुप्पज्जिय मिच्छत्तेण सह अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय मणुसेसुववण्णस्स एक्कत्तीससागरोवममेत्त-देवमिच्छादिट्ठिकालदंसणादो ।

क्योंकि, पूर्वोक्त जीवोंसे आकर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके अन्त-र्मुहूर्त काल पाया जाता है, तथा अन्तर्मुहूर्तसे उपरिम कालके विकल्प उत्कृष्ट आयुस्थिति-वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवके भी नहीं पाये जाते ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ८७ ॥

क्योंकि, देवोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे रहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिके, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके, संक्लेशसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, वहां पर सर्व जघन्य काल रह कर पूर्वोक्त दो गुणस्थानोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागरोपम है ॥ ८९ ॥

मिथ्यादृष्टि मनुष्यके द्रव्यसंयमके बलसे इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके साथ अपनी आयुस्थितिको अनुपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके इकतीस सागरोपमप्रमाण देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल देखा जाता है ।

---

१ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ९० ॥

सव्वपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ ९१ ॥

देवेसु असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ९२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वा विसोहिवसेण सम्मत्तं पडिवज्जिय सव्व-जहण्णसम्मत्तद्धमच्छिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालदंसणादो ।

उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि[4] ॥ ९३ ॥

उक्कस्साउट्ठिदिदेवेसुप्पण्णसंजदस्स भुंजमाणाउअस्स घादाभावादो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं जीविय मणुसेसु उप्पण्णदेवअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तेत्तीसं सागरोवममेत्तकालुवलद्धीए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥९०॥

क्योंकि, सर्व प्रकारसे, अर्थात् एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा, जघन्य और उत्कृष्ट कालसे ओघप्ररूपणाके साथ कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥९२॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवके विशुद्धिके वशसे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, वहां सर्व जघन्य सम्यक्त्वके कालप्रमाण रह करके, पश्चात् मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्वमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ ९३ ॥

उत्कृष्ट आयुकी स्थितिधारक देवोंमें उत्पन्न हुए संयतके भुज्यमान आयुके घातका अभाव होनेसे अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जीवित रह कर, मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले असंयतसम्यग्दृष्टि देवके तेतीस सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । स. सि. १, ८.

भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९४ ॥

तिण्हं पि कालाणं देवमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदाणमभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एदस्स अत्थो जधा देवोघम्हि एदेसिं दोण्हं गुणट्ठाणाणं जहण्णकालपरूवणा वुत्ता, तहा भवणवासियप्पहुडि जाव सदार-सहस्सारकप्पो त्ति मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं जहण्णकालपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ९६ ॥

एदस्सुदाहरणं– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी भवणवासियदेवेसु उववण्णो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागब्भहियं सागरोवमं जीविदूण मिच्छत्तेणेव उव-

---

भवनवासी देवोंसे लेकर शतार सहस्रार कल्पवासी देवों तक मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे विरहित तीनों ही कालोंका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९५ ॥

इस सूत्रका अर्थ, जैसा देवोंके ओघमें इन दोनों गुणस्थानोंकी जघन्य कालप्ररूपणा कही है उसी प्रकारसे भवनवासीको आदि लेकर शतार सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी भी जघन्य कालकी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल साधिक सागरोपम, साधिक पल्योपम, साधिक दो सागरोपम, साधिक सात सागरोपम, साधिक दश सागरोपम, साधिक चौदह सागरोपम, साधिक सोलह सागरोपम और साधिक अठारह सागरोपम है ॥ ९६ ॥

इसका उदाहरण— एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर

ट्ठिदो। एसो मिच्छादिट्ठिणो बद्धआउअघादं पडुच्च कालो वुत्तो। अथवा, अंतोमुहुत्तूण-अद्धसागरोवमेण सादिरेगं सागरोवमं जीविदूण उव्वट्टिदो। एसो सम्मादिट्ठिणो बद्ध-आउअघादं पडुच्च उत्तो। एसो भवणवासियमिच्छादिट्ठि-उक्कस्सकालो। एक्को विरा-हियसंजदो वेमाणियदेवेसु आउअं बंधिदूण तमोवट्टणाघादेण घादिय भवणवासियदेवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तूणसागरोवमद्धेण अहियं सागरोवमं तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयं सम्मत्तेण सह जीविदूण उव्वट्टिय मणुसो जादो। एसो भवणवासियअसंजदसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सकालो। वाणवेंतर-जोदिसियाणं पि एवं चेव वत्तव्वं। णवरि अंतोमुहुत्तूणपलिदो-वमद्धेण अहियं पलिदोवमं मिच्छत्तुक्कस्सकालो होदि। एसो चेव कालो तीहि अंतो-मुहुत्तेहि ऊणओ असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो होदि[1]। सोधम्मीसाणे मिच्छा-दिट्ठिस्स उक्कस्सकालो वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण अब्भहियाणि। एसो मिच्छादिट्ठिणो बद्धाउअस्स घादं पडुच्च कालो वुत्तो। सम्मादिट्ठिणो बद्धदेवाउअघादं पडुच्च अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण अब्भहियाणि वे सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्सकालो

मिथ्यात्वके साथ ही पर्यायसे च्युत हुआ। यह मिथ्यादृष्टि जीवका बद्ध आयुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा। अथवा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक एक सागरोपम तक जीवित रह कर पर्यायसे च्युत हुआ। यह सम्यग्दृष्टि जीवका बद्धायुष्कघातकी अपेक्षा काल कहा। इस प्रकार यह भवनवासी मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल है। विराधना की है संयमकी जिसने ऐसा कोई संयत मनुष्य वैमानिक देवोंमें आयुको बांध करके उसे उद्वर्तनाघातसे घात करके भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होता हुआ (१), विश्रान्त हो (२), विशुद्ध होकर (३), सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरो-पमसे अधिक तथा तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम एक सागरोपम काल सम्यक्त्वके साथ जीवित रह कर पर्यायसे च्युत हो मनुष्य हुआ। यह भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल है। वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका भी इसी प्रकारसे काल कहना चाहिए। विशेषता यह है कि एक अन्तर्मुहूर्तसे कम आधे पल्योपमसे अधिक एक पल्योपम व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है। यह उपर्युक्त काल ही तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करने पर असंयतसम्यग्दृष्टि व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंका उत्कृष्ट काल हो जाता है। सौधर्म और ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम है। यह मिथ्यादृष्टिके बद्धायुके घातकी अपेक्षा काल कहा। सम्यग्दृष्टि जीवके बद्धदेवायुके घातकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल होता है।

१ उवहिदलं पल्लद्धं भवणे विंतरदुगे कमेणहियं। सम्मे मिच्छे घादे पल्लासंखं तु सव्वत्थ ॥ त्रि. सा. ५४१.

होदि । ' वे सत्त दस[1] चोद्दस सोलसट्ठारस य वीस वावीसा[2] ' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि ? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो । तं जहा– वुत्तं सुत्तं बंधप्पडिबद्धं, कालसुत्तं पुण संतमपेक्खिय ट्ठिदमिदि[3] । सणक्कुमार-माहिंदे सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि । बम्ह-बम्हुत्तरकप्पे दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । लंतव-काविट्ठ-कप्पे चोद्दस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्क-महासुक्केसु सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सदर-सहस्सारकप्पेसु अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । जधा देहि पयारेहि सोधम्मीसाणे सादिरेयत्तं परूविदं, तधा एत्थ वि वत्तव्वं । सोधम्मादि जाव सहस्सारो त्ति असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणअद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि होंति[4], एदस्स हेट्ठदो सम्मादिट्ठिस्सुववादाभावा ।

शंका—' सौधर्म-ईशानकल्पसे लगाकर आरण अच्युत कल्प तक क्रमशः ' दो, सात, दश, चौदह, सोलह, अठारह, वीस और बाईस सागरोपमकी स्थिति होती है ' इस गाथाके साथ, इस उक्त सूत्रका विरोध क्यों नहीं होगा ?

समाधान—विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूत्र और गाथा, इन दोनोंका विषय भिन्न भिन्न है । वह इस प्रकारसे है कि उक्त गाथासूत्र तो बंधकी अपेक्षा है, किन्तु कालसूत्र विद्यमान आयुकी अपेक्षा स्थित है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पमें कुछ अधिक सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें साधिक दश सागरोपम, लान्तव-कापिष्ठ कल्पमें साधिक चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्र कल्पमें साधिक सोलह सागरोपम, और शतार-सहस्रार कल्पमें साधिक अठारह सागरोपम मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट काल है । जिस तरह दोनों प्रकारोंसे सौधर्म और ईशान कल्पमें आयुकी साधिकता प्ररूपण की है, उसी प्रकार यहां पर भी कहना चाहिए । सौधर्म कल्पको आदि लेकर सहस्रार कल्प तक असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट काल क्रमशः एक अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपमसे अधिक दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम, सोलह सागरोपम और अठारह सागरोपम प्रमाण होता है, क्योंकि, इस कालके नीचे सम्यग्दृष्टि जीवके उपपादका अभाव है ।

---

१ प्रतिषु ' दस ' इति पाठो नास्ति ।

२ पढमे विदिए जुगले बम्हादिसु चउसु आणदढुगम्मि । आरणदुगे सुदंसणपहुदिसु एक्कारसेसु कमे ॥ दुग सत्त दसं चउदस सोलस अट्ठरस वीस वावीसा । तत्तो एक्केक्कजुदा उक्कस्साऊ समुद्दउवमाणा ॥ ति. प. ८, ४५८-४५९.

३ बद्धाउं पडि भणिदं उक्कस्सं मज्झिमं जहण्णाणि । घादाउवमासेज्जं अण्णसरूवं परूवेमो ॥ ति. प. ८, ४९१.

४ सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमासहस्सारा । जलहिदलमुडुवराऊ पडलं पडि जाण हाणिचयं । त्रि. सा. ५३३.

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ९७ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परूविदत्तादो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ९८ ॥

कुदो ? एदेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९९ ॥

....

विशेषार्थ—यहां पर जो बद्ध-आयुघातकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देवोंके दो प्रकारके कालकी प्ररूपणा की है, उसका अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्यने अपनी संयम-अवस्थामें देवायुका बंध किया। पीछे उसने संक्लेश परिमाणोंके निमित्तसे संयमकी विराधना कर दी और इसीलिए अपवर्तनाघातके द्वारा आयुका घात भी कर दिया। संयमकी विराधना कर देने पर भी यदि वह सम्यग्दृष्टि है, तो मर कर जिस कल्पमें उत्पन्न होगा, वहांकी साधारणतः निश्चित आयुसे अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमप्रमाण अधिक आयुका धारक होगा। कल्पना कीजिए— किसी मनुष्यने संयत अवस्थामें अच्युतकल्पमें संभव वाईस सागरप्रमाण आयुका बंध किया। पीछे संयमकी विराधना और बांधी हुई आयुकी अपवर्तना कर असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। पीछे मरण कर यदि सहस्रारकल्पमें उत्पन्न हुआ, तो वहांकी साधारण आयु जो अठारह सागरकी है, उससे घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवकी आयु अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होगी। यदि वही पुरुष संयमकी विराधनाके साथ ही सम्यक्त्वकी भी विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पीछे मरण कर उसी सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होता है, तो उसकी आयु वहां की निश्चित अठारह सागरकी आयुसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक होगी। ऐसे जीवको घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

भवनवासीसे लेकर सहस्रारकल्प तकके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ ९७ ॥

आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, इन कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९९ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, बहुसो परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०० ॥

एदेसु एक्कारससु उक्कस्साउअं बंधिय अप्पप्पणो देवेसुप्पज्जिय आउट्ठिदिमणुपालिय मणुस्सेसुप्पण्णमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमप्पप्पणो उक्कस्सकालुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १०१ ॥

ओघादो णाणेगजीवं पडुच्च भेदाभावा ।

अणुद्दिस-अणुत्तरविजय-वइजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०२ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदतेरसण्हं विमाणाणं सव्वकालमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीसं, बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, बहुतवार पहले प्ररूपण किया जा चुका है।

उक्त कल्पवासी देवोंका उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम है ॥१००॥

इन सूत्रोक्त आरण-अच्युतादि ग्यारह कल्पोंमें उत्कृष्ट आयुको बांधकर और देवोंमें उत्पन्न होकर, अपनी अपनी आयुस्थितिको परिपालन करके मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने अपने कल्पका कहा गया उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

उक्त ग्यारह कल्पोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका काल ओघके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, ओघसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा इनके कालमें कोई भेद नहीं है।

अनुदिश विमानवासी देवोंमें तथा अनुत्तरनामक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १०२ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित उक्त तेरह विमान किसी भी कालमें नहीं पाये जाते हैं।

नौ अनुदिश विमानोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल सातिरेक इकतीस सागरोपम और चार अनुत्तर विमानोंमें सातिरेक बत्तीस सागरोपम है ॥ १०३ ॥

कुदो ? गुणंतरसंकंतीए अभावादो। एत्थ सादिरेयपमाणमेगो समओ, हेट्ठिल्लुक्कस्सट्ठिदी समयाहिया उवरिल्लाणं जहण्णट्ठिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

उक्कस्सेण बत्तीस, तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ १०४ ॥

णवसु हेट्ठिमेसु अणुदिसविमाणेसु बत्तीसं सागरोवमाणि। चदुसु अणुत्तरविमाणेसु तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि, सुत्ते हि ऊणाहियवयणाभावा।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १०५ ॥

तिसु वि कालेसु तत्थ असंजदसम्मादिट्ठिविरहाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ १०६ ॥

पुध सुत्तारंभादो चेव णव्वदे सव्वट्ठसिद्धिम्हि जहण्णुक्कस्सट्ठिदी सरिसा त्ति। पुणो जहण्णुक्कस्सग्गहणं किमट्ठं कीरदे ? ण तस्स मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठत्तादो[1]।

एवं गदिमग्गणा समत्ता।

क्योंकि, इन विमानोंमें अन्य गुणस्थानके संक्रमणका अभाव है। यहां पर सातिरेक (साधिक) का प्रमाण एक समय है, क्योंकि, एक समय अधिक नीचेके विमानकी उत्कृष्ट स्थिति ही ऊपरके विमानकी जघन्य स्थिति होती है, ऐसा आचार्य-परम्परागत उपदेशसे जाना जाता है।

उक्त विमानोंमें उत्कृष्ट काल यथाक्रमसे बत्तीस सागरोपम और तेतीस सागरोपम है ॥ १०४ ॥

अधस्तन नौ अनुदिश विमानोंमें पूरे बत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है। चारों अनुत्तरविमानोंमें पूरे तेत्तीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट काल है, क्योंकि, सूत्रमें हीन और अधिकताके प्रतिपादक वचनका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें वहां, अर्थात् सर्वार्थसिद्धिमें, असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके विरहका अभाव है।

सर्वार्थसिद्धिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है ॥ १०६ ॥

शंका — पृथक् सूत्रके आरम्भसे ही जाना जाता है कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सदृश है। फिर भी सूत्रमें जघन्य और उत्कृष्ट पदका ग्रहण किस लिए किया ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उस पदका ग्रहण मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिए किया गया है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ अ-कप्रत्योः 'मंदबुद्धिजहण्णाणु-' इति पाठः।

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] **॥ १०७ ॥**

तिसु वि कालेसु एइंदियाणं विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] **॥ १०८ ॥**

अणेइंदियस्स एइंदिएसुप्पज्जिय सव्वजहण्णमेइंदियद्धमच्छिय अणेइंदिए उप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तएइंदियकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] **॥ १०९ ॥**

अणेइंदिओ एइंदिएसुप्पज्जिय अदिबहुअं कालं जदि अच्छदि तो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणि चेव पोग्गलपरियट्टाणि अच्छदि । कुदो ? एदम्हादो उवरि अच्छणसत्तीए अभावा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०८ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियसे रहित अन्य द्वीन्द्रियादिक जीवका एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, सर्वजघन्य एकेन्द्रिय जीवकी आयुके कालप्रमाण रह करके, पुनः एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य द्वीन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण एकेन्द्रिय जीवका काल पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १०९ ॥

एकेन्द्रियोंसे भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल रहता है, तो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है, क्योंकि, इस उक्त कालसे ऊपर एकेन्द्रियोंमें रहनेकी शक्तिका अभाव है ।

---

१ इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

बादरएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११० ॥

बादरेइंदियविरहिदकालाभावादो । किमट्ठं तेसिं णत्थि विरहो ? सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १११ ॥

अणेइंदियस्स सुहुमेइंदियस्स वा बादरेइंदिएसु सव्वजहण्णाउवएसुप्पज्जिय अणिंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तबादरेइंदियभवट्ठिदीए उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ११२ ॥

अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो अणेयवियप्पो त्ति कट्टु पदरावलियादि[1]हेट्ठिमवियप्पाणं पडिसेहं कादूण उवरिमवियप्पगहणट्ठं असंखेज्जासंखेज्जाणि त्ति णिद्देसो कदो। पदर-पल्लादिउवरिमवियप्पपडिसेहट्ठं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिणिद्देसो कदो। अणेइंदिओ सुहुमेइंदिओ वा बादरेइंदिएसु उप्पज्जिय तत्थ जदि सुट्ठु महल्लं कालमच्छदि तो असंखेज्जा-

....

बादर एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११० ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे रहित कालका अभाव है ।

शंका—उनका विरह क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १११ ॥

क्योंकि, किसी अन्य द्वीन्द्रियादि जीवका, अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः अन्य द्वीन्द्रियादिमें उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी प्रमाण है ॥ ११२ ॥

अंगुलका असंख्यातवां भाग अनेक विकल्परूप है, इसलिए प्रतरावली आदि अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध करके उपरिम विकल्पोंके ग्रहण करनेके लिए सूत्रमें 'असंख्यातासंख्यात' ऐसा निर्देश किया। प्रतर, पल्य आदि उपरिम 'विकल्पोंके प्रतिषेध करनेके लिए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी' इस पदका निर्देश किया है। अन्य द्वीन्द्रियादि अथवा सूक्ष्म एकेन्द्रिय कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, वहां पर यदि अति दीर्घकाल

....

१ प्रतिषु 'पदरावलियाओ' इति पाठः ।

संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ अच्छदि । पुणो णिच्छएण अण्णत्थ गच्छदि त्ति जं वुत्तं होदि । कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा त्ति परियम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं ण होदि त्ति तस्सेव ओक्खत्तप्पसंगा ।

बादरेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११३ ॥

कुदो ? बादरेइंदियपज्जत्ताणं तिसु वि कालेसु विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११४ ॥

खुद्दाभवग्गहणं संखेज्जावलियमेत्तं, एगं मुहुत्तं छासट्ठिसहस्स-तिसद-छत्तीसरूवमेत्तखंडाणि कादूण एगखंडमेत्तत्तादो । एदं पि कधं णव्वदे ?

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया होंति खुद्दभवा[1] ॥ ३५ ॥

तक रहता है, तो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक रहता है। पुनः निश्चयसे अन्यत्र चला जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

शंका—' कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करने पर बादर स्थिति होती है ' इस प्रकारके परिकर्म-वचनके साथ यह सूत्र विरोधको प्राप्त होता है ?

समाधान—परिकर्मके साथ विरोध होनेसे इस सूत्रके अवक्षिप्तता (विरुद्धता) नहीं प्राप्त होती है; किन्तु परिकर्मका उक्त वचन सूत्रका अनुसरण करनेवाला नहीं है, इसलिए उसके ही अवक्षिप्तताका प्रसंग आता है ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११३ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११४ ॥

क्षुद्रभवग्रहणका काल संख्यात आवलीप्रमाण होता है, क्योंकि, एक मुहूर्तके छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस रूपप्रमाण खंड करने पर एक खंडप्रमाण क्षुद्रभवका काल होता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—एक अन्तर्मुहूर्त कालमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं ॥ ३५ ॥

१ छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि । अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि णिगोयवासम्मि ॥ भावपा. २८.

त्ति गाहासुत्तादो। मुहुत्तस्स एवदियभागो संखेज्जावलियमेत्तो त्ति कधं णव्वदे ?

आवलिय अणागारे चक्खिंदिय-सोद-घाण-जिह्वाए।
मण-वयण-कायफासे अवाय-ईहासुदुस्सासे ॥ ३६ ॥
केवलदंसण-णाणे कसायसुक्केक्कए पुधत्ते य।
पडिवादुवसामेंतय खवेंतए संपराए य ॥ ३७ ॥
माणद्धा कोधद्धा मायद्धा तह चेव लोभद्धा।
खुद्दभवग्गहणं पुण किट्टीकरणं च बोद्धव्वं[1] ॥ ३८ ॥

इस गाथासूत्रसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल अन्तर्मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है।

शंका—मुहूर्तका छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग संख्यात आवलीप्रमाण होता है, यह कैसे जाना ?

समाधान—अनाकार दर्शनोपयोगका जघन्य काल आगे कहे जानेवाले सभी पदोंकी अपेक्षा सबसे कम है। (तथापि वह संख्यात आवलीप्रमाण है।) इससे चक्षुरिन्द्रियसम्बन्धी अवग्रहज्ञानका जघन्य काल विशेष अधिक है। इससे, श्रोत्रेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे घ्राणेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे जिह्वेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे मनोयोग, इससे वचनयोग, इससे काययोग, इससे स्पर्शनेन्द्रियजनित अवग्रहज्ञान, इससे अवायज्ञान, इससे ईहाज्ञान, इससे श्रुतज्ञान और इससे उच्छ्वास, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३६ ॥

तद्भवस्थ केवलीके केवलज्ञान और केवलदर्शन, तथा सकषाय जीवके शुक्ललेश्या, इन तीनोंका जघन्य काल (परस्पर सदृश होते हुए भी) उच्छ्वासके जघन्य कालसे विशेष अधिक है। इससे एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान, इससे पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यान, इससे उपशमश्रेणीसे गिरनेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इससे उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और इससे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले सूक्ष्मसाम्परायसंयत, इन सबका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है ॥ ३७ ॥

क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके जघन्य कालसे मानकषाय, इससे क्रोधकषाय, इससे मायाकषाय, इससे लोभकषाय और इससे लब्ध्यपर्याप्त जीवके क्षुद्रभवग्रहणका जघन्य काल क्रमशः उत्तरोत्तर विशेष विशेष अधिक है। क्षुद्रभवग्रहणके जघन्य कालसे कृष्टीकरणका जघन्य काल विशेष अधिक है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

---

१ कसायपाहुडे अद्धापरिमाणाधिकारे १-३.

इदि गाहासुत्तादो। अंतोमुहुत्तं पि संखेज्जावलियमेत्तं चेव, तदो एदेसिं दोण्हं विसेसो णत्थि त्ति अंतोमुहुत्तवयणं सुत्तत्थं संदेहमुप्पादेदि त्ति[1] वुत्ते णत्थि संदेहो, खुद्दाभवग्गहणमभणिय अंतोमुहुत्तमिदि भणिदजिणाणादो ताणं विसेसो अत्थि त्ति अवगम्मदे। घादखुद्दाभवग्गहणादो बादरेइंदियपज्जत्तजहण्णाउअं[2] संखेज्जगुणमिदि भणिदवेअणकालविधाणअप्पाबहुगादो य। बादरेइंदियपज्जत्तवदिरित्तो सव्वजहण्णाउअबादरेइंदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अण्णत्थ गदे बादरेइंदियपज्जत्तस्स जहण्णकालो लब्भदि त्ति भणिदं होदि।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ११५ ॥

पुढविकाइएसु बावीस वाससहस्साणि उक्कस्साउअं सुप्पसिद्धमत्थि[3]। बादरेइंदियपज्जत्तभवट्ठिदी असंखेज्जवासमेत्ता किण्ण होदि त्ति वुत्ते ण होदि, तत्थासंखेज्जवार-

---

इन गाथासूत्रोंसे जाना जाता है कि क्षुद्रभवका काल भी संख्यात आवलीप्रमाण होता है।

शंका—अन्तर्मुहूर्त भी तो संख्यात आवलीप्रमाण ही होता है, इसलिए अन्तर्मुहूर्त और क्षुद्रभवग्रहण काल, इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। अतएव यह अन्तर्मुहूर्तका वचनरूप सूत्रार्थ सन्देहको उत्पन्न करता है?

समाधान—इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि, सूत्रमें 'क्षुद्रभवग्रहण' ऐसा पाठ न करके 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन कहनेवाली जिन-आज्ञासे उन दोनोंमें भेद जाना जाता है। तथा, 'घातक्षुद्रभवग्रहणकालसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवकी जघन्य आयु संख्यातगुणी है' इस प्रकारके कहे गये वेदनाकालविधानसम्बन्धी अल्पबहुत्वद्वारसे भी जाना जाता है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे व्यतिरिक्त किसी जीवके सर्व जघन्य आयुवाले बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, पुनः अन्य पर्यायमें चले जाने पर, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ ११५ ॥

पृथिवीकायिक जीवोंमें बाईस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु सुप्रसिद्ध है।

शंका—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात वर्षप्रमाण क्यों नहीं होती है?

समाधान—नहीं होती है, क्योंकि, उनमें असंख्यातवार एक जीवकी उत्पत्ति

---

१ प्रतिषु 'मुप्पादेत्ति' इति पाठः। २ प्रतिषु '-जहण्णाउअ-' इति पाठः।
३ प्रतिषु 'सुवसिद्ध–' इति पाठः।

मेगजीवस्स उप्पत्तीए असंभवा । उक्कस्ससंखेज्जमेत्तं तस्स संखेज्जभागमेत्तं वा वारं जदि उप्पज्जदि तो वि असंखेज्जाणि वस्साणि होंति त्ति वुत्ते ण होंति, संखेज्जाणि वाससहस्साणि त्ति सुत्तण्णहाणुववत्तीदो तप्पाओग्गसंखेज्जवारुप्पत्तिसिद्धीए । अणप्पिदो बादरेइंदियपज्जत्तएसु संखेज्जाणि वाससहस्साणि उक्कस्सेण तत्थ परिभमिय पुणो अणप्पिदेसु णिच्छएण उप्पज्जदि त्ति भणिदं होदि ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११६ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? अपज्जत्तएसु जहण्णियाए आउट्ठिदीए तत्तियमेत्ताए[1] उवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिओ बादरेइंदियअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय जदि वि संखेज्ज-

---

असंभव है ।

शंका— यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण वार, अथवा उसके संख्यातवें भागप्रमाण वार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं ?

समाधान— नहीं होते हैं, क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय, तो बादर एकेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्षप्रमाण है' यह सूत्र-वचन नहीं बन सकता है। इसलिए तत्प्रायोग्य संख्यातवार ही बादर एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सिद्ध होती है ।

अविवक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यातसहस्र वर्षप्रमाण अधिकसे अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित जीवोंमें निश्चयसे उत्पन्न होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए ।

बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य आयुकी स्थिति उतनेमात्र अर्थात् क्षुद्रभव-ग्रहणप्रमाण ही पाई जाती है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाला कोई जीव बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें

---

१ प्रतिषु 'तत्तियमेत्ता' इति पाठः ।

सहस्सवारं तत्थेव तत्थेव उप्पज्जदि, तो वि तेसु सव्वेसु अंतोमुहुत्तेसु एगट्ठ कदेसु वि एगमुहुत्तपमाणाभावा ।

सुहुमएइंदिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ११९ ॥

कुदो ? सव्वद्धा सुहुमेइंदियविरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२० ॥

अणप्पिदिंदियस्स सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु सव्वजहण्णकालमच्छिय अणप्पिदिंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १२१ ॥

तं जहा– अणिंदिएहिंतो आगंतूण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तं तेसिमुक्कस्सभवट्ठिदिं तत्थ गमिय अणिंदियं गच्छदि । कुदो ? हेउसरूवजिणवयणोवलंभादो ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२२ ॥

उत्पन्न होकर यद्यपि संख्यात सहस्रवार उन उनमें ही उत्पन्न होता है, तथापि उन सभी अन्तर्मुहूर्तोंके एकत्रित करने पर भी एक मुहूर्तप्रमाणका अभाव है, अर्थात् फिर भी पूरा एक मुहूर्त नहीं होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२० ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवके सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सर्व जघन्य काल रह करके अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं, तत्प्रमाण है ॥ १२१ ॥

जैसे, अविवक्षित अन्य इन्द्रियवाले जीवोंसे आकर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर कोई जीव असंख्यात लोकप्रमाण उनकी उत्कृष्ट भवस्थितिको वहां पर बिताकर अन्य इन्द्रियवाले जीवोंमें चला जाता है, क्योंकि, इस प्रकारके हेतुस्वरूप जिन-वचन पाये जाते हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२२ ॥

सव्वद्धासु विरहाभावा। सो वि कधं णव्वदे ? अण्णहाणुववत्तिहेउलक्खणोव-लक्खियजिणवयणादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

केम्महंतं ? तेसिं जहण्णाउट्ठिदिमेत्तं। एत्थ खुद्दाभवग्गहणं किण्ण लब्भदे ? ण, अपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ तस्स संभवाभावा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२४ ॥

एगाउट्ठिदी संखेज्जावलियमेत्ता त्ति कट्टु संखेज्जवारं वा तत्थेव पुणो पुणो उप्पज्जमाणस्स दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिकालो किण्ण लब्भदे ? ण, तेत्तिय-वारं तत्थुप्पत्तीए असंभवा। सो वि कधं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तवयणण्णहाणुववत्तीदो। कधं

क्योंकि, सभी कालोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके विरहका अभाव है।

शंका— यह भी कैसे जाना ?

समाधान— अन्यथानुपपत्तिस्वरूप हेतुके लक्षणसे उपलक्षित जिन-वचनसे जाना जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सर्वदा रहते हैं।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

शंका— यह अन्तर्मुहूर्त काल कितना बड़ा लेना चाहिए ?

समाधान— उनकी, अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी जघन्य आयुके कालप्रमाण लेना चाहिए।

शंका— इस सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' के स्थानपर 'क्षुद्रभवग्रहण' इस पदका उपादान क्यों नहीं किया गया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र उसका, अर्थात् क्षुद्रभवका होना संभव नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२४ ॥

शंका— जब कि एक आयुकर्मकी स्थिति संख्यात आवलीप्रमाण है, तब संख्यात-बार वहां पर ही पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले जीवके दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अथवा संवत्सर आदि प्रमाण स्थितिकाल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उतने बार उस पर्यायमें उत्पत्ति होना असंभव है, जितने बारमें कि मास, वर्ष आदि प्रमाण स्थितिकाल पाया जा सके।

शंका— यह भी कैसे जाना ?

समाधान— अन्यथा, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा वचन नहीं हो सकता था, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना।

सज्झ-साहणाणमेयत्तं ? ण, पमाणेणाणेयंता । किंतु एगजीवजहण्णआउट्ठिदिकालादो तस्सेवुक्कस्सभवट्ठिदिकालो संखेज्जगुणो, णाणाआउट्ठिदिसमूहणिप्फण्णत्तादो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १२५ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परूविदत्तादो । कथमेग-बहुवयणाणमेगमहियरणं ? ण एस दोसो, सव्वत्थ दोण्हमण्णोण्णाविणाभावुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १२६ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते णिद्दिट्ठो । एसो अपज्जत्ताउट्ठिदी जहण्णिया संखेज्जावलियमेत्ता अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते किण्ण वुत्ता ? ण एस दोसो, पज्जत्ताउआदो अपज्जत्तजहण्णाउअं संखेज्जगुणहीणमिदि पदुप्पायणट्ठं खुद्दाभवग्गहणस्सुवदेसा ।

शंका—साध्य और साधन, इन दोनोंके एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उक्त कथनमें प्रमाणसे अनेकान्त है, अर्थात्, प्रमाण स्वयं साध्य होते हुए भी अन्यका साधक होता है ।

किन्तु यथार्थ बात यह है कि एक जीवकी जघन्य आयुस्थितिके कालसे उसीकी उत्कृष्ट भवस्थितिका काल संख्यातगुणा होता है, क्योंकि, वह नाना आयुस्थितियोंके समूहसे निष्पन्न होता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया गया है ।

शंका—एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका एक अधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, सर्वत्र ही एकवचन और बहुवचन, इन दोनोंका अविनाभावसम्बन्ध पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १२६ ॥

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अवहारकाल आवलीके असंख्यातवें भागमात्र होता हुआ भी 'अन्तर्मुहूर्त है' ऐसा सूत्रमें निर्देश किया गया है । फिर यह लब्ध्यपर्यातक जीवोंकी जघन्य आयुस्थिति संख्यात आवलीप्रमाण होते हुए भी 'अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, पर्यातक जीवोंकी (जघन्य) आयुसे लब्ध्यपर्यातक जीवोंकी जघन्य आयु संख्यातगुणी हीन होती है, यह बतलानेके लिए सूत्रमें क्षुद्रभवग्रहणका उपदेश दिया गया है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो परूविदत्तादो ।

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १२८ ॥

उवदेसेण विणा जाणिज्जदि त्ति सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं[2] ॥१२९॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो वि-ति-चउरिंदियाणं जहण्णकालो खुद्दाभवग्गहणं, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवा । पज्जत्ताणं अंतोमुहुत्तं, तत्थ खुद्दाभवग्गहणस्स संभवाभावा ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि[3] ॥ १३० ॥

तीइंदियाणमेगूणवण्णदिवसा उक्कस्साउट्ठिदिपमाणं, चउरिंदियाणं छम्मासा, बीइंदि-

---

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२७ ॥

पहले बहुतवार प्ररूपण किये जानेसे यह सूत्र सुगम है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रियपर्याप्तक, त्रीन्द्रियपर्याप्तक और चतुरिन्द्रियपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १२८ ॥

उपदेशके विना ही जाना जाता है कि यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्रमशः क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १२९ ॥

'जैसा उद्देश होता है, वैसा ही निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, क्योंकि, उनमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंकी संभावना है । किन्तु पर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें क्षुद्रभवग्रहणकी संभावना नहीं है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥१३०॥

त्रीन्द्रिय जीवोंकी उनंचास दिवस उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण है, चतुरिन्द्रिय

---

१ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण संख्येयानि वर्षसहस्राणि । स. सि. १, ८.

याणं बारस वासा। जदो एवं, तदो संखेज्जाणि वाससहस्साणि त्ति ण घडदे? ण एस दोसो, एदाओ एगाउट्ठिदीओ। एदाहि ण एत्थ कज्जमत्थि, भवट्ठिदीए अहियारादो। का भव-ट्ठिदी णाम? आउट्ठिदिसमूहो। जदि एवं, तो असंखेज्जाणि वाससहस्साणि भवट्ठिदी किण्ण होदि? ण एस दोसो, असंखेज्जवारं संखेज्जवाससहस्सविरोहिसंखेज्जवारं वा तत्थुप्पत्तीए संभवाभावा। अणप्पिदिंदिएहिंतो आगंतूण अप्पिदिंदिएसु उप्पज्जिय संखे-ज्जाणि चेव हिंडदि, असंखेज्जाणि ण परिभमदि त्ति वुत्तं होदि।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १३१ ॥

उवदेसेण विणा एदस्स सुत्तस्स अत्थो णव्वदे।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३२ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

जीवोंकी छह मास और द्वीन्द्रिय जीवोंकी बारह वर्ष उत्कृष्ट आयुस्थिति होती है।

शंका—यदि ऐसा है, तो सूत्रमें कही गई संख्यात हजार वर्षोंकी स्थिति नहीं घटित होती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ये बतलाई गई स्थितियां एक आयु-सम्बन्धी हैं, इनसे यहां पर कोई कार्य नहीं है। किन्तु यहां पर भवस्थितिका अधिकार है।

शंका—भवस्थिति किसे कहते है?

समाधान—अनेक आयुस्थितियोंके समूहको भवस्थिति कहते हैं।

शंका—यदि ऐसा है, तो असंख्यात हजार वर्षप्रमाण भवस्थिति क्यों नहीं होती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, असंख्यातवार, अथवा संख्यात वर्ष-सहस्रके विरोधी संख्यातवार भी उनमें उत्पत्ति होनेकी संभावनाका अभाव है। अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंसे आ करके विवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर, संख्यातसहस्र वर्ष ही भ्रमण करता है, असंख्यातवर्ष भ्रमण नहीं करता है, ऐसा अर्थ कहा हुआ समझना चाहिए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३१ ॥

उपदेशके विना ही इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१३२॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३३ ॥

एदं पि सुगमं चेव । णवरि बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ताणं जहाकमेण अंतरविरहिया असीदि-सट्ठि-चालीसअपज्जत्तभवा । जदि वि एत्तियवारमेगो जीवो[1] तत्थ-तणुक्कस्सट्ठिदीए उप्पज्जदि, तो वि तब्भवट्ठिदिकालसमासो अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव । कधमेदं णव्वदे ? अंतोमुहुत्तुवदेसण्णहाणुववत्तीदो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १३४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ १३५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जधा मूलोघम्हि मिच्छत्तस्स जहण्णकालपरूवणासुत्तस्स वुत्तो तधा वत्तव्वो ।

....

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है । विशेष बात यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके यथाक्रमसे अन्तररहित होकर अस्सी, साठ और चालीस लब्ध्यपर्याप्तक भव होते हैं । यद्यपि इतने बार एक जीव उनकी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्पन्न होता है, तो भी उनकी भवस्थितिके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

शंका—यह कैसे जानते है ?

समाधान—अन्यथा, सूत्रमें अन्तर्मुहूर्तका उपदेश हो नहीं सकता था । इस अन्यथानुपपत्तिसे जानते हैं कि उन भवोंका जोड़ अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल-तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३५ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा कालप्ररूपणाके मूलोघमें मिथ्यात्वके जघन्य कालकी प्ररूपणा करनेवाले सूत्रका कहा है, वैसा ही यहां कहना चाहिए ।

....

१ प्रतिषु 'वीओ' इति पाठः ।

२ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १३६ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पंचिंदियाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसहस्साणि, पंचिंदियपज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तं। एदस्सुदाहरणं-एक्को एइंदियादो विगलिंदियादो वा आगंतूण पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु उववज्जिय सगट्ठिदिमच्छिय अणिंदियं गदो। एक्कस्सेव सागरोवमसहस्सस्स सुवंतब्भूदबहुत्तमवेक्खिय सागरोवमसहस्साणि त्ति सुत्ते बहुवयणणिद्देसो कदो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥१३७॥

कुदो? ओघादो णाणेगजीवसासणादिकालाणं भेदाभावा।

पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १३८ ॥

....

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १३६ ॥

'जैसा उद्देश होता है, तथैव निर्देश होता है' इस न्यायसे सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है।

अब इन दोनों कालोंका उदाहरण कहते हैं— कोई एक जीव एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रियसे आकर पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थिति तक रह कर, अन्य इन्द्रियको चला गया। यहां पर एक ही सागरोपमसहस्रके, अपने अन्तर्गत बहुत्वको देखकर 'सागरोपमसहस्र' ऐसा सूत्रमें बहुवचनका निर्देश किया गया है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, ओघप्ररूपणासे नाना और एक जीवसम्बन्धी सासादनादि गुणस्थानोंके कालोंमें भेदका अभाव है।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका काल द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कालके समान है ॥ १३८ ॥

....

१ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्। स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चाइणा भेदाभावा। णवरि पंचिंदियअपज्जत्तएसु णिरंतरुप्पज्जणभववारा चउवीस होंति।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १३९ ॥

कुदो? सव्वद्धासु एदेसिं संताणस्स विच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १४० ॥

एदस्सुदाहरणं— एगो अणप्पिदकाइओ जीवो अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्व-जहण्णं कालमच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो। लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा[3] ॥ १४१ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादिक रूपसे कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें लगातार निरन्तर उत्पन्न होनेके भववार चौवीस होते हैं।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ १३९ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन पृथिवीकायिकादिकोंकी संतान-परम्पराका विच्छेद नहीं होता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४० ॥

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व जघन्य काल रह कर अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ। तब क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १४१ ॥

---

१ कायानुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणासंख्येयः कालः। स. सि. १, ८.

एदस्सुदाहरणं- एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्सियं अप्पिदकाइयट्ठिदिमसंखेज्जलोगमेत्तं परिभमिय अणप्पिदकायं गदो ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४२ ॥

कुदो ? सव्वकालमणुच्छिण्णसंताणत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदस्सुदाहरणं- एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववज्जिय सव्वजहण्णमाउट्ठिदिं गमिय अणप्पिदकाइएसु उववण्णो । लद्धो जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणकालो ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ १४४ ॥

कम्मट्ठिदि त्ति वुत्ते किं सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदीओ घेप्पंति, आहो एक्कस्स चेय ट्ठिदी घेप्पदि त्ति ? सव्वकम्माणं ट्ठिदीओ ण घेप्पंति, किंतु एक्कस्सेव कम्मट्ठिदी घेप्पदि ।

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें उत्पन्न होकर विवक्षित कायकी असंख्यात लोकप्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

बादरपृथिवीकायिक, बादरजलकायिक, बादरतेजस्कायिक, बादरवायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४२ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त जीवोंकी सर्वकाल अविच्छिन्न संतान पाई जाती है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

इसका उदाहरण—अविवक्षित कायवाला कोई एक जीव विवक्षित कायके लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर वहां की सर्व जघन्य आयुस्थितिको बिताकर पुनः अविवक्षितकायिकोंमें उत्पन्न हो गया, तब क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल उपलब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है ॥ १४४ ॥

शंका—' कर्मस्थिति ' इस प्रकार कहने पर क्या सर्व कर्मोंकी स्थितियां ग्रहण की जा रही हैं, अथवा, एक ही कर्मकी स्थिति ग्रहण की जा रही है ?

समाधान—सर्व कर्मोंकी स्थितियां नहीं ग्रहण की जा रही हैं, किन्तु एक मोहकर्मकी ही स्थिति यहां पर ' कर्मस्थिति ' शब्दसे ग्रहण की जा रही है, क्योंकि, इस प्रकारका

कुदो ? गुरूवदेसादो। तत्थ वि दंसणमोहणीयस्स चेय उक्कस्सट्ठिदीए सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताए गहणं कादव्वं, पाहण्णियादो। कुदो पहाणत्तं ? संगहिदासेसकम्मट्ठिदीए। के वि आइरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे कारणोवयारमवलंबिय बादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते, 'गौण-मुख्ययोर्मुख्ये संप्रत्यय' इति न्यायात्। ण च बादराणं सामण्णेण वुत्तकालो बादरेगदेसाणं बादरपुढविकाइयाणं पि सो चेव होदि त्ति, विरोहा। सामण्णबादरट्ठिदिमण्णपयारेण परूविय संपहि बादरपुढविट्ठिदिं भण्णमाणे उवयारावलंबणे पओजणाभावा च। एदस्सुदाहरणं– अणप्पिदबादरकाइओ अप्पिदबादरकाइएसु उप्पज्जिय तत्थ सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तकालमच्छिय अणप्पिदबादरकाइयं गदो।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४५ ॥

गुरुका उपदेश है। उसमें भी केवल दर्शनमोहनीयकर्मकी ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वही प्रधान है।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मकी स्थितिको प्रधानता कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, उसमें सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है।

कितने ही आचार्य 'कर्मस्थितिसे बादरस्थिति परिकर्ममें उत्पन्न है' इसलिये कार्यमें कारणके उपचारका अवलम्बन करके बादरस्थितिकी ही 'कर्मस्थिति' यह संज्ञा मानते हैं, किन्तु वह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, 'गौण और मुख्यमें विवाद होने पर मुख्यमें ही संप्रत्यय होता है' ऐसा न्याय है। दूसरी बात यह है कि बादरकायिक जीवोंका सामान्यसे कहा हुआ काल, बादरकायिक जीवोंके एकदेशभूत बादर पृथिवीकायिकोंका भी वही ही नहीं हो सकता है, क्योंकि, इसमें विरोध आता है। तथा, सामान्य बादरकायिक स्थितिको अन्य प्रकारसे प्ररूपण करके अब बादरपृथिवीकायिककी स्थितिको कहने पर उपचारके आलम्बनमें कोई प्रयोजन भी नहीं है।

अब उक्त कर्मस्थितिप्रमाण कालका उदाहरण कहते हैं— अविवक्षित बादरकायवाला कोई जीव विवक्षित बादरकायिकोंमें उत्पन्न होकर वहां पर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण काल तक रह करके अविवक्षित बादरकायिकमें चला गया।

बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरतेजस्कायिकपर्याप्त, बादरवायुकायिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४५ ॥

सव्वद्धासु एदेसिं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४६ ॥

एदस्सुदाहरणं- एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदकायं गदो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ १४७ ॥

सुद्धपुढविजीवाणमाउट्ठिदिपमाणं बारह वस्ससहस्सा (१२०००), खरपुढविकाइयाणं बावीस वस्ससहस्सा (२२०००), आउकाइयपज्जत्ताणं सत्त वाससहस्सा (७०००), तेउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि दिवसा (३), वाउकाइयपज्जत्ताणं तिण्णि वाससहस्साणि (३०००), वणप्फइकाइयपज्जत्ताणं दस वाससहस्साणि (१००००) उक्कस्साउट्ठिदिपमाणं होदि[1] । एदासु आउट्ठिदीसु संखेज्जसहस्सवारमुप्पण्णे संखेज्जाणि वाससहस्साणि होंति । उदाहरणं- एगो अणप्पिदकाइयो, अप्पिदकाइयपज्जत्तएसु उववण्णो । पुणो तम्हि चेव संखेज्जाणि वाससहस्साणि अच्छिय अणप्पिदकाइयं गदो ।

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४६ ॥

इसका उदाहरण—एक अविवक्षितकायिक कोई जीव विवक्षित कायवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व-जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित कायको प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है ॥ १४७ ॥

शुद्धपृथिवीकायिक पर्याप्तक जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण बारह हजार (१२०००) वर्ष है । खरपृथिवीकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण बाईस हजार (२२०००) वर्ष है । जलकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण सात हजार (७०००) वर्ष है । तेजस्कायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन (३) दिवस है । वायुकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण तीन हजार (३०००) वर्ष है । वनस्पतिकायिकपर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण दश हजार (१०००) वर्ष है । इन आयुस्थितियोंमें संख्यात हजार वार उत्पन्न होनेपर संख्यात सहस्र वर्ष हो जाते हैं ।

इसका उदाहरण—एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः उसी ही कायमें संख्यात सहस्र वर्ष रह करके अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

---

१ पृथिवीकायिकाः द्विविधाः शुद्धपृथिवीकायिकाः खरपृथिवीकायिकाश्चेति । तत्र शुद्धपृथिवीकायिकानां उत्कृष्टा स्थितिर्द्वादश वर्षसहस्राणि । खरपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि । वनस्पतिकायिकानां दश वर्षसहस्राणि । अप्कायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि । वायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि । तेजःकायिकानां त्रीणि रात्रिंदिवानि । त. रा. वा. ३, ३९.

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १४८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४९ ॥

उदाहरणं—एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइयअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ खुद्दाभवग्गहणमच्छियूण अणप्पिदं काइयं गदो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५० ॥

उदाहरणं—एगो अणप्पिदकाइओ अप्पिदकाइएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तकालं तत्थ परिभमिय अण्णकायं गदो ।

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ १५१ ॥

बादरपृथिवीकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरजलकायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरतेजस्कायिकलब्ध्यपर्याप्तक, बादरवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरलब्ध्यपर्याप्तक जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१४९॥

उदाहरण—एक अविवक्षित कायवाला कोई जीव विवक्षित कायवाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहां पर क्षुद्रभवग्रहणकालप्रमाण रह करके पुनः अविवक्षित कायको प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५० ॥

उदाहरण—एक अविवक्षित कायिक जीव विवक्षित कायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अन्य कायमें चला गया ।

सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद जीव और उनके ही पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंका काल सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक और अपर्याप्तकोंके कालके समान है ॥ १५१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तेहि विसेसाभावा ।

वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो[1] ॥ १५२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण- अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेण एइंदिएहिंतो वणप्फदिकाइयाणं भेदाभावा ।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १५३ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १५४ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जादो पोग्गलपरियट्टं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल, क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त, तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है । पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, इत्यादि रूपसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंके साथ सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिकके कालमें विशेषताका अभाव है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंका काल एकेन्द्रिय जीवोंके कालके समान है ॥ १५२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस रूपसे एकेन्द्रियोंसे वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कोई भेद नहीं है ।

निगोद जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा निगोद जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १५४ ॥

यह भी सूत्र सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १५५ ॥

---

१ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

तं जधा- एगो अण्णकायादो आगंतूण णिगोदेसुववण्णो। तत्थ अड्डाइज्जा पोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदूण अण्णकायं गदो।

बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ १५६ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी इच्चेएण बादरणिगोदाणं बादरपुढविकाइएहिंतो भेदाभावा।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १५८ ॥

तसकाइयाणं तेसिं पज्जत्ताणं च जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं। तसकाइयाणमंतोमुहुत्तमिदि अभणिय खुद्दाभवग्गहणं ति किण्ण वुत्तं? ण, खुद्दाभवग्गहणं पेक्खिदूण जहण्णमिच्छत्तकालस्स थोवत्तादो। सेसं सुगमं।

जैसे— कोई एक जीव अन्य कायसे आ करके निगोदिया जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके अन्य कायको प्राप्त हो गया।

बादरनिगोद जीवोंका काल बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है, इस रूपसे बादरनिगोदिया जीवोंके कालका बादरपृथिवीकायिक जीवोंके कालसे कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १५८ ॥

त्रसकायिक और उनके पर्याप्तकोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका— 'त्रसकायिक जीवोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, ऐसा न कह कर 'क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल है,' ऐसा क्यों नहीं कहा?

समाधान— नहीं, क्योंकि, क्षुद्रभवग्रहणके कालको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षा जघन्य मिथ्यात्वका काल और भी छोटा है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

---

१ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एक जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि[1] ॥ १५९ ॥

तं जधा– दो जीवा थावरकायादो आगंतूण एगो तसकाइएसु, अण्णेगो तसकाइय-पज्जत्तएसु उववण्णो। तत्थ जो सो तसकाइएसु उववण्णो सो पुव्वकोडिपुधत्तब्भहिय-बे-सागरोवमसहस्साणि तत्थ परिभमिय थावरकायं गदो। इदरो वि बे सागरोवमसहस्सं परिभमिय थावरं गदो, एत्तो उवरि तत्थच्छणसंभवाभावा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥१६०॥

कुदो? ओघसासणादिसयलगुणट्ठाणाणं णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहिंतो तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तसासणादिसयलगुणट्ठाणणाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालाणं भेदाभावादो।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १६१ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं,

त्रसकायिक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उत्कृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपमप्रमाण है ॥ १५९ ॥

जैसे— दो जीव एक साथ स्थावरकायसे आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। उनमेंसे जो सामान्य त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायको प्राप्त हुआ। तथा दूसरा जीव भी दो हजार सागरोपमप्रमाण उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकायमें चला गया, क्योंकि, इसके ऊपर त्रसकायमें रहना संभव नहीं है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ १६० ॥

क्योंकि, ओघके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंसे त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंके सासादनादि सकल गुणस्थानोंके नाना और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंका कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तकोंका काल पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥१६१॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभव-

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। स. सि. १, ८.

२ शेषाणां पंचेन्द्रियवत्। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्तएसु जहाकमेण असीदि-सट्ठि-चालीस-चदुवीस-अणुवद्धभवेसु बहुसदवारपरियट्टणसंभूदअंतोमुहुत्तकालो इच्चेदेहि विसेसाभावा।

एवं कायमग्गणा समत्ता।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ १६२ ॥

कुदो? मणजोग-वचिजोगेहि परिणमणकालादो तदुवक्कमणकालंतरस्स थोवत्तादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ १६३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थणिच्छयसमुप्पायणट्ठं मिच्छादिट्ठिआदिगुणट्ठाणाणि अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कीरदे। एत्थ ताव जोगपरावत्ति-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि मिच्छत्त-गुणट्ठाणस्स एगसमओ परूविज्जदे। तं जधा— एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा मणजोगेण अच्छिदो। एगसमओ मण-

---

ग्रहण, उत्कृष्ट काल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें यथाक्रमसे अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस क्षुद्रभवोंमें कई सौ वार परिवर्तनसे उत्पन्न हुआ अन्तर्मुहूर्तकाल होता है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगके द्वारा होनेवाले परिणमन कालसे उनके उपक्रमणकालका अन्तर अल्प पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थ-निश्चयके समुत्पादनार्थ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है—उनमेंसे पहले योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा मिथ्यात्वगुणस्थानका एक समय प्ररूपण किया जाता है। वह इस प्रकार है—सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था।

---

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

जोगद्धाए अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो । एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदिय-समए मिच्छादिट्ठी चेव, किंतु वचिजोगी कायजोगी वा जादो । एवं जोगपरावत्तीए पंच-विहा एयसमयपरूवणा कदा । कधं समयभेदो ? सासणादिगुणट्ठाणपच्छाकदत्तेण । गुण-परावत्तीए एगसमओ वुच्चदे । तं जहा– एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तस्स वचिजोगद्धासु कायजोगद्धासु खीणासु मणजोगो आगदो । मणजोगेण सह एगसमये मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए वि मणजोगी चेव । किंतु सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं वा अपमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । एवं गुणपरावत्तीए चउव्विहा एगसमयपरूवणा कदा । कधमेत्थ समयभेदो ? पडिवज्जमाण-गुणभेएण । पुव्विल्लपंचसु समएसु संपहिलद्धचदुसमए पक्खित्ते णव भंगा होंति (९) । एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो । तेसिं खएण मणजोगो आगदो । एगसमयं मणजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए मदो । जदि तिरिक्खेसु वा मणु-

---

मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां पर एक समयमात्र मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया । द्वितीय समयमें भी वह जीव मिथ्यादृष्टि ही रहा, किन्तु मनोयोगीसे वह वचनयोगी अथवा काययोगी हो गया । इस प्रकार योगपरि-वर्तनके साथ पांच प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समयमें भेद कैसे हुआ ?

समाधान—सासादनादि गुणस्थानोंको पीछे करनेसे, अर्थात् उनमें पुनः वापिस आनेसे, समय-भेद हो जाता है ।

अब गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं । वह इस प्रकार है— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । उसके वचनयोग अथवा काययोगका काल क्षीण होने पर मनोयोग आगया और मनोयोगके साथ एक समयमें मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह जीव यद्यपि मनोयोगी ही है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे गुणस्थानके परिवर्तनद्वारा चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा की गई ।

शंका—यहां पर समय-भेद कैसे हुआ ?

समाधान—आगे प्राप्त होनेवाले गुणस्थानके भेदसे समयमें भेद हुआ ।

पूर्वोक्त योगपरिवर्तनसम्बन्धी पांच समयोंमें साम्प्रतिक लब्ध गुणस्थानसम्बन्धी चार समयोंको प्रक्षिप्त करने पर नौ (९) भंग हो जाते हैं । कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था । पुनः योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया । तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दिखाई दिया और

सेसु वा उप्पण्णो, तो कम्मइयकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वा। अध देव-णेरइएसु जइ उववण्णो तो कम्मइयकायजोगी वेउव्वियमिस्सकायजोगी वा जादो। एवं मरणेण लद्धएगभंगे पुव्विल्लणवभंगेसु पक्खित्ते दस भंगा होंति (१०)। वाघादेण एक्को मिच्छादिट्ठी वचिजोगेण कायजोगेण वा अच्छिदो। तेसिं वचि-कायजोगाणं खएण तस्स मणजोगो आगदो। एगसमयं मणजोगेण मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए वाघादिदो काय-जोगी जादो। लद्धो एगसमओ। एदं पुव्विल्लदसभंगेसु पक्खित्ते एक्कारस भंगा (११)। एत्थ उववुज्जंती[1] गाहा—

गुण-जोगपरावत्ती वाघादो मरणमिदि हु चत्तारि।
जोगेसु होंति ण वरं पच्छिल्लदुगुणका जोगे ॥ ३९ ॥

एदम्हि गुणट्ठाणे ट्ठिदजीवा इमं गुणट्ठाणं पडिवज्जंति, ण पडिवज्जंति त्ति णादूण गुणपडिवण्णा वि इमं गुणट्ठाणं गच्छंति, ण गच्छंति त्ति चिंतिय असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं च चउव्विहा एगसमयपरूवणा परूविदव्वा। एवमप्पमत्त-संजदाणं। णवरि वाघादेण विणा तिविधा एगसमयपरूवणा कादव्वा। किमट्ठं वाघादो

दूसरे समयमें मरा। सो यदि वह तिर्यंचोंमें या मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी, अथवा औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। अथवा, यदि देव या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ तो कार्मणकाययोगी अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हो गया। इस प्रकार मरणसे प्राप्त एक भंगको पूर्वोक्त नौ भंगोंमें प्रक्षिप्त करने पर दश भंग हो जाते हैं (१०)। अब व्याघातसे लब्ध होनेवाले एक भंगकी प्ररूपणा करते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वचनयोगसे अथवा काययोगसे विद्यमान था। सो उन वचनयोग अथवा काययोगके क्षय हो जाने पर उसके मनोयोग आ गया। तब एक समय मनोयोगके साथ मिथ्यात्व दृष्ट हुआ और द्वितीय समयमें वह व्याघातको प्राप्त होता हुआ काययोगी हो गया। इस प्रकारसे एक समय लब्ध हुआ। पूर्वोक्त दश भंगोंमें इस एक भंगके प्रक्षिप्त करने पर ग्यारह भंग होते हैं (११)। इस विषयमें उपयुक्त गाथा इस प्रकार है—

गुणस्थानपरिवर्तन, योगपरिवर्तन, व्याघात और मरण, ये चारों बातें योगोंमें अर्थात् तीनों योगोंके होने पर, होती हैं। किन्तु सयोगिकेवलीके पिछले दो, अर्थात् मरण और व्याघात, तथा गुणस्थानपरिवर्तन नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥

इस विवक्षित गुणस्थानमें विद्यमान जीव इस अविवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, या नहीं, ऐसा जान करके, गुणस्थानोंको प्राप्त जीव भी इस विवक्षित गुणस्थानको जाते हैं, अथवा नहीं, ऐसा चिन्तवन करके असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंकी चार प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। इसी प्रकारसे अप्रमत्तसंयतोंकी भी प्ररूपणा होती है, किन्तु विशेष बात यह है कि उनके व्याघातके विना तीन प्रकारसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए।

---

१ आ-प्रतौ 'उवउज्जंती' क-प्रतौ 'उववज्जंती' इति पाठः।

णत्थि ? अप्पमाद-वाघादाणं सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहा । सजोगिकेवलिस्स एगसमय-परूवणा कीरदे । तं जधा- एक्को खीणकसाओ मणजोगेण अच्छिदो मणजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सजोगी जादो । एगसमयं मणजोगेण दिट्ठो सजोगिकेवली विदियसमए वचिजोगी वा जादो । एवं चदुसु मणजोगेसु पंचसु वचिजोगेसु पुव्वुत्तगुणट्ठाणाणं एग-समयपरूवणा कादव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १६४ ॥

तं जधा- मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो (अप्पमत्त-संजदो) सजोगिकेवली वा अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अद्धाक्खएण अप्पिदजोगं गदो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[2] ॥ १६५ ॥

शंका— अप्रमत्तसंयतके व्याघात किस लिए नहीं है ?

समाधान— क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात, इन दोनोंका सहानवस्थानलक्षण विरोध है ।

अब सयोगिकेवलीके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव मनोयोगके साथ विद्यमान था । जब मनोयोगके कालमें एक समय अवशिष्ट रहा, तब वह सयोगिकेवली हो गया और एक समय मनोयोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । वह सयोगिकेवली द्वितीय समयमें वचनयोगी हो गया । इस प्रकारसे चारों मनोयोगोंमें और पांचों वचनयोगोंमें पूर्वोक्त गुणस्थानोंकी एक समयसम्बन्धी प्ररूपणा करना चाहिए ।

उक्त पांचों मनोयोगी तथा पांचों वचनयोगी मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६४ ॥

जैसे— अविवक्षित योगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, (अप्रमत्तसंयत) और सयोगिकेवली उस योगसम्बन्धी कालके क्षय हो जानेसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए । वहां पर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके पुनः अविवक्षित योगको चले गये ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ १६५ ॥

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ; इच्चेदेहि पंचमण-वचिजोगसासणाणं ओघसासणेहिंतो भेदाभावा। एत्थ वि जोग-गुणपरावत्ति-मरण-वाघादेहि समयाविरोहेण एगसमयपरूवणा कायव्वा।

सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १६६ ॥

उदाहरणं- सत्तट्ठ जणा बहुगा वा मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा वा अप्पिदमण-वचिजोगेसु ट्ठिदा अप्पिदजोगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सम्मामिच्छत्तं गदा। एगसमयमप्पिदजोगेण सह दिट्ठा, बिदियसमए सव्वे अणप्पिदजोगं गदा। एवं मरणेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमयपरूवणा चिंतिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १६७ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगेण सहिदसम्मामिच्छादिट्ठीणं पवाहस्स अच्छिण्णरूवस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागायामस्सुवलंभा।

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलियां, इस रूपसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघसम्बन्धी सासादनोंके कालसे कोई भेद नहीं है। यहां पर भी योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन, मरण और व्याघातके द्वारा आगमके अविरोधसे एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समय होते हैं ॥ १६६ ॥

उदाहरण— विवक्षित मनोयोग अथवा वचनयोगमें स्थित सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव उस विवक्षित योगके कालमें एक समय अवशिष्ट रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और एक समयमात्र विवक्षित योगके साथ दृष्टिगोचर हुए। द्वितीय समयमें सभीके सभी अविवक्षित योगको चले गये। इसी प्रकार मरणके विना शेष योगपरावर्तन, गुणस्थानपरावर्तन और व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा चिंतन करके करना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥१६७॥

क्योंकि, विवक्षित योगसे सहित सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अविच्छिन्नरूप प्रवाह पल्योपमके असंख्यातवें भाग लम्बे काल तक पाया जाता है।

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १६८ ॥

एत्थ वि मरणेण विणा गुण-जोगपरावत्ति-वाघादे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा जाणिय वत्तव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १६९ ॥

उदाहरणं—एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी अणप्पिदजोगे ट्ठिदो अप्पिदजोगं पडिवण्णो । तत्थ तप्पाओग्गुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदजोगं गदो । लद्धमंतोमुहुत्तं ।

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[3] ॥ १७० ॥

उवसामगाणं वाघादेण विणा जोग-गुणपरावत्ति-मरणेहि णाणाजीवे अस्सिदूण एगसमयपरूवणा कादव्वा । खवगाणं मरण-वाघादेहि विणा जोग-गुणपरावत्तीओ दो चेव अस्सिदूण एगसमयपरूवणा परूवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १६८ ॥

यहां पर भी मरणके विना गुणस्थानपरावर्तन, योगपरावर्तन और व्याघात, इन तीनोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १६९ ॥

उदाहरण—अविवक्षित योगमें विद्यमान कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव विवक्षित योगको प्राप्त हुआ । वहां पर अपने योगके प्रायोग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अविवक्षित योगको चला गया । इस प्रकारसे एक अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी चारों उपशामक और क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १७० ॥

उपशामक जीवोंके व्याघातके विना योगपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके द्वारा नाना जीवोंका आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए । क्षपक जीवोंकी मरण और व्याघातके विना योगपरिवर्तन और गुणस्थानपरिवर्तन, इन दोनोंका आश्रय लेकर ही एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए ।

---

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जधा–चत्तारि उवसामगा चत्तारि खवगा च अणप्पिदजोगे ट्ठिदा अद्धाक्खएण अप्पिदजोगं गदा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि अणप्पिदजोगं पडिवण्णा। लद्धमंतोमुहुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७२ ॥

एत्थ एगसमयपरूवणा खवगुवसामगाणं दोहि तीहि पयारेहि जाणिय वत्तव्वा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७३ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तपरूवणा जाणिय वत्तव्वा। एत्थ एगसमयवियप्पपरूवणट्ठं गाहा–

एक्कारस छ सत्त य एक्कारस दस य णव य अट्ठे वा।
पण पंच पंच तिण्णि य दु दु दु दु एगो य समयगणा ॥ ४१ ॥

११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १।

कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ १७४ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७१ ॥

वह इस प्रकार है—अविवक्षित योगमें स्थित चारों उपशामक और क्षपक जीव उस योगके कालक्षयसे विवक्षित योगको प्राप्त हुए। वहां पर अन्तर्मुहूर्त तक रह करके पुनरपि अविवक्षित योगको प्राप्त हो गए। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो गया।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७२ ॥

यहां पर एक समयकी प्ररूपणा क्षपकोंके योगपरावर्तन और गुणस्थानपरावर्तनकी अपेक्षा दो प्रकारसे और उपशामकोंकी व्याघातके विना शेष तीन प्रकारोंसे जान करके कहना चाहिए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७३ ॥

यहां अन्तर्मुहूर्तकी प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए। यहां पर एक समयसम्बन्धी विकल्पोंके प्ररूपण करनेके लिए यह गाथा है—

मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ग्यारह, छह, सात, ग्यारह, दश, नौ, आठ, पांच, पांच, पांच, तीन, दो, दो, दो, दो और एक, इतने एक समयसम्बन्धी प्ररूपणाके विकल्प होते हैं। ११, ६, ७, ११, १०, ९, ८, ५, ५, ५, ३, २, २, २, २, १ ॥ ४० ॥

काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७४ ॥

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? सव्वद्धासु कायजोगिमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ १७५ ॥

तं जधा– एगो सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा कायजोगद्धाए अच्छिदो । तिस्से एगसमयावसेसे मिच्छादिट्ठी जादो । कायजोगेण एगसमयं मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए अण्णजोगं गदो । अथवा मण-वचिजोगेसु अच्छिदस्स मिच्छादिट्ठिस्स तेसिमद्धाक्खएण कायजोगो आगदो । एगसमयं कायजोगेण सह मिच्छत्तं दिट्ठं । विदियसमए सम्मामिच्छत्तं वा असंजमेण सह सम्मत्तं वा संजमासंजमं अप्पमत्तभावेण संजमं वा पडिवण्णो । लद्धो एगसमओ । एत्थ मरण-वाघादेहि एगसमओ[2] णत्थि । कुदो ? मुदे वाघादिदे वि कायजोगं मोत्तूण अण्णजोगाभावा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं[3] ॥ १७६ ॥

तं जधा—एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण कायजोगी

क्योंकि, सभी कालोंमें काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७५ ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव काययोगके कालमें विद्यमान था । उस योगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गया । तब काययोगके साथ एक समय मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें वह अन्य योगको चला गया । अथवा, मनोयोग और वचनयोगमें विद्यमान मिथ्यादृष्टि जीवके उन योगोंके कालक्षयसे काययोग आ गया । तब एक समय काययोगके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ । पुनः द्वितीय समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार एक समय लब्ध हो गया । यहां पर मरण अथवा व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं है, क्योंकि, मरण होने पर अथवा व्याघात होने पर भी काययोगको छोड़कर अन्य योगका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १७६ ॥

जैसे— मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान एक मिथ्यादृष्टि जीव, उस योगके

१ एक जीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु ' सगसमओ ' इति पाठः ।

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

जादो, सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिदूण एइंदिएसु उप्पण्णो। तत्थ अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं कायजोगेण सह परियट्टिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गल-परियट्टेसुप्पण्णेसु तसेसु आगंतूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय वचिजोगी जादो। लद्धो कायजोगस्स उक्कस्सकालो।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगि-भंगो ॥ १७७ ॥

एदं सुत्तं सुगमं, मणजोगे णिरुद्धे पवंचेण परूविदत्तादो। णवरि मरण-वाघादा सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं णत्थि। सासणसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजदाणं वाघादेण एगसमओ णत्थि, मरणेण पुण अत्थि।

ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १७८ ॥

कुदो? ओरालियकायजोगिमिच्छादिट्ठिसंताणस्स सव्वद्धासु वोच्छेदाभावा।

....

कालक्षय हो जानेसे काययोगी हो गया। वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अनन्तकालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काययोगके साथ परिवर्तन करके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके शेष रहने पर त्रसजीवोंमें आकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वचनयोगी हो गया। इस प्रकारसे काययोगका उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक काय-योगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, मनोयोगके निरुद्ध करनेपर पहले प्रपंचसे (विस्तारसे) प्ररूपण किया जा चुका है। विशेष बात यह है कि काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टियोंके मरण और व्याघात नहीं होते हैं। तथा काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंके व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं होता है, किन्तु मरणकी अपेक्षा एक समय होता है।

औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके सभी कालोंमें विच्छेदका अभाव है।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७९ ॥

एत्थ मरण-गुण-जोगपरावत्तीहि एगसमयो परूवेदव्वो । वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, तस्स कायजोगाविणाभावित्तादो ।

उक्कस्सेण वावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

तं जधा– एगो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा बावीससहस्सवासाउट्ठिदिएसु एइंदिएसु उववण्णो । सव्वजहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तिं गदो । ओरालियअपज्जत्तकालेणूण-बावीसवाससहस्साणि ओरालियकायजोगेण अच्छिय अण्णजोगं गदो । एवं देसूणबावीस-वाससहस्साणि जादाणि । अथवा देवो ण उप्पादेदव्वो, तस्स जहण्णअपज्जत्तकालाणुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ॥ १८१ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, पुव्वं परूविदत्तादो । णवरि वाघादेण एत्थ एग-समयपरूवणा परूवेदव्वा ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १७९ ॥

यहां पर मरण, गुणस्थानपरावर्तन और योगपरावर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए। किन्तु यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वह काययोगका अविनाभावी है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है ॥ १८० ॥

जैसे– एक तिर्यंच, मनुष्य, अथवा देव, बाईस हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ। पुनः इस औदारिकशरीरके अपर्याप्तकालसे कम बाईस हजार वर्ष औदारिककाययोगके साथ रह करके पुनः अन्य योगको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे कुछ कम बाईस हजार वर्ष हो जाते हैं। अथवा, यहां पर देव नहीं उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, देवोंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जघन्य अपर्याप्तकाल नहीं पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक औदारिककाययोगियोंका काल मनोयोगियोंके कालके समान है ॥ १८१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें कहा जा चुका है। विशेष बात यह है कि यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १८२ ॥

कुदो ? ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिसंताणवोच्छेदस्स सव्वद्धासु अभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ १८३ ॥

तं जहा- एगो एइंदिओ सुहुमवाउकाइएसु अधोलोगंते ट्ठिएसु खुद्दाभवग्गहणाउ-ट्ठिदिएसु तिण्णि विग्गहे काऊण उववण्णो। तत्थ तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमपज्जत्तो होदूण जीविय मदो, विग्गहं कादूण कम्मइयकायजोगी जादो। एवं तिसमऊणखुद्दाभव-ग्गहणमोरालियमिस्सजहण्णकालो जादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८४ ॥

तं जधा- अपज्जत्तएसु उववज्जिय संखेज्जाणि भवग्गहणाणि तत्थ परियट्टिय पुणो पज्जत्तएसु उववज्जिय ओरालियकायजोगी जादो। एदाओ संखेज्जभवग्गहणद्धाओ मिलिदाओ वि मुहुत्तस्संतो चेव होंति।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १८२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंकी परम्पराके विच्छेदका सर्व-कालोंमें अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १८३ ॥

जैसे— एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें स्थित और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयु-स्थितिवाले सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रह करके उत्पन्न हुआ। वहां पर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणकाल तक लब्ध्यपर्याप्त हो, जीवित रह कर मरा। पुनः विग्रह करके कार्मण-काययोगी हो गया। इस प्रकारसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण औदारिकमिश्रकाय-योगका जघन्य काल सिद्ध हुआ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८४ ॥

जैसे— कोई एक जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहणप्रमाण उनमें परिवर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी हो गया। इन सब संख्यात भवोंके ग्रहण करनेका काल मिल करके भी मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है, अधिक नहीं होता है।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १८५ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणा सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एगसमयमच्छिदूण विदियसमए मिच्छत्तं गदा। लद्धो ओरालियमिस्सेण सासणाणमेगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८६ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। सासणगुणेण अंतोमुहुत्तमच्छिय ते मिच्छत्तं गदा। तस्समए चेय अण्णे सासणा ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारं सासणा ओरालियमिस्सकायजोगं पडिवज्जावेदव्वा। तदो णियमा अंतरं होदि। एवमेस कालो मेलाविदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १८७ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १८५ ॥

जैसे—सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव, अपने योगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गये। उसमें एक समय रह करके द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगके साथ सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक समय लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १८६ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। सासादनगुणस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पीछे वे मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य दूसरे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि करके उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वार सासादनसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त कराना चाहिए। इसके पश्चात् नियमसे अन्तर हो जाता है। इस प्रकारसे यह सब मिलाया गया काल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १८७ ॥

तं जधा– एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ओरालियमिस्सकायजोगी जादो। विदियसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ १८८ ॥

तं जधा– देवो वा णेरइओ वा उवसमसम्मादिट्ठी उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। एगसमयमच्छिय कालं करिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु उजुगदीए उववज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगी जादो। समऊण-छ-आवलियाओ अच्छिय मिच्छत्तं गदो।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुगा वा असंजदसम्मादिट्ठिणो णेरइया ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। सव्वलहुं पज्जत्तिं गदा, बहुसागरोवमाणि पुव्वं दुक्खेण सह ट्ठिदत्तादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९० ॥

जैसे— एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया और द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ १८८ ॥

जैसे— कोई एक देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली कालके शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। वहां पर एक समय रह करके मरण कर तिर्यंच और मनुष्योंमें ऋजुगतिसे उत्पन्न होकर औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया। वहां पर एक समय कम छह आवली तक रह करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥ १८९ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। और बहुतसे सागरोपम काल तक पहले दुःखोंके साथ रहे हुए होनेसे सर्वलघु कालसे पर्याप्तियोंको प्राप्त हुए।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९० ॥

तं जधा– देव-णेरइया मणुस्सा सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। ते पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे असंजदसम्मादिट्ठिणो ओरालियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि जावुक्कस्सेण संखेज्जवारा त्ति। एदाहि संखेज्जसलागाहि एगमपज्जत्तद्धं गुणिदे एगमुहुत्तस्स अंतो चेव जेण होदि, तेण अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९१ ॥

तं जधा–एक्को सम्मादिट्ठी बावीस सागरोवमाणि दुक्खेक्करसो होदूण जीविदो। छट्ठीदो उव्वट्टिय मणुसेसु उप्पण्णो। विग्गहगदीए तस्स सम्मत्तमाहप्पेण उववज्जिदपुण्णपोग्गलस्स ओरालियणामकम्मोदएण सुअंध-सुरस-सुवण्ण-सुहपासपरमाणुपोग्गलबहुला आगच्छंति[1], तस्स जोगबहुत्तदंसणादो। एदस्स जहण्णिया ओरालियमिस्सकायजोगस्स अद्धा होदि।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

जैसे— देव, नारकी, अथवा मनुष्य सात आठ जन, अथवा बहुतसे सम्यग्दृष्टि जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। वे सब पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकार एक, दो, तीन इत्यादि क्रमसे उत्कृष्ट संख्यातवार तक अन्य अन्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिश्रकाययोगी होते गये। इन संख्यात शलाकाओंसे एक अपर्याप्तकालको गुणित करने पर वह सब काल चूंकि एक मुहूर्तके अन्तर्गत ही होता है, इसलिए सूत्रकारने अन्तर्मुहूर्त काल कहा है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९१ ॥

जैसे— छठी पृथिवीका कोई एक सम्यग्दृष्टि नारकी बाईस सागर तक दुखोंसे एक रस अर्थात् अत्यन्त पीड़ित होकर जीता रहा। पुनः छठी पृथिवीसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। विग्रहगतिमें, सम्यक्त्वके माहात्म्यसे उदयमें आये हैं पुण्यप्रकृतिके पुद्गलपरमाणु जिसके ऐसे उस जीवके औदारिकनामकर्मके उदयसे सुगन्धित, सुरस, सुवर्ण और शुभ स्पर्शवाले पुद्गलपरमाणु बहुलतासे आते हैं, क्योंकि, उस समय उसके योगकी बहुलता देखी जाती है। ऐसे जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल होता है।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९२ ॥

---

१ आ प्रतौ ' बहु आगच्छंति ' इति पाठः।

एदं कस्स होदि ? सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवस्स तेत्तीस सागरोवमाणि सुह-लालियस्स पमुट्ठदुक्खस्स माणुसगब्भे गूह-मुत्तंत-पित्त-खरिस-वस-सेंभ-लोहि-सुक्कामाट्ठिदे अइदुग्गंधे दूरसे दुव्वण्णे दुप्पासे चमारकुंडोपमे उप्पण्णस्स, तत्थ मंदो जोगो होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा। मंदजोगेण थोवे पोग्गले गेण्हंतस्स ओरालियमिस्सद्धा दीहा होदि त्ति उत्तं होदि। अधवा जोगो एत्थ महल्लो चेव होदु, जोगवसेण बहुआ पोग्गला आगच्छंतु, तो वि एदस्स दीहा अपज्जत्तद्धा होदि, विलिसाए दूसियस्स लहुं पज्जत्ति-समाणणे[1] असामत्थियादो।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जह-ण्णेण एगसमयं ॥ १९३ ॥

एसो एगसमओ कस्स होदि ? सत्तट्ठजणाणं दंडादो कवाडं गंतूण तत्थ एगसमय-मच्छिय रुजगं गदाणं, रुजगादो कवाडं गंतूण एगसमयमच्छिय दंडं गदकेवलीणं वा।

शंका— यह उत्कृष्ट काल किस जीवके होता है ?

समाधान—तेतीस सागरोपमकाल तक सुखसे लालित पालित हुए तथा दुःखोंसे रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवके विष्टा, मूत्र, आंतडी, पित्त, खरिस (कफ) चर्वी, नासिकामल, लोहू शुक्र और आमसे व्याप्त, अतिदुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्वर्ण और दुष्ट स्पर्शवाले चमारके कुंडके सदृश मनुष्यके गर्भमें उत्पन्न हुए जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है, क्योंकि, उसके विग्रहगतिमें तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकारका आचार्य-परम्परागत उपदेश है। मंदयोगसे अल्प पुद्गलोंको ग्रहण करनेवाले जीवके औदारिकमिश्र-काययोगका काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है। अथवा, यहां पर चाहे योगकाल बड़ा ही रहा आवे, और योगके वशसे पुद्गल भी बहुतसे आते रहें, तो भी उक्त प्रकारके जीवके अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि, विलाससे दूषित जीवके शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियोंके सम्पूर्ण करनेमें असामर्थ्य है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ १९३ ॥

शंका—यह एक समय किसके होता है ?

समाधान—दंडसमुद्धातसे कपाटसमुद्धातको प्राप्त होकर और वहां एक समय रह कर प्रतरसमुद्धातको प्राप्त हुए सात आठ केवलियोंके यह एक समय होता है। अथवा, रुचकसमुद्धातसे कपाटसमुद्धातको प्राप्त होकर और एक समय रह करके दंडसमुद्धातको प्राप्त होनेवाले केवलियोंके यह एक समय होता है।

---

१ आ प्रतौ ' पज्जत्ति समाणो ' इति पाठः।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ १९४ ॥

एदे संखेज्जसमया कम्हि होंति ? कवाडे चडण-ओयरणकिरियावावददंड-पदर-पज्जायपरिणदसंखेज्जकेवलीहि संखेज्जसमयपंतीए ट्ठिदेहि अधिउत्तेहि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ॥ १९५ ॥

एसो कम्हि होदि ? कवाडगदकेवलिम्हि चडणोदरणकिरियावावददंड-पदरपज्जय-परिणदकेवलीहिंतो आगदम्हि । बहुआ समया किण्ण होंति ? ण, कवाडम्हि एगसमयं मोत्तूण बहुसमयमच्छणाभावा । कधमेक्कस्सेव जहण्णुक्कस्सववएसो ? ण एस दोसो, कणिट्ठो वि जेट्ठो वि एसो चेव मम पुत्तो त्ति लोगे ववहारुवलंभा ।

....

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ १९४ ॥

शंका—ये संख्यात समय किसमें होते हैं ?

समाधान—कपाटसमुद्घातकी आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए क्रमशः दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे परिणत संख्यात समयोंकी पंक्तिमें स्थित, ऐसे संख्यात केवलियोंके द्वारा अधिकृत अवस्थामें उक्त संख्यात समय पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ॥ १९५ ॥

शंका—यह एक समय कहां पर होता है ?

समाधान—आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें व्यापृत, ऐसे दंडसमुद्घात और प्रतरसमुद्घातरूप पर्यायसे क्रमशः परिणत हो उक्त समुद्घात केवली अवस्थासे आये हुए कपाटसमुद्घातगत केवलीके यह एक समय पाया जाता है ।

शंका—उक्त प्रकारके जीवोंके बहुत समय क्यों नहीं पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कपाटसमुद्घातमें एक समयको छोड़कर बहुत समय तक रहनेका अभाव है ।

शंका—तो फिर एक ही समयके जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश कैसे किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कनिष्ठ भी और ज्येष्ठ भी 'यही हमारा पुत्र है' इस प्रकारका लोकमें व्यवहार पाया जाता है, इसलिए एकमें भी जघन्य और उत्कृष्टका व्यपदेश हो सकता है ।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ १९६ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु वेउव्वियकायजोगिमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिसंताण-वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १९७ ॥

तं जधा– एगो मिच्छादिट्ठी मण-वचिजोगेसु अच्छिदो अद्धाखएण वेउव्विय-कायजोगी जादो । एगसमयं वेउव्वियकायजोगेण दिट्ठो । विदियसमए मदो अण्णजोगं गदो । मरणेण विणा सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा जादो । अधवा सासण-सम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वेउव्वियकायजोगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठी जादो । विदियसमए अण्णजोगं गदो । वाघादेण एगसमओ णत्थि, णिरुद्धकायजोगादो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि एगसमयपरूवणा तीहि पयारेहि कायव्वा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें वैक्रियिककाययोगवाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी परम्पराके विच्छेदका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ १९७ ॥

जैसे— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान था । वह उस योगके कालके क्षय हो जानेसे वैक्रियिककाययोगी हो गया । तब वह एक समय वैक्रियिककाययोगके साथ दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मरा और अन्य योगको प्राप्त हो गया । अथवा, मरणके विना सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया । अथवा, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि कोई जीव, वैक्रियिककाययोगके कालमें एक समय अवशेष रहने पर, मिथ्यादृष्टि हो गया और द्वितीय समयमें अन्य योगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय लब्ध होता है । यहां पर व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, काययोगकी अपेक्षा कथन हो रहा है । (व्याघात तो मन या वचनयोगमें पाया जाता है ।) इसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी एक समयकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे करना चाहिए ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९८ ॥

तं जधा– मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो देवा णेरइया वा मण-वचिजोगेसु ट्ठिदा कायजोगिणो जादा। सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णजोगिणो जादा। लद्ध-मंतोमुहुत्तं।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ १९९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि ओघसासणादो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो ॥ २०० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण मणजोगिसम्मा-मिच्छादिट्ठीहिंतो वेउव्वियकायजोगिसम्मामिच्छादिट्ठीणं विसेसाभावा।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केव-चिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२०१॥

जैसे— मनोयोग या वचनयोगमें स्थित मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि कोई देव अथवा नारकी जीव वैक्रियिककाययोगी हुए और उसमें सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य योगवाले हो गये। इस प्रकारसे उत्कृष्ट कालरूप अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया।

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥१९९॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवली, इस रूपसे ओघवर्णित सासादनगुणस्थानके कालसे इसमें कोई भेद नहीं है।

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २०० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकारसे मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके कालमें कोई विशेषता नहीं है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं ॥२०१॥

एत्थ ताव मिच्छादिट्ठिस्स जहण्णकालो वुच्चदे— सत्तट्ठ जणा बहुआ वा दव्वलिंगिणो उवरिमगेवज्जेसु उववण्णा सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। संपहि सम्मादिट्ठीणं वुच्चदे— संखेज्जा संजदा[1] सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहं कादूण पज्जत्तिं गदा। किमट्ठं दो विग्गहे करा- विदा? बहुपोग्गलग्गहणट्ठं। तं पि किमट्ठं? थोवकालेण पज्जत्तिसमाणट्ठं। मिच्छादिट्ठी दो विग्गहे किण्ण कराविदो? ण, तत्थ वि पडिसेहाभावा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०२ ॥

सत्तट्ठ जणा उक्कस्सेण असंखेज्जसेढिमेत्ता वा मिच्छादिट्ठिणो देव-णेरइएसु उव- वज्जिय वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो वेउव्वियमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ[2] लब्भंति। एदाहि वेउव्वियमिस्सद्धं

यहां पर पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल कहते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे द्रव्यलिंगी जीव उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुए। अब सम्यग्दृष्टिका जघन्य काल कहते हैं— संख्यात संयत दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए।

शंका— दो विग्रह किस लिए कराये गये हैं?

समाधान— बहुतसी पुद्गलवर्गणाओंके ग्रहण करानेके लिए दो विग्रह कराये गये हैं?

शंका— बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण भी किसलिए कराया गया?

समाधान— अल्पकालके द्वारा पर्याप्तियोंके सम्पन्न करनेके लिए बहुतसे पुद्गलोंका ग्रहण आवश्यक है।

शंका— मिथ्यादृष्टि जीवके दो विग्रह क्यों नहीं कराये गये?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनमें भी प्रतिषेधका अभाव है, अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव भी दो विग्रह कर सकते हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २०२ ॥

सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे असंख्यातश्रेणिमात्र मिथ्यादृष्टि जीव देव, अथवा नारकियोंमें उत्पन्न होकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए, और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र

१ अ-आ-क प्रतिषु 'संखेज्जासंखेज्जा संजदा'; म २ प्रतौ तु स्वीकृतः पाठः।

२ अ-आ-क प्रतिषु 'सलागाओ' इति पाठो नास्ति। म २ प्रतौ तु अस्ति।

गुणिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो वेउव्वियमिस्सकालो होदि । असंजदसम्मादिट्ठीणं पि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि एदे एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागमेत्तो उक्कस्सेण उप्पज्जंति, रासीदो वेउव्वियमिस्सकालो असंखेज्जगुणो । तं कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो । देवलोए उप्पज्जमाणसम्मादिट्ठीहिंतो देव-णेरइएसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी असंखेज्जसेढिगुणिदमेत्ता होंति त्ति कालो वि तावदिगुणो किण्ण होदि त्ति वुत्ते, ण होदि, उहयत्थ वेउव्वियमिस्सद्धासलागाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवदेसा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०३ ॥

तं जधा– एक्को दव्वलिंगी उवरिमगेवेज्जेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । सम्मादिट्ठी एक्को संजदो सव्वट्ठदेवेसु दो विग्गहे कादूण उववण्णो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी शलाकाएं पाई जाती हैं । इनसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल होता है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंका भी काल इसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि ये असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्टरूपसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि, इस उत्पन्न होनेवाली राशिसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगका काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है कि एक समयमें उत्पन्न होनेवाली असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे उक्त काल असंख्यातगुणा है ।

शंका—देवलोकमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टियोंसे देव या नारकियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात श्रेणियोंसे गुणितप्रमाण होते हैं; इसलिए वैक्रियिकमिश्रका काल भी असंख्यात श्रेणिगुणित क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं कि नहीं होता है, क्योंकि, दोनों ही स्थानों पर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें, वैक्रियिकमिश्रकालकी शलाकाओंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होनेका उपदेश है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०३ ॥

एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्तपनेको प्राप्त हुआ । एक सम्यग्दृष्टि भावलिंगी संयत सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंमें दो विग्रह करके उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २०४ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छादिट्ठी सत्तमपुढविणेरइएसु उववण्णो सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो। सम्मादिट्ठिस्स– एक्को बद्धणिरयाउओ सम्मत्तं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय पढमपुढविणेरइएसु उववज्जिय सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो। दोण्हं जहण्णकालेहिंतो उक्कस्सकाला दो वि संखेज्जगुणा। कधमेदं णव्वदे? गुरूवदेसादो।

सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०५ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा सासणसम्मादिट्ठिणो सगद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा। विदियसमए सव्वे मिच्छत्तं[1] गदा। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०४ ॥

जैसे—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ। अब असंयतसम्यग्दृष्टिकी कालप्ररूपणा करते हैं—कोई एक बद्धनरकायुष्क जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके और प्रथम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकालसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ। दोनोंके जघन्य कालोंसे दोनों ही उत्कृष्ट काल संख्यातगुणे हैं।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि एक जीव की अपेक्षा बतलाए गए जघन्य कालोंसे उन्हींके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होते हुए भी संख्यातगुणित हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०५ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुए और द्वितीय समयमें सबके सब मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय प्राप्त हो गया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २०६ ॥

---

१ प्रतिषु 'सव्वमिच्छत्तं' इति पाठः।

तं जहा– सत्तट्ठ जणा जावुक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वा एक्क-बे-तिण्णि समए आदिं कादूण जाव उक्कस्सेण समऊण-छ-आवलियाओ सासणद्धा अत्थि त्ति देवेसु उववण्णा। ते सव्वे कमेण मिच्छत्तं गदा। तस्समए चेव पुव्वं व सासणा देवेसुववण्णा। एवं णिरंतरं णाणाजीवे अस्सिदूण सासणद्धा पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्ता सगरासीदो असंखेज्जगुणा जादा त्ति।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०७ ॥

तं जधा– एक्को सासणो सगद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति देवेसुववण्णो, विदिय-समए मिच्छत्तं गदो। लद्धो एगसमओ।

उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ॥ २०८ ॥

तं जधा– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण एगसमयमच्छिय उजुगदीए देवेसुववज्जिय समऊण-छ-आव-लियाओ आसाणेणच्छिय मिच्छत्तं गदो।

जैसे—सात आठ जन, अथवा उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव, एक, दो अथवा तीन समयको आदि करके उत्कर्षसे एक समय कम छह आवलीप्रमाण सासादनकालके अवशेष रहने पर वे सबके सब देवोंमें उत्पन्न हुए। पुनः वे सब क्रमसे मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही पूर्वके समान अन्य सासादनसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार निरन्तर नाना जीवोंका आश्रय करके सासादनगुणस्थानका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र और अपनी राशिसे असंख्यातगुणा हो जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २०७ ॥

जैसे—कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अपने गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर देवोंमें उत्पन्न हुआ और द्वितीय समयमें ही मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे एक समयप्रमाण काल उपलब्ध हो गया।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल एक समय कम छह आवलीप्रमाण है ॥ २०८ ॥

जैसे—कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय वहां पर रहकर ऋजुगतिसे देवोंमें उत्पन्न होकर एक समय कम छह आवलीप्रमाण काल तक सासादनगुण-स्थानके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ।

आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०९ ॥

तं जहा- सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिदा सगद्धाए खीणाए आहारकायजोगिणो जादा । विदियसमए मुदा, मूलसरीरं वा पविट्ठा[1] । लद्धो एगसमओ । एत्थ वाघाद-गुणपरावत्तीहि एगो समओ ण लब्भदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१० ॥

तं जहा- आहारसरीरमुट्ठाविदपमत्तसंजदा मण-वचिजोगट्ठिदा आहारकायजोगिणो जादा । जाधे[2] ते जोगंतरं गदा, ताधे चेव अण्णे आहारकायजोगं पडिवण्णा । एवमेगादि एगुत्तरवड्ढीए संखेज्जसलागाओ लब्भंति । एदाहि एगं कायजोगद्धं गुणिदे आहारकायजोगद्धा उक्कस्सिया अंतोमुहुत्तपमाणा होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ २११ ॥

....

आहारककाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २०९ ॥

जैसे— सात आठ प्रमत्तसंयत मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ वर्तमान थे। वे अपने योगकालके क्षीण हो जाने पर आहारककाययोगी हुए। द्वितीय समयमें मरे अथवा मूल औदारिकशरीरमें प्रविष्ट हुए। इस प्रकारसे एक समयका काल उपलब्ध हो गया। यहां पर व्याघात अथवा गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समय नहीं प्राप्त होता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१० ॥

जैसे— आहारकशरीरको उत्पन्न करनेवाले, मनोयोग अथवा वचनयोगमें विद्यमान प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगी हुए। जब वे किसी दूसरे योगको प्राप्त हुए उसी समयमें ही अन्य प्रमत्तसंयत आहारककाययोगको प्राप्त हुए। इस प्रकार एकको आदि लेकर एकोत्तर वृद्धिसे संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं। इन शलाकाओंसे एक काययोगके कालको गुणा करने पर उत्कृष्ट आहारककाययोगका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा आहारककाययोगी जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २११ ॥

....

१ प्रतिषु 'पविट्ठो' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'जादे' इति पाठः ।

तं जधा–एक्को पमत्तसंजदो मणजोगे वचिजोगे वा अच्छिदो आहारकायजोगं गदो। विदियसमए मदो, मूलसरीरं वा पविट्ठो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१२ ॥

तं जधा–मणजोगे वचिजोगे वा ट्ठिदपमत्तसंजदो आहारकायजोगं गदो[1], सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमाच्छिय अण्णजोगं गदो।

आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१३ ॥

तं जधा– सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा आहारमिस्सजोगिणो जादा, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। एवं जहण्णकालो परूविदो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१४ ॥

तं जधा–सत्तट्ठ जणा पमत्तसंजदा दिट्ठमग्गा अदिट्ठमग्गा वा आहारमिस्सकायजोगिणो जादा, अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदा। तस्समए चेव अण्णे आहारमिस्सकायजोगिणो जादा। एवमेक्क-दो-तिण्णि जाव संखेज्जसलागा जादा त्ति कादव्वं। पुणो

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगको प्राप्त हुआ और द्वितीय समयमें मरा, अथवा मूल शरीरमें प्रविष्ट होगया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१२ ॥

जैसे—मनोयोग या वचनयोगमें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारककाययोगको प्राप्त हुआ। वहां पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अन्य योगको प्राप्त हुआ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतजीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तकाल होते हैं ॥ २१३ ॥

जैसे— देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तपनेको प्राप्त हुए। इस प्रकार जघन्य काल कहा।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१४ ॥

जैसे— देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे, अथवा अदृष्टमार्गी सात आठ प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए और अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही अन्य भी प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुए। इस प्रकारसे एक, दो, तीनको आदि लेकर जब तक संख्यात शलाकाएं पूरी हों, तब तक संख्या बढ़ाते जाना

---

१ अ-आ प्रत्योः अत्र 'विदियसमए मदो' इत्यधिकः पाठः; क-प्रतौ म-प्रत्योस्तु तत्पाठो नोपलभ्यते।

एदाहि सलागाहि आहारमिस्सकायजोगद्धं गुणिदे आहारमिस्सकायजोगस्स उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१५ ॥

तं जधा– एक्को पमत्तसंजदो पुव्वमणेगवारमुट्ठाविदआहारसरीरो आहारमिस्सकायजोगी जादो, सव्वलहुमंतोमुहुत्तेण पज्जत्तिं गदो । लद्धो जहण्णकालो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

तं जधा– एक्को पमत्तसंजदो अदिट्ठमग्गो आहारमिस्सो जादो । सव्वचिरेण अंतोमुहुत्तेण जहण्णकालादो संखेज्जगुणेण पज्जत्तिं गदो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २१७ ॥

कुदो ? विग्गहगदीए वट्टमाणजीवाणं सव्वद्धासु विरहाभावादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

चाहिए । पुनः इन शलाकाओंसे आहारकमिश्रकाययोगके कालको गुणा करने पर आहारकमिश्रकाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१५ ॥

जैसे— पूर्वमें जिसने अनेक वार आहारकशरीरको उत्पन्न किया है ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ और सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तसे पर्याप्तकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे जघन्य काल प्राप्त हो गया ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २१६ ॥

जैसे— नहीं देखा है मार्गको जिसने ऐसा कोई एक प्रमत्तसंयत जीव आहारकमिश्रकाययोगी हुआ, और जघन्य कालसे संख्यातगुणे सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तद्वारा पर्याप्तियोंकी पूर्णताको प्राप्त हुआ ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २१७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २१८ ॥

तं जहा– एगो मिच्छादिट्ठी विग्गहगदिणामकम्मवसेण एगविग्गहं मारणंतियं गदो । पुणो अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण बद्धाउवसेण उप्पण्णपढमसमए कम्मइयकायजोगी जादो । बिदियसमए ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदो । लद्धो एगसमओ ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१९ ॥

तं जधा– एगो सुहुमेइंदियो अहो सुहुमवाउकाइएसु तिण्णि विग्गहं मारणंतियं गदो । अंतोमुहुत्तेण छिण्णाउओ होदूण उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि तिसु विग्गहेसु तिण्णि समयं कम्मइयजोगी होदूण चउत्थसमए ओरालियमिस्सं गदो । सुहुमेइंदियाणं सुहुमेइंदिएसु उप्पज्जमाणाणं तिण्णि विग्गहा होंति त्ति णियमो कधं णव्वदे ? णत्थि एत्थ णियमो, किंतु संभवं पडुच्च सुहुमेइंदियग्गहणं कदं । बादरेइंदिया सुहुमेइंदिया तसकाया वा सुहुमेइंदिएसु उववज्जमाणा तिण्णि विग्गहे करेंति त्ति एस णियमो घेत्तव्वो, आइरियपरंपरागदत्तादो । तिण्णिविग्गहाकरणदिसा वुच्चदे– बम्हलोगुद्देसे वामदिसालोगपेरंतादो

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव, विग्रहगतिनामकर्मके वशसे एक विग्रहवाले मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें कार्मणकाययोगी हुआ । पुनः द्वितीय समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको, अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे एक समय उपलब्ध हुआ ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २१९ ॥

जैसे—एक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अधस्तन सूक्ष्मवायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणान्तिकसमुद्धातको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमें तीन समय तक कार्मणकाययोगी होकर चौथे समयमें औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हो गया ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके तीन विग्रह होते हैं, यह नियम कैसे जाना ?

समाधान—यद्यपि इस विषयमें कोई नियम नहीं है, तो भी संभावनाकी अपेक्षा यहां पर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका ग्रहण किया है । अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते हैं, यह नियम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, यही उपदेश आचार्यपरम्परासे आया हुआ है ।

अब तीन विग्रह करनेकी दिशाको कहते हैं— ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेशपर वामदिशा-

तिरिच्छेण दक्खिणं तिण्णि रज्जुमेत्तं गंतूण तदो साद्धदसरज्जूणि अधो कंडुज्जुवं गंतूण तदो संमुहं चदुरज्जुमेत्तं आगंतूण कोणदिसाठिदलोगपेरंतसुहुमवाउकाइएसु उप्पज्जमाणस्स[1] तिण्णि विग्गहा होंति।

सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२० ॥

तं जधा– सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी एगविग्गहं कादूणुप्पण्णपढमसमए एगसमओ कम्मइयकायजोगेण लब्भदि।

उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ॥ २२१ ॥

तं जधा– सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणो दोण्णि विग्गहं कादूण बद्धाउवसेणुप्पज्जिय दोण्णि समए अच्छिय ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गदा। तस्समए चेव अण्णे कम्मइयकायजोगिणो जादा। एवमेगं कंडयं कादूण एरिसाणि[2] आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं कंडयाणि होंति। एदाणं सलागाहि दोण्णि समए गुणिदे आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तो कम्मइयकायजोगस्स उक्कस्सकालो होदि।

सम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजुप्रमाण जाकर पुनः साढ़े दश राजु नीचेकी ओर बाणके समान सीधी गतिसे जाकर पश्चात् सामनेकी ओर चार राजुप्रमाण आकर कोणवर्ती दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्म वायुकायिकोंमें समुत्पन्न होनेवाले जीवके तीन विग्रह होते हैं।

कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २२० ॥

जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक विग्रह करके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें एक समय कार्मणकाययोगके साथ पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २२१ ॥

जैसे— पूर्व पर्यायको छोड़नेके पश्चात् कितने ही सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बांधी हुई आयुके वशसे उत्पन्न होकर विग्रहगतिमें दो विग्रह करके, दो समय रह कर, पुनः औदारिकमिश्रकाययोगको अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त हुए। उसी समयमें ही दूसरे भी जीव कार्मणकाययोगी हुए। इस प्रकार इसे एक कांडक करके, इसी प्रकारके अन्य अन्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कांडक होते हैं। इन कांडकोंकी शलाकाओंसे दोनों समयोंको गुणा करने पर आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कार्मणकाययोगका उत्कृष्ट काल होता है।

---

१ अ-क प्रत्योः 'काइयाए समुप्पज्जमाणस्स'; आ-प्रतौ '-काइयाएसं उप्पज्जमाणस्स' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'एरिसाणे' इति पाठः।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वे समयं ॥ २२३ ॥

कुदो ? एदेसिं सुहुमेइंदिएसु उप्पत्तीए अभावा, वड्ढि-हाणिक्कमेण ट्ठिदलोगंते उप्पत्तीए अभावादो च ।

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समयं ॥ २२४ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा वा सजोगिणो समगं कवाडं गदा, पदर-लोगपूरणं गंतूण भूओ पदरं गंतूण तिण्णि समयं कम्मइयकायजोगिणो होदूण कवाडं गदा ।

उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ॥ २२५ ॥

कुदो ? तिण्णि समइयं कंडयं काऊण संखेज्जकंडयाणमुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समयं ॥ २२६ ॥

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल दो समय है ॥ २२३ ॥

क्योंकि, इन सासादन या असंयतगुणस्थानवर्ती जीवोंकी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पत्तिका अभाव है । तथा वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकके अन्तमें भी उनकी उत्पत्तिका अभाव है ।

कार्मणकाययोगी सयोगिकेवली कितने समय तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय होते हैं ॥ २२४ ॥

जैसे— सात अथवा आठ सयोगिजिन एक साथ ही कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए, और प्रतर तथा लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त होकर पुनः प्रतरसमुद्घातको प्राप्त हो, तीन समय तक कार्मणकाययोगी रह करके कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए ।

कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, तीन समयवाले कांडकको करके उनके संख्यात कांडक पाये जाते हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोगी सयोगिजिनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है ॥ २२६ ॥

कुदो ? पदरादो लोगपूरणादो वा कवाडस्स गमणाभावा।

एवं जोगमग्गणा समत्ता।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २२७ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु इत्थिवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २२८ ॥

तं जधा– एक्को इत्थिवेदगो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालमच्छिय अण्णगुणं गदो।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं[3] ॥ २२९ ॥

तं जधा– एक्को अणप्पिदवेदो इत्थिवेदेसु उववण्णो। पुणो तत्थ इत्थिवेदेण पलिदोवमसदपुधत्तं परियट्टिय अणप्पिदवेदं गदो।

क्योंकि, कार्मणकाययोगी सयोगिजिनका प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातसे लौटकर कपाटसमुद्घातमें जानेका अभाव है।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २२७ ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें स्त्रीवेदवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२८ ॥

जैसे— कोई एक स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ २२९ ॥

जैसे— अविवक्षित वेदवाला कोई एक जीव स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहां पर स्त्रीवेदके साथ पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक परिवर्तन करके अविवक्षित वेदको चला गया।

---

१ स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २३० ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्जगुणो, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेएण ओघादो विसेसाभावा ओघमिदि वुत्तं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, इच्चेदेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ २३२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदम्हि असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदकालाणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २३३ ॥

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३० ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है, अतएव ओघ यह पद सूत्रमें कहा ।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका काल ओघके समान है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणित पल्योपमके असंख्यातवें भाग है; तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित कोई काल नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ किंतु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जधा– एगो मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा इत्थिवेदगो परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण गुणंतरं गदो। लद्धो जहण्णकालो।

उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ २३४ ॥

कुदो ? अणप्पिदवेदस्स पणवण्णपलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय पुणो अंतोमुहुत्तं विसुद्धो होदूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मत्तेण आउट्ठिदिमणुपालिय कालं कादूण पुरिसवेदं पडिवण्णस्स तीहिं[2] अंतोमुहुत्तेहि ऊणपणवण्णपलिदोवमुवलंभा।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २३५ ॥

कुदो ? ओघं पेक्खिदूण उत्तगुणट्ठाणाणं भेदाभावा। णवरि संजदासंजदउक्कस्सकालम्हि अत्थि विसेसो। तं जधा— एक्को अट्ठवीससंतकम्मिओ त्थीवेदेसु कुक्कुड-

---

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि होकर और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रह करके जघन्य कालके अविरोधसे किसी दूसरे गुणस्थानको चला गया। इस प्रकार जघन्य काल लब्ध हुआ।

एक जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्योपम है ॥ २३४ ॥

क्योंकि, किसी अविवक्षित अन्य वेदवाले जीवके पचवन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हो, छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न कर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, पुनः अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सम्यक्त्वके साथ अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर, मरणको करके पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचवन पल्योपमप्रमाण काल पाया जाता है।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक स्त्रीवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३५ ॥

क्योंकि, ओघके कालको देखते हुए सूत्रोक्त गुणस्थानोंके कालोंमें कोई भेद नहीं है। केवल संयतासंयतके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। वह इस प्रकार है—मोहकर्मकी अट्ठाईस

---

१ उत्कर्षेण पंचपंचाशत्पल्योपमानि देशोनानि। स. सि. १, ८.

२ क प्रतौ 'विहि' इति पाठ।

मक्कडादिसु उववज्जिय बे मासे गब्भे अच्छिदूण णिप्फिडिय मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं घेत्तूण बेमासमुहुत्तपुधत्तूणपुव्वकोडिं संजमासंजममणुपालिय मदो देवो जादो त्ति। ओघम्हि पुण अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिसंजदासंजदउक्कस्सकालो सण्णि-सम्मुच्छिमपज्जत्तमच्छ-कच्छव-मंडूकादिसु लद्धो, एत्थ सो ण लब्भदि, सम्मुच्छिमेसु इत्थि-वेदाभावा।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ २३६ ॥

तिसु वि अद्धासु पुरिसवेदमिच्छादिट्ठीणं विरहासंभवा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३७ ॥

कुदो? असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स पमत्तसंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छादिट्ठी होदूण सव्वजहण्णमच्छिय गुणंतरं पडिवण्णस्स अंतो-मुहुत्तुवलंभा।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न होकर, और दो मास गर्भमें रह, निकल करके मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटीवर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हो गया। किन्तु ओघकालप्ररूपणामें जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वर्ष संयतासंयतका उत्कृष्ट काल कहा है वह संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मच्छ, कच्छप मंडूकादिकोंमें ही पाया जाता है, वह यहां पर नहीं पाया जाता है; क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २३६ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका विरह असंभव है।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिसने, ऐसे असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतके, मिथ्यादृष्टि होकर और सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

---

१ अ प्रतौ 'णिप्फिलिय मुहुत्तं'; आ प्रतौ 'णिप्फिडियमंतोमुहुत्तं'; क प्रतौ 'णिप्फिडिलिय मुहुत्तं'; म प्रतौ 'णिप्फलिय मुहुत्त-' इति पाठः। २ प्रतिषु 'दुगदं' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'कच्छमदि-' इति पाठः। ४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

५ एकं जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[1] ॥ २३८ ॥

एदस्सुदाहरणं–एक्को इत्थी-णवुंसयवेदेसु बहुवारं परियट्टिदजीवो पुरिसवेदेसु उववण्णो। पुरिसवेदो होदूण सागरोवमसदपुधत्तं परिभमिय अणप्पिदवेदं[2] गदो। तिसदमादिं करिय जाव णवसदं ति एदिस्से संखाए सदपुधत्तमिदि सण्णा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[3] ॥ २३९ ॥

कुदो? एदेसिं उत्तगुणट्ठाणाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो भेदाभावा। णवरि संजदासंजदाणमित्थिवेदभंगो।

णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ २४० ॥

कुदो? सव्वद्धासु एदेसिं विरहाभावा।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २३८ ॥

इसका उदाहरण— स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोंमें बहुत बार परिभ्रमण किया हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। पुरुषवेदी होकर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके अविवक्षित वेदको चला गया। तीन सौ को आदि करके नौ सौ तककी संख्याकी 'शतपृथक्त्व' यह संज्ञा है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २३९ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि पुरुषवेदी संयतासंयतोंका काल स्त्रीवेदी संयतासंयतोंके समान है।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २४० ॥

क्योंकि, सभी कालोंमें इन जीवोंके विरहका अभाव है।

---

१ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

२ अ-आ-क प्रतिषु 'अप्पिदवेदं' इति पाठः; म प्रतौ तु स्वीकृतपाठः।

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

४ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २४१ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[2] ॥ २४२ ॥

एदस्सुदाहरणं– एक्को परिभमिदत्थी-पुरिसवेदट्ठिदिगो णवुंसयवेदं पडिवज्जिय तमच्छड्डंतो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परिभमिय अण्णवेदं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[3] ॥ २४३ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४४ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ २४५ ॥

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४१ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयत, अथवा संयत जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहां पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तकाल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ २४२ ॥

इसका उदाहरण— जिसने पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण किया है, ऐसा कोई एक जीव नपुंसकवेदको प्राप्त होकर, उसे नहीं छोड़ता हुआ आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंतक परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४३ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २४५ ॥

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्टयाद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ किन्त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २४६ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स असंजदसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्संतोमुहुत्तुवलंभा ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ २४७ ॥

कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिगस्स सत्तमपुढवीए[3] उप्पज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विस्समिय विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तावसेसे आउए मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय णिग्गदस्स छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीससागरोवलंभा ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २४८ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४६ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि या संयतासंयत जीवके असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २४७ ॥

क्योंकि, मोहकर्मकी अट्ठावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले किसी जीवके सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर, छह पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके, विश्राम कर और विशुद्ध होकर, तथा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, आयुके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर, मिथ्यात्वको जाकर, आगामी भवसम्बन्धी आयुको बांधकर, अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके निकलनेवाले जीवके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल पाया जाता है ।

संयतासंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४८ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है ।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु 'सत्तपुढवीए' इति पाठः ।

अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ २४९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो विसेसाभावा।

एवं वेदमग्गणा समत्ता।

कसायाणुवादेण कोहकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो[2] ॥ २५० ॥

कुदो ? दव्वट्ठियणयावलंबणेण। पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो। तं वत्तइस्सामो। तं जधा– कोधकसाई मिच्छादिट्ठी एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं। एत्थ कसाय-गुणपरावत्ति-मरणेहि एगसमओ वत्तव्वो। वाघादेण एगसमओ ण लब्भदि, कोधस्सेव तत्थुप्पत्तीदो। तं जधा–एक्को सासणो सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्तसंजदो वा कोधकसाई एगसमयं कोधकसायद्धा अत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो। एगसमयं कोधेण मिच्छत्तं दिट्ठं। विदियसमए अण्णकसायं गदो। एसा कसायपरावत्ती।

अपगतवेदी जीवोंमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेदभागसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २४९ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालके साथ ओघसे कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तकका काल मनोयोगियोंके समान है ॥ २५० ॥

क्योंकि, सूत्रमें द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन किया गया है। किन्तु पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर विशेषता है। उसे कहते हैं। जैसे— क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है। यहां पर कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और मरणके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए। व्याघातकी अपेक्षा एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, व्याघातके होने पर तो क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है। जैसे— कोई सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत क्रोधकषायी जीव क्रोधकषायके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। एक समय क्रोधके साथ मिथ्यात्व दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय समयमें किसी और कषायको प्राप्त हो गया। यह कषायपरिवर्तनसम्बन्धी एक

---

१ अपगतवेदानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत्। स. सि. १, ८.

एक्को मिच्छादिट्ठी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्स अद्धाक्खएण कोधकसाओ आगदो; एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो। विदियसमए सम्मामिच्छत्तं असंजदसम्मत्तं संजमासंजमं अप्पमत्त-भावेण संजमं वा पडिवण्णो। एसा गुणपरावत्ती। एक्को मिच्छादिट्ठी अण्णकसाएणच्छिदो, तस्सद्धाक्खएण कोहकसाई जादो। एगसमयं कोहेण सह दिट्ठो। विदियसमए मदो अण्ण-कसाएसु उववण्णो। एसो मरणेण एगसमओ। कोहेण मदो णिरयगदीएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णजीवाणं पढमं कोधोदयस्सुवलंभा। माणेण मदो मणुसगदीएण उप्पादेदव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माणोदयणियमोवदेसा। मायाए मदो तिरिक्खगईएण उप्पादे-दव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमसमए माओदयणियमोवदेसा। लोभेण मदो देवगदीएण उप्पादे-दव्वो, तत्थुप्पण्णाणं पढमं चेय लोहोदओ होदि त्ति आइरियपरंपरागदुवदेसा[1]। एवं सेसगुणट्ठाणाणं पि णादूण वत्तव्वं। एवं माण-माया-लोभाणं वत्तव्वं। णवरि कसाय-गुण-परावत्ति-मरण-वाघादेहि चउहि वि एगसमयपरूवणा वत्तव्वा।

समयकी प्ररूपणा है। एक मिथ्यादृष्टि जीव जो कि अन्य कषायमें वर्तमान था, उस कषायके कालक्षयसे क्रोधकषायको प्राप्त हुआ। एक समय वह क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ और द्वितीय समयमें सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा असंयतसम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको, अथवा अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तन है। एक मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषायमें विद्यमान था। उस कषायके कालक्षयसे वह क्रोधकषायी हो गया। एक समय क्रोधकषायके साथ दृष्टिगोचर हुआ। पुनः द्वितीय समयमें मरा और अन्य कषायोंमें उत्पन्न हुआ। यह मरणकी अपेक्षा एक समय हुआ। क्रोधकषायके साथ मरा हुआ जीव नरकगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम क्रोधकषायका उदय पाया जाता है। मानकषायसे मरा हुआ जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें मानकषायके उदयके नियमका उपदेश देखा जाता है। मायाकषायसे मरा हुआ जीव तिर्यग्गतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, तिर्यंचोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मायाकषायके उदयका नियम देखा जाता है। लोभ-कषायसे मरा हुआ जीव देवगतिमें उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सर्व प्रथम लोभकषायका उदय होता है; ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है। इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी काल जान कर कहना चाहिए। इसी प्रकार मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषायोंके कालोंकी प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष बात यह है कि कषायपरिवर्तन, गुणपरिवर्तन, मरण और व्याघात, इन चारोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा कहना चाहिए।

१ णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि। कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि॥ गो. जी. २८८.

दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ २५१ ॥

तिसु वि कसाएसु दोण्हि उवसामगा, अणियट्टीदो उवरि तिण्हं कसायाणमभावा। लोभकसाए तिण्णि उवसामगा, उवसंतकसाए लोभोदयाभावा। एदेसिं कसायपरावत्ति-गुणपरावत्ति-वाघादेहि एगसमओ णत्थि। कुदो? तहाविहुवएसाभावा। किंतु अणियट्टि-सुहुमसांपराइयाणं चढंत-ओयरंत-पढमसमए मदाणं एगसमओ लब्भइ। अपुव्वस्स पुण ओयरंतस्स पढमसमए चेव। कुदो? चढमाणअपुव्वस्स पढमसमए मरणाभावा।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५२ ॥

कुदो? चढंत-ओयरंतपज्जयपरिणदजीवेहि अंतोमुहुत्तकालं एदेसिं गुणट्ठाणाणम-सुण्णत्तुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

क्रोध, मान और माया, इन तीनों कषायोंकी अपेक्षा दो उपशामक अर्थात् आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव, और लोभकषायकी अपेक्षा तीन उपशामक अर्थात् आठवें, नवें और दशवें गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेण्यारोहक जीव, कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥ २५१ ॥

क्रोधादि तीनों ही कषायोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते हैं; क्योंकि, अनिवृत्तिकरणसे ऊपर तीनों कषायोंका अभाव है। लोभ-कषायमें अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव होते है, क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानमें लोभकषायके उदयका अभाव है। इन उपर्युक्त दो और तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें कषायपरिवर्तन, गुणस्थानपरिवर्तन और व्याघात, इन तीनोंकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि, उस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता है। किन्तु, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके चढ़ने या उतरनेके प्रथम समयमें मरे हुए जीवोंके एक समय पाया जाता है। अपूर्वकरण गुणस्थानके उतरनेके प्रथम समयमें ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवके प्रथम समयमें मरणका अभाव है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी पर चढ़ती और उतरती हुई पर्यायसे परिणत जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल इन गुणस्थानोंके अशून्य अर्थात् परिपूर्ण रूपसे पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २५३ ॥

---

१ द्वयोरुपशमकयोः ×× केवललोभस्य च ×× सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? तिण्हमुवसामगाणं मरणेण एगसमओवलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? कसायाणमुदयस्स अंतोमुहुत्तादो उवरि णिच्छएण विणासो होदि त्ति गुरूवदेसा ।

दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५५ ॥

एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ? उच्चदे- ण ताव कसायपरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, खवगुवसामगे सकसायुदयस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपरिमाणुवदेसा । ण गुणपरावत्तीए वि एगसमओ, एगसमइयस्स कसायुदयस्स खवगुवसमसेढीसु अभावा । ण वाघादेण, खवगुवसमसेढीसु वाघादस्स पडिसेधा । ण मरणेण वि, खवगेसु मरणाभावा । तदो जहण्णकालेण णिच्छएण अंतोमुहुत्तेण होदव्वमिदि ।

क्योंकि, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामक जीवोंके मरणके साथ एक समय पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, कषायोंके उदयका अन्तर्मुहूर्त कालसे ऊपर निश्चयसे विनाश होता है, इस प्रकार गुरुका उपदेश है ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, ये दो गुणस्थानवर्ती क्षपक तथा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, ये तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥ २५५ ॥

शंका—इन सूत्रोक्त क्षपक जीवोंके एक समयप्रमाण काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—उक्त आशंकापर उत्तर कहते हैं कि उक्त दोनों या तीनों गुणस्थानोंमें न तो कषायपरिवर्तनसे एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक या उपशामकोंमें अपनी उदयागत कषायके उदयका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होता है, ऐसा आचार्य परम्पराका उपदेश है । और न गुणपरिवर्तनके द्वारा ही एक समयप्रमाण काल पाया जाता है, क्योंकि, एक समयवाले कषायके उदयका क्षपक और उपशम श्रेणियोंमें अभाव है । न व्याघातके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपक और उपशमश्रेणियोंमें व्याघातका प्रतिषेध पाया जाता है । और न मरणके द्वारा ही एक समय पाया जाता है, क्योंकि, क्षपकोंमें मरणका अभाव है । इसलिए यहां पर कषायोंका जघन्य काल निश्चयसे अन्तर्मुहूर्त ही होना चाहिए ।

---

१ × × द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च × सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५६ ॥

कमेण अंतोमुहुत्तंतरेण खवगसेढिं चडमाणबहुजीवे अस्सिदूण जहण्णकालादो संखेज्जगुणकालुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५७ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५८ ॥

एदं पि सुगमं ।

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं[1] ॥ २५९ ॥

कुदो ? सव्वेण वि पयारेण णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालगदविसेसाभावा ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं[2] ॥ २६० ॥

उक्त जीवोंके उक्त कषायोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, क्रमशः अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाले बहुत जीवोंकी अपेक्षा जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अकषायी जीवोंमें अन्तिम चतुर्गुणस्थानी जीवोंका काल ओघके समान है ॥२५९॥

क्योंकि, सर्व ही प्रकारसे नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कालगत कोई विशेषता नहीं है ।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६० ॥

---

१ ××× अकषायाणां च सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा। अणादिअणिहण-अणादिसणिहण-अण्णाणेसु मदि-सुदअण्णाणी वि अत्थि, किंतु तेहि एत्थ अणहियारो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ २६१ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणविरहिदसासणाणमभावा।

विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २६२ ॥

कुदो ? विभंगणाणिमिच्छादिट्ठीणं तिसु वि कालेसु संताणवोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २६३ ॥

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तविभंगणाणकालुवलंभा।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[3] ॥ २६४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है। इस प्रकारसे ओघके कालसे कोई भेद नहीं है। यद्यपि अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त अज्ञानोंमें मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी भी जीव हैं, किन्तु उनका यहां पर अधिकार नहीं है।

मति-श्रुताज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६१ ॥

क्योंकि, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानसे रहित सासादनगुणस्थानी जीवोंका अभाव है।

विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी परम्पराके व्युच्छेदका अभाव है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयतके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर और सर्व जघन्य काल तक वहां रह कर गुणस्थानान्तरको गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण विभंगज्ञानका काल पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २६४ ॥

---

१ विभंगज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

उदाहरणं– एक्को मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए उववज्जिय छ पज्जत्तीओ समाणिय विभंगणाणी जादो। अप्पणो आउट्ठिदिमणुपालिय कालं काऊण णिग्गयस्स णट्ठं विभंगणाणं, अपज्जत्तद्धाए तस्स विरोहा। एवमंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि विभंगणाणस्स उक्कस्सकालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २६५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेएण ओघादो भेदाभावादो।

आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठि-प्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ २६६ ॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि एदेसिं ओघादो विसेसाभावा। णवरि ओधिणाणिसंजदासंजदेगजीवुक्कस्सकालम्हि अत्थि विसेसो[3]। तं जहा– एक्को अट्ठावीस-

---

उदाहरण— एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर और छहों पर्याप्तियोंको सम्पन्न करके विभंगज्ञानी हुआ। अपनी आयुस्थितिको परिपालन कर और मरण करके निकला। तब उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें विभंगज्ञानके होनेका विरोध है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम विभंगज्ञानका उत्कृष्ट काल होता है।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण, इस प्रकार ओघ कालसे कोई भेद नहीं है।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इन सूत्रोक्त जीवोंके कालमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है। केवल, अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसम्बन्धी एक जीवके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। वह इस प्रकार है— मोहकर्मकी

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु ' अत्थि त्ति विसेसा ' इति पाठः।

संतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो संजमासंजमं पडिवज्जिय मदि-सुदणाणी जादो । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण ओधिणाणमुप्पादेदि[1] । एत्तिओ चेव विसेसो, णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं ॥ २६७ ॥

कुदो ? पमत्तापमत्तसंजदाणमुवसामगाणं खवगाणं च णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि ओघादो भेदाभावा ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली ओघं ॥ २६८ ॥

कुदो ? केवलणाणविरहिदसजोगि-अजोगिकेवलीणमभावा ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥ २६९ ॥

....

अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव संज्ञी, सम्मूर्च्छिम, पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विशुद्ध होकर, संयमासंयमको प्राप्त कर, मति-श्रुतज्ञानी हो गया। पुनः अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् अवधिज्ञानको उत्पन्न करता है। इतनी मात्र ही विशेषता है और कहीं भी कोई विशेषता नहीं है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६७ ॥

क्योंकि, प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका तथा उपशामक और क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६८ ॥

क्योंकि, केवलज्ञानसे रहित सयोगिकेवली और अयोगिकेवलियोंका अभाव है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली तक जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २६९ ॥

....

१ प्रतिषु ' ओथिणाणीमुप्पादेदि ' इति पाठः ।

२ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातशुद्धिसंयतानां ×× सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सामण्णसंजमे अवलंबिदे विसेसाणुवलद्धीदो ।

सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ २७० ॥

कुदो ? पमत्तापमत्ताणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोण्हमुवसामगाणं जहण्णेण णाणेगजीवं पडुच्च एगो समओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, दोण्हं खवगाणं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ २७१ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ, अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि विसेसाभावा ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा उवसमा खवा ओघं ॥ २७२ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमुभयत्थ संजमभेदाभावा ।

क्योंकि, संयमसामान्यके अवलंबन करने पर ओघके कालसे कोई भेद नहीं पाया जाता ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरण तकके जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७० ॥

क्योंकि, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों उपशामकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आठवें और नवें गुणस्थानवर्ती दोनों क्षपकोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई भेद नहीं है ।

परिहारविशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ओघके कालसे कोई विशेषता नहीं है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपकोंका काल ओघके समान है ॥ २७२ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंके दोनों श्रेणियोंमें संयमके भेदका अभाव है ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ २७३ ॥

कुदो ? ओघादेसेसु चदुण्हं गुणट्ठाणाणं संजमभेदाणुवलंभा।

संजदासंजदा ओघं[1] **॥ २७४ ॥**

सुगमो एदस्स अत्थो।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं[2] **॥ २७५ ॥**

एदस्स वि अत्थो अवधारिओघट्ठाणं सुगमो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[3] **॥ २७६ ॥**

कुदो ? चक्खुदंसणिमिच्छादिट्ठिविरहिदकालाभावा।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अन्तिम चार गुणस्थानवाले जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७३ ॥

क्योंकि, ओघ और आदेशमें चारों गुणस्थानोंके संयमोंमें कोई भेद नहीं पाया जाता है।

संयतासंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

असंयत जीवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक असंयतोंका काल ओघके समान है ॥ २७५ ॥

जिन्होंने ओघसम्बन्धी कालको भलीभांति अवधारण किया है, ऐसे शिष्योंके लिए इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित कालका अभाव है।

---

१ ××× संयतासंयतानां ×× सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ ××× असंयतानां च सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २७७ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स संजदासंजदस्स संजदस्स वा दिट्ठमग्गस्स मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णद्धमच्छिय गुणंतरं गदस्स अंतोमुहुत्तकालुवलंभा।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि[2] ॥ २७८ ॥

उदाहरणं– एगो अचक्खुदंसणी मिच्छादिट्ठी चक्खुदंसणीसु उववण्णो। चक्खुदंसणी होदूण वे सागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणं गदो। लद्धिअपज्जत्तेसु चक्खुदंसणं णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं व किण्ण उच्चदे ? ण, तम्हि भवे तत्थ चक्खुदंसणुवजोगाभावा। णिव्वत्तिअपज्जत्ताणं तम्हि भवे णियमेण चक्खुदंसणुवजोगुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[3] ॥ २७९ ॥

कुदो ? चक्खुदंसणविरहिदसासणादीणमभावा।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या असंयतसम्यग्दृष्टि, या संयतासंयत, या संयतके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहां पर सर्व जघन्य काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल दो हजार सागरोपम है ॥ २७८ ॥

उदाहरण— कोई एक अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीव चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुआ, और चक्षुदर्शनी होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनको प्राप्त हो गया। (इस प्रकार सूत्रोक्त काल सिद्ध हुआ।)

शंका — निर्वृत्त्यपर्याप्तकोंके समान लब्ध्यपर्याप्तकोंमें चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा?

समाधान — नहीं, क्योंकि, लब्ध्यपर्याप्तकोंके उसी भवमें चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव पाया जाता है। किन्तु निर्वृत्त्यपर्याप्तकोंके तो उसी भवमें नियमसे ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक चक्षुदर्शनी जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनसे रहित सासादनादि गुणस्थान नहीं पाये जाते हैं।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे। स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था त्ति ओघं[1] ॥ २८० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणविरहिदसावरणजीवाणुवलंभा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो[2] ॥ २८१ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८२ ॥

एदाणि दोवि सुत्ताणि अवहारिदणाणाणुवादाणं सुगमाणि ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[3] ॥ २८३ ॥

कुदो ? सव्वकालं तिलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[4] ॥ २८४ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ २८० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनसे रहित सावरण जीव नहीं पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८१ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका काल केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८२ ॥

ज्ञानमार्गणाके कालानुवादका अवधारण करनेवाले शिष्योंके लिए ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है ।

एक जीवकी अपेक्षा तीनों अशुभ लेश्यावाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

---

१ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

२ अवधि-केवलदर्शनिनोरवधि-केवलज्ञानिवत् । स. सि. १, ८.

३ लेश्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

किण्हलेस्साए ताव अंतोमुहुत्तपरूवणं कीरदे । तं जधा- णीललेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण किण्हलेस्सा जादा । सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिदूण णीललेस्सिओ जादो । । काउलेस्सिओ किण्ण होदि ? ण, किण्हलेस्साए परिणदस्स जीवस्स अणंतरमेव काउलेस्सापरिणमणसत्तीए असंभवा ।

णीललेस्साए उच्चदे- हीयमाण-वड्ढमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा । सव्वजहण्णमंतोमच्छिय जहण्णकालाविरोहेण काउलेस्सं किण्हलेस्सं वा गदो, अण्णलेस्सागमणासंभवा । के वि आइरिया हीयमाणलेस्साए चेव जहण्णकालो होदि त्ति भणंति ।

काउलेस्साए वि उच्चदे- हायमाणणीललेस्साए तेउलेस्साए वा अच्छिदस्स काउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय जदि तेउलेस्सादो आगदो, तो णीललेस्सं णेदव्वो । अह णीललेस्सादो आगदो तो तेउलेस्साए णेदव्वो, अण्णहा संकिलेस-विसोहीओ आऊरंतस्स जहण्णकालाणुववत्तीदो । एत्थ जोगस्सेव एगसमओ जहण्ण-

पहले कृष्णलेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— नीललेश्यामें वर्तमान किसी जीवके उस लेश्याके काल क्षय हो जानेसे कृष्णलेश्या हो गई, और वह उसमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके नीललेश्यावाला हो गया ।

शंका—कृष्णलेश्याके पश्चात् कापोतलेश्यावाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कृष्णलेश्यासे परिणत जीवके तदनन्तर ही कापोत-लेश्यारूप परिणमन शक्तिका होना असंभव है ।

अब नीललेश्याके अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करते हैं— हीयमान कृष्णलेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आगई । तब वह जीव उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके जघन्य कालके अविरोधसे यथासंभव कापोत-लेश्याको अथवा कृष्णलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, इन दोनों लेश्याओंके सिवाय उसके अन्य किसी लेश्याका आगमन असंभव है । कितने ही आचार्य, हीयमान लेश्यामें ही जघन्य काल होता है, ऐसा कहते हैं ।

अब कापोतलेश्याके जघन्य कालको कहते हैं— हायमान नीललेश्यामें अथवा तेजोलेश्यामें विद्यमान जीवके कापोतलेश्या आगई । वह जीव उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके, यदि तेजोलेश्यासे आया है तो नीललेश्यामें ले जाना चाहिए; और यदि नीललेश्यासे आया है तो तेजोलेश्यामें ले जाना चाहिए । अन्यथा संक्लेश और विशुद्धिको आपूरण करनेवाले जीवके जघन्य काल नहीं बन सकता है ।

शंका—यहां पर योगपरावर्तनके समान एक समयरूप जघन्य काल क्यों नहीं

१ म-प्रतौ ' हायमाण ' इत्यपि पाठः ।

कालो किण्ण लब्भदे ? ण, जोग-कसायाणं व लेस्साए तिस्सा परावत्तीए गुणपरावत्तीए मरणेण वाघादेण वा एगसमयकालस्सासंभवा। ण ताव लेस्सापरावत्तीए एगसमओ लब्भदि, अप्पिदलेस्साए परिणमिदविदियसमए तिस्से विणासाभावा, गुणंतरं गदस्स विदियसमए लेस्संतरगमणाभावादो च। ण गुणपरावत्तीए, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए गुणंतरगमणाभावा। ण च वाघादेण, तिस्से वाघादाभावा। ण च मरणेण, अप्पिदलेस्साए परिणदविदियसमए मरणाभावा।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ २८५ ॥

एदेसिमुदाहरणाणि। तं जधा– णीललेस्साए अच्छिदस्स किण्हलेस्सा आगदा। तत्थ सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अधो सत्तमीए पुढवीए उववण्णो। तत्थ तेत्तीसं सागरोवमाणि गमिय उव्वट्टिदो। पच्छा वि अंतोमुहुत्तकालं भावणवसेण सा चेव लेस्सा होदि। एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि।

पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, योग और कषायोंके समान लेश्यामें लेश्याका परिवर्तन, अथवा गुणस्थानका परिवर्तन, अथवा मरण और व्याघातसे एक समय कालका पाया जाना असंभव है। इसका कारण यह है कि न तो लेश्यापरिवर्तनके द्वारा एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें उस लेश्याके विनाशका अभाव है। तथा इसी प्रकारसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य लेश्यामें जानेका भी अभाव है। न गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनका अभाव है। न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, वर्तमानलेश्याके व्याघातका अभाव है। और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें मरणका अभाव है।

उक्त तीनों अशुभ लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेतीस सागरोपम, साधिक सत्तरह सागरोपम और साधिक सात सागरोपम प्रमाण है ॥ २८५ ॥

इनके उदाहरण इस प्रकार हैं— नीललेश्यामें विद्यमान किसी जीवके कृष्णलेश्या आगई। उसमें वह सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह करके मरण कर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां वह तेतीस सागरोपम काल विताकर निकला। सो पीछे भी अन्तर्मुहूर्त काल तक भावनाके वशसे वही ही लेश्या होती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

---

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

णीललेस्साए उच्चदे— काउलेस्साए अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा। तत्थ दीह-मंतोमुहुत्तमच्छिदूण पंचमीए पुढवीए उववण्णो। तत्थ सत्तारस सागरोवमाणि ताए लेस्साए गमिय उववट्टिदो। उववट्टिदस्स वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि। एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्तारस सागरोवमाणि णीललेस्साए उक्कस्सकालो होदि।

काउलेस्साए उच्चदे— तेउलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाए खीणाए काउलेस्सा आगदा। तत्थ दीहमंतोमुहुत्तमच्छिय तदियाए पुढवीए उववण्णो। तीए लेस्साए सत्त सागरोवमाणि तत्थ गमिय उववट्टिदो। उववट्टिदस्स वि सा चेव लेस्सा अंतोमुहुत्तं होदि। एवं दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्स-कालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २८६ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण रासीदो असंखेज्ज-गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, एदेहि तिलेस्सागदसासणाणं तदो भेदाभावा।

अब नीललेश्याका काल कहते हैं— कापोतलेश्यामें वर्तमान जीवके नीललेश्या आ गई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह करके वह जीव पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां पर सत्तरह सागरोपम काल उस लेश्याके साथ बिताकर निकला। निकलने पर भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सत्तरह सागरोपम नील-लेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

अब कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं— तेजोलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके उस लेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर कापोतलेश्या आगई। उसमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रह कर मरण करके तृतीय पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। वहां पर उसी लेश्याके साथ सात सागरोपम काल बिताकर निकला। निकलनेके पश्चात् भी वही लेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८६ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलीप्रमाण काल है। इस प्रकारसे तीनों अशुभ लेश्याओंको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके कालका ओघसे कोई भेद नहीं है।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २८७ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्जगुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेदेहि तदो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ २८८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २८९ ॥

तं जहा— एगो असंजदसम्मादिट्ठी वड्ढमाणणीललेस्साए अच्छिदो किण्हलेस्सं गदो । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो णीललेस्सामागदो । णीललेस्साए उच्चदे— हायमाणकिण्हलेस्सिओ णीललेस्सी जादो । ताए सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो । काउलेस्साए उच्चदे— एगो सम्मादिट्ठी हायमाणणीललेस्सिओ काउलेस्सं गदो । तत्थ

....

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार इनका ओघकालसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८९ ॥

जैसे— वर्धमान नीललेश्यामें विद्यमान कोई एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कृष्णलेश्याको प्राप्त हुआ । वहां पर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पुनः नीललेश्यामें आगया । अब नीललेश्याका काल कहते हैं— हायमान कृष्णलेश्यावाला कोई एक जीव नीललेश्यावाला होगया । उस लेश्यामें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर कापोतलेश्याको प्राप्त होगया । अब कापोतलेश्याका काल कहते हैं— हायमान नीललेश्यावाला

....

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय तेउलेस्सिओ जादो । पुव्वं हायमाण-वड्डमाणतेउ-काउलेस्सा-हिंतो काउ-णीललेस्साणमागदाणं जहण्णकालो उत्तो, सो संपहि एत्थ किण्ण उच्चदे ? ण, पाएण तस्सुवएसाभावा ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि[1] ॥२९०॥

किण्हलेस्साए देसूणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि, णीललेस्साए देसूणसत्तारस सागरोवमाणि, काउलेस्सियाए देसूणसत्त सागरोवमाणि । 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो उदाहरणाणि उद्देसपरिवाडीए णिद्दिसंते । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी सत्तमाए पुढवीए किण्हलेस्साए सह उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तूणतेत्तीसं सागरोवमाणि भवसंबंधेण अवट्ठिदाए किण्हलेस्साए गमिय अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय विस्समिय मदो, तिरिक्खो जादो । एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि किण्हलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ । उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ ।

शंका—पहले हायमान तेजोलेश्या और वर्धमान कापोतलेश्यासे क्रमशः कापोत और नीललेश्यामें आये हुए जीवोंका जघन्य काल कहा है, सो वह अब यहां पर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रायः आजकल उस प्रकारके उपदेशका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ २९० ॥

कृष्णलेश्यामें कुछ कम तेतीस सागरोपम, नीललेश्यामें कुछ कम सत्तरह सागरोपम और कापोतलेश्यामें कुछ कम सात सागरोपम काल है । सो 'जैसा उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायानुसार इनके उदाहरण भी उद्देशकी परिपाटीसे निर्दिष्ट किये जाते हैं । वे इस प्रकारसे हैं— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें कृष्णलेश्याके साथ उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर, विश्राम ले तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम भवसम्बन्धसे अवस्थित कृष्णलेश्याके साथ बिताकर, अन्तर्मुहूर्त कालके अवशिष्ट रहने पर मिथ्यात्वको जाकर परभवकी आयु बांधकर, विश्राम लेकर मरा और तिर्यंच हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

१ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.

एगो अट्ठावीससंतकम्मिओ णीललेस्साए पंचमपुढवीए हेट्ठिमपत्थडे उक्कस्साउ-ट्ठिदिओ होदूण उववण्णो। तत्थ जहण्णिया किण्हलेस्सा चे ण, सव्वेसिं णेरइयाणं तत्थतणाणं तीए चेव लेस्साए अभावा। एक्कम्हि पत्थडे भिण्णलेस्साणं कधं संभवो? विरोहाभावा। एसो अत्थो सव्वत्थ जाणिदव्वो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवण्णो। आउट्ठिदिमणुपालिय मुदो मणुस्सो जादो। तत्थ वि अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए अच्छिदूण लेस्संतरं गदो। पच्छिल्लमंतोमुहुत्तं पुव्विल्लतिसु अंतोमुहुत्तेसु सोहिय सुद्धसेसेणं ऊणाणि सत्तारस सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स णीललेस्साए उक्कस्सकालो होदि। एगो मिच्छादिट्ठी तदियाए पुढवीए उक्कस्साउट्ठिदिओ काउलेस्साओ होदूण उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय आउ-ट्ठिदिमणुपालिय मणुसो जादो। पच्छा वि अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा होदि। पच्छिल्लं

....

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव नीललेश्याके साथ पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिवाला हो करके उत्पन्न हुआ।

शंका—पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारमें तो जघन्य कृष्णलेश्या होती है?

समाधान—नहीं, पांचवीं पृथिवीके अधस्तन प्रस्तारके समस्त नारकियोंके उसी ही लेश्याका अभाव है।

शंका—एक ही प्रस्तारमें दो भिन्न भिन्न लेश्याओंका होना कैसे संभव है?

समाधान—एक ही प्रस्तारमें भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न लेश्याओंके होनेमें कोई विरोध नहीं है। (अर्थात् कुछ नारकियोंके उत्कृष्ट नीललेश्या ही होती है, और कुछके जघन्य कृष्णलेश्या होती है।) यही अर्थ सर्वत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार पांचवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ वह जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम लेकर तथा विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। वहां अपनी आयुस्थितिका परिपालन करके मरा और मनुष्य हुआ। वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक उसी पूर्वलेश्याके साथ रह कर अन्य लेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पिछले अन्तर्मुहूर्तको पूर्वके तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम करके बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टिके नीललेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

एक मिथ्यादृष्टि जीव तीसरी पृथिवीमें वहां की उत्कृष्ट आयुकर्मकी स्थितिवाला तथा कापोतलेश्यावाला होकरके उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम ले, विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अपनी आयुकर्मकी स्थितिको भोग करके मनुष्य हुआ। पीछे भी अन्तर्मुहूर्त तक वही ही लेश्या होती है। इस पिछले अन्तर्मुहूर्तको

अंतोमुहुत्तं पुव्विल्लतिसु[1] अंतोमुहुत्तेसु सोहिय सुद्धसेसेण ऊणाणि सत्त सागरोवमाणि काउलेस्साए उक्कस्सकालो होदि ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ २९१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ २९२ ॥

तं जधा– हायमाणपम्मलेस्साए अच्छिदस्स सगद्धाखएण तेउलेस्सा आगदा । तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय काउलेस्सं गदो । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि तेउलेस्साए जहण्णकालो वत्तव्वो । पम्मलेस्साए उच्चदे– एक्को सुक्कलेस्साए हायमाणाए अच्छिदो मिच्छादिट्ठी तिस्से अद्धाखएण पम्मलेस्सिओ जादो । सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिदूण तेउलेस्सं गदो । एवं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं मिच्छादिट्ठी पम्मलेस्साए । एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि जहण्णकालो वत्तव्वो ।

पहलेके तीन अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा कर शेष बचे हुए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट काल होता है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९२ ॥

जैसे— हायमान पद्मलेश्यामें विद्यमान किसी मिथ्यादृष्टि जीवके अपनी लेश्याके काल क्षय हो जानेसे तेजोलेश्या आगई । उसमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह कापोतलेश्याको प्राप्त हो गया । इस प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भी तेजोलेश्याका जघन्य काल कहना चाहिए ।

अब पद्मलेश्याका जघन्य काल कहते हैं— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव हायमान शुक्लेश्यामें विद्यमान था । उस लेश्याके कालके क्षय हो जानेसे वह पद्मलेश्यावाला हो गया । वहां सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक वह मिथ्यादृष्टि जीव पद्मलेश्यामें रहा । इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी जघन्य काल कहना चाहिए ।

---

१ प्रतिषु ' अंतोमुहुत्तं सा चेव लेस्सा पुव्विलंतिसु ' इति पाठः ।

२ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ २९३ ॥

तं जधा- एको मिच्छादिट्ठी काउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धाखएण तेउलेस्सिओ जादो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिदूण मदो सोहम्मे उववण्णो। वे सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदो णट्ठलेस्सिओ जादो। लद्धा सगट्ठिदी पुव्विल्लंतोमुहुत्तेण अब्भधिया। अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्जसागरोवममेत्ता ट्ठिदी किण्ण लब्भदे? ण, मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीहि उवरिमदेवेसु बद्धमाउअमोवट्टणाघादेण घादिय मिच्छादिट्ठी जदि सुट्ठु महंतं करेदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भधियवेसागरोवमाणि करेदि, सोहम्मे उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठीणं एदम्हादो अहियाउट्ठवणे सत्तीए अभावा। अड्ढाइज्जसागरोवमट्ठिदीए उप्पण्णसम्मादिट्ठिं मिच्छत्तं णेदूण उक्कस्सकालं भणिस्सामो? ण, अंतोमुहुत्तूणड्ढाइज्जसागरोवमेसु उप्पण्णसम्मादिट्ठिस्स सोहम्मणिवासिस्स मिच्छत्तगमणे संभवाभावा।

तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक दो सागरोपम और पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल सातिरेक अठारह सागरोपम है ॥ २९३ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव कापोतलेश्यामें विद्यमान था। उस लेश्याके कालक्षयसे वह तेजोलेश्यावाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ। वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ और उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गई। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक दो सागरोपम सौधर्मकल्पकी मिथ्यादृष्टिसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति तेजोलेश्याकी प्राप्त हो गई।

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवके तेजोलेश्याकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमप्रमाण क्यों नहीं पाई जाती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा उपरिम देवोंमें बांधी हुई आयुको उद्वर्तनाघातसे घात करके मिथ्यादृष्टि जीव यदि अच्छी तरह खूब बड़ी भी स्थिति करे, तो पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अभ्यधिक दो सागरोपम करता है, क्योंकि, सौधर्मकल्पमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके इस उत्कृष्ट स्थितिसे अधिक आयुकी स्थिति स्थापन करनेकी शक्तिका अभाव है।

शंका—यदि हम अढ़ाई सागरोपम स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टिको मिथ्यात्वमें ले जाकर तेजोलेश्याका उत्कृष्ट काल कहें तो?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए सौधर्मनिवासी सम्यग्दृष्टि देवके मिथ्यात्वमें जानेकी संभावनाका अभाव है।

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

त्ति कधं णव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागब्भहियवेसागरोवममेत्ता सोहम्मीसाणे मिच्छाइट्ठि-आउट्ठिदी होदि त्ति आइरियपरंपरागदोवदेसा । अथवा अण्णेणुवएसेण अड्डाइज्जसागरोवमाणि देसूणाणि मिच्छादिट्ठिस्स वि संभवंति, भवणादिसहस्सारंतदेवेसु[1] मिच्छाइट्ठिस्स दुविहाउट्ठिदिपरूवणण्णहाणुववत्तीदो ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को असंजदो सोहम्मीसाणदेवेसु वे सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणं सागरोवमस्स अद्धं च आउवं करिय अंतोमुहुत्तं तेउलेस्सी होदूण कमेण कालं करिय सोहम्मे उववण्णो । सगट्ठिदिमच्छिय पुणो मणुसेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तं तीए चेव लेस्साए परिणमिय पम्मलेस्सं काउलेस्सं वा गदो । लद्धाणि अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि संपुण्णाणि । अहियाणि वा किण्ण होंति त्ति उत्ते ण, पुव्वावरकालम्हि लद्धअंतोमुहुत्तादो अद्धसागरोवमम्हि पदिदंतोमुहुत्तस्स बहुत्तुवदेसा ।

पम्मलेस्साए उच्चदे– एक्को मिच्छादिट्ठी वड्ढमाणतेउलेस्सिओ सगद्धाए खीणाए

शंका— यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक दो सागरोपमप्रमाण सौधर्म-ईशानकल्पमें मिथ्यादृष्टिकी आयुस्थिति होती है, इस प्रकारका आचार्यपरम्परागत उपदेश है अथवा अन्य उपदेशसे कुछ कम अढ़ाई सागरोपमकाल सौधर्म-ईशानकल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके भी संभव है, अन्यथा, भवनवासियोंसे लगाकर सहस्रारकल्प तकके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवके दो प्रकारकी आयुस्थितिकी प्ररूपणा हो नहीं सकती थी ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट तेजोलेश्याके कालको कहते हैं— एक असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म-ऐशान देवोंमें दो सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम सागरोपमके अर्ध भागप्रमाण आयुको बांध करके एक अन्तर्मुहूर्त तेजोलेश्यावाला हो करके और क्रमसे मर कर सौधर्मकल्पमें उत्पन्न हुआ । पुनः अपनी आयुस्थिति तक वहां रह कर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त तक उसी ही लेश्यासे परिणत हो, पद्मलेश्या या कापोतलेश्याको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम पूरा अढ़ाई सागरोपमकाल प्राप्त हो गया ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तसे कम अढ़ाई सागरोपमकालसे अधिक काल क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अढ़ाई सागरोपमकालके आदि और अन्तमें लब्ध होनेवाले अन्तर्मुहूर्तसे अर्ध सागरोपम कालमें पतित अन्तर्मुहूर्तके बहुत्वका उपदेश पाया जाता है ।

अब पद्मलेश्याके उत्कृष्ट कालको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक

---

1 प्रतिषु 'देवेसु' इति पाठः ।

पम्मलेस्सिओ जादो। दीहमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु उववण्णो। तत्थ अट्ठारह सागरोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणब्भहियाणि जीविदूण चुदस्स णट्ठा पम्मलेस्सा। असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एको संजदो पम्मलेस्साए अंतोमुहुत्त-मच्छिदो सदार-सहस्सारदेवेसु अट्ठारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणमद्धसागरं च आउअं करिय कमेण कालं करिय सहस्सारदेवेसु उववज्जिय सगट्ठिदिमच्छिय चुदो मणुसो जादो। तत्थ वि अंतोमुहुत्तं पम्मलेस्साए अच्छिय सुक्कलेस्सं तेउलेस्सं वा गदो। लद्धाणि अंतोमुहुत्तूणद्धसागरोवमेण अहियाणि अट्ठारस सागरोवमाणि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[1] ॥ २९४ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण सगरासीदो असंखेज्ज-गुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तेउ-पम्मलेस्सियसासणाणं तत्तो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ २९५ ॥

मिथ्यादृष्टि जीव अपने कालके क्षीण होने पर पद्मलेश्यावाला हो गया। और वहां इस लेश्यामें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके शतार-सहस्रारकल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अठारह सागरोपम काल तक जीवित रह कर च्युत हुआ, तब उसके पद्मलेश्या नष्ट हो गई।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल कहते हैं— एक संयत पद्म-लेश्यामें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहा और शतार-सहस्रार देवोंमें अठारह सागरोपम और अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपमकी आयुको बांध कर, क्रमसे मरण कर, सहस्रारकल्पके देवोंमें उत्पन्न होकर और अपनी स्थितिप्रमाण वहां रह करके च्युत हो मनुष्य होगया। वहां पर भी अन्तर्मुहूर्त तक पद्मलेश्यामें रह करके शुक्ललेश्याको या तेजोलेश्याको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम आधे सागरोपम कालसे अधिक अठारह सागरोपम प्राप्त हुए।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अपनी राशिसे असंख्यातगुणा पल्योपमका असंख्यातवां भाग काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह आवलिप्रमाण काल है। इस रूपसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कालका ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ २९५ ॥

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिच्चेएहि तेउ-पम्मलेस्सिय-सम्मामिच्छादिट्ठीणं[1] तत्तो भेदाभावा।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ २९६ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[4] ॥ २९७ ॥

तत्थ ताव संजदासंजदाणमेगसमयपरूवणा कीरदे– एक्को मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ एगसमओ तेउलेस्साए अत्थि त्ति संजमासंजमं पडिवण्णो। एगसमयं संजमासंजमं तेउलेस्साए सह दिट्ठं। विदियसमए संजदासंजदो पम्मलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अथवा एक्को संजदासंजदो हायमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए खीणाए एगसमयं संजमासंजमगुणो अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो। तेउलेस्साए सह संजमासंजमो एगसमयं दिट्ठो। विदियसमए तीए लेस्साए सह

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकारसे तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

उक्त दोनों लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ २९७ ॥

इनमेंसे पहले संयतासंयतोंके लेश्यासम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा की जाती है— वर्धमान तेजोलेश्यावाला एक मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तेजोलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। एक समय संयमासंयम तेजोलेश्याके साथ दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे समय वह संयतासंयत पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया। यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (१)। अथवा, हायमान पद्मलेश्यावाला एक संयतासंयत पद्मलेश्याके कालके क्षीण हो जाने पर एक समय संयमासंयम गुणस्थानका अवशेष रहने पर तेजोलेश्यावाला हो गया। तेजोलेश्याके साथ संयमासंयम एक समय दृष्ट

१ प्रतिषु 'अंतोमुहुत्तो मुहुत्त-' इति पाठः। २ प्रतिषु 'मिच्छादिट्ठीणं' इति पाठः।

३ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

४ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो। एसा गुणपरावत्ती (२)। मरण-वाघादेहि एगसमओ ण लब्भदि।

संपदि पम्मलेस्साए उच्चदे। तं जधा– एगो मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी वा वड्ढमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति संजमासंजमं पडिवण्णो। विदियसमए संजमासंजमेण सह सुक्कलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अथवा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ संजदासंजदो तेउलेस्सद्धाए खएण पम्मलेस्सिओ जादो। एगसमयं पम्मलेस्साए सह संजमासंजमं दिट्ठं, विदियसमए अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती। अथवा संजदासंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिओ सुक्कलेस्सद्धाखएण पम्मलेस्सिओ जादो। विदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु असंजदसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी मिच्छादिट्ठी वा जादो। एसा गुणपरावत्ती (४)। मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणेसु तेउ-पम्मलेस्साणं लेस्सा-गुणपरावत्तीओ अस्सिदूण एगसमओ किण्ण उच्चदे? ण, तत्थ एगसमयसंभवाभावा। वड्ढमाणतेउलेस्सादो

हुआ। द्वितीय समयमें उसी लेश्याके साथ असंयतसम्यग्दृष्टि, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि, या सासादनसम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा हुई (२)। यहां पर मरण और व्याघातके द्वारा एक समय नहीं पाया जाता है।

अब पद्मलेश्याके एक समयकी प्ररूपणा कहते हैं। जैसे— वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, पद्मलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। द्वितीय समयमें संयमासंयमके साथ ही शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ। यह लेश्यापरावर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (३)। अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई संयतासंयत तेजोलेश्याके कालके क्षय हो जानेसे पद्मलेश्यावाला हो गया। एक समय पद्मलेश्याके साथ संयमासंयम दृष्टिगोचर हुआ। और वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई। अथवा, हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई संयतासंयत जीव शुक्ललेश्याके कालके पूरे हो जाने पर पद्मलेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह पद्मलेश्यावाला ही है, किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अथवा सासादनसम्यग्दृष्टि, अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तनकी अपेक्षा एक समयकी प्ररूपणा हुई (४)।

शंका— मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानोंमें तेज और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी लेश्या और गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तनोंको आश्रय करके एक समयकी प्ररूपणा क्यों नहीं कही?

समाधान— नहीं, क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें एक समयकी प्ररूपणाका होना संभव नहीं है।

पम्मलेस्सं गंतूण विदियसमए उवरिमगुणट्ठाणं गच्छंताणं मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं पम्मलेस्साए एगसमओ लब्भदि। हायमाणतेउलेस्साए एगसमओ अत्थि त्ति मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणे पडिवण्णाणं तेउलेस्साए एगसमओ लब्भदि। एवं काउ-णील-लेस्साणं पि एगसमओ लब्भदि त्ति उत्ते ण लब्भदि, जदो मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीण एगसमयं लेस्साए परिणमिय विदियसमए अण्णगुणं लेस्संतरं वा ण गच्छंति। एदाणि गुणट्ठाणाणि पडिवज्जंता वि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जंति। कुदो? सभावदो। हेट्ठिमगुणट्ठाणाणि लेस्साए एगो समओ अत्थि त्ति जहा संजमासंजमगुण-ट्ठाणं पडिवज्जंति, पमत्तसंजदो तहा संजमासंजमगुणट्ठाणं किण्ण पडिवज्जदे? सहावदो। अथवा णत्थि एत्थ पडिसेहो।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को पमत्तो हायमाण-पम्मलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धा-क्खएण पमत्तद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति तेउलेस्सिओ जादो एगसमओ दिट्ठो। विदिय-

वर्धमान तेजोलेश्यासे पद्मलेश्याको जाकर द्वितीय समयमें उपरिम गुणस्थानोंको जाने वाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके पद्मलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार हायमान तेजोलेश्यामें एक समय अवशेष रहने पर मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवोंके तेजोलेश्याके साथ एक समय पाया जाता है।

शंका—तेज और पद्मलेश्याके समान ही कापोत और नीललेश्याओंका भी एक समय पाया जाता है, (फिर उसे क्यों नहीं कहा)?

समाधान—कापोत और नीललेश्याके साथ एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव एक समयमें विवक्षित लेश्याके द्वारा परिणत होकर द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानको, अथवा अन्य लेश्याको नहीं जाते हैं। तथा इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले भी जीव विवक्षित धारण की गई लेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर उन उन गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव ही है।

शंका—अपनी लेश्यामें एक समय रहने पर जैसे नीचेके गुणस्थानवाले संयमा-संयम गुणस्थानको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकारसे प्रमत्तसंयत भी संयमासंयम गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त होता है?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है। अथवा, इस विषयमें कोई प्रतिषेध नहीं है।

अब प्रमत्तसंयतका काल कहते हैं—एक प्रमत्तसंयत हायमान पद्मलेश्यामें विद्यमान था। उस लेश्याके कालक्षयसे तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह तेजोलेश्यावाला होगया। एक समय वह तेजोलेश्याके साथ प्रमत्तसंयतके

समए तेउलेस्सा चेव, किंतु संजमासंजमं असंजमेण सह सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदो। एसा गुणपरावत्ती (१)। अथवा, अप्पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अप्पमत्तद्धाए खएण पमत्तो जादो। पमत्तो तेउलेस्साए सह एगसमयं दिट्ठो। बिदियसमए मदो देवो जादो। एवं मरणेण (२)। पमत्तसंजदो तेउलेस्साए परिणमिय बिदियसमए जेण लेस्संतरं ण गच्छदि, पमत्तगुणं पडिवज्जमाणो वि तेउलेस्सद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति ण पडिवज्जदि, तेण लेस्सापरावत्ती णत्थि। अप्पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिओ पम्मलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। बिदियसमए वि पमत्तो चेव, किंतु तेउलेस्सिओ जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (३)। अथवा पमत्तो तेउलेस्साए अच्छिदो। तिस्से अद्धाक्खएण पम्मलेस्सा आगदा। पम्मलेस्साए सह पमत्तो एगसमयं दिट्ठो। बिदियसमए पम्मलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तो जादो। एसा गुणपरावत्ती। पम्मलेस्सद्धाए अच्छिदो पमत्तो तिस्से अद्धाखएण तेउलेस्साए परिणमिय बिदियसमए अप्पमत्तो किण्ण कीरदे ? ण, हीयमाणलेस्साए अप्पमत्तगुणग्गहणाभावा। मिच्छत्तादिगुणं

....

रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें तेजोलेश्या ही रही, किन्तु वह संयमासंयमको, अथवा असंयमके साथ सम्यक्त्वको, अथवा सम्यग्मिथ्यात्वको, अथवा सासादनगुणस्थानको, अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होगया। यह एक समयरूप गुणस्थानपरिवर्तन है (१)। अथवा, कोई एक अप्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें वर्तमान था। उसी लेश्यामें रहते हुए ही अप्रमत्तगुणस्थानके कालक्षयसे वह प्रमत्तसंयत हो गया। वह प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मरा और देव होगया। इस प्रकार मरणकी अपेक्षा एक समय उपलब्ध हुआ (२)। प्रमत्तसंयत तेजोलेश्याके साथ परिणमित होकर द्वितीय समयमें चूंकि, दूसरी अन्य लेश्याको नहीं प्राप्त होता है, और प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त होता हुआ भी तेजोलेश्याके कालमें एक समय शेष रहता है, इसी लिए वह लेश्यान्तरको नहीं प्राप्त होता है। इस कारणसे यहां पर लेश्याका परिवर्तन नहीं है। हायमान पद्मलेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, पद्मलेश्याके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें भी वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु तेजोलेश्यावाला होगया। यह लेश्यासम्बन्धी परिवर्तन है (३)। अथवा, कोई प्रमत्तसंयत तेजोलेश्यामें विद्यमान था। उसके उस तेजोलेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्या आगई। पद्मलेश्याके साथ वह प्रमत्तसंयत एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें वह पद्मलेश्यावाला ही रहा, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानपरिवर्तन हुआ।

शंका—पद्मलेश्याके कालमें विद्यमान कोई प्रमत्तसंयत उस लेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यासे परिणमित होकर द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत क्यों नहीं हो जाता ?

क्किण्ण पडिवज्जदि ? ण, तेउलेस्साए पडिय अंतोमुहुत्तमणच्छिय हेट्ठिमगुणग्गहणाभावा। अधवा अप्पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो अप्पमत्तद्धाखएण पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो।

अप्पमत्तसंजदस्स उच्चदे– मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्त-संजदो वा वड्ढमाणतेउलेस्सिओ तेउलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो। तेउलेस्साए सह एगसमयं अप्पमत्तो दिट्ठो। विदियसमए पम्मलेस्सिगो जादो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अधवा पमत्तो हायमाणपम्मलेस्सिगो एगसमयमप्पमत्तद्धा अत्थि त्ति पम्मलेस्सद्धाए खएण तेउलेस्सिगो जादो। विदियसमए पमत्तगुणं पडिवण्णो। एसा गुणपरा-वत्ती (२)। अधवा पमत्तो वड्ढमाणतेउलेस्सिओ अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो। एवं मरणेण (३)। पमत्तो वड्ढमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्धाए एगसमओ अत्थि

समाधान—नहीं, क्योंकि, हीयमान लेश्याके साथ अप्रमत्तगुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्व आदिक नीचेके गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त हो जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तेजोलेश्यामें गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे विना नीचेके गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है।

अथवा, कोई अप्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था। वह अप्रमत्तसंयतगुणस्थानके कालक्षयसे प्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयसम्बन्धी लेश्यादिपरिवर्तनको कहते हैं— वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि, अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत जीव, तेजोलेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह तेजोलेश्याके साथ एक समय अप्रमत्तसंयतरूपसे दृष्टिगोचर हुआ, और द्वितीय समयमें पद्मलेश्यावाला हो गया। यह लेश्यापरिवर्तन है (१)। अथवा, हायमान पद्मलेश्या-वाला कोई प्रमत्तसंयत, एक समय अप्रमत्तसंयत कालके अवशेष रहने पर पद्मलेश्याके काल क्षयसे तेजोलेश्यावाला हो गया, और द्वितीय समयमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तन है (२)। अथवा, वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मरणसे एक समय लब्ध हुआ (३)। कोई वर्धमान पद्मलेश्यावाला प्रमत्तसंयत, पद्मलेश्याके

त्ति अप्पमत्तो जादो । विदियसमए अप्पमत्तो चेव, किंतु सुक्कलेस्सं गदो । एसा लेस्सा-परावत्ती (१)। अधवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाखएण पम्मलेस्सिगो जादो । विदियसमए पम्मलेस्साए सह पमत्तगुणं पडिवण्णो । एसा गुणपरावत्ती (२)। अधवा पमत्तो पम्मलेस्साए अच्छिदो पमत्तद्धाए खीणाए एगसमयं जीविदमत्थि त्ति अप्पमत्तो जादो । विदियसमए मदो देवत्तं गदो । एवं मरणेण (३) ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं[1] ॥ २९८ ॥

तं जधा– संजदासंजदो पमत्तसंजदो अप्पमत्तसंजदो वा तेउ-पम्मलेस्सासु अप्पिद-लेस्साए परिणमिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अणप्पिदलेस्सं गदो ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[2] ॥ २९९ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु सुक्कलेस्सियमिच्छादिट्ठीणं विरहाभावा ।

....

कालमें एक समय अवशेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें अप्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु शुक्लेश्याको प्राप्त हो गया। इस प्रकार यह लेश्यापरिवर्तन हुआ (१)। अथवा, हायमान शुक्लेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत जीव शुक्लेश्याके कालक्षयसे पद्मलेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें पद्मलेश्याके साथ प्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थान-परिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (२)।

अथवा, कोई प्रमत्तसंयत पद्मलेश्यामें विद्यमान था। वह प्रमत्तकालके क्षीण हो जाने पर, तथा एक समयप्रमाण जीवनके शेष रहने पर अप्रमत्तसंयत हो गया, दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हो गया। यह मरणके साथ एक समयकी प्ररूपणा हुई (३)।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९८ ॥

जैसे— कोई संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयत, अथवा अप्रमत्तसंयत जीव तेजो-लेश्या और पद्मलेश्याओंमेंसे विवक्षित किसी एक लेश्यामें परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविवक्षित लेश्याको प्राप्त हो गया।

शुक्लेश्यामें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ २९९ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंके विरहका अभाव है।

....

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ शुक्लेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

तं जधा– एक्को मिच्छादिट्ठी वड्ढमाणपम्मलेस्सिओ सगद्धाए खएण सुक्कलेस्सिओ जादो। सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदो, अण्णलेस्सागमणे संभवाभावा।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०१ ॥

तं जधा–एक्को दव्वलिंगी दव्वसंजममाहप्पेण उवरिमगेवज्जेसु आउअं बंधिय पम्मलेस्साए अच्छिदस्स तिस्से अद्धाखएण सुक्कलेस्सा आगदा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय कालं करिय उवरिमगेवज्जेसु उववज्जिय सगट्ठिदिं गमिय चुदो तक्खणे चेव णट्ठलेस्सिओ जादो। एवं पढमिल्लंतोमुहुत्तेण सादिरेगएक्कत्तीस सागरोवममेत्तो त्ति मिच्छत्तसहिद-सुक्कलेस्सुक्कस्सकालो होदि।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०२ ॥

सुक्कलेस्सेत्ति अणुवट्टदे। कुदो ओघत्तं? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

जैसे— वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव अपनी लेश्याका काल समाप्त हो जानेसे शुक्ललेश्यावाला हो गया। वह उसमें सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके पद्मलेश्याको प्राप्त हुआ, क्योंकि, उसका पद्मलेश्याके सिवाय अन्य किसी लेश्यामें जाना संभव ही नहीं है।

शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे— एक द्रव्यलिंगी साधु द्रव्यसंयमके माहात्म्यसे उपरिम ग्रैवेयकोंमें आयुको बांधकर पद्मलेश्यामें विद्यमान था। उसके उस लेश्याके कालक्षयसे शुक्ललेश्या आगई। उसमें अन्तर्मुहूर्त काल रह कर, कालको करके, उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होकर, अपनी स्थितिको बिताकर च्युत हुआ और उसी क्षणमें ही नष्टलेश्यावाला होगया। इस प्रकार प्रथम अन्तर्मुहूर्तके साथ साधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण मिथ्यात्वसहित शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल होता है।

शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०२ ॥

यहां पर 'शुक्ललेश्या' इस पदकी अनुवृत्ति होती है।

शंका— सूत्रोक्त ओघपना कैसे संभव है?

समाधान— नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्सियोगकेवल्यन्तानां ×× सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छ आवलियाओ, इच्चेदेहि तदो भेदाभावा।

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ३०३ ॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि सह ओघसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो भेदाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३०४ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि, इच्चेदेहि विसेसाभावा। णवरि पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो एत्थ। कुदो? पच्छिममणुससहगदअंतोमुहुत्तेण सादिरेगत्तुवलंभा। ओघम्हि देसूणपुव्वकोडीए सादिरेगत्तदंसणादो।

संजदासंजदा पमत्त-अप्पमत्तसंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३०५ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय, और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण है। इस प्रकार ओघसे इसके कालमें कोई भेद नहीं होनेसे ओघपना बन जाता है।

शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०३ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंके साथ ओघसम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंसे कोई भेद नहीं है।

शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३०४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है, इस प्रकारसे कोई विशेषता नहीं है। किन्तु केवल पर्यायार्थिकनयके अवलम्बन करने पर यहां विशेषता है। वह इस प्रकार है— पिछले मनुष्यभवमें होनेवाली शुक्ललेश्याके एक अन्तर्मुहूर्तके साथ उक्त कालकी सातिरेकता पाई जाती है। किन्तु ओघमें देशोन पूर्वकोटीके साथ उक्त कालकी सातिरेकता देखी जाती है।

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ ×× संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३०६ ॥

तं जधा- एक्को पमत्तसंजदो हायमाणसुक्कलेस्सिगो एगो समओ सुक्कलेस्साए अत्थि त्ति संजदासंजदो जादो। विदियसमए संजदासंजदो चेव, किंतु पम्मलेस्सं गदो। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। सेसगुणट्ठाणेहिंतो संजमासंजमं पडिवज्जंताणं सुक्कलेस्साए एगसमओ ण लब्भदि। कुदो? वड्ढमाणसुक्कलेस्साए संजमासंजमं पडिवण्णाणं विदियसमए पम्मलेस्साए गमणाभावा। अधवा संजदासंजदो वड्ढमाणपम्मलेस्सिगो तिस्से अद्धाखएण संजमासंजमद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति सुक्कलेस्सिओ जादो। विदियसमए सुक्कलेस्सिओ चेव, किंतु अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो। एसा गुणपरावत्ती (२)।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पमत्तो जादो। विदियसमए पमत्तो चेव, किंतु लेस्सा परावत्तिदा। एसा लेस्सापरावत्ती (१)। अधवा एक्को पमत्तो वड्ढमाणपम्मलेस्सिगो पम्मलेस्सद्धाए खएण सुक्कलेस्सिगो जादो। विदियसमए (सुक्कलेस्सिगो) चेव, किंतु अप्पमत्तो जादो।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३०६ ॥

जैसे— हायमान शुक्ललेश्यावाला एक प्रमत्तसंयत जीव, शुक्ललेश्याके कालमें एक समय शेष रहने पर संयतासंयत हुआ। द्वितीय समयमें वह संयतासंयत ही है, किन्तु पद्मलेश्याको प्राप्त हो गया। यह लेश्याका एक समयसम्बन्धी परिवर्तन है (१)। शेष गुणस्थानोंसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके शुक्ललेश्याका एक समय नहीं पाया जाता है, क्योंकि, वर्धमान शुक्ललेश्याके साथ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंके द्वितीय समयमें पद्मलेश्यामें गमनका अभाव है। अथवा कोई संयतासंयत वर्धमान पद्मलेश्यावाला है। उस लेश्याके कालक्षयसे और संयमासंयमके कालमें एक समय अवशेष रहने पर वह शुक्ललेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह शुक्ललेश्यावाला ही है, किन्तु अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। यह गुणस्थानपरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा है (२)।

अब प्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— हायमान शुक्ललेश्यावाला कोई एक अप्रमत्तसंयत शुक्ललेश्याके कालमें एक समय अवशेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया। द्वितीय समयमें वह प्रमत्तसंयत ही रहा, किन्तु लेश्या परिवर्तित हो गई। यह लेश्यापरिवर्तनसम्बन्धी एक समयकी प्ररूपणा हुई (१)। अथवा, वर्धमान पद्मलेश्यावाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव, पद्मलेश्याके कालक्षयसे शुक्ललेश्यावाला हो गया। द्वितीय समयमें वह (शुक्ललेश्यावाला) ही

१ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

एसा गुणपरावत्ती (२)। अथवा अप्पमत्तो हायमाणसुक्कलेस्सिगो सुक्कलेस्सद्धाए सह पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो (३)।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्छिदो, सुक्कलेस्साए सह अप्पमत्तो जादो। विदियसमए मदो देवत्तं गदो (१)। अथवा अपुव्वकरणो ओदरंतो सुक्कलेस्सिगो अप्पमत्तो होदूण मदो देवो जादो (२)। एत्थ एगसमयभंगपरूवणगाहा-

दो दो य तिण्णि तेऊ तिण्णि तिया होंति पम्मलेस्साए।
दो तिग दुगं च समया बोद्धव्वा सुक्कलेस्साए॥ ४१॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २०७॥

कुदो? सुक्कलेस्साए परिणमिय उक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय पम्मलेस्सं गदाणमुक्कस्सकालुवलंभा।

है, किन्तु अप्रमत्तसंयत हो गया। यह गुणस्थानसम्बन्धी परिवर्तन है (२)। अथवा, हायमान शुक्लेश्यावाला कोई अप्रमत्तसंयत, शुक्लेश्याके ही कालके साथ प्रमत्तसंयत हो गया। पुनः दूसरे समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (३)।

अब अप्रमत्तसंयतके एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— शुक्लेश्यामें विद्यमान कोई एक प्रमत्तसंयत जीव शुक्लेश्याके साथ ही अप्रमत्तसंयत हो गया। वह द्वितीय समयमें मरा और देवत्वको प्राप्त हुआ (१)। अथवा, शुक्लेश्यावाला श्रेणीसे उतरता हुआ कोई अपूर्वकरणसंयत अप्रमत्तसंयत होकर मरा और देव हो गया (२)। यहां पर एक समयके भंगोंकी प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

तेजोलेश्याके दो, दो और तीन समयभंग होते हैं। पद्मलेश्याके तीन त्रिक अर्थात् तीन, तीन और तीन समयभंग होते हैं। तथा, शुक्लेश्याके दो, तीन और दो समयभंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए॥ ४१॥

विशेषार्थ— ऊपर जो एकसमयसम्बन्धी अनेक विकल्प बताये गये हैं, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— तेजोलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके दो भंग, और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (२+२+३=७) सात भंग होते हैं। पद्मलेश्यासम्बन्धी देशसंयतके तीन भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके तीन भंग, इस प्रकार कुल (३+३+३=९) नौ भंग होते हैं। शुक्लेश्यासम्बन्धी देशसंयतके दो भंग, प्रमत्तसंयतके तीन भंग और अप्रमत्तसंयतके दो भंग, इस प्रकार कुल (२+३+२=७) सात भंग जानना चाहिए।

उक्त तीनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ २०७॥

क्योंकि, शुक्लेश्यासे परिणत होकर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रह कर पद्मलेश्याको प्राप्त हुए जीवोंके उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

---

[1] उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा सजोगिकेवली ओघं ॥ ३०८ ॥

कुदो ? एदेसिमोघे वि सुक्कलेस्सं मोत्तूण अण्णलेस्साभावा।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ॥ ३०९ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो ॥ ३१० ॥

तं जहा– भवियत्तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि। पुव्वमलद्धसम्मत्तस्स अणादिसपज्जवसिदं। सम्मत्तं लहिऊण मिच्छत्तं गदस्स सादिसपज्जवसिदं। अणादित्तादो अकट्टिमस्स ण विणासो चे ण, अण्णाणस्स कम्मबंधस्स य अणादिस्स वि

शुक्ललेश्यावाले चारों उपशामक, चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ३०८ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानवालोंके ओघमें भी शुक्ललेश्याको छोड़कर अन्य लेश्याका अभाव है।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है ॥ ३१० ॥

जैसे— भव्यत्व दो प्रकारका है, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। पूर्वमें नहीं प्राप्त हुआ है सम्यक्त्व जिसको, ऐसे जीवके अनादि-सान्त भव्यत्व होता है। सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वको गये हुए जीवके सादि-सान्त भव्यत्व होता है।

शंका— जो वस्तु अनादि है, वह अकृत्रिम होती है और उसका विनाश नहीं होता। (इसलिए मिथ्यात्वको अनादि होनेसे अकृत्रिमता सिद्ध है, फिर उसका विनाश नहीं होना चाहिए ?)

समाधान— नहीं, क्योंकि, अज्ञानका और कर्मबन्धका, उनके अनादि होते हुए भी,

---

१ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया द्वौ भंगौ, अनादिः सपर्यवसानः, सादिः सपर्यवसानश्च। स. सि. १, ८.

विणासुवलंभा। अकारणत्तादो ण तस्स विणासो चे ण, अणादिबंधनबद्धकम्मकारणत्तादो। सिद्धाणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगकम्मासवविरहियाणं ण संसारे पदणमत्थि, तदो ण सादि भवियत्तं। ण पडिवण्णसम्मत्तस्स वि सादि भवियत्तं होदि, पुव्वं पि तत्थ भवियत्तुवलंभा ? एत्थ परिहारो वुच्चदे– ण संसारे णिवदिदसिद्धे अस्सिदूण भवियत्तं सादि उच्चदे। ण च ते संसारे णिवदंति, णट्ठासवत्तादो। किंतु गहिदसम्मत्तजीवस्स भवियत्तं सादि उच्चदे। ण च तं पुव्वमत्थि, सादिसांतस्सेदस्स पुव्विल्लेण अणादि-अणंतेण सह एयत्तविरोहा। पुव्विल्लमवि भवियत्तं सांतं चे ण, सत्तिं पडुच्च तस्स सांतत्तुवएसा। ण वत्तिं पडुच्च सम्मत्तगहणेण विणा अणंतसंसारस्स जीवस्स सांतं भवियत्तं, विरोहा। अणादि-अणंतेण वि भवियत्तेण होदव्वं, अण्णहा भव्वजीववोच्छेदप्पसंगादो।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकइपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति[1] ॥ ४२ ॥

....

विनाश पाया जाता है।

शंका—कारणरहित वस्तुका विनाश नहीं होता है, इसलिए अज्ञान या कर्मबन्धका भी विनाश नहीं होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अज्ञान या कर्मबन्धका कारण अनादिबन्धनबद्ध कर्म ही है।

शंका—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगके द्वारा कर्मास्रवसे विरहित सिद्ध जीवोंका पुनः संसारमें पतन नहीं होता है, इसलिए भव्यत्व सादि-सान्त नहीं है। और न प्रतिपन्नसम्यक्त्वी जीवके भी भव्यत्व सादि होता है, क्योंकि, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्व भी उस जीवमें भव्यत्व पाया जाता है ?

समाधान—अब उक्त आशंकाका परिहार कहते हैं— संसारमें पुनः लौटकर आनेवाले सिद्ध जीवोंकी अपेक्षासे भव्यत्वको सादि नहीं कह सकते, क्योंकि, कर्मास्रवोंके नष्ट हो जानेसे वे संसारमें पुनः लौटकर नहीं आते। किन्तु ग्रहण किया है सम्यक्त्वको जिसने, ऐसे जीवके भव्यत्वको सादि कहते हैं; तथा, वह पूर्वमें भी नहीं है, क्योंकि, इस सादि-सान्त भव्यत्वके पूर्ववर्ती उस अनादि-अनन्त भव्यत्वके साथ एकत्वका विरोध है।

शंका—पहलेके भव्यत्वको भी यदि सान्त मान लिया जाय, तो क्या हानि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षासे उसके सान्तताका उपदेश किया गया है। व्यक्तिकी अपेक्षा सम्यक्त्वग्रहणके विना अनन्त संसारी जीवके सान्त भव्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है। अर्थात्, फिर तो भव्यत्वको अनादि-अनन्त भी होना पड़ेगा, अन्यथा, भव्य जीवोंके विच्छेदका प्रसंग प्राप्त होगा। तथा—

ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसोंकी पर्याय अभी तक नहीं पाई है, और जो दूषित भावोंकी अति प्रचुरताके कारण कभी भी निगोदके वासको नहीं छोड़ते हैं ॥ ४२ ॥

....

[1] गो. जी. १९७.

एयणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण[1] ॥ ४३ ॥

इच्चादिसुत्तदंसणादो य । ण च मोक्खमगच्छंताणं भवियत्तं णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, मोक्खगमणसत्तिसब्भावं पडुच्च तेसिं भवियत्तुवदेसा[2] (?)। ण च सत्तिमंताणं सव्वेसिं पि वत्तीए होदव्वमिदि णियमो अत्थि सव्वस्स वि हेमपासाणस्स हेमपज्जाएण परिणमणप्पसंगा[3] । ण च एवं, अणुवलंभा । णिव्वुइं गच्छमाणो वि ण वोच्छिज्जदि भव्वरासि त्ति कधमेदं णव्वदे ? तस्साणंतियादो । सो रासी अणंतो उच्चइ, जो संते वि वए ण णिट्ठादि, अण्णहा अणंतववएसो अणत्थओ होज्ज । तम्हा तिविहेण भवियत्तेण होदव्वमिदि । ण च सुत्तेण सह विरोहो, सत्तिं पडुच्च सुत्ते अणादिसांतत्तुवएसा ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो[4] ॥ ३११ ॥

एक निगोदशरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीव सिद्धोंसे तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे अनन्तगुणे देखे गये हैं ॥ ४३ ॥

इत्यादि सूत्रोंके देखे जानेसे भी भव्य जीवोंके विच्छेदका अभाव सिद्ध है। तथा, मोक्षको नहीं जानेवाले जीवोंके भव्यपना नहीं होता है, ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मोक्षगमनकी शक्तिके सद्भावकी अपेक्षा उनके भव्यत्वके पाये जानेका उपदेश है । तथा यह भी कोई नियम नहीं है कि भव्यत्वकी शक्ति रखनेवाले सभी जीवोंके उसकी व्यक्ति होना ही चाहिए, अन्यथा, सभी स्वर्णपाषाणके स्वर्णपर्यायसे परिणमनका प्रसंग प्राप्त होगा ? किन्तु इस प्रकारसे देखा नहीं जाता है ।

शंका—निर्वृति (मोक्ष) को जानेके कारण नित्यव्ययात्मक भव्यराशि विच्छेदको प्राप्त नहीं होगी, यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, वह राशि अनन्त है । और वही राशि अनन्त कही जाती है, जो व्ययके होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है । अन्यथा, फिर उस राशिकी अनन्त संज्ञा अनर्थक हो जायगी । इसलिए भव्यत्व तीन प्रकारका ही होना चाहिए । तथा सूत्रके साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि, शक्तिकी अपेक्षा सूत्रमें भव्यत्वके अनादि-सान्तताका उपदेश दिया गया है ।

उक्त तीन प्रकारोंमेंसे जो भव्यत्व सादि और सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है ॥ ३११ ॥

---

१ गो. जी. १९६. २ अ प्रतौ 'भवियत्तुवलंभदेसा' इति पाठः ।

३ भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा । ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥ गो. जी. ५५८.

४ तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तिण्हं भवियाणं मज्झे जो सादिसपज्जवसिदो भविओ तस्स इमो णिद्देसो परूवणा पण्णवणा त्ति उत्तं होदि । अधवा भवियाणं जं मिच्छत्तं तं दुविहं, अणादिसपज्जवसिदं सादिसपज्जवसिदमिदि । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो मिच्छादिट्ठी तस्स इमो णिद्देसो त्ति वत्तव्वं । पुव्विल्लम्हि पुण अत्थे जो सादिओ सपज्जवसिदो भविओ तस्स मिच्छत्तस्स इमो णिद्देसो परूवेदव्वो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

तं जधा– सम्मादिट्ठी दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अण्णगुणं गदो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] ॥ ३१३ ॥

तं जहा– एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णो । तेण सम्मत्तेण उप्पज्जमाणेण अणंतो संसारो छिण्णो संतो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो[2] । उवसमसम्मत्तेण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियसेसाए आसाणं गंतूण मिच्छत्तं णेदव्वो । अहवा उवसमसम्मादिट्ठी चेव मिच्छत्तं गंतूण अद्धपोग्गलपरियट्टं

तीन प्रकारके भव्योंके मध्यमें जो सादि-सान्त भव्य है, उसका यह निर्देश है, अर्थात् उसकी यह प्ररूपणा या प्रज्ञापना की जाती है । अथवा, भव्य जीवोंके जो मिथ्यात्व है, वह दो प्रकारका होता है– (१) अनादि-सान्त, और (२) सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि और सान्त मिथ्यादृष्टि है, उसका यह निर्देश है, ऐसा कहना चाहिए । तथा पहलेके अर्थमें जो सादि-सान्त भव्य कहा है, उसके मिथ्यात्वका यह निर्देश है, ऐसा प्ररूपण करना चाहिए ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

जैसे— दृष्टमार्गी कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको चला गया ।

सादि-सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन है ॥ ३१३ ॥

जैसे— कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्पन्न होनेके साथ ही उस सम्यक्त्वसे अनन्त संसार छिन्न होता हुआ अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालमात्र कर दिया गया । उपशमसम्यक्त्वके साथ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल रह कर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रह जाने पर उसी जीवको सासादनगुणस्थानमें ले जाकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिए । अथवा, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही मिथ्यात्वको जाकर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके

---

१ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'कुदो' इति पाठः ।

देसूणं मिच्छत्तेण परियट्टिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधी विसंजोइय विस्समिय दंसणमोहं खविय पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अधापमत्तकरणं काऊण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो खीणो सजोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो। जादं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं॥ ३१४॥[1]

कुदो? सासणादीणं भवियत्तं मोत्तूण अण्णस्सासंभवा।

अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा॥ ३१५॥

कुदो? अव्वयत्तादो।

एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो॥ ३१६॥[2]

कुदो? मिच्छत्तं मोत्तूण तस्स गुणंतरगमणाभावा।

एवं भवियमग्गणा समत्ता।

अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारके शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, पुनः अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके, पश्चात् विश्राम ले, दर्शनमोहको क्षपण कर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके, अधःप्रवृत्तकरण कर, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी हो करके सिद्ध होगया। इस प्रकारसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल सिद्ध हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली तकका काल ओघके समान है॥ ३१४॥

क्योंकि, सासादनादि गुणस्थानवर्ती जीवोंके भव्यत्वको छोड़कर अन्यका होना, अर्थात् अभव्यपना, असंभव है।

अभव्यसिद्ध जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं॥ ३१५॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंका व्यय ही नहीं होता।

एक जीवकी अपेक्षा अभव्योंका अनादि और अनन्त काल है॥ ३१६॥

क्योंकि, मिथ्यात्वको छोड़कर अभव्यके अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ अभव्यानामनाद्यपर्यवसानः। स. सि. १, ८.

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३१७ ॥

कुदो? सव्वगुणट्ठाणाणमप्पणो णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकाले अस्सिदूण भेदाभावा। णवरि खइयसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेसु अत्थि भेदो। तं भणिस्सामो। ण चेसो भेदो सुत्तेण अपरूविदो, सगंहिदविसेससामण्णमवलंबिय ओघमिदि णिद्देसादो। तं जहा– एगो देवो णेरइओ वा सम्मादिट्ठी मणुसेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्से गमिय संजमासंजमं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तं विस्समिय अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मादिट्ठी जादो। चदुहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणियं पुव्वकोडिसंजमासंजममणुपालिय मदो देवो जादो। एत्थेव विसेसो, णत्थि अण्णत्थ कत्थ वि।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं[2] ॥ ३१८ ॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि सव्वगुणट्ठाणाणं ओघगुणट्ठाणेहिंतो भेदाभावा।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥३१७॥

क्योंकि, चौथे गुणस्थानसे लेकर ऊपरके सभी गुणस्थानोंका अपने अपने नाना जीव और एक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका आश्रय करके सम्यग्दृष्टि जीवोंके साथ कोई भेद नहीं है। विशेष बात यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंके कालमें भेद है, उसे कहते हैं। यह कहा जानेवाला भेद सूत्रके द्वारा न कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है, क्योंकि, संगृहीत हैं सामान्य और विशेष जिसमें, ऐसे द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करके 'ओघ' ऐसा पद सूत्रमें निर्दिष्ट किया गया है। अब उक्त कालका स्पष्टीकरण करते हैं– कोई एक देव, अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त अधिक, गर्भको आदि लेकर आठ वर्ष बिताकर, संयमासंयमको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षपण कर, क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया। इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण संयमासंयमको परिपालन करके मरा और देव हुआ। यहां पर ही इतनी विशेषता है, और कहीं कुछ भी विशेषता नहीं है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकका काल ओघके समान है ॥ ३१८ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालोंकी अपेक्षा सूत्रोक्त सर्व गुणस्थानोंके कालका ओघ गुणस्थानोंके कालसे कोई भेद नहीं है।

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

२ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां चतुर्णां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३१९ ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियसेसाए सव्वे आसाणं गदा। अंतरं गदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ ३२० ॥

तं जहा– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं सासणसम्मत्तं मिच्छत्तं वा गदा। एदस्स एगा सलागा णिक्खिविदव्वा। तस्समए चेव अण्णे मिच्छादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय चदुण्हं गुणट्ठाणाणमण्णदरं गदा। विदियसलागा लद्धा होदि। एवं तिण्णि चत्तारि आदिं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ सलागाओ लब्भंति। तं कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो। एदाहि सलागाहि उवसमसम्मत्तद्धं गुणिदे सगरासीदो असंखेज्जगुणो अणंतरकालो होदि।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल होते हैं ॥ ३१९ ॥

जैसे— सात आठ जन, या बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए, और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीप्रमाण कालके अवशिष्ट रहने पर सभीके सभी सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गये और पुनः अन्तरको प्राप्त हुए।

उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत और संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ ३२० ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा बहुतसे मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए। उसमें अन्तर्मुहूर्त रह करके वे सब वेदकसम्यक्त्वको, या सम्यग्मिथ्यात्वको, या सासादनसम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इसकी एक शलाका स्थापित करना चाहिए। उसी समयमें ही अन्य भी मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उसमें अन्तर्मुहूर्त रह कर, पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानको प्राप्त हुए। यह दूसरी शलाका प्राप्त हुई। इस प्रकारसे तीन चारको आदि लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाकाएं प्राप्त होती हैं।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यक्त्वकी शलाकाएं पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होती हैं?

समाधान— आचार्यपरम्परागत उपदेशसे यह जाना जाता है।

इन लब्ध शलाकाओंसे उपशमसम्यक्त्वके कालको गुणा करने पर अपनी राशिसे असंख्यातगुणा अन्तररहित उपशमसम्यक्त्वका काल होता है।

१ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३२१ ॥

तं जहा– एक्को मिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो, अवरो देससंजमेण सह तं चेव पडिवण्णो, सव्वजहण्णमद्धमच्छिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदा। एसो दोण्हं पि जहण्णकालो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३२२ ॥

तं जहा– दो मिच्छादिट्ठिणो। तत्थ एगो उवसमसम्मत्तं, अवरो देससंजमं पडिवण्णो। सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तद्धमच्छिय दोण्णि वि तिण्हमण्णदरं गदा।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥३२३॥

तं जहा-पमत्त-अप्पमत्ताणं ताव उच्चदे। सत्तट्ठ जणा बहुआ वा उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसेढीदो ओदरिय पमत्तापमत्ता होदूण एगसमयमच्छिय कालं करिय देवा जादा। अपुव्वकरणस्स ओदरमाणेहि, अणियट्टि-सुहुमसांपराइयाणं चढणोयरणकिरियावावदेहि, उवसंतस्स चढंतेहि अप्पिदगुणपडिवण्णविदियसमए[3] मदेहि जीवेहि एगसमओ वत्तव्वो।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

जैसे— एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। दूसरा देशसंयमके साथ उसी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। दोनों ही जीव सर्वजघन्य काल अपने अपने गुणस्थानोंमें रह करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए। यह दोनों गुणस्थानोंका जघन्य काल है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

जैसे— दो मिथ्यादृष्टि जीव हैं। उनमेंसे एक उपशमसम्यक्त्वको और दूसरा देशसंयमको प्राप्त हुआ। वहां वे दोनों ही जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके सम्यग्मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, अथवा वेदकसम्यक्त्व, इन तीनोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुए।

प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं ॥३२३॥

वह इस प्रकार है– उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंकी एक समयकी प्ररूपणा करते हैं— सात आठ जन, अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीसे उतर कर प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत होकर, वहां पर एक समय रह करके, मरण कर, देव हुए। अपूर्वकरण गुणस्थानवालेके उतरते हुए, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानवालोंके आरोहण और अवतरण, इन दोनों ही क्रियाओंमें लगे हुए, तथा उपशान्तकषायके चढ़ते हुए विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होकर द्वितीय समयमें मरे हुए जीवोंके द्वारा एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिए।

१ एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकानां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु 'अप्पिदगुणपडिवण्णं' इति पाठः।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] **॥ ३२४ ॥**

पमत्तापमत्ताणं ताव उच्चदे– सत्तट्ठ जणा बहुआ वा दंसणमोहणीयउवसामगा चारित्तमोहणीयउवसामगा वा पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। तेसु अंतोमुहुत्तद्धमच्छिय अण्णगुणं गदा। तम्हि चेव समए अण्णे उवसमसम्मादिट्ठिणो पमत्तापमत्तगुणे पडिवण्णा। एवमेत्थ संखेज्जसलागा लब्भंति। एदाहि पमत्तापमत्तद्धं गुणिदे वि अंतोमुहुत्तं चेव होदि। कुदो? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्ते उद्दिट्ठत्तादो। एवं चेव चदुण्हमुवसामगाणं वि वत्तव्वं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२५ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि, णाणाजीवजहण्णुक्कस्सकालपरूवणाए परूविदत्तादो।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[2] **॥ ३२७ ॥**

सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं[2] **॥ ३२८ ॥**

मिच्छादिट्ठी ओघं[2] **॥ ३२९ ॥**

उक्त गुणस्थानवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२४ ॥

उनमेंसे पहले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका काल कहते हैं— सात आठ जीव अथवा बहुतसे जीव, चाहे वे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशामक हों, अथवा चाहे चारित्रमोहनीयकर्मके उपशमन करनेवाले हों, प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानको प्राप्त हुए। उन दोनों गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए। उसी ही समयमें अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे यहां पर संख्यात शलाकाएं प्राप्त होती हैं। इन शलाकाओंसे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके कालको गुणा करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि, सूत्रमें 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा पद कहा गया है। इसी प्रकारसे चारों उपशामकोंका भी काल कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त जीवोंका जघन्य काल एक समय है ॥ ३२५ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, इनका अर्थ नाना जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी प्ररूपणामें प्ररूपण किया जा चुका है।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

मिथ्यादृष्टि जीवोंका काल ओघके समान है ॥ ३२९ ॥

---

१ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८.

ओघम्हि उत्तसासणादीणं सम्मत्ताणुवादम्हि उत्तसासणादितिण्हं गुणट्ठाणाणं च भेदाभावा ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३१ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, बहुसो परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जधा– एगो असण्णी सण्णीसु उववण्णो सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव भमिय पुणो असण्णित्तं गदो ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं[2] ॥ ३३३ ॥

ओघमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी कालप्ररूपणाका और सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादमें कहे गये सासादनसम्यग्दृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंकी काल-प्ररूपणाका परस्परमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञामार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल होते हैं ॥ ३३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, पहले बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है ।

एक जीवकी अपेक्षा संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ ३३२ ॥

जैसे— कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ और सागरोपमशतपृथक्त्वके अन्त तक वह संज्ञियोंमें ही भ्रमण करके पुनः असंज्ञित्वको प्राप्त हुआ ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक संज्ञियोंकी कालप्ररूपणा ओघके समान है ॥ ३३३ ॥

१ संज्ञानुवादेन संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत् । स. सि. १, ८.

२ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

सण्णिसासणादीणं ओघसासणादीणं च सण्णित्तं पडि भेदाभावा ।

असण्णी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[1] ॥ ३३४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ ३३५ ॥

तं जहा– एगो सण्णी असण्णीसु उप्पज्जिय खुद्दाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय सण्णित्तं गदो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ ३३६ ॥

तं जधा– एगो सण्णी मिच्छादिट्ठी असण्णी होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टी तत्थ परियट्टिदूण सण्णित्तं गदो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा[4] ॥ ३३७ ॥

क्योंकि, संज्ञी सासादनादिकोंका और ओघ सासादनादिकोंका संज्ञित्वके प्रति कोई भेद नहीं है ।

असंज्ञी जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ३३५ ॥

जैसे— कोई एक संज्ञी जीव असंज्ञियोंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रह करके संज्ञित्वको प्राप्त हो गया ।

एक जीवकी अपेक्षा असंज्ञियोंका उत्कृष्ट काल अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ३३६ ॥

जैसे— कोई एक संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव असंज्ञी होकर, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंतक उन्हींमें परिभ्रमण करके संज्ञित्वको प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥ ३३७ ॥

---

१ असंज्ञिनां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

४ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । स. सि. १, ८.

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३३८ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय, ओघम्हि उत्तत्थादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणी[2] ॥ ३३९ ॥

तं जहा– एक्को मिच्छादिट्ठी विग्गहं कादूण उववण्णो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं असंखेज्जासंखेज्जा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणं तत्थ परिभमिय आहारगो जादो । पुणो अवसाणे विग्गहं करिय अणाहारित्तं गदो । एवमाहारिमिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सकालो सिद्धो होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[3] ॥३४०॥

कुदो? णाणेगजीवजहण्णुक्कस्सकालेहि आहारिसासणादीणं ओघसासणादीहि भेदाभावा ।

अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो[4] ॥ ३४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है, क्योंकि, ओघमें इसका अर्थ कह दिया गया है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है ॥ ३३९ ॥

जैसे– एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके (आहारक मिथ्यादृष्टियोंमें) उत्पन्न हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक उनमें परिभ्रमण करता हुआ आहारक रहा । पुनः अन्तमें विग्रह करके अनाहारकपनेको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे आहारक मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट काल सिद्ध हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तकके आहारकोंका काल ओघके समान है ॥ ३४० ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंका ओघ सासादनादि गुणस्थानोंके कालके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनाहारक जीवोंका काल कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३४१ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागा असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८.

३ शेषाणां सामान्योक्तः कालः । स. सि. १, ८.

४ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण त्रयः

कुदो ? मिच्छादिट्ठी णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धं होंति, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगो समओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया; सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया; सयोगिकेवलीणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया, उक्कस्सेण संखेज्जसमया, एक्कजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया इच्चेएहि अणाहारमिच्छादिट्ठिआदीणं कम्मइयकायजोगिमिच्छादिट्ठिआदीहिंतो विसेसाभावा।

अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३४२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण पंचहरस्सक्खरुच्चारणकालो इच्चेदेहि भेदाभावा।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता।)

एवं कालाणिओगद्दारं सम्मत्तं[2]।

....

[illegible] एक मिथ्यादृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होते हैं, और उत्कर्षसे तीन समय होते हैं; अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे आवलीके असंख्यातवें भाग, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय तक होते हैं; सयोगिकेवलीका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे तीन समय और उत्कर्षसे संख्यात समय है, तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है; इस प्रकारसे अनाहारक मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंका कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि आदिसे विशेषताका अभाव है।

अनाहारक अयोगिकेवलीका काल ओघके समान है ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण कालके समान है, इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

समयाः। सासादनसम्यग्दृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण द्वौ समयौ। सयोगकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः। उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः। स. सि. १, ८.

१ अयोगकेवलिनां सामान्योक्तः कालः। स. सि. १, ८. २ कालो वर्णितः। स. सि. १, ८.

परिशिष्ट

१ खेत्तपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	८६
२०	सजोगिकेवली ओघं।	८६
२१	पंचिंदियअपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	८७
२२	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया, बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता, सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता य केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।	८७
२३	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	९३
२४	बादरवाउकाइयपज्जत्ता केवडि खेत्ते, लोगस्स संखेज्जदिभागे।	९९
२५	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे।	१००
२६	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०१
२७	सजोगिकेवली ओघं।	१०१
२८	तसकाइयअपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो।	१०१
२९	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०२
३०	कायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	१०३
३१	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०३
३२	सजोगिकेवली ओघं।	१०४
३३	ओरालियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी ओघं।	१०४
३४	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०५
३५	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।	१०५
३६	सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०६
३७	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०८
३८	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवडि खेत्ते, लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	१०९

फोसणपरूवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	डियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९७
१५८	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१५९	संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	२९८
१६०	पंच चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१६१	पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	२९९
१६२	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१६३	छ चोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१६४	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३००
१६५	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३०१
१६६	अभवसिद्धिएहिं केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	,,
१६७	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३०२
१६८	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
१६९	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०३
१७०	सजोगिकेवली ओघं ।	३०४
१७१	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ओघं ।	३०४
१७२	उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ।	,,
१७३	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३०५
१७४	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	३०६
१७५	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१७६	मिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१७७	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१७८	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा ।	,,
१७९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	३०७
१८०	असण्णीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, सव्वलोगो ।	,,
१८१	आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	३०८
१८२	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं ।	,,
१८३	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं, लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,

कालपरूवणासुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५०
२१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५१
२२	चउण्हं उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५२
२३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३५३
२५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३५४
२६	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
२८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३५५
२९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३०	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३५६
३१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	,,
३३	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३५७
३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
३५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	३५८
३६	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३५८
३७	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३५९
३९	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	,,
४०	पढमाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६०
४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
४२	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,
४३	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३६१
४४	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३६२
४६	उक्कस्सं सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	,,
४७	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६३

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३६३
४९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ।	३६४
५०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
५१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६५
५२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि ।	,,
५४	संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६६
५५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५६	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	,,
५७	पंचिंदियतिरिक्ख—पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३६७
५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
५९	उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि ।	,,
६०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३६९
६१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं	३७०
६३	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,
६४	संजदासंजदा ओघं ।	३७१
६५	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७२
६८	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
६९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७०	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।	३७३
७१	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	३७३
७२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
७४	उक्कस्सं छ आवलियाओ ।	३७५
७५	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३७५
७७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३७६
७८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
७९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	३७७
८१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि, तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,
८२	संजदासंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	३७८
८३	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	३७९
८४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
८५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
८६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
८७	देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८०
८८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
८९	उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ।	३८०
९०	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३८१
९१	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८१
९२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
९३	उक्कस्सं तेत्तीसं सागरोवमाणि ।	,,
९४	भवणवासियप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३८२
९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
९६	उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं बे सत्त चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	,,
९७	सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	३८५
९८	आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
९९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१००	उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि ।	३८६

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	३९६
१२७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९७
१२८	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया, बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, अंतोमुहुत्तं ।	,,
१३०	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।	,,
१३१	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	३९८
१३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
१३३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	३९९
१३४	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१३५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१३६	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।	४००
१३७	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	,,
१३८	पंचिंदियअपज्जत्ता बीइंदिय-अपज्जत्तभंगो ।	,,
१३९	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०१
१४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
१४१	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	,,
१४२	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०२
१४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
१४४	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ।	,,
१४५	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४०३
१४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४०४
१४७	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।	,,
१४८	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरअपज्जत्ता केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	४०५
१४९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं	"
१५०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	"
१५१	सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता-पज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।	"
१५२	वणप्फदिकाइयाणं एइंदियाणं भंगो।	४०६
१५३	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	"
१५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	"
१५५	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जादो पोग्गलपरियट्टं।	"
१५६	बादरणिगोदजीवाणं बादरपुढविकाइयाणं भंगो।	४०७
१५७	तसकाइय--तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	"
१५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	"
१५९	उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि।	४०८
१६०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।	४०८
१६१	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।	"
१६२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।	४०९
१६३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	"
१६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४१२
१६५	सासणसम्मादिट्ठी ओघं।	"
१६६	सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	४१३
१६७	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	"
१६८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	४१४
१६९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	"
१७०	चदुण्हमुवसमा चदुण्हं खवगा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	"
१७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४१५
१७२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	"
१७३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७४	कायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४१५
१७५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१६
१७६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टं ।	,,
१७७	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	४१७
१७८	ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	,,
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४१८
१८०	उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ।	,,
१८१	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति मणजोगिभंगो ।	,,
१८२	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४१९
१८३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ।	,,
१८४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१८५	सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२०
१८६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१८७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	४२०
१८८	उक्कस्सेण छ आवलियाओ समऊणाओ ।	४२१
१८९	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४२२
१९२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९३	सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४२३
१९४	उक्कस्सेण संखेज्जसमयं ।	४२४
१९५	एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।	,,
१९६	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४२५
१९७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।	,,
१९८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१९९	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	४२६
२००	सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणजोगिभंगो ।	,,
२०१	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३१	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	४३८
२३२	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	”
२३३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२३४	उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि ।	४३९
२३५	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	”
२३६	पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	४४०
२३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२३८	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	४४१
२३९	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	”
२४०	णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	”
२४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४४२
२४२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ।	”
२४३	सासणसम्मादिट्ठी ओघं ।	”
२४४	सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ।	”
२४५	असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।	”
२४६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४४३
२४७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	”
२४८	संजदासंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ।	”
२४९	अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	४४४
२५०	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति मणजोगिभंगो ।	”
२५१	दोण्णि तिण्णि उवसमा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	४४६
२५२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२५३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	”
२५४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४४७
२५५	दोण्णि तिण्णि खवा केवचिरं कालादो होंति, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२५६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४४८
२५७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२५८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”
२५९	अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं ।	”
२६०	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	”

२ अवतरण-गाथा-सूची

गाथा-खंड

३ न्यायोक्तियां

४ ग्रन्थोल्लेख

पृष्ठ

१ अप्पाबहुगसुत्त

१. तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णव्वदे। १३२

२ करणाणिओगसुत्त

१. ण च सत्तरज्जुबाहल्लं करणाणिओगसुत्तविरुद्धं, तस्स तत्थ विधिप्पडिसेधाभावादो।

३ कालसुत्त

१. 'बे सत्त दस चोद्दस सोलसट्ठारस य वीस बावीसा' एदीए गाहाए सह एदस्स सुत्तस्स किण्ण विरोहो होदि? ण होदि विरोहो, भिण्णविसयत्तादो। तं जहा- वुत्तं सुत्तं बंधप्पडिबद्धं। कालसुत्तं पुण संतमवेक्खिय ट्ठिदमिदि। २८४

४ खुद्दाबंधसुत्त

१. कदजुम्मेहि पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणिजोदिसिय-वेंतरदेव-अवहारकालेहि खुद्दाबंधसुत्तसिद्धेहि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे एदाओ रासीओ सछेदाओ होज्ज? ण च एवं, जीवाणं छेदाभावा। १८४

२. खुद्दाबंधम्मि उववादपरिणयसासणाणमेक्कारहचोद्दसभागपोसणपरूवयसुत्तादो च णव्वदे। २०६

५ खेत्ताणिओगद्दार

१. एदेसिं चेव खेत्ताणिओगद्दारोघम्हि उत्तपरूवणाए तुल्ला। २४५

६ गाहासुत्त (कसायपाहुड)

१. 'आवलिय अणागारे'...(३६-३८) इदि गाहासुत्तादो (कसायपाहुड) ३९१

७ जीवट्ठाण

१. जीवट्ठाणादिसु दव्वकालो ण वुत्तो त्ति तस्साभावो ण वोत्तुं सक्किज्जदे, एत्थ छद्दव्वपदुप्पायणे अहियाराभावा। ३१६

८ जीवसमास

१ जीवसमासाए वि उत्तं—' छप्पंचणवविहाणं......... ३१५

९ णिरयाउवंधसुत्त

१. ' एक्कं तिय सत्त दस '......इदि णिरयाउवंधसुत्तादो। ३६२

पृष्ठ

१० तच्चत्थसुत्त (तत्त्वार्थसूत्र)

१. तह गिद्धपिंछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि 'वर्त्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि दव्वकालो परूविदो। ३१६

११ तिलोयपण्णत्ती

१. एसा तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाहियजंबूदीवछेदणयसहिददीवसायररूवमेत्तरज्जुच्छेदपमाणपरिक्खाविही ण अण्णाइरिओवदेसपरंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्तिसुत्ताणुसारिजोदिसियदेवभागहारपदुप्पाइयसुत्तावलंविजुत्तिबलेण पयदगच्छसाहणट्ठमम्हेहि परूविदा, प्रतिनियतसूत्रावष्टम्भबलविजृम्भितगुणप्रतिपन्नप्रतिबद्धासंख्येयावलिकावहारकालोपदेशवत् आयतचतुरस्रलोकसंस्थानोपदेशवद्वा। १५७

१२ दव्वाणिओगद्दार

१. किं च दव्वाणियोगद्दारवक्खाणम्हि वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पा अभावमुवढुक्कंते, अवग्गसमुट्ठिदलोगत्तादो।

२. दव्वाणिओगद्दारे वि तत्थ एगगुणट्ठाणदव्वस्स पमाणपरूवणादो च। १६२-६३

१३ परियम्म

१. जत्तियाणि दीवसागररूवाणि जंबूदीवछेदणाणि च रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जुछेदणाणि त्ति परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरुज्झदे? एदेण सह विरुज्झदि, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि। तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मस्स; तस्स सुत्तविरुद्धत्तादो। ण सुत्तविरुद्धं वक्खाणं होदि, अइप्पसंगादो। १५६

२. रज्जू सत्तगुणिदा जगसेढी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेढीए गुणिदजगपदरं घणलोगो होदि त्ति परियम्मसुत्तेण सव्वाइरियसम्मदेण विरोहप्पसंगादो। १८४

३. के वि आइरिया कम्मट्ठिदीदो बादरट्ठिदी परियम्मे उप्पण्णा त्ति कज्जे कारणोवयारमवलंबिय बादरट्ठिदीए चेय कम्मट्ठिदिसण्णमिच्छंति, तन्न घटते। ४०३

४. कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी जादा त्ति परियम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरुज्झदि त्ति णेदस्स ओक्खत्तं, सुत्ताणुसारि परियम्मवयणं ण होदि त्ति तस्सेय ओक्खत्तप्पसंगा। ३९०

१४ पंचत्थिपाहुड

१. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे—'कालो त्ति य ववएसो' इत्यादि १०४ गाथा. ३१५

२. वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे ववहारकालस्स अत्थित्तं— सब्भावसहावाणं......
७-९ गाथा. ३१७

पृष्ठ

१५ वग्गणसुत्त

१. अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लतिरियपदरम्हि सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणवियप्पेहि गुणिदे तत्थ जत्तिओ रासी तत्तियमेत्ताओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए पयडीओ........त्ति वग्गणसुत्तादो। १७५-१७६

२. महामच्छोगाहणम्हि एगबंधणबद्धछज्जीवणिकायाणमत्थित्तं कधं णव्वदे? वग्गणम्हि उत्तअप्पाबहुगादो। २१५

१६ वेदणाखेत्तविधाण

१. 'एगजीवस्स जहण्णोगाहणा वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता' त्ति वेदणाखेत्तविधाणे परूविदत्तादो।

२. पत्तेयसरीरपज्जत्तजहण्णोगाहणादो बीइंदियपज्जत्तजहण्णोगाहणा असंखेज्जगुणा त्ति कुदो णव्वदे? वेदणाखेत्तविहाणम्हि वुत्तओगाहणदंडयादो। ९४

१७ संताणिओगद्दार

१. जदि सासणा एइंदिएसु उप्पज्जंति, तो तत्थ दो गुणट्ठाणाणि होंति। ण च एवं, संताणिओगद्दारे तत्थ एक्कमिच्छादिट्ठिगुणप्पदुप्पायणादो।

२. एदं पि वक्खाणं संत दव्वसुत्तविरुद्धं ति ण घेत्तव्वं। १५६

---

५ पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना—यहां शब्दोंके केवल उन्हीं पृष्ठोंका उल्लेख किया गया है जहां उनके विषयमें कुछ विशेष कहा गया पाया जाता है।